ओशो के अंग्रेजी साहित्य से अनुवादित विभिन्न प्रवचनांश

अनुक्रम

1. बुद्धत्व का मनोविज्ञान: मनुष्य का नव विकास.................................3
2. भविष्य की एक झलक..7
3. एक शोध वैज्ञानिक की कठिनाई..13
4. मानवीय जीवन पर किए जा रहे प्रयोग..16
5. संसार क्यों है? ताकि मुक्ति फलित हो सके!.....................................19
6. एकांत और अहंकार...30
7. ध्यान का रहस्यः अंतराल में प्रवेश...33
8. काम, प्रेम और प्रार्थनाः दिव्यता की ओर तीन कदम..........................41
9. विकास के अवरोधः विभाजन और व्यवस्थायें..49 10..स्वप्नों का मनोविज्ञान
.... 58
11...सात शरीरों का अतिक्रमण
.... 67
12...जानकारी का भ्रम
.... 81
13..भगवत्ता के झरोखे
.... 88
14..सम्यक प्रश्न
.... 98
15..तर्क और तर्कातीत का संतुलन
.... 109
16...समग्रता से और पूरी त्वरा से जीओ
.... 121
17..जीवन के विभिन्न आयामों पर ओशो का नजरिया
.... 143
18...परिवार नियोजन पूर्णतः अनिवार्य हो।
.... 164
19..मौन का नाद, कमल में मणि
.... 169
20...धर्म और राजनीति
.... 173
21...जीवन का अंतिम उपहार
.... 180
22...सूफी दरवेश गोल-गोल घूमने की विधि
.... 192

23...तंत्र की विधि - दर्पण में देखना
....194
24...तंत्र की कल्पना की विधि
....199
25...झेन शुद्ध धर्म है।
....202

प्रवचन-1

बुद्धत्व का मनोविज्ञान: मनुष्य का नव विकास
(दि साइकॉलॉजी ऑफ दि इसोटेरिकः दि न्यू इवोल्यूशन आफ मैन का हिंदी अनुवाद)

प्रश्न- क्या यह संभव है कि मनुष्य के विकास के पथ पर किसी समय भविष्य में सारी मानवता संबुद्ध हो जाये? मनुष्य आज विकास के किस बिंदु पर है?

मनुष्य के साथ विकास की प्राकृतिक स्वतः चलनेवाली प्रक्रिया समाप्त
हो जाती है। मनुष्य अचेतन विकास का अंतिम उत्पाद है। मनुष्य के साथ सचेतन विकास आरंभ होता है।
बहुत सी बातें ख़याल में लेनी हैं। पहली, अचेतन विकास यांत्रिक एवं प्राकृतिक होता है। यह अपने से होता है। इस प्रकार के विकास के माध्यम से चेतना विकसित होती है। किंतु जैसे ही चेतना अतित्व में आती है, अचेतन विकास रुक जाता है; क्योंकि इसका उद्देश्य पूरा हो चुका है। अचेतन विकास की आवश्यकता तभी तक है, जब तक कि चेतना अस्तित्व में न आ जाए।
मनुष्य चेतन हो गया है। एक प्रकार से उसने प्रकृति का अतिक्रमण कर लिया है। अब प्रकृति कुछ नहीं कर सकती। प्राकृतिक विकास के माध्यम से जो अंतिम उत्पाद संभव था, वह अस्तित्व में आ चुका है। अब मनुष्य यह निर्णय करने के लिए स्वतंत्र है कि वह विकसित हो या न हो।
दूसरी बात, अचेतन विकास सामूहिक होता है, लेकिन जिस पल विकास सचेतन बनता है, वह व्यक्तिगत हो जाता है। मानव-जाति से परे किसी सामूहिक, वतः चलनेवाले विकास की गति नहीं है। अब से विकास एक व्यक्तिगत प्रक्रिया बन गया है। चेतना से जिता पैदा होती है। जब तक चेतना विकसित न हो, कोई निजता नहीं होती। केवल प्रजातियां होती हैं, व्यक्ति नहीं।
यदि विकास अभी तक अचेतन हो, तो यह एक स्वतः चलनेवाली प्रक्रिया होता है, इसके बारे में कोई अनिश्चितता नहीं होती हैं। घटनायें कार्य और कारण के नियम से घटित होती हैं। अस्तित्व यांत्रिक और निश्चित होता है। लेकिन मनुष्य के साथ, चेतनता के साथ, अनिश्चितता अस्तित्व में आ जाती है। अब कुछ भी निश्चित नहीं होता। विकास घटित हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। क्षमता तो होती है, पर चुनाव संपूर्णतः प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर होता है।
इसीलिए चिंता मानवीय घटना है। मनुष्य से नीचे के जगत में कोई चिंता नहीं है, क्योंकि चुनाव की स्वतंत्रता भी नहीं है। प्रत्येक घटना वैसे ही घटती है जैसे कि घटनी चाहिए। वहाँ न चुनाव होता है न चुनाव-कर्त्ता, और चुनाव-कर्त्ता की अनुपस्थिति में चिंता असंभव है। कौन चिंतित होगा? कौन तनावग्रस्त होगा?
चुनाव की संभावना के साथ चिंता एक छाया की तरह आती है। अब हर चीज़़ को चुना जाना है। प्रत्येक कार्य सचेतन प्रयास होना है। तुम अकेले ही उत्तरदायी होते हो। यदि तुम असफल होते हो, तो तुम असफल होते हो। यह तुम्हारा उत्तरदायित्व है। यदि तुम सफल होते हो तो तुम सफल होते हो। यह भी तुम्हारा उत्तरदायित्व है।
और एक अर्थ में प्रत्येक चुनाव परम होता है। तुम इसे अनकिया नहीं कर सकते, तुम इसे भूल नहीं सकते, तुम इससे पूर्व की स्थिति में पुनः वापस नहीं जा सकते। तुम्हारा चुपनाव तुम्हारी नियति बन जाता है। यह तुम्हारे साथ तुम्हारा एक हिस्सा बनकर रहेगा; तुम इससे इन्कार नहीं कर सकते। लेकिन तुम्हारा चुनाव सदा ही एक जुआ है। प्रत्येक चुनाव अनभिज्ञता में किया जाता है; क्योंकि तब कुछ भी निश्चित नहीं होता। यही कारण है कि मनुष्य चिंता से पीड़ित होता है। वह अपनी गहराइयों में चिंतित होता है। सबसे पहली बात जो उसे संताप देती है, वह यह है कि होना है या नहीं होना है? करना है या नहीं करना है? यह करुँ या वह करुँ?

अचुनाव संभव नहीं है। यदि तुम नहीं चुनते तो तुम न चुनने को चुन रहे हो, यह भी एक चुनाव है। अतः तुम चुनने के लिए बाध्य हो। तुम न चुनने के लिए स्वतंत्र नहीं हो। अचुनाव भी वैसा ही प्रभाव डालता है जैसा कि चुनाव। मनुष्य का गौरव, प्रतिष्ठा और सौंदर्य उसकी यही चेतनता है। लेकिन यह
एक बोझ भी है। गौरव और बोझ एक साथ उसी पल आते हैं, जिस पल तुम चेतन हो जाते हो। प्रत्येक क़दम दो के मध्य गति करता है। मनुष्य के साथ चुनाव और सचेतन निजता अस्तित्व में आए हैं। तुम विकसित हो सकते हो पर तुम्हारा विकास तुम्हारा निजी प्रयास होता है। तुम विकसित होकर बुद्ध हो सकते हो या नहीं भी हो सकते। चुनाव तुम्हारे हाथ में है।
अतः विकास दो प्रकार का हैः सामूहिक विकास और वैयक्तिक, सचेतन विकास। विकास का अभिप्राय अचेतन सामूहिक प्रगति समझा जाता है, अतः यह बेहतर होगा कि हम मनुष्य के संदर्भ में शब्द उत्क्रांति का प्रयोग करें। मनुष्य के साथ उत्क्रांति संभव है। उत्क्रांति का, जिस अर्थ में मैं प्रयोग कर रहा हूं, अभिप्राय है विकास की ओर किया गया निजी, सचेतन प्रयास। यह निजी उत्तर दायित्व को उसकी चरमसीमा पर लाना है। अपने विकास के लिए मात्र तुम उत्तरदायी हो।
सामान्यतः मनुष्य अपने विकास के प्रति अपने उत्तरदायित्व से, चुनाव
की स्वतंत्रता के उत्तरदायित्व से, भागने का प्रयास करता है। स्वतंत्रता का बड़ा भय होता है। यदि तुम ग़ुलाम हो तो तुम्हारा उत्तर दायित्व तुम्हारे जीवन के प्रति कभी नहीं होगा। कोई दूसरा ही उत्तरदायी होगा। अतः एक प्रकार से ग़ुलामी बहुत सुविधाजनक घटना है। वहां कोई बोझ नहीं होता। इस संदर्भ में ग़ुलामी एक स्वतंत्रता है-सचेतन चुनाव से स्वतंत्रता।
जिस क्षण तुम पूर्णतः स्वतंत्र होते हो, तुम्हें अपने चुनाव स्वयं करने पड़ते हैं। तुम्हें कोई कुछ करने को बाध्य नहीं करता है; सारे विकल्प तुम्हारे समक्ष खुले होते हैं। तब मन से संघर्ष आरंभ होता है। अतः व्यक्ति स्वतंत्रता से भयभीत हो जाता है।
साम्यवाद या फासीवाद जैसी विचारधाराओ के आकर्षण के कारणों में से एक कारण यह भी है कि वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता से पलायन प्रस्तुत करती हैं और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को नहीं मानती। उत्तरदायित्व का बोझ व्यक्ति से हटा लिया जाता है; समाज को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है। जब भी कुछ ग़लत होता है तुम राज्य पर, संगठन पर, उंगली उठा सकते हो। मनुष्य एक सामूहिक संरचना का भाग मात्र बन जाता है। लेकिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता को इन्कार करके साम्यवाद और फासीवाद मानव के विकास की संभावना को भी इन्कार देते है। यह उस महान संभावना से पीछे लौटना है जिसे उत्क्रांति प्रतुत करती हैः मनुष्य का पूर्ण रूपांतरण। जब ऐसा होता है तो तुम परम को उपलब्ध करने की संभावना को नष्ट कर देते हो। तुम्हारा पतन हो जाता है, तुम दोबारा पशुओं के समान हो जाते हो।
मेरे देखे, आगे का विकास निजी उत्तरदायित्व के साथ ही संभव है। तुम अकेले उत्तरदायी हो। यह उत्तरदायित्व छद्म रूप में एक् महान आशीष है। इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ एक संघर्ष का जन्म होता है जो कि अंततः चुनावरहित बोधि की ओर ले जाता है।
अचेतन विकास का पुराना ढाँचा हमारे लिए समाप्त हो चुका है। तुम इसमें लौट सकते हो लेकिन तुम इसमें रह नहीं सकते। तुम्हारा अस्तित्व विद्रोह करेगा। मनुष्य चेतन हो चुका है, उसे चेतन रहना पड़ेगा। कोई और रास्ता नहीं है।
अरविंद जैसे दर्शनिक पलायनवादियों को बहुत लुभाते हैं। वे कहते हैं
कि सामूहिक विकास संभव है। दिव्यता उतरेगी और प्रत्येक व्यक्ति संबुद्ध हो जाएगा। लेकिन मेरे देखे यह संभव नहीं है। और यदि यह संभव भी हो, तो इसका कोई महत्व नहीं होगा। यदि तुम बिना अपने व्यक्तिगत प्रयास के संबुद्ध हो जाते हो तो यह संबोधि कुछ महत्व की न होगी। इससे तुम्हें समाधि का वह स्वाद नहीं मिलेगा जो प्रयास की पूर्णता से मिलता है। यह मिले हुए के रूप में लिया जा सकता है- जैसे कि तुम्हारी आँखें, तुम्हारे हाथ, तुम्हारा श्वसन-तंत्र। ये महान वरदान हैं, लेकिन कोई उनका महत्व नहीं समझता न इन्हें प्रिय मानता है।

एक दिन तुम संबुंद्ध होकर पैदा भी हो सकते हो, जैसा कि अरविंद वादा करते हैं। यह महत्वहीन होगा। तुम्हारे पास बहुत कुछ होगा, लेकिन क्योंकि यह तुम्हारे पास बिना प्रयास के, बिना परिश्रम के आ गया है, यह तुम्हारे लिए अर्थहीन होगा। इसका कोई महत्व न रहेगा। सचेतन प्रयास आवश्यक है। उपलब्धि इतनी जितना कि प्रयास स्वयं है। प्रयास इसे सार्थकता प्रदान करता है, संघर्ष इसे इसकी पहचान देता है।
जैसा कि मैं देखता हूं, वह संबोधि जो अचेतन, सामूहिक रूप से, दिव्यता
की भेंट के रूप से आएगी, न केवल असंभव ह, बल्कि अर्थहीन भी है। तुम्हें संबोधि के लिए संघर्ष करना पड़ेगा। संघर्ष से तुममे वह क्षमता विकसित होती है कि तुम आनेवाले आशीष को देख सकते हो, अनुभव कर सकते हो और उसे ग्रहण कर सकते हो।
अचेतन विकास मनुष्य के साथ समाप्त हो गया है और सचेतन विकास (उत्क्रांति) आरंभ होता है। लेकिन सचेतन विकास किसी विशेष मनुष्य में आरंभ होना आवश्यक नहीं है। यह सिर्फ तभी आरंभ होता है, जब तुम इसे आरंभ करना चाहो। लेकिन यदि तुम इसे न चुनो जैसा कि बहुत से लोग नहीं चुनते, तुम बहुत तनावपूर्ण स्थिति में रहोगे। और आजकल मानव-जाति इसी तरह है- न कहीं जाना है, न कुछ पाना है। अब सचेतन प्रयास के बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता। तुम अचेतनता की दशा में वापस नहीं जा सकते। दरवाज़ा बंद हो चुका है, पुल टूट चुका है।
विकसित होने का सचेतन चुनाव एक महान साहसिक कार्य है, यही मनुष्य मात्र का एक मात्र दुःसाहस है। पथ दुर्गम है, पर इसे ऐसा होना ही है।
त्रुटियां वहां होंगी ही, असफलतायें आयेंगी ही, कुछ भी निश्चित नहीं है।
यह स्थिति मन में तनाव पैदा कर देती है। तुम नहीं जानते कि तुम कहाँ जा रहे हो। तुम्हारी पहचान खो गई है।
यह स्थिति ऐसे बिंदु पर भी पहुँच सकती है कि तुम आत्मघाती हो जाओ। आत्मघात एक मानवीय घटना है। यह मानवीय चुनाव के साथ आती है। पशु आत्मघात नहीं कर सकते, क्योंकि सचेतन होकर मृत्यु का चुनाव करना उनके लिए असंभव है। जन्म अचेतन है, मृत्यु अचेतन है। लेकिन मनुष्य के- अनभिज्ञ मनुष्य के, अविकसित मनुष्य के साथ भी एक चीज़ संभव हो जाती है- मृत्यु को चुनने की योग्यता।
तुम्हारा जन्म तुम्हारा चुनाव नहीं है। जहां तक तुम्हारे जन्म का संबंध है, तुम अचेतन विकास के हाथ में होते हो। वस्तुतः तुम्हारा जन्म किसी भी तरह मानवीय घटना नहीं है। यह प्राकृतिक रूप से पशु-जगत का हिस्सा है, क्योंकि यह तुम्हारा चुनाव नहीं है। मानवता सिर्फ चुनाव से ही आरंभ होती है। लेकिन तुम अपनी मृत्यु चुन सकते हो- एक निश्चयात्मक कृत्य। अतः आत्मघात निश्चित रूप से मानवीय कृत्य है। और यदि तुम सचेतन विकास को नहीं चुनते, तब बहुत संभावना है कि तुम आत्मघात को चुन लो। तुममें शायद इतना साहस न हो कि तुम सक्रिय रूप से आत्मघात कर सको, किंतु तब तुम एक धीमी लम्बी आत्मघात की प्रक्रिया से गुज़रोगे- घिसटते हुए, मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए।
तुम किसी अन्य को अपने विकास के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते। इस स्थिति की स्वीकृति तुम्हें शक्ति देती है। तुम अपने विकास के, वृद्धि के पथ पर होते हो।
हम भगवान बनाते हैं या हम गुरुओं की शरण में जाते हैं, ताकि हम अपनी स्वयं की जिं़दगी के प्रति, अपने विकास के प्रति उत्तरदायी न रहें। हम खुद से हटाकर उत्तरदायित्व कहीं और रखने का प्रयास करते हैं। यदि हम मादक पदार्थों या औषधियों के, या अन्य किसी पदार्थ के, जो हमें अचेतन बना दे, माध्यम से उत्तरदायित्व से बचने का प्रयास करते हैं तो उत्तरदायित्व को नकारने के ये प्रयास असंगत, बालकों जैसे और बचकाने हैं। वे सिर्फ समस्या को स्थगित करते हैं; वे समाधान नहीं हैं। तुम इसे मृत्यु तक स्थगित कर सकते हो, लेकिन तब भी समस्या रहेगी और तुम्हारे नये जन्म में यह सब जारी रहेगा।
एक बार तुम इस बोध से भर उठो कि तुम अकेले ही उत्तरदायी हो, कि अचेतनता
के किसी भी रूप द्वारा पलायन संभव नहीं है। और यदि ततुम पलायन का प्रयास

करो तो तुम मूर्ख हो, क्योंकि उत्तरदायित्व विकास के लिए एक महान अवसर है।
इस प्रकार से निर्मित संघर्ष से ही कुछ नया विकसित हो सकता है।
बोधपूर्ण होना अभिप्राय है- यह जानना कि सब कुछ तुम पर निर्भर है।
तुम्हारा भगवान भी तुम पर निर्भर है; क्योंकि वह तुम्हारी कल्पना से निर्मित हुआ है। प्रत्येक बात अंतिम रूप से तुम्हारा ही हिस्सा है, और तुम ही इसके लिए उत्तरदायी हो। ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारे बहाने सुने, न कोई अदालते हैं जहां तुम प्रतिवेदन कर सको; समग्र उत्तरदायित्व तुम्हारा है। तुम एकाकी हो, आत्यंतिक रूप से एकाकी हो। यह भी बहुत साफ तरह से समझ लेना चाहिए। जिस पल कोई व्यक्ति चेतन होता है, वह एकाकी हो जाता है। जितनी अधिक चेतनता होगी उतना ही अधिक बोध होगा कि तुम अकेले हो। अतः समाज, मित्रों, संघों, भीड़ के माध्यम से, इस तथ्य से मत भागो। इससे भागो मत। यह एक महान घटना है, विकास की संपूर्ण प्रक्रिया इस ओर कार्यरत है। चेतना, अब उस बिंदु पर आ चुकी है जहां तुम जानो कि तुम एकाकी हो। और सिर्फ एकाकीपन में ही तुम संबोधि प्राप्त कर सकते हो।
मैं अकेलेपन के लिए नहीं कह रहा हूं। अकेलापन तब अनुभव होता है जब कोई एकाकीपन से पलायन करता है, जब कोई इसे स्वीकृत करने को राज़ी नहीं होता। यदि तुम एकाकीपन के इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते तो तुम अकेलेपन का अनुभव करोगे। तब तुम सिकी भीड़ या नशे का कोई उपाय खोजते हो, जिसमें तुम खुद को भूल सको। अकेलापन विस्मृति का अपना जादू निर्मित करता है।
यदि तुम एक सिर्फ एक पल के लिए भी एकाकी हो सको, पूर्णतः एकाकी, अहँकार मिट जाएगा, "मैं" मर जाएगा। तुम्हारा विस्फोट घटित हो जाएगा, फिर तुम न रहोगे। अहँकार एकाकीपन में नहीं रह सकता। यह सिर्फ दूसरों से संबंधों के द्वारा अस्तित्व में होता है। जब भी तुम एकांत में होते ही एक चमत्कार घटित होता है अहँकार क्षीण हो जाता है। अब यह अधिक समय तक अस्तित्व में नहीं रह सकता। अतः यदि तुममें एकांत में होने कि लिए पर्याप्त साहस है तो शनैः शनैः तुम्हारा अहँकार विलीन हो जाएगा।
एकांत में होना आत्यंतिक रूप से सचेतन और विचारपूर्ण कृत्य है, आत्मघात से भी अधिक विचारपूर्ण, क्योंकि अहँकार एकांत में नहीं रह पाता, किंतु यह आत्मघात में रह सकता है। अहँकारी लोग आत्मघात में अधिक उत्सुक होते हैं। आत्मघात सदा किसी और से संबंध में होता है, यह कभी एकाकीपन का कृत्य नहीं होता। आत्मघात में अहँकार पीड़ित नहीं होगा। बल्कि यह और अधिक मुखर हो जाएगा। यह अधिक बलशाली होकर नये जन्म में प्रविष्ट हो जाएगा। एकांत के द्वारा, अहँकार बिखर जाता है। इसे कोई संबंधित होने को नहीं मिलता, अतः यह रह नहीं पाता। अतः यदि तुम एकाकी होने के लिए, असंदिग्ध रूप से एकाकी होने के लिए तैयार हो जाओ, न भागो न पीछे लौटो, बस एकाकीपन के तथ्य को जैसा यह है स्वीकार करो।

प्रवचन-2

भविष्य की एक झलक

प्रश्नः हाल ही में आपने विज्ञान पर चर्चा करते हुए बताया कि नया मनुष्य कैसे पैदा किया जाए जो अधिक प्रतिभावान्, सृजनशील, स्वस्थ एवं ज़्यादा स्वतंत्र हो। यह बात अत्यंत लुभावनी लगी, साथ ही डरावनी भी; क्योंकि इस प्रकार तो एक तरह का थोक-उत्पादन सा होने लगेगा। कृपया मेरे इस भय के संबंध में कुछ कहें।

यह बात पूर्णतः लुभावनी ही है, इसमें भय अनुभव करने की कोई भी ज़रूरत नहीं है। वस्तुतः थोक-उत्पादन, एक्सीडेंटल मास प्रोडक्शन तो वह है जो लाखों-करोड़ों सालों से हम करते चले आ रहे हैं। क्या तुम्हें ज़रा-सा भी अंदाज है कि किस तरह के बच्चे को जन्म देने वाले हो? क्या तुम्हें मालूम है कि वह अंधा, विकलांग, कमज़ोर, अविकसित या आजीवन रोग-ग्रस्त रहने वाला नहीं होगा?
क्या पति-पत्नी जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं? जब वे काम-क्रीड़ा में संलग्न होते हैं, तब उनके पास अनुमान लगाने की भी कोई संभावना नहीं रहती। बिल्कुल पशुओं की भाँति बच्चे पैदा किए जा रहे हैं; और तुम्हें घबराहट नहीं होती, भय नहीं पकड़ता! जब कि पूरी दुनिया को तुम गूंगों, बहरों, अपंगों और मूढ़ों से भरी देखते हो... इतना कूड़ा-करकट----कौन इसके लिए ज़िम्मेदार है? तुम्हें इसमें थोक-उत्पादन नज़र नहीं आता?
वैज्ञानिक ढंग से शिशु को जन्माने की मेरी धारणा यह है कि हम होशपूर्वक, जानते हुए, सारी सावधानियों सहित इस पृथ्वी पर एक मेहमान को आमंत्रित करेंगे। हमें पता होगा कि वह कौन है, कैसा है, और अंततः क्या बन सकता है? वह कितना लम्बा जी सकेगा और उसकी बुद्धि कितनी प्रखर होगी? लंगड़े-लूलों, अंधे-बहरों, शारीरिक या मानसिक रूप से किसी भी प्रकार के अविकसित बच्चों के जन्म की सारी संभावनाओं से बचा जा सकता है... और तुम्हें डर लग रहा है! इतने मूर्ख न बनो।
यह वैज्ञानिक जन्म-प्रक्रिया पशुवत नहीं होगी, बल्कि इस तरीके से बच्चों को जन्म देकर हम पाशविकता के पार जा सकेंगे। यह बात बड़ी अनूठी और रोमाँचकारी है- विज्ञान की अद्भुत खोजों में से एक। इसकी पूरी व्यवस्था हम कर सकेंगे, यह एक वैज्ञानिक तथ्य बन ही चुकी है। ज़्यादा स्वस्थ और बेहतर लोगों के जन्म का इंतज़ाम हम कर सकते हैं- जो उतनी उम्र पाएँ जितना वे जीना चाहें, तथा वैसी तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता उनके पास हो जैसी उनके काम के लिए आवश्यक हो।
यदि कोई दंपति साइंटिफिक लैब में पहुंचकर निवेदन करें कि उन्हें अलबर्ट आइंस्टीन जैसा गणितज्ञ बेटा तो चाहिए, मगर आइंस्टीन से ज़्यादा बलिष्ठ, दो सौ वर्ष आयु वाला जिसे किसी प्रकार की बीमारियां न हों, तो वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला के वीर्य-बैंक तथा गर्भ बीज-बैंक से उपयुक्त गुणधर्म वाले शुक्राणु और अण्डाणु का सावधानी पूर्वक चयन कर, टेस्ट-टयूब बेबी तैयार कर देंगे, जिसे वह दंपति गोद ले लेंगे।
अब संतान गोद लेनी होगी, पैदा नहीं करनी पड़ेगी। पैदा करने की प्रक्रिया तो जानवरों के प्रजनन जैसी है। किंतु अपनी कल्पना के अनुसार मनचाहा बच्चा गोद लेना... सभी चाहते हैं कि उनसे कोई शेक्सपियर या कालिदास आए, कोई महाकवि उत्पन्न हो, कि कोई अनूठा संगीतज्ञ या नर्तक जन्मे। प्रत्येक माँ सपने संजोए रहती है कि उसका बेटा किसी न किसी रूप में महामानव पैदा हो, फिर बेचारी विषाद से घिर जाती है जब लड़का एकदम औसत दर्जे का, साधारण, सड़ा-गला सिद्ध होता है; और अति-जनसंख्या से बोझिल इस धरती पर, अरबों लोगों की भीड़ में कहीं खो जाता है। सच पूछो तो यही मास-प्रोडक्शन है।
लेकिन शिशु को गोद लेते समय उन सारे गुणों का ख़्याल रख सकते हो जो तुम्हें पसंद हैं। फिर विशेषज्ञों की राय भी ली जा सकती है कि और कौन सी विशेषताएँ उस बच्चे के जीवन में सहयोगी साबित होंगी, जैसे... वह प्रेम करने

में कितना सक्षम होगा? ... यदि तुम मजनूं या रोमियो चाहो तो वैसा बच्चा मिल जाएगा। सिर्फ ज़रा-सी रासायनिक मात्रा का कम-अधिक होने का सवाल है, रोमियो की देह में पुरुष हारमोन दूसरे व्यक्तियों से थोड़े ज़्यादा हैं; बस, इतना ही फर्क है। वह किसी विशेष रसायन के मामले में ज़्यादा समृद्ध है, इसलिए एक स्त्री उसके लिए पर्याप्त सिद्ध नहीं होती।
क्या तुम ऐसा कवि चाहोगे जो अतीत के समस्त कवियों को पीछे छोड़ दे, या
एक वैज्ञानिक जिसके सम्मुख पुराने सारे वैज्ञानिक बौने से दिखने लगें! क्या तुम्हें संगीतज्ञ बेटे की चाहत है जो अज्ञात व अदृश्य को सुरों में बांध लाए अथवा एक गीतकार जो आनंद व उत्सव को ऐसे शब्दों में ढाल दे जैसे किसी ने भी नहीं ढाले। तुम जैसी औलाद चाहो, वे हिसाब-किताब करके बता पाएँगे कि इस-इस प्रकार के स्पर्म और ओवम के मिलन से इस तरह का मनुष्य जन्म ले सकेगा। वह स्पर्म तुम्हारा नहीं होगा, न ही ओवम तुम्हारी पत्नी से आएगा। या तो कृत्रिम गर्भाधान किया जाएगा या तुम बच्चे को अडॉप्ट करोगे। इस ढंग से तुम्हें वैसी संतान उपलब्ध हो जाएगी जिसके मनुष्यता ने सदा से सपने देखे हैं- सुपरमैन, फौलादी महामानव; मुहम्मद अली उसका सामना न कर पाएगा; मुंह पर एक घूंसा पड़ेगा कि चैंपियन महोदय का काम तमाम हो जाएगा। तुम्हें डर किस बात का है? क्या जानवरों को अतिक्रमण करना नहीं चाहते? यह बात ही बड़ी बेहूदी है कि वीर्य तुम्हारा हो या अण्डाणु तुम्हारी पत्नी से आए। समस्त बच्चे इस विश्व के हैं। तुम्हारे वीर्य-कणों में ऐसी कौन सी ख़ूबी है? एक विकलांग व्यक्ति को क्यों जन्माएँ सिर्फ इसीलिए कि वह तुम्हारे वीर्य से निर्मित है! अब विज्ञान हमें इस पाशविकता के पार उठाने में सक्षम हैं; और स्मरण रहे यह थोक-उत्पादन नहीं बल्कि ठीक उसका विपरीत है। कार बनाने वाली फैक्ट्रियों में जैसे असेंबली लाइन होती है... एक सरीखी लाखों कारें निकलती चली आती हैं... वैसा नहीं होगा; वरन बहुत ही अनूठी, निजी और अनोखी बात होगी, बिल्कुल वैयक्तिक, क्योंकि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को चयन की स्वतंत्रता होगी कि वे किस तरह का शिशु पसंद करते हैं।
तुम्हारी खोपड़ी में यह थोक-उत्पादन का ख़याल कहां से घुसा? अगर तुम सोचते हो सभी युगल एक जैसी संतान चाहेंगे तो ग़लत होगा। क्या तुम्हारे विचार हैं कि वैज्ञानिक अपनी मर्ज़ी मुताबिक प्रयोगशाला में बच्चों की फसल उपजाएँगे और तुम्हें मजबूरन उन्हें गोद लेना पड़ेगा- तब वह थोक उत्पादन कहलाएगा- किंतु मैं कतई उसके पक्ष में नहीं हूँं। तुम्हें चुनाव की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। अभी स्थिति यह है कि तुम बिल्कुल परतंत्र हो, चुनाव का कोई विकल्प ही नहीं है; सब अँधेरे में हो रहा है, तुम अंधी बायोलाजी के ग़ुलाम हो। इस अंधी जैविक-शक्ति के बंधनों से मुक्ति नहीं चाहते? क्या इस मूढ़तापूर्ण मोह के ऊपर उठना नहीं चाहते कि शुक्राणु तुम्हारा और अण्डाणु तुम्हारी पत्नी का ही हो?
बेचारे अण्डाणु को पता तक नहीं कि वह किसका है? और कौन सी विशेषता है तुम्हारे शुक्राणुओं में, तुम्हें भी कुछ ख़बर नहीं है! ज़रा भी अंदाज़ नहीं कि किस भाँति के लोग तुम्हारे भीतर से जन्म लेने को आतुर और संघर्षरत हैं? चयन की सुविधा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। तुम बाइऑलोजि से बंधे हो, एकदम परतंत्र हो।
वैज्ञानिक प्रजनन के संबंध में मेरी जो दृष्टि है, वह इस बंधन, दासता, अंधकार और अंधेपन से छुटकारा दिला देगी। किन्हीं अर्थों में तुम ज़्यादा आध्यात्मिक हो जाओगे क्योंकि मेरे और मेरी पत्नी के शरीर से निकले अंशों से ही हमारी संतान का उत्पन्न होना अनिवार्य है, इस पार्थिव मोह से मुक्त हो जाओगे। तुम दोनों अपनी चाहत और अरमानों के अनुसार चुनकर टेस्ट-टयूब बेबी गोद ले लोगे, साथ ही विशेषज्ञों की सलाह भी मिल जाएगी कि क्या-क्या तुम्हारे बच्चे के लिए सर्वोत्तम होगा। क्या तुम एक अद्वितीय रूप से बुद्धिमान बच्चा न चाहोगे? व्यर्थ मोह की वजह से तुम एक अपंग बच्चे से तृप्त होने के लिए राजी हो जाते हो। स्मरण रखना, एक अंधे-बहरे या बीमार-कमज़ोर बच्चे को पैदा करके तुम उस पर कोई उपकार नहीं कर रहे हो। वह कभी माफ न कर पाएगा- तुम्हीं उसकी तकलीफों के लिए उत्तरदायी हो। वह बेचारा एक ऐसी जिं़दगी जीने के लिए बाध्य होगा, जो जीने योग्य ही नहीं है।

मेरी दृष्टि तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देती है; साथ में, निश्चित ही बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी भी। सारी सुविधाएं उपलब्ध होंगी कि तुम आगंतुक बच्चे का रंग चुन सको, उसके चेहरे की बनावट चुन सको... रोमन शक्ल कि यूनानी शक्ल... संगमरमर की मूर्तियों जैसे अत्यंत सुंदर रंग रूप वाले बच्चे! जीवन के किसी आयाम में प्रतिभा के धनी बच्चे, प्रेम से लबालब; और ऐसी पैनी धार बुद्धि की, इतने विवेकपूर्ण कि सारे धर्मगुरुओं और राजनीतिज्ञों के ज्ञान को उठाकर फेंक सकें। वे किसी नेता के अनुयायी नहीं बनेंगे, वरन स्वयं अपने आप में परितृप्त होंगे।
अभी तुम क्या कर रहे हो... पहले तो अपने अज्ञान के अँधेरे में, अँधेपन में एक बच्चे को जन्माते हो, बिना जाने कि वह क्या हो पाएगा, क्या बन जाएगा, और फिर उसे हिंदू, मुस्लिम, ईसाई बनने के लिए मजबूर करते हो... वह बेचारा इतना साहसी व समझदार भी नहीं होता कि इन जंजीरों को तोड़ कर बगावत कर सके। मेरी दृष्टि के मुताबिक जो व्यक्ति जन्म लेंगे, वे पूर्णरूपेण स्वतंत्र होंगे। न तो वे किसी राजनीतिक दल से बंधेंगे, न ही किसी संगठित धर्म के अनुयायी बनेंगे। क्या ज़रूरत है कार्ल मार्क्स के खूंटे से बंधे रहकर साम्यवादी कहलाने की? वे मार्क्स से कहीं बेहतर चिंतन कर पाएँगे। मार्क्स एक श्रेष्ठ चिंतक था भी नहीं। उन्हें कोई जल्दबाज़ी नहीं होगी, वे धैर्यवान होंगे, प्रतीक्षा करने को तत्पर; क्योंकि वे दीर्घायु होंगे, पर्याप्त समय उनके हाथ में होगा। ज़रा कल्पना करो, यदि आइंस्टीन तीन सौ वर्ष जीए, तो कैसे-कैसे वैज्ञानिक चमत्कारों का ढेर न लगा दे, दुनिया का कैसा सौभाग्य हो! परंतु वह एक सांयोगिक देह में, एक्सीडेंटल बॉडी में जन्मा और जीया, तो उसे शीघ्र मरना पड़ा।
अब अधिकांश बीमारियों से और बुढ़ापे से छुटकारा संभव है, हम हर तरीक़े
से जीवन की प्रोग्रैमिंग कर सकते हैं। जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा जीन्स की संरचना बदलकर शिशु को ऐसा भी प्रोग्रैम्ड कर सकते हैं कि वह स्वेच्छा से जब मरना चाहे, तभी मरे, अन्यथा जीता चला जाए। यदि उसे लगे कि जिं़दगी में अभी भी कोई रस शेष रह गए हैं जिनका स्वाद उसने नहीं चखा, जीवन का कोई आयाम अस्पर्शित रह गया है, कुछ और उघाड़ना बाकी है, समय की अभी ज़रूरत है, तो वह अपनी मर्ज़ी का मालिक होगा कि कब तक और जीना चाहता है।
फिलहाल साठ-सत्तर साल की उम्र तक ही हम जी पा रहे हैं- इस औसत आँकड़े में वे लोग भी शामिल हैं जो सवा सौ वर्षों तक जी लेते हैं। दुनिया के कुछ कोनों में, विशेषकर रूस में, डेढ़ सौ की उम्र पार करने वाले लोग हैं, जो अभी तक बूढ़े भी नहीं हुए हैं। काश्मीर के एक हिस्से में जो अब पाकिस्तान के कब्जे में है, वहां आसानी से एक सौ पचास, एक सौ साठ, एक सौ सत्तर साल के लोग मिल जाएँगे। आश्चर्य! ... मैं उन लोगों से मिला हँ--डेढ़ सौ वर्ष का वृद्ध भी उसी उमंग, उत्साह और त्वरा के साथ खेतों में श्रम करने में जुटा है, जिस बल के साथ वह पचास साल की उम्र में काम करता था।
केवल बेहतर तरीके से क्रास-ब्रीडिंग कराने का आयोजन करना आवश्यक है। जानवरों और वनस्पतियों के विषय में तो अब यह सर्वविदित तथ्य ही है... कैसे भाँति-भाँति के खूबसूरत कुत्तों की नस्लें आज जमीन पर मौजूद हैं- छोटे, बड़े, विशालकाय, शक्तिशाली अथवा सिर्फ़ सुंदर; इतने सुंदर कि अपने आसपास उन्हें उचकते-कूदते-खेलते देखना आह्लादित कर जाता है! क्या तुम सोचते हो कि वे अंधी प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं? नहीं, सदियों से हम कुत्तों की क्रास-ब्रीडिंग कराते आ रहे हैं; वे वर्ण संकर हैं।
तुम इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हो और लगभग पूरी दुनिया में ही यह बात स्वीकृत है कि अपनी बहिन से शादी कर लो, तुम्हारा उससे लगाव है ही, जन्म से साथ रहे, बड़े हुए, एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते हो। फिर क्यों सभी सभ्यताओं में यह वर्जित है? सभी समाज कहते हैं कि विवाह दूर के व्यक्तियों से होना चाहिए जो एक ही वंश वृक्ष की शाखाएँ न हो, क्योंकि जितनी अधिक दूरी होगी, उतनी ही श्रेष्ठ संतान उत्पन्न होगी। अगर एक श्वेत अमेरिकन लड़का, काली अफ्रीकन लड़की से शादी करे तो कहीं बेहतर औलाद जन्मेगी, बजाए इसके कि दो श्वेत या दो नीग्रो के बीच संबंध स्थापित हो। क्योंकि अमेरिकन और अफ्रीकन के बीच लम्बी दूरी है- सदियों का फासला है- वे दोनों बिल्कुल ही भिन्न-भिन्न वातावरणों में पले हैं, उनकी जेनेटिक संरचनाएं,

प्रोग्रामिंग्स एकदम अलग हैं। इसलिए जब पूर्णतः भिन्न प्रकार की संस्कृतियां, परम्पराएँ, जीवन-शैलियां मिलती हैं तो हमेशा ऐसे श्रेष्ठतम मनुष्य को जन्म देती हैं जिसके पास दोहरी विरासत होगी। श्वेत अमरीकी विरासत और अफ्ऱीकी नीग्रो विरासत साथ-साथ। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में यह मुमकिन होगा कि अधिकतम भिन्नताओं वाले शुक्राणु और अण्डाणु की क्रास-ब्रीडिंग करा के एक बिल्कुल ही नए मनुष्य को पैदा किया जाए। भले ही शादी तुम पड़ोसी की लड़की से कर लो जिससे तुम्हें प्रेम है, पर तुम्हारे बच्चे का जो भ्रूण है वह हजारों मील दूर से आ सकता है।
इसमें भयभीत होने जैसा क्या है? यह थोक उत्पादन नहीं बल्कि एकदम निजी पसंद पर आधारित होगा, पति-पत्नी जाकर अपनी इच्छानुसार कहेंगे कि उन्हें इस-इस तरह का बेटा या बेटी चाहिए। सभी प्रकार की दुर्घटनाओं से, दुखद संयोगों से बचा जा सकेगा। और हम एक विश्व-मानव को जन्म दे पाएँगे जो न भारतीय होगा, न चीनी, न फ्रेंच, न अंग्रेज; पूरा जगत ही उसका होगा- समस्त सीमाओं और संकीर्णताओं के पार। तो रोमाँचित होओ, डरो मत; डर का कोई भी कारण नहीं है।
अब तक जिस विधि से बच्चे पैदा किए जाते रहे, उसका पूरा इतिहास तो तुम्हारे सामने है; लाखों वर्षों से यही प्रक्रिया चली आ रही है- परिणाम क्या हुआ? हम जो करते रहे उसका मूल्यांकन तो उसके फल से ही होगा न! कभी- कभार कोई अलबर्ट आइंस्टीन, बर्ट्राड रसेल जन्मता है- अरबों-खरबों लोगों में संयोग से एकाध- क्या यह उचित है? यह तो रोज़मर्रा की सामान्य घटना होनी चाहिए। हां, कभी-कभार वैज्ञानिकों की भूलचूक अथवा असावधानी से कोई बच्चा साधारण निकल जाए तो बात अलग, अन्यथा प्रत्येक बच्चा प्रखर रूप से प्रतिभाशाली होना चाहिए। ज़रा सोचो... रवींद्रनाथ टैगोर, ज्यां पाल सार्त्र, जेपर, हाइडेगर जैसे व्यक्तियों से पृथ्वी भरी हो! हिटलर, स्टैलिन और मुसोलिनी जैसे लोगों को जन्मने से रोका जा सकेगा, जिनका होना दुर्भाग्य बन जाता था। सारे नादिरशाहों, तैमूरलंगों और चंगेज खानों के लिए प्रवेश द्वार बंद किए जा सकते हैं; जिनकी पूरी जिं़दगी की कथा हत्याओं की एक लम्बी श्रृंखला थी, जिन्होंने सि़र्फ विध्वंस किया, जिं़दा लोगों को जलाया, मिटाया।
जिस तरीके से अब तक हम जीए, वह सही साबित नहीं हुआ- मानसिक रूप से बौने
और शारीरिक रूप से रुग्ण लोगों की विराट भीड़ हमने खड़ी कर ली है- तुम्हें इस स्थिति से भयभीत होना चाहिए! लेकिन अगर प्रतिभा सम्पन्न, रचनात्मक लोगों का एक सुंदर उपवन बन जाए यह धरती, जिसमें से सारे मूढ़ों, पागलों कट्टर पंथियों, राजनेताओं और अपराधियों को निकाल बाहर फेंक दिया गया हो; संक्षेप में सारी गंदगी, प्रदूषण और ज़हर को हटा दिया गया हो, तो... यह ख़्याल ही कितना रोमाँचकारी है!
तुम्हें मालूम है कितने लाख लोग आज अपनी चपटी नाक से पीड़ित हैं या साँवले रंग से परेशान हैं? बेचारे आजीवन हीन-भावना महसूस करते रहते हैं! और कितने लोग हैं जो अपनी लम्बी नाक से दुखी हैं? क्योंकि उनके पास सिर्फ नाक ही है, बस! उन्हें देखो तो सिर्फ नाक ही नज़र आती है; शेष सभी अंग छोटे- छोटे से, और भारी-भरकम नुकीली नाक... !
मैंने सुना है कि एक अमीर आदमी के कान, आंख, मुंह आदी बहुत छोटे किंतु नाक विशालकाय थी। मगर वह नगर का सबसे बड़ा धनपति था, तो लोग पीठ पीछे हंसते, सामने किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। किसी परिवार में वह रात्रि भोज के लिए आमंत्रित था। उस परिवार के लोगों की सिर्फ़ एक ही चिंता थी- उनका छोटा बेटा, पैदाइशी फिलासफर; जो किसी भी वतु के बारे में प्रश्न पर प्रश्न पूछते चले जाने की आदत से मजबूर था- उसे सुबह से ही वे लोग समझाने लगे कि देखो, सेठजी से और जो जी में आए पूछ लेना, किंतु नाक के विषय में कोई सवाल न उठाना। यह बात दिन भर में इतनी बार इतने लोगों ने दोहराई कि बेटे की भी उत्सुकता बढ़ गई कि आखिर नाक में ऐसी क्या विशेषता है? यह मामला क्या है? घर में आज तक इस प्रकार का सवाल पूछने की मनाही नहीं की गई। सभी समझा रहे हैं कि और कुछ भी पूछ लेना, मगर नाक के बारे में बात ही न उठाना। अचानक यह नाक इतनी महत्वपूर्ण क्यों हो गई? शाम तक बड़ी जिज्ञासा से भरा हुआ वह लड़का सेठजी के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा। रात को जब अतिथिगण आए तो बच्चे की

हँसी फूट पड़ी, उसने अपने माँ-बाप से कहा- अब और किसी चीज़ के बारे में क्या ख़ाक पूछूँ--... बस एकमात्र नाक ही तो है... सेठजी तो बेजोड़ नमूने हैं, नाक के अतिरिक्त कुछ और नज़र ही नहीं आता! दिन भर की मेहनत पर पानी फिर गया।
मगर लोग हैं कि... लगभग सभी लोग किसी न किसी बात से तकलीफ में हैं, कोई बहुत लम्बा है, कोई एकदम नाटा है, कोई अपने रंग से परेशान है तो कोई शक्ल-सूरत से पीड़ित है। हमने यह पैदा क्या किया है! तुम इसे मास-प्रोडक्शन का नाम दो- अनजाने में हुई सांयोगिक दुर्घटनाएं!!
कम से कम इतना तो इंतज़ाम होना ही चाहिए कि मनुष्य, जो कि अस्तित्व के शिखर हैं, भविष्य में हीनता की ग्रंथि से पीड़ित न हों। एक ही तरीक़ा हो सकता है कि वैज्ञानिक विधि से बच्चे पैदा किए जाएँ। फिर उसमें और भी अनेक संभावनाएँ होंगी...
उदाहरण के लिए प्रयोगशाला में प्रत्येक बच्चे के साथ उसका जुड़वां भी पैदा किया जा सकता है, जो लैब में ही मूर्छित अवस्था में रखा जाएगा। पहले बच्चे को तो कोई युगल गोद ले लेगा। वह परिवार में पलेगा, पर लैब में ही बड़ा होगा। प्रयोगशाला में एक जुड़वां प्रतिलिपि मौजूद रहने से कई सुविधाएँ संभव हो सकेंगी... जैसे पहले व्यक्ति की पैर की हड्डी टूट गई तो फ्रैक्चर जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, उस दूसरे व्यक्ति का पूरा का पूरा पैर ही इसे लगाया जा सकता है। मान लो सिर में कोई गड़बड़ आ गई, दिमाग़ फिर गया तो मनोवैज्ञानिकों, मनोविश्लेष्कों और मानसिक रोग विशेषज्ञों के चक्कर लगाने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं है; पूरा सिर ही बदला जा सकता है- ताज़े मस्तिष्क सहित। वह दूसरा व्यक्ति गहन निद्रा में रखा जाएगा, बिल्कुल अचेत, डीप-फ्रिज में सुरक्षित; उसे पता भी न चलेगा कि क्या हो रहा है। उसे सिर्फ इसीलिए रखा गया है कि पहले व्यक्ति के साथ कुछ ग़लत न हो जाए... क्योंकि जीवन बहुत जटिल है, और समस्त सावधानियों के बावजूद भी कुछ न कुछ गड़बड़ी संभव है। जिं़दगी लम्बी है और दुर्घटनाएँ हो सकती हैं; कार टकरा जाए या ट्रेन उलट जाए... ये चीज़ें तो बच्चे को वैज्ञानिक विधि से जन्माने के द्वारा नहीं रोकी जा सकतीं।
सब इस पर निर्भर है कि हम अपने भय से ऊपर उठ पाने का साहस कर पाते हैं
या नहीं? हमें अपने बेबुनियाद डरों का अतिक्रमण करना होगा। नए मनुष्य की परिकल्पना से रोमाँचित अनुभव करो... नए मनुष्य का जन्म नए ढंग से होगा, उसकी जीवन-शैली नई होगी, उसका प्रेम अभिनव क़िसम का और मृत्यु भी बिल्कुल नए तरीके से होनी चाहिए। इन पुराने ढंग के मनुष्यों की जगह नये मनुष्य लेंगे। पुराने मॉडल्स के इस कूड़े-करकट की कोई आवश्यकता अब नहीं रही, इनकी भीड़ से पृथ्वी एक कबाड़खाना बन गई है।
जीवन की प्रथम कोशिका की प्रोग्रामिंग करने की प्रक्रिया सरल है, और सिर्फ फर्टाइल सेल ही प्रोग्राम्ड की जा सकती है, फिर तो वह स्वयं विखंडित होकर दो में, फिर दो से चार में, आठ में टूटती चली जाती है... नौ महीने में पूरी देह निर्मित कर देती है, वह एक स्वचालित प्रक्रिया है। प्रथम कोशिका को किसी भी बात के लिए प्रोग्राम्ड किया जा सकता है, पूरे जीवन का मनचाहा ब्लू प्रिंट उसमें डाला जा सकता है। फिलहाल हालात बड़े अजीब हैं; वह पहली कोशिका सब तरह की बीमारियों, बुढ़ापे और मृत्यु के लिए प्रोग्राम्ड हो जाती है, जो हमारे नियंत्रण में नहीं है; बाद में उस ब्लू-प्रिंट को बदलने का कोई उपाय नहीं बचता, क्योंकि वही प्रिंट शरीर की अरबों-खरबों कोशिकाओं में विद्यमान है। यदि किसी वंशानुगत बीमारी के लिए तुम्हारी सेक्स प्रोग्राम्ड हैं तो वह बीमारी प्रगट होकर ही रहेगी जैसे डायबिटीज, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, हीमोफिलिया, कैंसर, और सैकड़ों अन्य व्याधियां। यह स्थिति परिवर्तित की जा सकती है, लेकिन प्रथम पुरुष सेल-शुक्राणु और प्रथम स्त्री सेल-अण्डाणु के मिलन के समय ही पूरा रूपांतरण किया जा सकता है; और किसी आपातकालीन परिस्थिति हेतु उसकी एक जुड़वां कापी बनाकर प्रयोगशाला में सुरक्षित रखी जा सकती है... कि यदि तुम्हारा हृदय खराब हो जाए तो उसका हृदय तुम्हारे सीने में ट्रांसप्लांट कर दिया जाए। वह आसानी से फिट हो जाएगा, क्योंकि वह तुम्हारी ही कॉपी से आता है।

स्वभावतः, कोई भी नई बात डराती है, लेकिन केवल कायरों को। और कोई भी नई बात रोमाँचित करती है, लुभाती है; मगर सिर्फ साहसियों को। थोड़े हिम्मतवर बनो, क्योंकि हमें एक साहसी दुनिया की ज़रूरत है।

प्रवचन-3

एक शोध वैज्ञानिक की कठिनाई

प्रश्नः मैं एक शोध वैज्ञानिक हूं तथा विगत ग्यारह वर्षों से कृत्रिम हृदय, कृत्रिम रक्त, कृत्रिम त्वचा एवं अन्य कृत्रिम अंग विकसित करने वाली मेडिकल रिसर्च योजना में कार्यरत हूं। मुझे अपने काम में मज़ा आता है, परंतु मैं ठीक कर रहा हूं या नहीं- इसकी सम्यक् दृष्टि मेरे पास नहीं है, क्योंकि नैसर्गिक अंग हमेशा नकली अंगों से श्रेष्ठ ही होते हैं। प्रकृति के प्रति मेरा न गहन प्रेम न सम्मान है, और आप जिस प्राकृतिक संतुलन की बात करते हैं, उसे बनाए रखने के लिए बहुत कुछ करना पड़ेगा, मगर मैं जिन संस्थाओं में शोध कार्यों में संलग्न रहा, वहां प्रकृति के प्रति प्रेम व आदर की भावना देखने को नहीं मिलती। कृपया मुझे इससे बाहर निकलने का अथवा स्वयं के भीतर अंतर्यात्रा करने का मार्ग सुझाएँ।

मैं तुम्हारी कठिनाई समझ सकता हूं।
इस समूचे ग्रह पर कोई सस्ंथान या संगठन नहीं है जहां निसर्ग के प्रति प्रेम और आदर के साथ रिसर्च की जाती हो। हालत बिल्कुल विपरीत है। सारी वैज्ञानिक खोजें प्रकृति को जीतने के लिए की जाती हैं। एक आदमी ने किताब लिखी है- प्रकृति पर विजय। यह विचार ही बेतुका है, क्योंकि तुम खुद प्रकृति के हिस्से हो, उसी के अंश हो, एक अत्यंत छोटे से खंड हो और प्रकृति को जीतने की कोशिश कर रहे हो; जैसे कि मेरी ही एक अंगुली मेरे पूरे शरीर पर मलकियत जमाना चाहे, कब्जा करने की सोचे... यह बात ही बेहूदी है। मनुष्य स्वयं प्रकृति का एक अंग है। इसलिए तुम जहां कहीं भी रहो, उन संस्थाओं, संगठनों या उनके दृष्टिकोणों की परवाह न करो, तुम तो अपने गहन प्रेम और सम्मान के साथ कार्यरत रहो। तुम प्रकृति के विरुद्ध काम नहीं कर रहे हो। और स्मरण रखोः तुम्हें यह बुद्धि क्यों मिली है? तुम्हारी बुद्धि प्राकृतिक विकास का हिस्सा है- तुम्हारी बुद्धिमत्ता के माध्यम से प्रकृति स्वयं को परिमार्जित करने के प्रयास में है। तो यह स्वाभाविक है कि फिलहाल प्राकृतिक अंग, कृत्रिम अंगों से बेहतर है; पर ध्यान रहे- कृत्रिम अंग, प्राकृतिक अंगों से बेहतर हो सकते हैं, हो ही जाएँगे; कारण स्पष्ट है- प्रकृति तो अंधी है, लेकिन मनुष्य के माध्यम से प्रकृति आँखें पाने की कोशिश कर रही है।
निश्चित ही कृत्रिम हृदय, असली हृदय से ज़्यादा अच्छे ढंग से काम कर पाएगा; उसे दिल के दौरे भी नहीं पड़ेंगे, उसे आसानी से निकाला जा सकेगा, बदला जा सकेगा। जल्दी ही नकली खून की बड़ी आवश्यकता आने वाली है, तुम्हें शीघ्र ही प्राकृतिक रक्त से बेहतर रक्त खोजना पड़ेगा, क्योंकि जैसे-जैसे यह धार्मिक बीमारी एड्स पूरी दुनिया में तीव्र गति से फैल रही है, वैसे- वैसे ब्लड ट्रांस्फ़्यूजन न खतरनाक होता जा रहा है। रक्तदान के माध्यम से एड्स के कीटाणु भी शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। नकली खून अधिक शुद्ध होगा, क्योंकि वह धार्मिक समलैंगिक नहीं होगा; कम से कम वह किसी मृत्यु का कारण नहीं बनेगा- एक कुरूप और घिनौनी मौत, जिसमें व्यक्ति अपनी नज़रों में गिर जाए!
इसलिए ऐसा अनुभव मत करो कि तुम प्रकृति के ख़िलाफ काम कर रहे हो। प्रकृति से लड़कर तो कोई जीत ही नहीं सकता। विज्ञान की सारी सफलताएं, प्रकृति पर विजय की घोषणाएं नहीं हैं जैसा कि कहा जाता रहा है। हमने जो भी आविष्कार किये हैं; वे प्रकृति की करुणा की वजह से हैं कि उसने रहस्य खोल दिए, अनावृत कर दिए। हम प्रकृति के अंश हैं- सर्वश्रेष्ठ अंश; और हमारी चेतना के माध्यम से प्रकृति नई ऊंचाइयां छूना चाह रही है। विज्ञान प्रकृति के विरोध में नहीं है, हो भी नहीं सकता। उसे प्राकृतिक नियमों का अनुसरण करना होगा, उन नियमों के विरुद्ध जाना असंभव है... तो जिसे हम शोध कहते हैं, वास्तव में वह प्रकृति के नियमों की खोज है कि प्रकृति कैसे काम करती है?

प्रकृति ने तुम्हें बुद्धिमत्ता प्रदान की है, और वह अपने राज तुम्हारी बुद्धि के समक्ष खोलने को राजी है। नैसर्गिक नियमों के अनुसार चलते हुए तुम निसर्ग को श्रेष्ठतर बनाने में सक्षम हो पाओगे। बुद्धि जो है वह प्रकृति का उपाय है; स्वयं को परिष्कृत करने का। अब तक प्रकृति अँधेरे में काम करती रही। मनुष्य की बुद्धि के माध्यम से आशा की किरण उतरी है।
... तो बिल्कुल फिक्ऱ मत करो कि तुम प्रकृति के ख़िलाफ कुछ काम कर रहे
हो, बहुत प्रेम, सम्मान, अहोभाव और ध्यान के साथ काम में डूबो; निश्चिन्ततापूर्वक जानते हुए कि यह प्रकृति ही है जो तुम्हारे माध्यम से स्वयं को बेहतर बनाने का प्रयास कर रही है। स्वभावतः, शुरुआत में कृत्रिम अंग बहुत अच्छे नहीं बनेंगे, परंतु यह तो केवल प्रारंभ है; क्रमशः सुधार की, श्रेष्ठतर के निर्माण की विराट संभावनाएँ हमारे सामने है। शीघ्र ही बड़ी मात्रा में रक्त की ज़रूरत पड़ेगी, और कृत्रिम रक्त बेहतर होगा।
यदि एड्स जैसी महामारियां जंगल की आग के समान फैल गईं तो शायद एक ही विकल्प शेष बचेगा कि बच्चों को टेस्ट-टयूब्स में पैदा करना पड़े जो कि अधिक सुरक्षित ढंग होगा, अन्यथा वे बेचारे जन्म से ही एड्स ग्रस्त होकर आएंगे। यूरोप में कुछ नवजात शिशुओं में एड्स का रोग पाया गया है- हमने अपने बच्चों के लिए कैसा कुरूप जगत निर्मित कर दिया है- नैसर्गिक प्रसव के साथ ही पैदाइशी एड्स! जन्मज़ात महामारी!! नैसर्गिक प्रसव का यही अर्थ नहीं है कि उसमें कुछ सुधार नहीं किया जा सकता...
प्रत्येक स्त्री और पुरुष को अस्पताल पहुंचकर अपनी जांच कराने के लिए पंक्ति में खड़े होना चाहिए। यदि किसी आदमी को एड्स से संक्रमित पाया जाता है, तो उस बेचारे के लिए कुछ करना पड़ेगा, ताकि उसे सेक्स की ज़रूरत ही न पड़े उसके शरीर में कुछ परिवर्तन करना होगा। अन्यथा मान लो वह दो-तीन वर्ष जीवित रहता है, तो वह अपनी काम-वासना के साथ, शरीर में उत्पन्न हो रहे वीर्य के साथ क्या करेगा? उसकी कुछ व्यवस्था जुटानी होगी, कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान करने पड़ेंगे कि शुक्राणुओं को पैदा करने वाली पुरानी जैविक शक्ति को, अंधी शारीरिक प्रक्रिया को किस प्रकार रूपांतरित किया जाए। यदि वीर्य उत्पादन की प्रक्रिया हम रोक सकें तो उस व्यक्ति को काम वासना का दमन नहीं करना पड़ेगा, बल्कि वह दूसरों की तुलना में ज़्यादा आनंदपूर्वक जीवन के बाकी दो-तीन साल गुजार सकेगा... क्योंकि मरना तो सभी को है, किंतु वह एक अर्थ में अनूठा है कि मृत्यु उसे पूर्व सूचित करके आ रही है।
संभव है कल तुम्हारी मृत्यु हो जाए... सारी चीज़ें अधूरी छूट जाएंगी। कोई नहीं जानता कि किस क्षण मृत्यु उसका द्वार खटखटाएगी, इसलिए जगत में सभी लोग अधूरी चीज़ें छोड़कर मरते रहे हैं। लेकिन एड्स के रोगी के लिए तो स्पष्ट सूचना मिल गई। यदि विज्ञान व्यवस्था कर सके कि काम-ऊर्जा निर्मित न हो, या उसे किसी सृजनात्मक दिशा में मोड़ सके, क्योंकि वस्तुतः काम ऊर्जा भी सृजन की ही शक्ति है; तो संभवतः इन तीन सालों के लिए वह व्यक्ति आनंदित और अनुगृहीत हो सकेगा। शायद वह एड्स का शिकार होने में हीन-भावना की जगह गौरव महसूस करने लगे; क्योंकि शेष बचे थोड़े से समय में संगीत में डूबा जा सकता है, सितार बजाया जा सकता है, चित्र बनाया जा सकता है या उपन्यास लिख सकता है... वे सारी चीज़़ें जो वह सदा करना चाहता था, मगर जिं़दगी में करने के लिए और इतनी चीज़ें थीं, बहुत व्यस्तता थी... पर अब तो सिर्फ़ तीन वर्ष का वक्त हाथ में है। वह गहन ध्यान में डूब सकता है। सामान्यतः मुश्किल से इस संसार में इतना लम्बा समय ध्यान के लिए निकल पाता है कि कोई शांत, मौन में, निष्क्रिय होकर, मात्र द्नष्टा बना रहे... वह मजे से यह कह सकता है, तब तो उसके लिए एड्स अभिशाप के रूप में वरदान सिद्ध हो जाएगी। जिस प्रकार ब्लड-बैंक हैं, उसी प्रकार वीर्य-बैंक होने चाहिए। जिस व्यक्ति के वीर्य में एड्स अथवा किसी बीमारी के कीटाणु न पाए जाएं, वे अस्पताल में जाकर अपना वीर्य दान कर सकते हैं। यदि हम चाहते हैं कि मनुष्य जाति जीवित रहे, और निश्चित ही हम चाहेंगे; तो कृत्रिम ढंग से वीर्य द्वारा निषेचन करा के- या तो टेस्ट-टयूब में, या अगर कोई स्त्री खुशी-खुशी राजी है तो उसके गर्भ में कृत्रिम गर्भाधान, आर्टिफिशियल इनसेमिनेशन के द्वारा ही केवल बच्चे जन्माने होंगे।

तुम मनुष्य जाति की और इस प्रकृति की महान सेवा में संलग्न हो। शोधकार्य में और गहरे उतरो- सिर्फ़ काम की तरह या नौकरी की खातिर नहीं; बल्कि पूजा की भाँति। इन सब चीज़ों की ज़रूरत पड़ेगी। फिलहाल, अगर किसी को फ्रैक्चर हो जाए तो छः हफ़्तों तक प्लास्टर चढ़ा रहता है- अनावश्यक ही; यदि कृत्रिम अंग हाथ, पैर इत्यादि उपलब्ध हों तो मामला आसान हो जाए; टांग टूट गई तो नई टांग लगा दो, पुरानी टूटी-फूटी चीज़ों को सुधारने में क्यों फिजूल मेहनत करना? एकदम ब्रैंड-न्यू टांग जोड़ दो, जो अधिक सरल प्रक्रिया होगी। और कृत्रिम टांग तो हम जितनी मजबूत बनाना चाहें उतनी मजबूत बना सकते हैं; बिल्कुल शुद्ध स्टील की... कि भविष्य में फिर से टूटने की आशंका ही न रहे। तुम्हारा कार्य प्रकृति की सेवा में हैं, प्रकृति के प्रतिकूल नहीं है। बस एक ही कसौटी स्मरण रखना- तुम जो भी करो; वह सृजन की सेवा में समर्पित हो, विध्वंस के चरणों में नहीं।

प्रवचन-4

मानवीय जीवन पर किए जा रहे प्रयोग

प्रश्नः मानवीय जीवन पर किए जा रहे प्रयोगों जैसे कृत्रिम जन्म, हृदय एवं मस्तिष्क के प्रत्यारोपण आदि को आप विकास की भाँति देखते हैं या प्रकृति के खिलाफ उठाए गए कदम की भाँति?

यह इस पर निर्भर करता है कि कौन यह कदम उठा रहा है। यदि नीति या तथाकथित धर्म ये कदम उठाएंगे तो वे प्रकृति के विरुद्ध होंगे। वे प्रकृति के अनुकूल कुछ कर ही नहीं सकते, वे प्रकृति के शत्रु हैं। लेकिन यदि ये प्रयोग वैज्ञानिकों की अंतर्राष्ट्रीय अकादमी... ख़्याल रहे मैं कह रहा हूं अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों की अकादमी द्वारा किए जाएं तो वे प्रकृति के प्रतिकूल नहीं बल्कि विकास की ओर कदम अत्यंत महत्वपूर्ण होंगे। उनसे प्रकृति ही परिमार्जित होगी। पूरी बात इस पर निर्भर है कि करने वाला कौन है? प्रयोग तो अपने-आप में न्यूट्रल होता है, उसका कोई निहित स्वार्थ अथवा विधायक या नकारात्मक पक्ष नहीं होता। तुम किसी दवा को ज़हर के रूप में उपयोग करके आत्महत्या कर सकते हो, उसी ज़हर को दवा की तरह उपयोग करके डाक्टर रोगियों के प्राण भी बचाता है- वह रासायनिक पदार्थ न तो अमृत है, न विष है- सब इस पर निर्भर करता है कि कौन उसका उपयोग कैसे करता है?
उदाहरण के लिए परमाणु ऊर्जा का आविष्कार एक महान खोज थी, एक क्वांटम लीप थी। हमें इस पृथ्वी को स्वर्ग में रूपांतरित करने की अद्भुत कुंजी हाथ लग गई। एक छोटे से अदृश्य परमाणु में इतनी विराट ऊर्जा का भंडार छिपा है, और वे परमाणु हर चीज़ में हैं... एक ओस की बूंद में लाखों-करोड़ों परमाणु मौजूद हैं... किसी भी परमाणु को तोड़े जाने पर इतनी ऊर्जा उत्पन्न होती है कि उसका सदुपयोग किया जाए तो पूरी धरती पर सुख-सुविधा और समृद्धि की बाढ़ आ जाए; परंतु उसी ऊर्जा से हिरोशिमा और नागासाकी के लाखों लोग पल भर में खाक हो गए। चूंकि राजनीतिज्ञों के हाथ में पहुंच गई तो वह परमाणु शक्ति मृत्यु की सेविका बन गई। अब तो और भी उन्नत क़िसम के नाभिकीय अस्त्र निर्मित हो गए हैं जो समूची पृथ्वी को ही नष्ट कर सकते हैं। मौजूद नाभिकीय अस्त्रों की संख्या धरती के सात बार विनष्ट करने के लिए पर्याप्त है, हालांकि एक आदमी को दोबारा मारने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, फिर भी आश्चर्य कि क्यों इन विध्वंसक अस्त्रों का अंबार बढ़ाए चले जाने की होड़ में ये राष्ट्र अभी भी जुटे हैं। सात बार दुनिया को मिटाने की क्षमता काफी नहीं है? वस्तुतः तो सिर्फ एक बार ही जगत को मिटाना संभव है।
मगर विज्ञान की सारी खोजें राजनेताओं के हाथ लग जाती हैं, क्योंकि उन्हीं के पास इन महंगे आविष्कारों पर खर्च करने के लिए पर्याप्त धन है। पूरी दुनिया के वैज्ञानिकों को इस विषय पर पुनर्विचार करना चाहिएः उनकी प्रतिभा का दुरुपयोग मूढ़ व अपराधी कर रहे हैं! चाहे अमरीका हो या रूस... वैज्ञानिकों को समस्त देशों से अपने नाते तोड़ लेने चाहिए और विज्ञान की एक विश्व-अकादमी निर्मित करनी चाहिए। इसमें मुश्किल कुछ भी नहीं है यदि विश्व के सारे वैज्ञानिक एकजुट हो जाएं तो उनके शोधकार्यों व अन्वेषणों हेतु अर्थ-व्यवस्था की जा सकती है, सुविधाएं जुटाई जा सकती है और उनकी खोजों से पूरी मनुष्यता का अद्भुत रूप से भला हो सकता है।
विज्ञान किसी राजनीति की, किसी देश की बपौती नहीं होनी चाहिए- यह बात
ही निपट मूर्खतापूर्ण है। विज्ञान पर किसी का एकाधिकार कैसे हो सकता है? लेकिन प्रत्येक राष्ट्र अपने वैज्ञानिकों पर एकाधिकार जमाए बैठा है, उनके महत्वपूर्ण आविष्कारों को गुप्त रख रहा है। यह मानवता के, प्रकृति के, इस पूरे अस्तित्व के खिलाफ है। एक प्रतिभावान व्यक्ति जो भी आविष्कार करता है, वह संपूर्ण संसार की सम्पदा बन जानी चाहिए।
तुम पूछ रहे हो कि मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क के प्रत्यारोपण जैसी खोजें प्रगति के बढ़ते चरण हैं या नहीं? निश्चय ही पृथ्वी पर एक नई मनुष्यता का आविर्भाव संभव कर सकने वाली ये खोजें अत्यंत महत्वपूर्ण

हैं। जब आइंस्टीन की देह जर्जर हो जाती है, जीने के क़ाबिल नहीं रह जाती तो तुम क्या सोचते हो, यह शुभ नहीं होगा कि आइंस्टीन का दिमाग़ निकालकर किसी स्वस्थ और युवा शरीर में ट्रांसप्लांट कर दिया जाए? वह व्यक्ति आइंस्टीन बन जाएगा, क्योंकि आइंस्टीन की पूरी प्रतिभा उसकी खोपड़ी में काम करने लगेगी, बुद्धि की वही पैनी धार... शरीर बदलते जाएँगे, मगर हम आइंस्टीन के मस्तिष्क को इस प्रकार कई सदियों तक जीवित रख पाएँगे; केवल जीवित ही नहीं, विकासमान भी! और ज़रा कल्पना करो, जब सत्तर-अस्सी साल में एक आइंस्टीन जगत को इतना दे जाता है, तो अनेक शताब्दियों तक जीवित रहकर उसका मस्तिष्क इस दुनिया के लिए, पूरे विश्व के लिए कैसे सौभाग्य की वर्षा न कर जाएगा?
यदि कोई डिब्बा सड़-गल जाए तो उस डिब्बे को कूड़े में फेंकने के साथ ही
उस डिब्बे के अंदर रखे सामान को भी फेंक देना तो वास्तव में बहुत बड़ा वेटेज है। और शरीर है क्या?- एक डिब्बा! यदि वह ज़रा-जीर्ण, पुराना, अनुपयोगी हो गया, तो डिब्बा बदल लो, भीतर रखे हीरे-जवाहरात को न फेंको। प्रतिभावान मस्तिष्कों को अनंत-काल तक विभिन्न शरीरों में जिलाया जा सकता है- इसमें क्या अप्राकृतिक है? निसर्ग के विपरीत क्या है? यदि तुम्हारा हृदय कमज़ोर पड़ गया और मनुष्य-जाति के लिए तुम्हारा जीना कीमती सिद्ध होगा, तो नया हृदय लगाया जा सकता है। इसमें डर कैसा? हो सकता है कोई युवा व्यक्ति कैंसर या एक्सीडेंट से मर रहा हो, मगर उसका हृदय बिल्कुल स्वस्थ और मजबूत हो। उसका हृदय निकालकर तुम्हारे सीने में प्लांट किया जा सकता है, क्योंकि तुम्हारे पास अनोखी प्रतिभा है, किंतु सिर्फ़ हृदय खराब है। यह इतनी सरल-सी बात है, इसमें प्रकृति के विरुद्ध कुछ भी नहीं है। परंतु राजनीतिज्ञों के हाथ में सारी सत्ता होने के कारण, निश्चय ही विज्ञान के सभी आविष्कार प्रकृति की खिलाफत में चले गए हैं; मनुष्य की प्रतिभा ने जो भी खोजा, निर्मित किया, अंततः वह मृत्यु का सेवक बन गया। पंडित-पुरोहित-पादरी भी इस दुर्भाग्य के कारण बने। किंतु विज्ञान बच्चा नहीं रहा जिसे किसी सहारे की ज़रूरत पड़े, बल्कि वह वयस्क हो चुका है, काफी परिपक्व हो चुका है; केवल थोड़े से साहस की बात है... मैं विश्व के समस्त वैज्ञानिकों को आमंत्रण देता हूं; हमारे पास जगह है, उन्हें हर प्रकार के सहयोग पहुंचाने में सक्षम बुद्धिमान लोग हैं हमारे पास। मनुष्य के इतिहास में यह महा-क्रांति होगी- सारी शक्ति वैज्ञानिकों के हाथ में होगी जिन्होंने कभी किसी का नुकसान नहीं किया है। और एक बार वैज्ञानिकों के हाथ में शक्ति आई कि राजनीति फीकी पड़ने लगेगी, राजनीतिज्ञों के प्राण अपने-आप निकल जाएँगे। अब तक वे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए वैज्ञानिकों की प्रतिभा का शोषण करते रहे।
किसी के भी द्वारा स्वयं का शोषण होते रहने देना गरिमापूर्ण नहीं है। वैज्ञानिकों को खुद की गरिमा, महत्ता और निजता पहचाननी चाहिए। सदियों से धर्म और राजनीति के ठेकेदारों द्वारा उनका शोषण चल रहा है, इसके प्रति सचेत होना चाहिए। घोषणा करने का समय आ गया है कि अब विज्ञान अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है; यह एक महान स्वतंत्रता का उद्द्योष होगा। फिर लेबोरेटरी- बेबी जैसे महत्वपूर्ण प्रयोग बिल्कुल ही नए आयाम स्पर्श कर पाएँगे क्योंकि वैज्ञानिक निर्णायक होंगे कि अगली पीढ़ी में उन्हें किस-किस तरह की प्रतिभाएं चाहिए। अब तक बच्चों का जन्म, एकदम एक्सीडेंटल, सांयोगिक मामला था; इसलिए निन्यानबे प्रतिशत लोग जगत को कुछ भी दान नहीं दे पाते, वे दुनिया को सिर्फ़ समस्याएं भेंट करते हैं, ज़रा सोचो... संसार को यूथोपिया से क्या योगदान मिला? ग़रीब मुल्कों ने... और ग़रीबों की बात छोड़ो, अमीर मुल्कों ने भी इस जगत को दिया क्या है? सिवाय समस्याओं और युद्धों के। अरबों लोगों की इस बड़ी भीड़ ने विश्व को दिया क्या है?
यदि प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक ढंग से शिशु जन्मने लगें... यह संभव है, इसमें कुछ अड़चन नहीं है... तो पहली बार सेक्स एक गैर-गंभीर मौज-मस्ती का खेल हो पाएगा। बच्चे प्रयोगशालाओं में पैदा होंगे, और वे सामूहिक रूप से सभी के उत्तरदायित्व होंगे। फिर तुम पुराने ढंग से बच्चा पैदा नहीं करोगे- वैसा करना गैर-कानूनी जुर्म होगा; यदि किया तो जेल में सींकचों के पीछे कर दिए जाओगे- तो तुम्हारी जिं़दगी से बहुत सी पीड़ाएं और परेशानियां विलीन हो जाएंगी।

बच्चो के विषय में आदमी इतना ज़िद्दी क्यों है? युगों-युगों से उसने ज़िद्द ठान रखी है; वह सुनिश्चित क्यों करना चाहता है कि उसकी पत्नी की कोख से जन्मी संतान उसीकी है! आखिर तुम में ऐसी कौन सी खूबी है? कुल मामला जमीन-जायदाद का है- चूंकि तुम्हारी औलाद उस सबकी वारिस बन जाएगी, जो कुछ तुमने जोड़ रखा है; तो तुम पक्का कर लेना चाहते हो कि यह औलाद तुम्हारी ही है, पड़ोसी की नहीं। स्त्रियों को लगभग कारागृह जैसी स्थिति में जकड़ कर रखा गया है, सि़र्फ इसी भय की वजह से कि यदि वे अन्य पुरुषों के साथ मिलने- जुलने के लिए स्वतंत्र हों तो तय करना मुश्किल हो जाएगा कि ये संतानें किसकी हैं? सि़र्फ माँ ही जानेगी कि असली पिता कौन है, या मुमकिन है कि उसे भी ज्ञान न हो!
एक बार प्रजनन की प्रक्रिया विज्ञान के हाथों में पहुंच गई तो सेक्स
का रूपांतरण घटित हो जाएगा। फिर तुम्हें ईष्या नहीं होगी, मॅनॉपॅली बनाए रखने की कोई ज़रूरत न बचेगी, मॉनॉगैमी का अर्थ ही खो जाएगा। जैसे टेनिस का मज़ा लेते हो वैसे ही तुम काम-क्रीड़ा का आनंद लोगे; वह भी क्रीड़ा होगी, एक खेल होगा। टेनिस खेलते समय तो तुम ज़िद नहीं करते कि बस जिं़दगी भर सिर्फ एक ही खिलाड़ी के साथ खेलूंगा, अब तो जन्म-जन्म का साथ हो गया कि इस खिलाड़ी को क़सम खानी पड़ेगी कि केवल मेरे साथ ही आजीवन खेलेगा... यह निपट पागलपन होगा... एक बार सेक्स के साथ जुड़े डर- गर्भवती होने के, बच्चों के भविष्य के, आर्थिक, सामाजिक और अन्य समस्याओं के भय समाप्त हो जाएँ तो काम-क्रीड़ा वास्तव में क्रीड़ा बन जाए; दो शरीर एक-दूसरे का सुख लेते हुए- इसमें गंभीर मामला क्या है? फिर सेक्स, विश्व की बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या का कारण नहीं रह जाएगा, न ही पुरोहितों-पादरियों-मौलवियों की परेशानी का कारण बनेगा। यदि बच्चे प्रयोगशाला में उत्पन्न होने लगें तो वास्तव में दुनिया की बहुत सी उलझनें सुलझ जाएं; और हम श्रेष्ठतम व्यक्तियों को जन्म दे पाएँ- सुंदर, स्वस्थ, प्रखर रूप से बुद्धिमान, दीर्घायु, कि वे जब तक चाहें जी सकें। बुढ़ापे की अनिवार्यता खो जाए, वे स्वस्थ, निरोग और सदा युवा रहें।
अभी दुनिया में लाखों अस्पताल हैं; करोड़ों डॉक्टर्स, नर्सें और अन्य स्वास्थ्य-कर्मचारी उनमें कार्यरत हैं। इसमें कितना धन अपव्यय होता है? क्या तुम्हें मालूम है कि अमेरिका कब्ज़ियत दूर करने वाली दवा पर शिक्षा से अधिक पैसा ख़र्च करता है, कैसा मज़ा है! शिक्षा-विक्षा की कौन फिक्र करे? असली सवाल तो जुलाब का है- लेक्सेटिव!!
मगर बुनियादी बात स्मरण रहनी चाहिए- वैज्ञानिकों को इतनी हिम्मत जुटानी पड़ेगी कि वे किसी भी राष्ट्र की राजनीति की, धर्म की बेड़ियों से मुक्त होने की घोषणा कर सकें और कह सकें कि वे जो भी करेंगे, वह समस्त मनुष्य जाति की सेवा में समर्पित होगा। और मुझे इसमें कोई दिक़्कत या असंभावना जैसी बात दिखाई नहीं देती। मैं पूर्णरूपेण पक्ष में हूँ उन सारे वैज्ञानिक अन्वेष्णों और विकासोन्मुख प्रयोगों के जो मनुष्य को ज़्यादा सुखी, ज़्यादा स्वस्थ, युवा, निरोग, दीर्घायु और प्रतिभा संपन्न बना सकते हैं; जो इस जीवन को अधिक से अधिक सौंदर्य, आह्लाद क्रीड़ा और मस्ती से भर सकते हैं, ताकि यह जीवन झूले से लेकर कब्र तक की एक कष्टपूर्ण यात्रा न बचे।

प्रवचन-5

संसार क्यों है? ताकि मुक्ति फलित हो सके!
(पतंजलि योग सूत्र से अनुवादित)
(Translated from "Yoga: The Alpha and the Omega, Vol 5", Chapter #1, Chapter title: The bridegroom is waiting for you, 1 July 1975 am in Buddha Hall.
Also published in a book titled "Kasht, Dukh aur Shanti".)

वैज्ञानिक मानस सोचा करता था कि अव्यक्तिगत ज्ञान की, विषयगत ज्ञान
की संभावना है। असल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यही ठीक-ठीक अर्थ हुआ करता था। "अव्यक्तिगत ज्ञान" का अर्थ है कि ज्ञाता अर्थात जानने वाला केवल दर्शक बना रह सकता है। जानने की प्रक्रिया में उसका सहभागी होना जरूरी नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि यदि वह जानने की प्रक्रिया में सहभागी होता है तो वह सहभागिता ही ज्ञान को अवैज्ञानिक बना देती है। वैज्ञानिक ज्ञाता को मात्र द्रष्टा बने रहना चाहिए, अलग-थलग बने रहना चाहिए, किसी भी तरह उससे जुड़ना नहीं चाहिए जिसे कि वह जानता है।
लेकिन अब बात ऐसी नहीं रही। विज्ञान प्रौढ़ हुआ है। इन थोड़े से दशकों में, पिछले तीन-चार दशकों में विज्ञान अपने भ्रमपूर्ण दृष्टिकोण के प्रति सचेत हुआ है। ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो अव्यक्तिगत हो। ज्ञान का स्वभाव ही है व्यक्तिगत होना। और ऐसा कोई ज्ञान नहीं जो असंबद्ध हो, क्योंकि जानने का अर्थ ही है संबद्ध होना। केवल दर्शक की भांति किसी चीज को जानने की कोई संभावना नहीं है; सहभागिता अनिवार्य है। इसलिए अब सीमाएं उतनी स्पष्ट नहीं रही हैं।
पहले कवि कहा करता था कि उसके जानने का ढंग व्यक्तिगत है। जब एक कवि किसी फूल को जानता है तो वह उसे पुराने वैज्ञानिक ढंग से नहीं जानता। वह बाहर-बाहर से ही देखने वाला नहीं होता। किसी गहरे अर्थ में वह वही बन जाता हैः वह उतरता जाता है फूल में और फूल को उतरने देता है अपने में, और एक गहन मिलन घटता है। उस मिलन में फूल का स्वरूप जाना जाता है।
अब विज्ञान भी कहता है कि जब तुम किसी चीज को ध्यानपूर्वक देखते हो तो तुम सहभागी होते हो- चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो वह सहभागिता, लेकिन फिर भी तुम सहभागी होते हो। कवि कहा करता था कि जब तुम किसी फूल की तरफ देखते हो तो वह फिर वही फूल नहीं रहता जैसा कि वह तब था जब किसी ने उसकी ओर देखा न था, क्योंकि तुम उसमें प्रवेश कर चुके हो, उसका हिसा बन चुके हो। तुम्हारी दृष्टि भी अब उसका हिसा हो जाती है; पहले वह वैसा न था। जंगल में किसी अज्ञात पगडंडी के किनारे खिला एक फूल, जिसके पास से कोई गुजरा नहीं, वह एक अलग ही फूल होता है; फिर अचानक कोई आ जाता है जो देखता है उसकी तरफ- वह फूल अब वही न रहा। फूल बदल देता है द्रष्टा को, और दृष्टि बदल देती है फूल को। एक नई गुणवत्ता प्रवेश कर गई।
लेकिन यह ठीक था कवियों के लिए- कोई भी उनसे बहुत तार्किक और वैज्ञानिक होने की आशा नहीं रखता- लेकिन अब तो विज्ञान भी कहता है कि यही प्रयोगशालाओं में घट रहा हैः जब तुम निरीक्षण करते हो तो निरीक्षण की वस्तु वही नहीं रह जाती, उसमें देखने वाला शामिल हो जाता है और गुणवत्ता बदल जाती है। अब भौतिकशास्त्री कहते हैं कि जब कोई उन्हें देख नहीं रहा होता तो परमाणु अलग ही ढंग से व्यवहार करते हैं। जैसे ही तुम उन्हें देखते हो, वे तुरंत अपनी गतियां बदल देते हैं। बिल्कुल ऐसे ही जैसे कि जब तुम अपने नानगृह में होते हो तो तुम एक अलग ही व्यक्ति होते हो; फिर अचानक ही तुम्हें लगता है कि चाबी के छेद से कोई देख रहा है- तत्क्षण तुम बदल जाते हो। परमाणु भी जब अनुभव करता है कि कोई देखने वाला है, तो फिर वह वही नहीं रह जाता; वह अलग ही ढंग से गति करने लगता है। यही थीं सीमाएंः विज्ञान को समझा जाता था बिल्कुल अव्यक्तिगत; कला थी विज्ञान और धर्म के मध्य में और समझा जाता था कि उसकी आंशिक सहभागिता होती है; और धर्म था समग्र सहभागिता।

19

एक कवि देखता है फूल को, तब ऐसी झलकियां मिलती हैं जब वह भी खो जाता है, फूल भी खो जाता है। लेकिन ये केवल झलकियां ही होती हैं; कुछ क्षणों के लिए मिलन घटता है, और फिर वे अलग हो जाते हैं, फिर वे पृथक हो जाते हैं। जब एक रहस्यदर्शी, एक धार्मिक व्यक्ति फूल को देखता है तब क्या घटता है? तब सहभागिता समग्र होती है, आंशिक नहीं होती। ज्ञाता और ज्ञेय दोनों खो जाते हैं; बच रहती है केवल वह ऊर्जा जो दोनों के बीच आंदोलित हो रही होती है। अनुभूति बच रहती है; अनुभव करने वाला नहीं बचता, न ही अनुभव की विषय-वस्तु बचती है। विपरीतताएं खो जाती हैं, विषय और विषयी मिट जाते हैं, सारी सीमाएं खो जाती हैं।
धर्म एक समग्र सहभागिता है। कविता या कला या चित्रकला आंशिक सहभागिता है।
विज्ञान बिल्कुल भी भागीदार न था। अब बात ऐसी नहीं है। विज्ञान को वापस कविता के, धर्म के ज्यादा निकट आना पड़ा है। अब सारी सीमाएं एक-दूसरे में घुल-मिल गई हैं। केवल पचास वर्ष पहले तक वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित व्यक्ति हंस देता पतंजलि पर, खिलखिला कर हंस पड़ता शंकर और वेदांत पर और अपने भीतर सोचता कि ये लोग पागल हो गए हैं। अब असंभव है पतंजलि पर हंसना। वे ज्यादा ठीक सिद्ध हो रहे हैं।
जैसे-जैसे विज्ञान ज्यादा गहरे विकसित होता जाता है, योग ज्यादा प्रामाणिक और ज्यादा सत्य मालूम हो रहा है। क्योंकि योगी की सदा यही दृष्टि रही हैः कि अतित्व अखंड है। पृथकता, सीमाओं का विभाजन कामचलाऊ है- यह अज्ञानवश है। इसकी जरूरत है; यह एक आवश्यक प्रशिक्षण है। तुम्हें गुजरना ही है इसमें से, तुम्हें भोगना है इसे और अनुभव करना है इसे- लेकिन तुम्हें गुजर जाना है इसमें से। यह कोई घर नहीं है; यह केवल एक मार्ग है। यह संसार पृथकता का, वियोग का मार्ग है। यदि तुम गुजर जाते हो इसमें से और तुम समझने लगते हो पूरे अनुभव को, तो मिलन और विवाह पास आता जाता है- और पास, और पास। और एक दिन अचानक ही तुम विवाहित होते हो, संपूर्ण सृष्टि से मिलन होता है और सारे वियोग मिट जाते हैं। और उस मिलन में ही आनंद है। इस अलगाव में पीड़ा है, क्योंकि यह अलगाव झूठा है। अलगाव है, क्योंकि तुम्हें बोध नहीं है। तुम्हारे अज्ञान में ही उसका अतित्व है। यह एक स्वप्न की भांति है।
तुम सोए हुए होः फिर तुम स्वप्न देखते हो हजारों चीजों के, और सुबह वे सभी तिरोहित हो जाती हैं। और अचानक तुम हंसने लगते हो स्वयं पर ही। सारी बात ही इतनी बेतुकी मालूम पड़ती है। तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा हुआ कैसे! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि तुम भ्रांति में कैसे पड़ गए, जैसे कि वह सब वास्तविक हो! तुम्हें विश्वास नहीं आता कि ऐसा कैसे संभव हुआ कि तुम मन में तैरते उन चित्रों द्वारा इतने अभिभूत हो गए! वे विचारों के बुदबुदों के सिवाय और कुछ नहीं थे। और वे कैसे लगते थे- यथार्थ, ठोस, और वास्तविक! ऐसा ही घटता है जब कोई सत्य के अनुभव में उतरता है! लेकिन सत्य जाना जाता है गहरी सहभागिता द्वारा। यदि तुम सहभागी नहीं होते तो तुम सत्य को बाहर-बाहर से ही जानोगे, किसी अजनबी की भांति, किसी बाहरी व्यक्ति की भांति। तुम इस घर के पास आ सकते हो; तुम घर के चारों तरफ घूम सकते हो; और तुम घर के बारे में कुछ बातें जान भी लोगे। लेकिन तुम घूमते रहे बाहर ही, सतह पर ही। तुमने दीवारों को बाहर से ही देखा। तुम घर को भीतर से नहीं जानते। कभी-कभी, रात के अंधेरे में आए चोर की भांति, तुम घर में प्रवेश भी कर सकते हो।
कवि चोर होता है। वैज्ञानिक अजनबी बना रहता है। धार्मिक आदमी मेहमान होता है; वह रात के अंधेरे में नहीं आता हैः वह घर में चोरी से नहीं आता है। हालांकि कुछ बातों को चोर की भांति भी जाना जा सकता है, इसलिए कवि बेहतर होगा उस वैज्ञानिक व्यक्ति से जो कि बाहर-बाहर ही घूमता रहा और कभी भीतर नहीं आया। तो कवि भी थोड़ा-बहुत जान लेगा जिसे एक वैज्ञानिक कभी नहीं जान सकता, क्योंकि कवि प्रवेश कर चुका है घर में- चाहे रात में ही सही, अंधेरे में ही सही; चाहे अनिमंत्रित ही, अतिथि के रूप में नहीं, सामने के द्वार से नहीं।

धार्मिक आदमी घर में प्रविष्ट होता है अतिथि की भांति। वह उसे अर्जित करता है। और वह न केवल घर के बारे में ही जानता है, बल्कि मालिक के बारे में भी जानता है- क्योंकि वह मेहमान होता है। वह न केवल उस भौतिक घर के बारे में जानता है, बल्कि वह उस अभौतिक मालिक के बारे में भी जानता है जो कि वस्तुतः केन्द्र है घर का। वह घर के मालिक को भी जानता है।
विज्ञान जानता है केवल पदार्थ को। कला को कई बार झलकें मिलती हैं अभौतिक की। क्योंकि चोर भी देख सकता है मालिक को, लेकिन मालिक सोया हुआ होगा। वह भी देख सकता है उसका चेहरा, लेकिन केवल अंधकार में, क्योंकि वह भयभीत होता है, सदा भयभीत होता है कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाए। वह चोर होता है और सदा भयभीत होता है और कंप रहा होता है। लेकिन जब तुम घर में अतिथि की भांति आमंत्रित होकर आते हो, तुमने उसे अर्जित किया होता है, तो मालिक तुम्हारा आलिंगन करता है; तुम्हारा स्वागत करता है। तब तुम जानते हो सत्य के अंतरतम केन्द्र को।
भारत में हमारे पास कवि के लिए दो शब्द हैं। किसी अन्य भाषा में कवि
के लिए दो शब्द नहीं हैं, क्योंकि कोई जरूरत नहीं पड़ी। एक ही शब्द पर्याप्त होता है। वही इशारा कर देता है काव्य की घटना की तरफ- "कवि" पर्याप्त है। लेकिन संकृत में हमारे पास दो शब्द हैंः "कवि" और "ऋषि"। और भेद बहुत सूक्ष्म है और समझने जैसा है। "कवि" वह है जो चोर की भांति आता है। वह सहभागी तो होता है, इसलिए वह कवि है। लेकिन उसका ज्ञान होता है टुकड़ों में। किन्हीं खास क्षणों में जैसे कि कोई चोर घर के भीतर हो और अचानक आकाश में बिजली कौंध जाए और वह सारे घर को भीतर से भी देख सके- लेकिन ऐसा होता है क्षण भर को ही। फिर बिजली खो जाती है और हर चीज स्वप्नवत हो जाती है।
तो कभी-कभी कवि का सामना हो जाता है सत्य से, लेकिन इसी तरह जैसे कि उसने उसे अर्जित न किया हो। इसीलिए कई बार आश्चर्य करोगे तुम; तुम किसी की कविता पढ़ते हो- कोई भी कविता, किसी की भी- वह तुम्हें छूती है, तुम्हारे हृदय में उतर जाती है, तुम आंदोलित हो जाते हो और तुम मिलना चाहते हो इस आदमी से जिसमें कि ये पंक्तियां अवतरित हुई हैं। लेकिन जब तुम उस आदमी से, उस कवि से मिलते हो, तो तुम्हें निराशा होती है- वह एकदम सामान्य आदमी होता है- साधारण, कुछ खास नहीं। अपनी कविता की उड़ान में वह बड़ा असाधारण था, लेकिन यदि तुम मिलते हो उस कवि से तो वह साधारण ही होता है। क्या हुआ? तुम नहीं मान सकते कि ऐसा सुंदर काव्य पैदा हो सकता है एक साधारण आदमी से!
ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कवि कोई स्थायी निवासी नहीं होता मंदिर का। वह चोर होता है। कई बार वह प्रवेश करता है, लेकिन अंधेरे में ही। निश्चित ही, चारों ओर घूमने से तो बेहतर है यह; कम से कम उसे एक झलक तो मिलती है। बस वह उस झलक के गीत गाता है। उसके हृदय में सतत एक टीस बनी रहती है उस आंतरिक झलक के लिए जिसे उसने एक बार देखा है। वह फिर-फिर उसी के गीत गाता है, लेकिन अब यह उसका अनुभव नहीं है। यह अतीत की बात हो गई- एक स्मृति, एक स्मरण, कोई वास्तविकता नहीं।
"ऋषि" वह कवि है जिसका स्वागत हुआ है मेहमान की भांति। ऋषि शब्द का अर्थ है द्रष्टा, और कवि शब्द का भी अर्थ है द्रष्टा। उन दोनों का ही अर्थ होता हैः वह जिसने कि देख लिया। तो भेद क्या है? भेद यह है कि ऋषि ने उसे अर्जित किया होता है। वह दिन के प्रकाश में प्रविष्ट हुआ घर में; वह सामने के दरवाजे से प्रविष्ट हुआ। वह कोई अनिमंत्रित मेहमान नहीं है; वह किसी दूसरे के घर में अनधिकार प्रवेश नहीं कर रहा है। वह निमंत्रित है। मालिक ने उसका स्वागत किया। वह भी गीत गाता है, लेकिन उसका गीत पूरी तरह से अलग होता है साधारण कवि से।
उपनिषद ऐसे ही गीत हैं, वेद ऐसे ही गीत हैं- वे आए हैं ऋषियों के हृदयों से। वे कोई साधारण कवि न थे, वे असाधारण कवि थे। असाधारण इस अर्थ में कि उन्होंने अर्जित किया था उस झलक को; वह कोई चुराई हुई चीज न थी। लेकिन ऐसा केवल तभी संभव होता है जब तुम सीख लेते हो कि पूरे प्राणों से सहभागी कैसे होना है- यही है योग। योग का अर्थ है सम्मिलन; योग का अर्थ है विवाह; योग का अर्थ है जोड़। योग का अर्थ हैः फिर से निकट कैसे आना, पृथकता

को कैसे मिटा देना, सारी सीमाओं को कैसे विलीन कर देना, उस अवस्था तक कैसे आ जाना जहां ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाएं। यही है योग की खोज।
इन थोड़े से दशकों में विज्ञान और-और सजग हुआ है कि सारा ज्ञान व्यक्तिगत होता है। योग कहता है कि ज्ञान मात्र व्यक्तिगत होता है और जितना ज्यादा व्यक्तिगत होता है, उतना बेहतर होता है। तुम्हें उससे एकात्म हो जाना होगाः तुम्हें फूल हो जाना होगा; तुम्हें चट्टान हो जाना होगा; तुम्हें चांद हो जाना होगा; तुम्हें सागर, रेत हो जाना होगा। तुम जहां कहीं देखो, तुम्हें विषय और विषयी दोनों हो जाना होगा। तुम्हें सम्मिलित होना होगा। तुम्हें सहभागी होना होगा। केवल तभी जीवन पंदित होता है, जीवन अपनी लय के साथ पंदित होता है। तब तुम उस पर कुछ आरोपित नहीं कर रहे होते।
विज्ञान आक्रमण है, कविता चोरी है और धर्म सहभागिता है।
अब हम पतंजलि के इन सूत्रों को समझने की कोशिश करें-
दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है- प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता। और द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु वह होता है।
पहली बात जो समझने जैसी है वह यह है कि यह संसार इसलिए है ताकि तुम्हें मुक्ति फलित हो सके। बहुत बार यह प्रश्न उठा है तुम मेंः "यह संसार क्यों है? इतनी ज्यादा पीड़ा क्यों है? यह सब किसलिए है? इसका प्रयोजन क्या है?" बहुत से लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं, "यह मूलभूत प्रश्न है कि हम आखिर हैं ही क्यों? और अगर जीवन इतनी पीड़ा से भरा है, तो प्रयोजन क्या है इसका? यदि परमात्मा है, तो वह इस सारी की सारी अराजकता को मिटा क्यों नहीं देता? क्यों नहीं वह मिटा देता इस सारे दुख भरे जीवन को, इस नरक को? क्यों वह लोगों को विवश किए चला जाता है इस में जीने के लिए?"
योग के पास उत्तर है। पतंजलि कहते हैं, "द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।"
यह एक प्रशिक्षण है। पीड़ा एक प्रशिक्षण है, क्योंकि बिना पीड़ा के परिपक्व होने की कोई संभावना नहीं। यह आग है, सोने को शुद्ध होने के लिए इसमें से गुजरना ही होगा। यदि सोना कहे, क्यों? तो सोना अशुद्ध और मूल्यहीन ही बना रहता है। केवल आग से गुजरने पर ही वह सब जल जाता है जो कि सोना नहीं होता और केवल शुद्धतम वर्ण बच रहता है। मुक्ति का कुल मतलब इतना ही हैः एक परिपक्वता, इतना चरम विकास कि केवल शुद्धता, केवल निदाक्रषता ही बचती है, और वह सब जो कि व्यर्थ था, जल जाता है।
इसे जानने का कोई और उपाय नहीं है। कोई और उपाय हो भी नहीं सकता इसे जानने का। यदि तुम जानना चाहते हो कि तृप्ति क्या है, तो तुम्हें भूख को जानना ही होगा। यदि तुम बचना चाहते हो भूख से, तो तुम तृप्ति से भी बच जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि गहन तृप्ति क्या होती है, तो तुम्हें जानना होगा प्यास को, गहन प्यास को। यदि तुम कहते हो, "मैं नहीं चाहता मुझे प्यास लगे", तो तुम प्यास के बुझने की, उस गहन तृप्ति की सुंदर घड़ी को चूक जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि प्रकाश क्या है, तो तुम्हें गुजरना ही पड़ेगा अंधेरी रात से। अंधेरी रात तुम्हें तैयार करती है जानने के लिए कि प्रकाश क्या है। यदि तुम जानना चाहते हो कि जीवन क्या है, तो तुम्हें गुजरना होगा मृत्यु से। मृत्यु तुम में जीवन को जानने की संवेदनशीलता निर्मित करती है।
वे विपरीत नहीं हैं, वे परिपूरक हैं। ऐसा कुछ नहीं है संसार में जो कि विपरीत हो; हर चीज परिपूरक है। "यह" संसार अतित्व रखता है ताकि तुम जान सको "उस" संसार को। "इसका" अतित्व है "उसको" जानने के लिए। भौतिक है आध्यात्मिक को जानने के लिए; नरक है वर्ग तक आने के लिए। यही है प्रयोजन। और यदि तुम एक से बचना चाहते हो तो तुम दोनों से बच जाओगे, क्योंकि वे एक ही चीज के दो पहलू हैं। एक बार तुम इसे समझ लेते हो तो कोई पीड़ा नहीं रहतीः तुम जानते हो कि यह एक प्रशिक्षण है, एक अनुशासन है। अनुशासन कठिन होता है। कठिन होगा ही, क्योंकि केवल तभी उससे सच्ची परिपक्वता आएगी।

योग कहता है कि यह संसार एक ट्रेनिंग कूल की भांति है, एक पाठशाला। इससे बचो मत और इससे भागने की कोशिश मत करो। बल्कि जीओ इसे, और इसे इतनी समग्रता से जीओ कि इसे फिर से जीने को विवश न होना पड़े तुम्हें। यही है अर्थ जब हम कहते हैं कि एक बुद्ध पुरुष कभी वापस नहीं लौटता। कोई जरूरत नहीं रहती। वह गुजर गया जीवन की सभी परीक्षाओं से। उसके लौटने की जरूरत न रही।
तुम्हें फिर-फिर उसी जीवन में लौटने को विवश होना पड़ता है, क्योंकि तुम सीखते नहीं। बिना सीखे ही तुम अनुभव की पुनरुक्ति किए चले जाते हो। तुम फिर-फिर दोहराते रहते हो वही अनुभव- वही क्रोध। कितनी बार, कितने हजारों बार तुम क्रोधित हुए हो? जरा गिनो तो। क्या सीखा तुमने इससे? कुछ भी नहीं। फिर जब कोई स्थिति आ जाएगी तो तुम फिर से क्रोधित हो जाओगे- बिल्कुल उसी तरह जैसे कि तुम्हें पहली बार क्रोध आ रहा हो!
कितनी बार तुम पर कब्जा कर लिया है लोभ ने, कामवासना ने? फिर कब्जा कर लेंगी ये चीजें। और फिर तुम प्रतिक्रिया करोगे उसी पुराने ढंग से- जैसे कि तुमने न सीखने की ठान ही ली हो। और सीखने के लिए राजी होने का अर्थ है योगी होने के लिए राजी होना। यदि तुमने न सीखने का ही तय कर लिया है, यदि तुम आंखों पर पट्टी ही बांधे रखना चाहते हो, यदि तुम फिर-फिर दोहराए जाना चाहते हो उसी नासमझी को, तो तुम वापस फेंक दिए जाओगे। तुम वापस भेज दिए जाओगे उसी कक्षा में जब तक कि तुम उत्तीर्ण न हो जाओ।
जीवन को किसी और ढंग से मत देखना। यह एक विराट पाठशाला है, एकमात्र विश्वविद्यालय है। "विश्वविद्यालय" शब्द आया है "विश्व" से। असल में किसी विश्वविद्यालय को स्वयं को विश्वविद्यालय नहीं कहना चाहिए। यह नाम तो बहुत विराट है। संपूर्ण विश्व ही है एकमात्र विश्वविद्यालय। लेकिन तुमने बना लिए हैं छोटे-छोटे विश्वविद्यालय और तुम सोचते हो कि जब तुम वहां से उत्तीर्ण होते हो तो तुम जान गए सब, जैसे कि तुम बन गए ज्ञानी!
नहीं, ये छोटे-मोटे मनुष्य-निर्मित विश्वविद्यालय न चलेंगे। तुम्हें
इस विराट विश्वविद्यालय से जीवन भर गुजरना होगा।
पतंजलि कहते हैं, " अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो।"
अनुभव मुक्ति लाता है। जीसस ने कहा है, "सत्य को जान लो और सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा।" जब भी तुम किसी बात को सजग होकर, होशपूर्वक, पूरी तरह ध्यान देते हुए अनुभव करते हो कि क्या घट रहा है- ध्यान दे रहे होते हो और साथ-साथ सहभागी हो रहे होते हो- तो वह अनुभव मुक्तिदायी होता है। तुरंत कोई चीज उमगती है उसमें सेः एक अनुभव, जो सत्य बन जाता है। तुमने उसे शास्त्रों से उधार नहीं लिया होता; तुमने उसे किसी दूसरे से उधार नहीं लिया होता। अनुभव उधार नहीं लिया जा सकता; केवल सिद्धांत उधार लिए जा सकते हैं।
इसीलिए सारे सिद्धांत गंदे होते हैं, क्योंकि वे बहुत से हाथों से गुजरते रहते हैं- लाखों हाथों से। वे गंदे नोटों की भांति होते हैं। अनुभव सदा ताजा होता है- सुबह की ओस जैसा ताजा, सुबह खिले गुलाब की भांति ताजा। अनुभव सदा निर्दोष और कुंआरा होता है, किसी ने कभी छुआ नहीं है उसे। तुम पहली बार उसके सामने आए हो। तुम्हारा अनुभव तुम्हारा है, वह किसी दूसरे का नहीं है, और कोई उसे दे नहीं सकता तुम्हें।
बुद्ध पुरुष मार्ग दिखा सकते हैं, लेकिन चलना तो तुम्हें ही है। कोई बुद्ध पुरुष तुम्हारी जगह नहीं चल सकता है; ऐसी कोई संभावना नहीं है। कोई बुद्ध पुरुष अपनी आंखें तुम्हें नहीं दे सकता कि तुम उनके द्वारा देख सको। और यदि कोई बुद्ध पुरुष तुम्हें आंखें दे भी दे, तो तुम बदल दोगे आंखों को- आंखें तुम्हें न बदल पाएंगी। जब आंखें तुम्हारे ढांचे में बिठाई जाएंगी, तो तुम्हारा ढांचा आंखों को ही बदल देगा, लेकिन आंखें तुम्हें नहीं बदल सकतीं। वे अंश हैं; तुम एक बहुत बड़ी घटना हो।
मैं अपना हाथ तुम्हें उधार नहीं दे सकता। यदि मैं दूं भी, तो पर्श मेरा न रहेगा, वह तुम्हारा होगा। जब तुम छुओगे और स्पर्श करोगे कुछ- चाहे मेरे हाथ द्वारा ही- तो वह तुम्हीं स्पर्श कर रहे होओगे, मेरा हाथ न होगा।
सत्य को उधार पाने की कोई संभावना नहीं है। अनुभव मुक्त करता है।

रोज मुझसे लोग मिलते हैं और कहते हैं, "कैसे कोई क्रोध से मुक्त हो? कैसे कोई काम से, वासना से मुक्त हो? कैसे कोई मुक्त हो इससे, कैसे कोई मुक्त हो उससे?" और जब मैं कहता हूं, "इसे जीओ", तो उन्हें धक्का लगता है। वे मेरे पास आए थे उन बातों का दमन करने की किसी विधि की खोज में। और यदि वे भारत में किसी दूसरे गुरु के पास गए होते तो उन्हें अपना दमन करने के लिए कोई न कोई विधि मिल गई होती। लेकिन दमन कभी मुक्ति नहीं बन सकता, क्योंकि दमन का अर्थ है अनुभव से बचना। दमन का अर्थ है अनुभव की तमाम जड़ों को ही काट देना। दमन कभी भी मुक्ति नहीं बन सकता। दमन सब से बड़ा बंधन है जो तुम कहीं पा सकते हो। तुम जीते हो एक पिंजरे में।
अभी एक दिन एक नए संन्यासी ने मुझसे कहा, "मैं पिंजरे में बंद जानवर जैसा अनुभव करता हूं।" इसकी पूरी संभावना है कि उसका मतलब यही था कि वह चाहता था कि मैं उसकी मदद करूं ताकि जानवर मर जाए, क्योंकि हम "जानवर" तभी कहते हैं जब हम निंदा करते हैं। वह शब्द ही निंदित है। लेकिन जब मैंने संन्यासी से कहा, "हां, मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैं तोड़ दूंगा पिंजरा और पूरी तरह स्वतंत्र कर दूंगा जानवर को," तो उसे थोड़ा धक्का लगा; क्योंकि जब तुम कहते हो जानवर, तो तुमने उसकी निंदा, उसका मूल्यांकन कर ही दिया होता है। यह कोई महज तथ्य नहीं है। पशु या पशुता शब्द में ही तुमने वह सब कुछ कह दिया जो तुम कहना चाहते थे। तुम उसे स्वीकार नहीं करते। तुम उसे जीना नहीं चाहते।
इसीलिए तुमने पिंजरा बना लिया है। वह पिंजरा है- चरित्र। सारे चरित्र पिंजरे हैं, कारागृह हैं, तुम्हारे चारों ओर बंधी जंजीरें हैं। और चरित्र वाला आदमी कैदी आदमी है। वास्तविक रूप से जागा हुआ व्यक्ति चरित्र वाला व्यक्ति नहीं होता है। वह जीवंत होता है। वह पूरी तरह जागा हुआ होता है, लेकिन उसका कोई चरित्र नहीं होता, क्योंकि उसके आस-पास कोई पिंजरा नहीं होता। वह सहजफूर्त भाव से जीता है। वह जागा हुआ जीता है इसलिए कोई गलती नहीं हो सकती, लेकिन उसकी सुरक्षा के लिए कोई पिंजरा नहीं होता आस-पास। पिंजरा सजगता का झूठा विकल्प है। यदि तुम सोए-सोए जीना चाहते हो तो तुम्हें चरित्र की जरूरत है, ताकि चरित्र तुम्हें मार्ग-निर्देश दे सके। तब तुम्हें सजग रहने की जरूरत नहीं होती। जैसे, तुम कोई चीज चुराने ही वाले हो- कि चरित्र एकदम रोक देता है तुम्हेंः वह कहता है, "नहीं! यह गलत है! यह पाप है! तुम सड़ोगे नरक में! क्या तुम भूल गए सारी बाइबिल? क्या तुम भूल गए सभी दंड जिन्हें भुगतना पड़ता है आदमी को?" यह है चरित्र। यह रोक देता है तुम्हें। तुम चोरी करना चाहते हो, चरित्र एक रुकावट बन जाता है। सजग व्यक्ति भी चोरी नहीं करेगा, लेकिन यह उसका चरित्र नहीं है; और यही है चमत्कार और सौंदर्य। उसके पास कोई चरित्र नहीं है और फिर भी वह चोरी नहीं करेगा, क्योंकि उसके पास बोध है। ऐसा नहीं है कि वह भयभीत है पाप से- पाप जैसा कुछ है ही नहीं। ज्यादा से ज्यादा कह सकते हो कि गलतियां हैं। पाप जैसा तो कुछ है ही नहीं। वह दंड से भयभीत नहीं है, क्योंकि दंड कहीं भविष्य में नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि पापों के लिए दंड मिलता है। असल में पाप ही दंड है।
ऐसा नहीं है कि तुम आज क्रोधित होते हो और दंड तुम्हें कल मिलेगा या अगले जन्म में मिलेगा- कोरी बकवास है यह सब। तुम अपना हाथ आग में अभी डालते हो, तो क्या सोचते हो कि वह अगले जन्म में जलेगा? जब तुम अपना हाथ आग में डालते हो, तो वह अभी जलता है; वह तत्क्षण जलता है। हाथ का वहां रखा जाना और उसका जल जाना साथ-साथ घटता है। एक क्षण का भी अंतराल नहीं होता। जीवन का भविष्य में कोई विश्वास नहीं, क्योंकि जीवन केवल वर्तमान में है।
ऐसा नहीं है कि पापों की सजा भविष्य में मिलेगी, पाप ही सजा हैं। सजा अंतअनहित हैः तुम चोरी करते हो और तुम्हें सजा मिल जाती है। उस चोरी करने में ही तुम सजा पाते हो- क्योंकि तुम ज्यादा बंद हो जाते होः तुम ज्यादा भयभीत हो जाओगे; तुम संसार का सामना न कर पाओगे। निरंतर तुम एक अपराध-भाव अनुभव करोगे, कि तुमने कुछ गलत किया है, किसी भी घड़ी तुम पकड़े जा सकते हो। तुम पकड़े ही गए हो! हो सकता है कभी किसी ने तुम्हें पकड़ा न हो और किसी न्यायालय ने तुम्हें कभी सजा न दी हो- और कहीं कोई पारलौकिक न्यायालय नहीं है- लेकिन फिर भी तुम पकड़े गए हो। तुम स्वयं के द्वारा ही पकड़े गए हो। इसे

कैसे भूल पाओगे तुम? कैसे तुम क्षमा करोगे स्वयं को? कैसे तुम उस बात को अनकिया कर दोगे जिसे कि तुमने किया है? वह तुम्हारे चारों ओर छाई रहेगी। यह बात छाया की भांति तुम्हारा पीछा करेगी। किसी प्रेत की भांति यह तुम्हारे पीछे पड़ी रहेगी। यह स्वयं ही एक सजा है।
तो चरित्र तुम्हें गलत बातें करने से रोकता है, लेकिन वह तुम्हें उनके बारे में सोचने से नहीं रोक सकता। लेकिन चोरी करना या उसके बारे में सोचना एक ही बात है। सचमुच हत्या कर देना और उसके बारे में सोचना एक ही बात है। क्योंकि जहां तक तुम्हारी चेतना का प्रश्न है तुमने वह बात कर ही दी है- यदि तुमने उसके बारे में सोचा है। वह कृत्य न बनी क्योंकि चरित्र ने तुम्हें रोक लिया; यदि चरित्र वहां न होता तो वह बात कृत्य बन गई होती।
तो असल में चरित्र ज्यादा से ज्यादा यही करता हैः वह रोक लगा देता है विचार पर; वह उसे कृत्य में नहीं बदलने देता। यह समाज के लिए ठीक है, लेकिन तुम्हारे लिए जरा भी ठीक नहीं है। यह समाज की सुरक्षा करता है; तुम्हारा चरित्र समाज की सुरक्षा करता है। तुम्हारा चरित्र दूसरों की सुरक्षा करता है, बस इतना ही। इसीलिए प्रत्येक समाज जोर देता है चरित्र पर, नैतिकता पर, ऐसी ही चीजों पर; लेकिन वह तुम्हारी सुरक्षा नहीं करता। तुम्हारी सुरक्षा केवल होश में हो सकती है। और यह होश कैसे पाया जाता है? दूसरा कोई राता नहीं सिवाय इसके कि जीवन को उसकी समग्रता में जीया जाए।
"द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।"
"दृश्य, जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संघटित होता है, उसका स्वभाव होता है।"
तीन गुण। योग तीन गुणों में विश्वास करता हैः सत्व, रजस, तमस। सत्व वह गुण है जो चीजों को थिर बनाता है; रजस वह गुण है जो सक्रियता देता है; और तमस का गुणधर्म है अक्रिया। ये तीन आधारभूत गुण हैं। इन तीनों के द्वारा यह सारा संसार अतित्व में है। यह है योग की त्रिमूर्ति।
अब भौतिकशास्त्री भी योग के साथ राजी होने को तैयार हो गए हैं। उन्होंने परमाणु को तोड़ लिया है और उन्हें पता चला है तीन चीजों काः इलेक्ट्रान, न्यूट्रान, प्रोट्रान। ये तीनों वही तीन गुण हैंः एक की गुणवत्ता है प्रकाश की- सत्व, थिरता; दूसरे की गुणवत्ता है रजस की- क्रिया, ऊर्जा, शक्ति; और तीसरे की गुणवत्ता है अक्रिया की- तमस। सारा संसार बना है इन तीन गुणों से; और इन तीन गुणों से गुजरना पड़ता है सजग व्यक्ति को। उसे अनुभव लेना होता है इन तीनों गुणों का। और यदि तुम उनको एक लयबद्धता में अनुभव करते हो, जो कि वास्तविक अनुशासन है योग का।
हर कोई इन्हें अनुभव करता हैः कई बार तुम आलय अनुभव करते हो, कई बार तुम ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करते हो; कई बार तुम अच्छा और हलका अनुभव करते हो, और कई बार तुम अशुभ और बुरा अनुभव करते हो; कई बार तुम अंधकार होते हो और कई बार तुम सुबह का उजाला होते हो। तुम्हें प्रतीति होती है इन तीनों गुणों की। उनकी घड़ियां निरंतर आती रहती हैं; तुम एक चक्र में घूमते रहते हो; लेकिन वे अनुपात में नहीं होते।
एक आलसी आदमी नब्बे प्रतिशत आलसी होता है। वह सक्रिय भी होता है- उसे होना ही पड़ेगा, क्योंकि आलय का जीवन जीने के लिए भी उसे थोड़ा काम तो करना होगा। उसकी सारी सक्रियता बस इतनी ही होती है- उसकी निष्क्रियता को सहारा देने के लिए। और उसे लोगों के साथ थोड़ा भला भी रहना पड़ता है, अन्यथा तो लोग बहुत ही बुरी तरह पेश आएंगे उसके साथ। लोग बरदाश्त नहीं करेंगे उसकी निष्क्रियता को।
क्या तुमने ध्यान दिया? जो लोग बहुत सक्रिय नहीं होते उदाहरण के लिए, बहुत मोटे लोग सदा मुस्कुराते रहते हैं। यह बात उनके लिए एक रक्षा-कवच होती है। वे जानते हैं कि वे लड़ नहीं सकते। वे जानते हैं कि यदि लड़ाई हो जाए तो वे बच कर भाग नहीं सकते, दौड़ नहीं सकते। तुम बहुत मोटे लोगों को सदा मुस्कुराते हुए देखते हो- प्रसन्न! कारण क्या है? क्यों पतले व्यक्ति दुखी मालूम पड़ते हैं, और क्यों मोटे व्यक्ति कभी बहुत दुखी नहीं मालूम पड़ते, सदा प्रसन्न दिखते हैं?

मनविद और शरीर-शास्त्री कहते हैं कि यह बात मोटे व्यक्ति के लिए एक सुरक्षा है, क्योंकि जीवन-संघर्ष में उनके लिए सदा लड़ने की भाव-दशा में रहना बहुत कठिन होगा, जिसमें कि दुबले-पतले लोग सदा ही रहते हैं। वे लड़ सकते हैं- यदि दूसरा आदमी कमजोर है तो वे पीट देंगे उसे; यदि दूसरा आदमी शक्तिशाली है तो वे बच कर भाग निकलेंगे। वे दोनों बातें कर सकते हैं, और मोटा आदमी इन दोनों में से कुछ भी नहीं कर सकता, तो वह मुकुराता रहता है; वह हर किसी के साथ अच्छा बना रहता है। यह उसकी सुरक्षा है, ताकि दूसरे उसके साथ अच्छा व्यवहार करें।
आलसी व्यक्ति सदा भले होते हैं। उन्होंने कभी कोई पाप नहीं किया, क्योंकि पाप करने के लिए भी व्यक्ति को थोड़ा सक्रिय होना पड़ता है। तुम किसी आलसी आदमी को हिटलर नहीं बना सकते; असंभव है। तुम किसी आलसी आदमी को नेपोलियन या सिकंदर नहीं बना सकते। यह असंभव है। आलसी आदमियों ने कोई बड़ा पाप नहीं किया है; वे कर नहीं सकते। एक तरह से वे बहुत भले लोग होते हैं, क्योंकि पाप करने के लिए भी उन्हें सक्रिय होना होगा- वह बात उनके अनुकूल नहीं पड़ती।
फिर सक्रिय व्यक्ति हैं, असंतुलित; वे सदा कुछ न कुछ करते रहते हैं। उन्हें कहीं पहुंचने की कोई चिंता नहीं होती; उन्हें केवल यही चिंता होती है कि तेजी से चलते रहें। उन्हें बिल्कुल चिंता नहीं होती कि वे कहीं पहुंच रहे हैं या नहीं- इसका कोई सवाल ही नहीं है। यदि वे तेजी से चल रहे हैं तो फिर ठीक है। मत पूछना कि "कहां जा रहे हो तुम?" वे कहीं नहीं जा रहे हैं; वे तो बस जा रहे हैं। उनका कोई लक्ष्य नहीं है। उनके पास केवल ऊर्जा है कुछ न कुछ करते रहने के लिए। ये लोग संसार के खतरनाक लोग हैं- आलसी लोगों से ज्यादा खतरनाक। इस दूसरी श्रेणी से ही आए हैं सारे एडोल्फ हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन, सिकंदर। सारे उपद्रवी आते हैं इस दूसरी श्रेणी से, क्योंकि उनके पास ऊर्जा होती है- एक बेचैन ऊर्जा।
फिर तीसरी तरह के लोग हैं, जिन्हें ढूंढ़ निकालना दुर्लभ हैः कहीं कोई लाओत्सु बैठा होता है मौन- अकर्मण्य नहीं- निश्चेशट। न सक्रिय, न अकर्मण्य- निष्क्रिय; ऊर्जा से भरा-पूरा, एक ऊर्जा-कुंड, लेकिन मौन बैठा हुआ। क्या तुमने ध्यान से देखा है किसी को शांत-मौन बैठे हुए, ऊर्जा से आपूरित? तुम एक आभामंडल अनुभव करते हो उसके चारों ओर, जीवंतता से दीप्तिमान, लेकिन फिर भी शांत- कुछ न करते हुए, मात्र होने में थिर।
और योग है इन तीनों के बीच संतुलन पा लेना। यदि तुम इन तीनों के बीच संतुलन पा लो तो अचानक तुम इनके पार चले जाते हो। यदि कोई एक गुण ज्यादा होता है बाकी दो गुणों से तो वही तुम्हारी समया बन जाता है। यदि तुम सक्रिय कम और आलसी ज्यादा हो तो आलय तुम्हारी समया बन जाएगाः तुम उसके द्वारा पीड़ा पाओगे। यदि सक्रियता ज्यादा है आलय से तो तुम अपनी सक्रियता द्वारा दुख पाओगे। और तीसरा कभी ज्यादा नहीं होता, वह सदा कम ही होता है; लेकिन यदि यह सिद्धांततः संभव भी हो- कि कोई जरूरत से ज्यादा अच्छा हो- तो यह बात भी एक दुख बन जाएगी उसके लिए, यह भी एक असंतुलन निर्मित करेगी। एक सम्यक जीवन संतुलन का जीवन होता है।
बुद्ध के पास आठ सिद्धांत हैं अपने शिशयों के लिए। प्रत्येक सिद्धांत
के आगे वे जोड़ देते हैं एक शब्द- सम्यक। यदि वे कहते हैं "होशपूर्ण होओ" तो केवल "स्मृति" नहीं कहते; वे कहते हैं, "सम्यक स्मृति"। अंग्रेजी में सदा इसका अनुवाद किया जाता रहा है "राइट मेमोरी"। यदि वे कहते "श्रम", तो वे सदा यही कहते, "सम्यक श्रम"। "सम्यक" का अर्थ है संतुलन। "सम्यक" का अर्थ है समता। समाधि के लिए भी, ध्यान के लिए भी बुद्ध कहते हैं, "सम्यक समाधि"। समाधि भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी। अच्छाई भी अति हो सकती है, और तब यह खतरनाक हो जाएगी।
समता मुख्य तत्व होना चाहिए। जो कुछ भी करो, तुम सदा संतुलित रहना रसी
पर चलते आदमी की भांति, निरंतर संतुलन बनाए रखना। यही है सम्यकत्व, संतुलन का तत्व। वह व्यक्ति जो परम मिलन को, परम योग को उपलब्ध होना चाहता है, उसे गहन संतुलन में रहना होता है। संतुलन में तुम तीनों गुणों के पार चले जाते हो। तुम गुणातीत हो जाते होः तुम इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हो। तुम अब इस संसार के हिसे नहीं रहते; तुम इसके पार चले जाते हो।

ये तीन गुण- प्रकाश (थिरता), सक्रियता और निष्क्रियता- इनकी चार अवस्थाएं हैंः निश्चित, अनिश्चित, सांकेतिक और अव्यक्त।
इन तीनों गुणों की चार अवस्थाएं हैं। पहली को पतंजलि कहते हैं, निश्चित। तुम इसे पदार्थ कह सकते हो; यह तुम्हारे आस-पास की सर्वाधिक निश्चित चीज है। फिर है अनिश्चित; तुम इसे मन कह सकते हो; वह भी वहां है, निरंतर तुम्हें उसकी अनुभूति होती है, फिर भी वह एक अनिश्चित तत्व है। तुम निश्चित नहीं कह सकते कि मन क्या है। तुम जानते हो उसे, तुम निरंतर जीते हो उसे, लेकिन तुम उसे परिभाषित नहीं कर सकते। पदार्थ को परिभाषित किया जा सकता है लेकिन मन को नहीं। और फिर है "सांकेतिक"। अनिश्चित से भी ज्यादा सूक्ष्म है सांकेतिकः यह है आत्मा। तुम केवल संकेत दे सकते हो उसका। तुम यह भी नहीं कह सकते कि वह अपरिभाषित है। यह भी सूक्ष्म ढंग से उसे परिभाषित करना ही हुआ, क्योंकि यह बात भी एक परिभाषा हो जाती है। यह कहना कि कोई चीज अपरिभाषित है- तुमने परोक्ष रूप से उसे परिभाषित कर ही दिया; तुमने कुछ कह ही दिया उसके बारे में। तो यही है अतित्व की सूक्ष्म पर्त जो आत्मा है, जो सांकेतिक है। और फिर इसके पार है सूक्ष्मतम, जो है "अव्यक्त"- असांकेतिक- जो अनात्मा है।
तो पदार्थ, मन, आत्मा, अनात्मा- ये चार अवस्थाएं हैं इन तीन गुणों की।
यदि तुम गहन आलय में हो तो तुम पदार्थ की भांति ही हो। आलय से भरा आदमी करीब-करीब पदार्थ होता है, जड़ जीवन होता है उसका; तुम उसे जीवंत नहीं देखते। फिर है दूसरा गुण- मन। यदि रजस गुण बहुत ज्यादा हो, तो तुम मन से बहुत ज्यादा भर जाते हो। तब तुम बहुत ज्यादा सक्रिय होते हो- मन निरंतर सक्रिय रहता है, क्रिया से घिरा रहता है, निरंतर नई-नई व्यतताओं की खोज में रहता है।
एवरेट की चोटी पर पहुंचने वाले पहले आदमी एडमंड हिलेरी से किसी ने पूछा, "क्यों? आखिर क्यों आपने इतना खतरा उठाया?" वह कहने लगा, "क्योंकि एवरेट मौजूद था, तो आदमी को चढ़ना ही था।" वहां कुछ है नहीं। चांद पर क्यों जा रहा है आदमी? क्योंकि चांद है। कैसे तुम बच सकते हो उससे? तुम्हें जाना ही है। सक्रियता से भरा आदमी निरंतर काम की खोज में रहता है। वह बिना काम के नहीं रह सकता। यह उसकी समया है। बिना काम के वह नरक में होता है; काम में तल्लीन होकर वह भूल जाता है स्वयं को।
यदि तमस, अक्रिया बहुत हो, तो तुम पदार्थ की भांति हो जाते हो। यदि रजस बहुत हो तो तुम मन हो जाते होः मन है सक्रियता। इसीलिए मन पागल हो जाता है। फिर यदि सत्व बहुत ज्यादा हो जाए तो तुम आत्मा हो जाते हो। लेकिन वह भी एक असंतुलन है। यदि ये तीनों ही संतुलन में हों तो फिर आती है चौथी बातः अनात्मा। वही है तुम्हारा वास्तविक अतित्व जहां "मैं" की अनुभूति भी अतित्व नहीं रखती! इसीलिए इसे "अनात्मा" कहा गया है।
ये हैं चार अवस्थाएं- तीन हैं असंतुलन की और चौथी है संतुलन की। पहली निश्चित है, दूसरी अनिश्चित है, तीसरी सांकेतिक है, चौथी सांकेतिक भी नहीं, अव्यक्त है। और यही चौथी सब से अधिक वास्तविक है। पहली सब से अधिक वास्तविक मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो पहली में। दूसरी बहुत निकट मालूम पड़ती है क्योंकि तुम जीते हो मन में। तीसरी थोड़ी दूर मालूम पड़ती है, लेकिन तुम समझ सकते हो उसे। चौथी तो बिल्कुल अविश्वसनीय मालूम पड़ती है- अनात्मा? ब्रह्म कहो, या परमात्मा, या तुम जो भी नाम दे दो इसे, बहुत दूर मालूम पड़ता है, करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है; और जो सबसे ज्यादा सच है। द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है, फिर भी मन की विकृतियों के माध्यम से
वह देखा करता है।
और वह चौथी अवस्था, चाहे तुम उसे उपलब्ध भी हो जाओ- जब तक तुम देह में
हो तब तक तुम्हें अपने अतित्व की सभी पतां का उपयोग करना होगा। बुद्ध भी जब तुम से बात करते हैं तो उन्हें मन के द्वारा ही बात करनी पड़ती है। बुद्ध भी जब चलते हैं तो उन्हें शरीर के द्वारा चलना पड़ता है। लेकिन अब, जब एक बार तुम जान लेते हो कि तुम मन के पार हो, तो मन तुम्हें कभी धोखा नहीं दे सकता। तुम उसका उपयोग कर सकते हो और तुम उसके द्वारा कभी उपयोग नहीं किए जाते। यही अंतर होता है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध मन का उपयोग नहीं करते, वे करते हैं। वे मन का उपयोग करते हैं; मन तुम्हारा उपयोग करता है। ऐसा नहीं

है कि वे देह में नहीं जीते हैं, वे जीते हैं। तुम घसिटते हो- देह मालिक होती है और तुम गुलाम होते हो। बुद्ध होते हैं मालिक; देह होती है गुलाम।
एक समग्र क्रांति, एक समग्र रूपांतरण घटित होता है- जो ऊपर होता है वह नीचे चला जाता है और जो नीचे होता है वह ऊपर आ जाता है।
दृश्य का अतित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।
यह योग का या वेदांत का चरम शिखर हैः "दृश्य का अतित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।" जब द्रष्टा खो जाता है, तो दृश्य भी खो जाता है, क्योंकि वह तो केवल द्रष्टा के मुक्त होने के लिए ही था। जब मुक्ति घट जाती है तो उसकी आवश्यकता नहीं रहती।
यह बात बहुत से प्रश्न उठा देगी। क्योंकि बुद्ध पुरुष- उनके लिए दृश्य तिरोहित हो चुका है, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। एक फूल है, तुम में से कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता हैः उसके लिए वह फूल तिरोहित हो चुका, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी है। तो यह कैसे संभव है कि किसी के लिए वह तिरोहित हो जाता है और तुम्हारे लिए वह बना रहता है?
यह बिल्कुल ऐसा ही हैः रात तुम सभी सो जाते हो, तुम सभी स्वप्न देखने लगते हो; फिर एक आदमी जाग जाता है- उसकी नींद टूट जाती है, उसका स्वप्न खो जाता है- लेकिन बाकी सभी के स्वप्न जारी रहते हैं। उसके स्वप्न के तिरोहित होने की घटना तुम्हारे स्वप्नों के टूटने में किसी प्रकार से मदद नहीं करती; वे चलते रहते हैं। इसीलिए बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। एक व्यक्ति जाग जाता है; बाकी सब अपने-अपने अज्ञान में जीए जाते हैं। वह दूसरों की मदद कर सकता है जाग जाने में। अपनी नींद से तुम बाहर आ सको उसके लिए मदद के उपाय वह तुम्हारे चारों ओर निर्मित कर सकता है, लेकिन जब तक तुम अपनी नींद से बाहर नहीं आ जाते तब तक तुम्हारे स्वप्न बने रहेंगे।
"दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए।
यद्यपि दृश्य उसके लिए मृत हो जाता है जिसने मुक्ति पा ली है, फिर भी बाकी दूसरों के लिए यह जीवित रहता है, क्योंकि यह सर्वनिष्ठ होता है।" भारत में हमने स्वप्न और तुम्हारी तथाकथित वास्तविकता के बीच केवल एक भेद किया है, और यह है वह भेदः कि स्वप्न निजी वास्तविकता हैं और यह वास्तविकता जिसे कि तुम संसार कहते हो एक सार्वजनिक स्वप्न है, बस इतना ही। जब तुम स्वप्न देखते हो तो तुम निजी संसार के स्वप्न देखते हो। रात में तुम निजी संसार को जीते हो; तुम किसी और को नहीं बुला सकते अपने स्वप्न में साझीदार होने के लिए। तुम्हारा निकटतम मित्र या तुम्हारी पत्नी या तुम्हारी प्रेयसी भी बहुत दूर होते हैं। जब तुम स्वप्न देख रहे होते हो तो तुम अकेले ही स्वप्न देख रहे होते हो। तुम किसी को नहीं ले जा सकते वहां; वह एक निजी संसार है। तो फिर यह संसार क्या है? क्योंकि भारत में हम ने इस संसार को भी स्वप्नवत कहा है। यह एक सामूहिक स्वप्न है। हम सब एक साथ स्वप्न देखते हैं, क्योंकि हमारे मन एक ही ढंग से काम करते हैं।
कभी नदी पर जाओ। अपने साथ एक सीधी छड़ी ले जाना। तुम जानते हो कि छड़ी सीधी है। उसे डुबाना नदी मेंः तत्क्षण तुम देखोगे कि वह टेढ़ी हो गई है, मुड़ गई है। बाहर निकालना उसे; तुम देखते हो कि वह सीधी ही है।

प्रवचन-6

एकांत और अहंकार

एकांत में अहंकार बिखर जाता है। दुसरा कोई होता ही नही जिसे तुम संबधित हो सको इसलिये यह जीवित नहीं रह पाता। इसलिये अगर तुम अकेले होने के लिए, निर्विवाद रूप से अकेले होने के लिए तैयार हो, न भागो, न पीछे लौटो, बस इस अकेलेपन के तथ्य को उसके पूरे यथार्थ में उसे स्वीकार कर लो तो यह एक महान अवसर बन जाता है। तब तुम एक बीज की भांति होते हो, जिसमें बहुत बड़ी संभावना छिपी होती है। किंतु स्मरण रखना पौधे के विकसित होने के लिए बीज को स्वयं को नष्ट करना पड़ेगा।
अहंकार बीज है, एक संभावना है। यदि यह बिखरता है तो दिव्यता उत्पन्न होती है। दिव्यता अपने आप में न तो मैं है, न तू है, यह एक है। इस एकांत के द्वारा ही तुम अपनी इस एकात्मीयता पर आते हो।
तुम इस एकात्मकता के लिए झूठे विकल्प गढ़ सकते हो। हिंदू एक हो जाते हैं, ईसाई एक हो जाते हैं, मुसलमान एक हो जाते हैं, भारत एक है, चीन एक है। ये सब एकात्मकता के विकल्प मात्र हैं। सिर्फ पूर्ण एकांत के द्वारा ही एकात्मकता आती है।
कोइ भीड़ स्वयं को एक कह सकती है, किंतु यह एकता सदैव किसी अन्य के विरोध में होती है। जब तक भीड़ तुम्हारे साथ होती है, तुम विश्राम में होते हो। अब तुम जिम्मेवार नहीं होते। तुम अकेले एक मस्जिद में आग नहीं लगा सकोगे, तुम अकेले एक मंदिर नष्ट नहीं कर पाओगे, किंतु भीड़ का अंग होकर तुम यह कर सकते हो, क्योंकि अब तुम स्वयं अकेले जिम्मेवार नहीं हो। अब हर कोइ जिम्मेवार है इसलिये कोई एक विशेष रुप से जिम्मेवार नहीं है। वहां कोई निजी चेतना नहीं होती, मात्र एक सामूहिक चेतना होती है। भीड़ में मनुष्य के तल से तुम नीचे गिर जाते हो और एक पशु बन जाते हो।
भीड़ एकात्मकता के होने का झूठा विकल्प है। कोई भी जो परिस्थिति के प्रति जागरुक है, अपने मनुष्य होने के प्रति जागरुक है और उस कठिन, श्रमसाध्य कृत्य के प्रति जागरुक है जो कि मनुष्य होने के नाते उसे करना है, वह किसी झूठे विकल्प को नहीं चुनता। तुम्हारे धर्म और तुम्हारी राजनैतिक विचार धारणाएं मात्र काल्पनिक कथायें हैं, जो एकात्मकता की झूठी अनुभूति देती हैं। एकात्मकता आती ही तब है, जब तुम अहंकार विहीन हो जाते हो और अहंकार सिर्फ तभी मिट सकता है जब तुम पूर्णतः अकेले हो।

7. जब तुम पूरी तरह अकेले होते हो तब तुम होते ही नहीं। यह एक क्षण विस्फोट का क्षण है। तुम अनंत में विस्फोटित हो जाते हो। यही और सिर्फ यही विकास है। मैं इसे उत्क्रांति कहता हूं क्योंकि यह अचेतन नहीं है। तुम अहंकार शून्य हो सकते हो या नहीं हो सकते। यह तुम पर निर्भर है।
अकेले होना ही एक मात्र वास्तविक क्रांति है। बहुत साहस की जरूरत पड़ती है। केवल एक बुद्ध अकेले हैं, केवल एक जीसस या महावीर अकेले हैं। ऐसा नहीं है कि उन्होंने अपने परिवार छोड़े, संसार छोड़ा। ऐसा दिखता है, पर ऐसा है नहीं। निषेधात्मक रूप से वे कुछ नहीं छोड़ रहे थे। यह कृत्य एक विधायक यज्ञ की भांति था और यह बस एकांत की ओर गतिमान होना था। वे कुछ त्याग नहीं रहे थे, वे पूर्णतः अकेले होने की खोज में थे।
सारी खोज विस्फोट के उस पल के लिए है, जब कोई अकेला होता है। एकांत में आनंद है और केवल तभी संबोधि उपलब्ध होती है।
हम अकेले नहीं हो सकते, दूसरे भी अकेले नहीं हो सकते, इसलिये हम समूह निर्मित करते हैं; परिवार, समाज, राष्ट्र बनाते हैं। सारे राष्ट्र, सारे परिवार, सारे समूह कायरों से बने हैं; उनसे जिनमें अकेले होने के लिए जरुरी साहस नहीं है।
वास्तविक साहस तो केवल अकेले होने का साहस है। इसका मतलब ही यही है कि
इस बात का जागरुकतापूर्वक एहसास कि तुम अकेले हो और तुम इसके अलावा कुछ हो भी नहीं सकते। या तो यह अपने आपको धोखा देने का सिलसिला कई जन्मों तक एैसे ही जारी रख सकते हो पर तब तुम एक दुश्चक्र में चलते रहोगे। अगर तुम अपने इस

अकेले होने के तथ्य के साथ रह सको, केवल तभी यह चक्र टूटता है और तुम अपने केंद्र पर आ जाते हो। यह केंद्र दिव्यता का, समग्रता का, पवित्रता का केंद्र है।
मैं ऐसे किसी समय की कल्पना ही नहीं कर सकता जब कि प्रत्येक मनुष्य केंन्द्रीत होने के इस अधिकार को जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में प्राप्त करने योग्य होगा। यह असंभव है। चेतना वैयक्तिक; निजी होती है। सिर्फ अचेतन ही सामूहिक होता है। मानव जाति चेतना के उस बिंदु पर आ चुकी है, जहां कि वह वैयक्तिक हो जाए। सच तो यह है कि मनुष्यता का अलग अस्तित्व है ही नहीं, सिर्फ एक मनुष्य होता हैं। प्रत्येक मनुष्य को अपनी निजता; वैयक्तिकता तथा इसके प्रति उसके अपने उत्तरदायित्व का साक्षात करना पड़ेगा।
पहला काम जो हमे करना चाहिए वह यह है कि अकेलेपन के इस आधार भूत तथ्य
को स्वीकार करना और इसके साथ रहना सीखना। हमें कोई कपोल-कल्पनायें नहीं गढ़नी हैं। कपोल-कल्पनायें, प्रक्षेपित, गढ़े गये, बनाये गये सत्य हैं, जो तुम्हें वास्तविकता से जानने से रोकते हैं। अपने अकेलेपन के तथ्य के साथ रहो। यदि तुम इस तथ्य के साथ रह सके, यदि तुम्हारे और इस तथ्य के बीच में कोई कपोलकल्पना न रही, तो सत्य तुम पर उद्घाटित हो जाएगा। प्रत्येक तथ्य, यदि उसमें गहनता से झांका जाये, सत्य का उद्घाटन करता है।
इसलिये उत्तरदायित्व के इस तथ्य के साथ, इस तथ्य के साथ कि तुम अकेले हो, बने रहो। यदि तुम इस तथ्य के साथ रह सको, तो विस्फोट घटित हो जाएगा। यह कठीन है, परंतु यही एकमात्र उपाय है। इन्हीं कठिनाईयों के द्वारा, इस तथ्य की स्वीकृति के द्वारा ही तुम विस्फोट के बिंदु पर पहुंचते हो। केवल तभी वहां आनंद है। यदि यह तुम्हें पूर्व-निर्मित दे दिया जाए, तो यह अपना महत्त्व खो देगा क्योंकि तुमने इसे उपलब्ध नहीं किया है। तुम्हारे पास आनंद को अनुभव करने की क्षमता नहीं होती। यह क्षमता सिर्फ स्वयं के अनुशासन के द्वारा ही आती है।
यदि तुम अपने इस उत्तरदायी होने के तथ्य के साथ रह सको, तो अनुशासन स्वतः ही तुम्हारे पास आ जाएगा। अपने प्रति पूर्ण उत्तरदायी होने पर तुम अनुशासित हो जाने के अतिरिक्त कुछ और कर ही नहीं सकते। किंतु यह अनुशासन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो तुम पर बाहर से थोपी गई हो। यह भीतर से आता है। अपने प्रति अपने पूर्ण उत्तरदायित्व के कारण, तुम्हारे द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम अनुशासित होता है। तुम एक शब्द भी अनुत्तरदायीपूर्ण ढंग से बोल नहीं सकते।।
अगर तुम अपने अकेलेपन के प्रति जागरुक हो, तो तुम दूसरों की व्यथा के प्रति भी जागरुक होओगे। तब तुम कोई भी गैरजिम्मेवार कृत्य नहीं करोगे, क्योंकि तुम न केवल अपने लिए बल्कि दूसरों के लिए भी अपने को जिम्मेवार अनुभव करोगे। अगर तुम अपने अकेलेपन के तथ्य के स्विकारते हुए उसके साथ रह सको तो तुम पाओगे कि यहां प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। तब बेटे को पता है कि पिता अकेला है, पत्नी जानती है कि पति अकेला है, पति जानता है कि पत्नी अकेली है। एक बार तुम यह जान लो तो तुम करुणावान हो ही जाओगे।
तथ्यों का स्विकार करते हुए उनके साथ रहना ही सही अर्थो में एकमात्र योग है, एकमात्र अनुशासन है। एक बार तुम मनुष्य की स्थिति के प्रति पूर्णतः जागरुक हो जाओ तो तुम धार्मिक हो जाते हो। तुम अपने मालिक बन जाते हो। लेकिन इस तरह से आया हुआ आत्म संयम एक तपस्वी का आत्मसंयम नहीं होता। यह जबरदस्ती से थोपा हुआ नहीं होता, यह कुरुप नहीं होता। यह आत्मसंयम सौंदर्य पूर्ण होता है। तब तुम महसूस करोगे कि यही एकमात्र संभवकार्य है, जिसे तुम और तरह से नहीं कर सकते। तब वस्तुओं पर जो तुम्हारी पकड़ है वह छूट जाती है, तुम अपरिग्रही हो जाते हो।
परिग्रह का आकर्षण मनुष्य अकेले नहीं हो पाता इसके कारण उत्पन्न हुआ आकर्षण है। कोई व्यक्ति अकेले नहीं हो पाता; इसलिये वह साथ खोजता है। किंतु दूसरे लोगों का साथ भरोसे योग्य नहीं है इसलिये इसके पर्याय के रुप में वह वस्तुओं का साथ खोजता है। एक पत्नी के साथ रहना कठिन है, एक कार के साथ रहना इतना कठिन नहीं है। इसलिये किसी भी चीज पर कब्जा कर लेने की उसकी जो प्रवृत्ति है वह वस्तुओं पर कब्जा करने की ओर मुड़ जाती है।

तुम व्यक्तियों तक को वस्तुओं में बदलने का प्रयास कर सकते हो। तुम उन्हें इस प्रकार बदलने का प्रयास करते हो कि वे अपनी वैयक्तिकता, अपनी निजता खो दें। पत्नी एक वस्तु हो जाती है, व्यक्ति नहीं; पति एक वस्तु हो जाता है, व्यक्ति नहीं।
यदि तुम अपने अकेलेपन के प्रति जागरुक हो जाओ, तब तुम दूसरो के अकेलेपन के प्रति भी जागरुक हो जाते हो। तब तुम जानते हो कि दूसरे पर मालकियत करने की चेष्टा एक तरह का अनधिकृत कब्जा है। तब तुम कभी त्याग करने के कारण चिजों को नहीं छोड़ोगे, त्याग तो बस तुम्हारे अकेलेपन की नकारात्मक छाया भर हो जाता है। तुम अपरिग्रही हो जाते हो। तब तुम एक प्रेमी हो सकते हो, लेकिन पति या पत्नी नहीं।
इस अपरिग्रह भाव के साथ करुणा और आत्मसंयम का आगमन होता है। तुम पर निर्दोषता आती है। जब तुम जीवन के तथ्यों से इन्कार करते हो, तब तुम निर्दोष नहीं हो सकते; तुम चालाक हो जाते हो। तुम खुद को तथा औरों को धोखा देते हो। किंतु यदि तुम इतना साहस कर पाये कि जीवन के तथ्यों के साथ, जैसे वे हैं, उसी रूप में रह जाओ तो तुम निर्दोष हो जाओगे। यह निर्दोषता तुम्हारे प्रयास या जबरदस्ती से लायी नहीं होती, तुम यही हो जाते हो- निर्दोष।
मेरे लिए, निर्दोष होना ही वह सब कुछ है, जो पाया जाना है। निर्दोष हो रहो और तब दिव्यता ही आनंद पूर्ण होकर तुम्हारी ओर सदा प्रवाहित होती है। यह निर्दोषता ही उस दिव्यता को ग्रहण करने की पात्रता है, दिव्यता का अंश हो पाने की पात्रता है। निर्दोष हो जाओ, और अतिथि वहां आ जाता है। मेजबान हो जाओ। इस निर्दोषता का अभ्यास नहीं किया जा सकता क्योंकि अतिथेय; मेजबान होने का अभ्यास सदा सोच-विचार से होता है। यह हिसाब-किताब से होता है। पर निर्दोषता कभी हिसाब-किताब से नहीं आ सकती, यह असंभव है।
यह निर्दोषता ही असली धार्मिकता है। निर्दोष होना ही सच्चे आत्मबोध
का उत्कर्ष बिंदु है। किंतु सच्ची निर्दोषता केवल खुद के जागरुकतापूर्ण विकास के द्वारा ही आती है। यह किसी सामूहिक, अचेतन विकास से संभव नहीं है। एक मनुष्य अकेला है, वह स्वतंत्र है चुनने के लिए- स्वर्ग या नर्क, जीवन अथवा मृत्यु, आत्मबोध का आनंद या हमारे तथाकथित जीवन की पीड़ा। सार्त्र ने कहीं पर कहा है, "मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है।" तुम स्वर्ग चुन सकते हो या नर्क। स्वतंत्रता का अर्थ है किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता। यदि तुम सिर्फ स्वर्ग ही चुन सको; तो यह चुनाव नहीं है, यह स्वतंत्रता नहीं है। नर्क के चुनाव के बिना स्वर्ग अपने में नर्क हो जाएगा। चुनाव का अर्थ सदा होता है यह या वह। इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम सिर्फ भला ही चुनने के लिए स्वतंत्र हो। तब वहां कोई स्वतंत्रता नहीं होती।
यदि तुम गलत चुनाव करते हो तो स्वतंत्रता अभिशाप बन जाती है; किंतु यदि तुम सही चुनते हो तो यह आशीष बन जाती है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम्हारा चुनाव स्वतंत्रता को अभिशाप में बदलता है या आशीष में। चुनाव करना पूर्णतः तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है।
यदि तुम तैयार हो तो तुम्हारी ही भीतरी गहराई में से एक नया आयाम आरंभ
हो सकता है; उत्क्रांति का आयाम। विकास अब पूरा हो चुका है और अब एक उत्क्रांति की आवश्यकता है जो तुम्हें, वह जो सबसे पार है, उसके प्रति खोल दे। यह एक निजी उत्क्रांति है, एक अंतस-क्रांति।

प्रवचन-7

ध्यान का रहस्यः अंतराल में प्रवेश

10. ध्यान क्या है?

ध्यान कोई भारतीय विधि नहीं है और यह केवल एक विधि मात्र भी नहीं है। तुम इसे सीख नहीं सकते। तुम्हारी संपूर्ण जीवन चर्या का, तुम्हारी संपूर्ण जीवन चर्या में यह एक विकास है। ध्यान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे, जैसे कि तुम हो, उसमें जोड़ा जा सके। यह एक मौलिक रूपांतरण है जो कि तुम्हारे स्वयं के उपर उठने के द्वारा ही आ सकता है। यह एक खिलावट है, यह विकसित होना है। विकास सदा ही पूर्ण होने से होता है, यह कुछ और जोड़ना नहीं है। तुम्हें ध्यान की ओर विकसित होना पड़ेगा।
व्यक्ति की इस समग्र खिलावट को ठीक से समझ लेना चाहिए। अन्यथा कोई अपने साथ खेल खेल सकता है, वह अपने ही मन की तरकीबों में उलझ सकता है। और बहुत सी तरकीबें है। उनके द्वारा न केवल तुम मूर्ख बनोगे, उनके द्वारा न केवल तुम कुछ नहीं पाओगे, बल्कि वास्तविक अर्थ में तुम्हें उनसे नुकसान ही होगा। यह मान लेना कि ध्यान की कोई तरकीब है- ध्यान की एक विधि के रूप में कल्पना करना- आधारभूत रूप से गलत है। और जब कोई व्यक्ति मन की चालाकियों में रस लेने लगता है तब मन की गुणवत्ता नष्ट होने लगती है। जैसे कि मन है, यह गैर-ध्यान पूर्ण है। ध्यान के घटित होने से पूर्व संपूर्ण मन का रूपांतरण होना चाहिए। तब फिर मन, जैसा कि वह अभी है, यह वास्तव में क्या है? यह कैसे कार्य करता है?
मन सदा व्याख्या करता है। तुम शब्दों को जान सकते हो, तुम भाषा को जान सकते हो, तुम विचार प्रक्रिया को, उसकी संरचना को जान सकते हो, लेकिन यह विचारणा नहीं है। बल्कि इसके विपरीत यह विचारणा से पलायन है। तुम एक फूल देखते हो, और तुम इसका व्याख्या करते हो। मन प्रत्येक आकार को, वस्तु को शब्दों में रूपांतरित कर सकता है। तब शब्द एक कारागृह, एक अवरोध बन जाते हैं।
वस्तुओं का शब्दों में, उनके होने का; उनके अस्तित्व का शब्दों में यह निरंतर बंध जाना ध्यान पूर्ण चित्त के लिए बाधा है।
इसलिये ध्यान पूर्ण चित्त के लिए प्रथम आवश्यकता है, चिजों की व्याख्या करने की इस आदत के प्रति सतत जागरुकता और इसको रोक सकने की योग्यता। वस्तुओं को मात्र देखो, उनकी व्याख्या मत करो। उनकी उपस्थिति के प्रति बोध पूर्ण रहो; किंतु उनको शब्दों में मत बदलो। वस्तुओं को होने दो, भाषा के बिना, व्यक्तियों को होने दो, भाषा के बिना, परिस्थितियों को होने दो, भाषा के बिना। यह असंभव नहीं है, यह स्वाभाविक है। अभी जो स्थिति है कृत्रिम तो वह है, लेकिन हमारी ऐसी आदत पड़ गई है, यह सब इतना यांत्रिक हो गया है, कि हमें इसका बोध भी नहीं रहता कि हम निरंतर अनुभवों को शब्दों में रूपांतरित कर रहे हैं।
सूर्योदय है, तुम कभी इसको देखने और इसका व्याख्या करने के अंतराल के प्रति जागरुक नहीं होते। तुम सूर्य को देखते हो, तुम इसे अनुभव करते हो और तुरंत ही तुम इसका व्याख्या कर देते हो। देखने और व्याख्या के बीच का अंतराल खो जाता है। यह तथ्य; एक उपस्थिति है। मन स्वतः ही अनुभवों को शब्दों में रूपांतरित कर लेता है। तब ये शब्द तुम्हारे और अनुभव के मध्य में आ जाते हैं।
ध्यान का अर्थ है- शब्दों के बिना जीना, भाषा रहित होकर जीना। कभी कभी
यह सहज स्फूर्त रूप से घटित हो जाता है। जब तुम प्रेम में होते हो, उपस्थिति अनुभव होती है, भाषा नहीं। जब दो प्रेमी एक दूसरे के प्रति आत्मीयता से भरे होते हैं, तो मौन हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि वहां अभिव्यक्त करने को कुछ नहीं है। इसके विपरीत इस समय अभिव्यक्ति के लिए बहुत कुछ उद्वेलित होता है। किंतु शब्द वहां कभी नहीं होते, वे हो भी नहीं सकते। वे सिर्फ तब आते हैं, जब प्रेम जा चुकता है।

यदि दो प्रेमी कभी मौन न हों, तो यह एक संकेत है कि प्रेम मर चुका है।
अब वे उस अंतराल को शब्दों से भर रहे हैं। जब प्रेम जीवित होता है, शब्द वहां नहीं होते, क्योंकि प्रेम की उपस्थिति इतनी उद्वेलित करने वाली, इतनी पैनी होती है कि भाषा और शब्दों का अवरोध पार हो जाता है। और सामान्यतः यह सिर्फ प्रेम में ही पार होता है।
ध्यान प्रेम की पराकाष्ठा है। किसी एक व्यक्ति के प्रति प्रेम नहीं, वरन समग्र अस्तित्त्व के प्रति जीवंत संबंध है, जो तुम्हें घेरे हुए है। यदि तुम किसी भी परिस्थिति में प्रेममय रह सको तो तुम ध्यान में हो।
और यह कोई मन की तरकीब नहीं है। यह कोई मन को स्थिर करने की विधि नहीं है। बल्कि इसके लिए मन की यंत्रवत होने की गहन समझ अनिवार्य है। जिस पल तुम व्याख्या की, अस्तित्त्व को शब्दों में बदलने की, अपनी यांत्रिक आदत को समझते हो, एक अंतराल उत्पन्न हो जाता है। यह सहज स्फूर्त आता है। यह समझ का एक छाया की भांति अनुगमन करता है।
वास्तविक समस्या यह नहीं है, कि ध्यान में कैसे हों, बल्कि यह जानना
है कि ध्यान में तुम क्यों नहीं हो। ध्यान की पूरी प्रक्रिया निषेधात्मक है। यह तुममें कुछ जोड़ना नहीं है, यह कुछ घटाता है जो पहले से ही जोड़ दिया गया है।
समाज भाषा के बिना नहीं रह सकता, इसे भाषा चाहिए ही। किंतु अस्तित्त्व को इसकी जरूरत नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हें भाषा के बिना रहना चाहिए। तुम्हें इसका प्रयोग तो करना ही पड़ेगा। किंतु तुम्हें इस योग्य होना चाहिए कि व्याख्या करने की यांत्रिक आदत को रोक सको और जीना शुरू कर सको। जब तुम एक सामाजिक प्राणी के रूप में होते हो, तो भाषा की यांत्रिक आदत आवश्यक है; किंतु जब तुम अस्तित्त्व के साथ अकेले हो तो तुम्हें इस योग्य होना पड़ेगा कि इसे रोक सको। यदि तुम इसे बंद नहीं कर सकते- यह लगातार चलती चली जाती है, और तुम इसे रोकने में असमर्थ हो,- तब तुम इसके गुलाम बन गये हो। मन को एक उपकरण होना चाहिए, मालिक नहीं।
जब मन मालिक होता है, यह एक गैर ध्यान पूर्ण अवस्था होती है। जब तुम मालिक होते हो, तुम्हारी चेतना मालिक होती है, तब यह एक ध्यान पूर्ण अवस्था होती है। इसलिये ध्यान का अर्थ है, मन की यांत्रिक आदत का मालिक हो जाना।
मन और मन की भाषा संसार में उपयोगी है लेकिन परम सत्य को जानने में बाधा है। तुम इसके पार हो, अस्तित्त्व इसके पार है। चेतना भाषा से परे है, अस्तित्त्व भाषा से परे है। जब चेतना और अस्तित्त्व एक हों, वे संवाद में होते हैं। यह संवाद ही ध्यान है।
भाषा को छोड़ना पड़ेगा। मेरा अर्थ यह नहीं है कि तुम्हें इसे दमित या फेंक देना पड़ेगा। मेरा अर्थ सिर्फ इतना है कि यह तुम्हारे लिए दिन के चौबीसो घंटो की आदत न बनी रहे। जब तुम चलते हो तो तुम अपने पांवो को गतिमान करते हो। किंतु यदि तुम बैठे हो और तब भी वे गतिमान रहें तो तुम पागल हो। तुम्हें इस योग्य होना पड़ेगा कि उन्हें रोक सको। ठीक इसी तरह जब तुम किसी से बातचीत नहीं कर रहे हो भाषा को वहां नहीं होना चाहिए। यह तो संवाद का माध्यम है। जब तुम किसी के साथ संवाद नहीं कर रहे हो, तो यह वहां नहीं होनी चाहिए।
यदि तुम ऐसा करने में समर्थ हो तो तुम ध्यान में विकसित हो सकते हो। ध्यान एक विकसित होने की सतत प्रक्रिया है, कोइ ठहरी हुइ स्थिती या विधी नहीं। विधी सदा ही मृत होती है, इसलिये यह तुममें जोड़ी जा सकती है, किंतु प्रक्रिया सदा जीवंत है। यह विकसित होती है, इसका विस्तार होता है।
भाषा आवश्यक है, किंतु तुम्हें सदा इसमें नहीं रहना चाहिए। कुछ पल ऐसे होने चाहिए, जब कोई व्याख्या न हो, बस तुम हो। इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम मात्र पौधों की तरह हो। चेतना तो वहां है ही और यह अधिक पैनी, अधिक जीवंत होती है, क्योंकि भाषा इसे मंद कर देती है। भाषा पुनरूक्त होने के लिए बाध्य है, इसलिये यह ऊब पैदा करती है। तुम्हारे लिए भाषा जितनी अधिक महत्त्व पूर्ण होगी, उतना ही तुम अधिक ऊबोगे।
13. अस्तित्त्व कभी पुनरूक्त नहीं होता। हर गुलाब, नया गुलाब होता है, बिल्कुल नया। कभी यह नहीं था और पुनः फिर कभी यह नहीं होगा। किंतु जब हम

इसे गुलाब पुकारते हैं, तो शब्द गुलाब पुनरूक्ति है। यह सदा से वहां था, यह सदा वहां होगा। तुमने नये को एक पुराने शब्द से मार डाला। अस्तित्त्व सदा युवा है और भाषा सदा वृद्ध। भाषा के द्वारा तुम अस्तित्त्व से बचते हो, जीवन से बचते हो, क्योंकि भाषा मृत है। तुम जितना अधिक भाषा से समृद्ध होते जाओगे, उतना ही तुम इसके द्वारा मृतप्राय होते जाओगे। एक पंडित पूर्णतः मृत है क्योंकि वह भाषा और शब्दों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सार्त्र ने अपनी आत्मकथा को नाम दिया, "शब्द"! हम शब्दों में जीते हैं। अर्थात, हम जीते नहीं। अंत में सिर्फ संकलित किये गये शब्द ही मिलते हैं और कुछ नहीं। शब्द फोटोग्राफ की तरह हैं। तुम कुछ देखते हो, जो जीवंत है और तुम उसका चित्र ले लेते हो। यह चित्र मृत है। तब तुम इन मृत चित्रों की एक एल्बम बनाते हो। कोई व्यक्ति जो ध्यान में नहीं जीया है, मृत एल्बम के समान है। वहां मात्र शाब्दिक चित्र होते हैं, मात्र स्मृतियां। कुछ भी जीया नहीं गया, प्रत्येक चीज की बस व्याख्या की गयी है।
ध्यान का अर्थ है, पूर्णतः जीना; किंतु तुम समग्रता से सिर्फ तभी जी सकते हो, जब तुम मौन हो। मौन होने से मेरा अर्थ अचेतन होना नहीं है। तुम मौन और अचेतन हो सकते हो किंतु यह जीवंत मौन नहीं है। तुम पुनः चूक गये। मंत्रों से तुम स्वयं को आत्मसम्मोहित कर सकते हो। मात्र एक शब्द को दोहराने से तुम मन में इतनी अधिक ऊब पैदा कर सकते हो कि वह सो जाये, तुम नींद में खो जाते हो, बेहोशी में खो जाते हो। यदि तुम राम-राम-राम दोहराते चले जाओ, मन सो जायेगा। तब भाषा का अवरोध वहां नहीं होगा, पर तुम बेहोश होगे।
ध्यान का अर्थ है कि भाषा वहां नहीं होनी चाहिए किंतु तुम्हें होशपूर्ण रहना चाहिए। अन्यथा अस्तित्त्व के साथ, यह सब कुछ जो है, उसके साथ संवाद नहीं होगा। कोई मंत्र सहायता कर सकता, कोई जप सहायता नहीं कर सकता। आत्मसम्मोहन ध्यान नहीं है। इसके विपरीत आत्म सम्मोहित अवस्था मे होना अधःपतन है। यह भाषा के परे जाना नहीं वरन इसके नीचे गिरना है। इसलिये सब मंत्रों को छोड़ दो, इन सब विधियों को छोड़ दो। उन पलों को घटने दो जहां कि शब्द न हों। तुम मंत्र द्वारा शब्दों से छुटकारा नहीं पा सकते क्योंकि यह प्रक्रिया भी शब्दों का प्रयोग करती है। तुम भाषा को शब्दों द्वारा ही समाप्त नहीं कर सकते, यह असंभव है।
तब क्या किया जाये? वस्तुतः तुम इसके सिवा कि इसे ठीक से समझो, और कुछ नहीं कर सकते।
1. जो भी करने योग्य होगा, वह केवल तुम्हारी वर्तमान स्थिति से ही आयेगा। तुम भ्रमित हो, तुम ध्यान में नहीं हो, तुम्हारा मन मौन नहीं है, इसलिये जो कुछ तुमसे आयेगा, वह और भ्रम पैदा कर देगा। अभी जो भी किया जा सकता है वह यह कि मन कैसे कार्य करता है इसके प्रति होश साधने का आरंभ। यही सबकुछ है- मात्र होश पूर्ण होना। होश को शब्दों से कुछ लेना देना नहीं है। यह एक अस्तित्त्वगत कृत्य है, मानसिक कृत्य नहीं।
इसलिये पहली बात है, होशपूर्ण होना। अपने मन की प्रक्रिया के प्रति होश पूर्ण हो जाओ, समझो कि तुम्हारा मन कैसे कार्य करता है। जिस पल तुम अपने मन की क्रिया के प्रति होशपूर्ण होते हो, तुम मन नहीं होते। इस होश का अर्थ ही यही है कि तुम अलग हो, पृथक हो, साक्षी हो। और जैसे जैसे तुम होशपूर्ण होते जाओगे, तुम अनुभव और शब्दों के मध्य जो अंतराल है उसे देखने में समर्थ होने लगोगे। अंतराल तो हैं, पर तुम इतने बेहोश हो कि वे तुम्हें कभी दिखते ही नहीं।
दो शब्दों के मध्य सदा अंतराल होते हैं, चाहे कितना ही छोटा हो, कितना
ही अदृश्य। अन्यथा दो शब्द दो नहीं रह सकते, वे एक हो जायेंगे। संगीत के दो स्वरों के बीच सदा एक अंतराल, एक मौन होता है। दो स्वर या दो शब्द दो हो ही नहीं सकते, जब तक कि उनके मध्य एक मध्यांतर न हो। एक मौन वहां सदा होता है, पर उसे अनुभव करने के लिए व्यक्ति को वास्तविक रूप से होशपूर्ण, वास्तविक रूप से जागरुक होना पड़ेगा।
जितना तुम अधिक होशपूर्ण होते जाओगे, मन उतना शिथिलतर होने लगेगा। यह सदा सापेक्ष है। तुम कम होशपूर्ण होते हो तो मन तीव्रतर होता है और ज्यों- ज्यों तुम होशपूर्ण होते हो, मन की प्रक्रिया धीमी होती जाती है। जब तुम

मन के प्रति अधिक होशपूर्ण होते हो तो मन धीमा हो जाता है और शब्दों के मध्य के अंतराल विस्तीर्ण हो जाते हैं। तब तुम उन्हें देख सकते हो।
यह चलचित्र के समान है। जब प्रक्षेपक धीमी गति से चलता है तो तुम अंतरालों को देखते हो। यदि मैं अपने हाथ को उठाऊं, तो चलचित्र की फिल्म में हजार चित्र होंगे। प्रत्येक भाग का एक चित्र होगा। यदि वे हजार भागों के चित्र तुम्हारी आंखों के सामने से इतनी तीव्रता से गुजारे जायें कि तुम अंतराल न देख पाओ, तो तुम हाथ को उठता हुआ एक प्रक्रिया के रूप में देखोगे। लेकिन धीमी गति में अंतराल देखे जा सकते हैं।
मन एक चलचित्र की भांति है। अंतराल वहां हैं। तुम अपने मन के प्रति जितना अधिक अवधान देने लगोगे, तुम उसे उतना ही अधिक देख लोगे। यह गेस्टाल्ट चित्र की भांति हैः एक चित्र जिसमें दो भिन्न प्रतिमायें एक साथ समाहित होती हैं। या तो एक प्रतिमा देखी जा सकती है या दूसरी देखी जा सकती है, किंतु तुम दोनों को एक साथ नहीं देख सकते। यह एक बूढ़ी स्त्री का चित्र हो सकता है, और साथ ही एक युवा स्त्री का चित्र भी, किंतु यदि तुम एक को देख रहे हो, तुम दूसरा नहीं देखोगे, और जब तुम दूसरे को देखते हो, पहला खो जाता है। भले ही तुम यह बात भली भांति जानते हो कि तुमने दोनो प्रतिमायें देखी हैं फिर भी तुम उन्हें एक साथ नहीं देख सकते।
15. यही घटना मन के साथ घटती है। यदि तुम शब्दों को देखते हो, तुम अंतरालों को नहीं देख सकते और यदि तुम अंतरालों को देखो, तुम शब्दों को नहीं देख सकते। प्रत्येक शब्द के बाद एक अंतराल आता है और प्रत्येक अंतराल के बाद एक शब्द, किंतु तुम उन दोनों को एक साथ नहीं देख सकते। यदि तुम अंतराल पर अपना अवधान केंद्रित करो, तो शब्द खो जायेंगे और तुम ध्यान में प्रविष्ट हो जाओगे।
सिर्फ शब्दों पर केंद्रित चेतना गैर ध्यानपूर्ण है, और सिर्फ अंतरालों पर केंद्रित चेतना ध्यानपूर्ण है। जब कभी भी तुम अंतरालों के प्रति बोध पूर्ण होते हो, शब्द खो जायेंगे। यदि तुम सावधानी पूर्वक देखो, तुम्हें शब्द नहीं मिलेंगे, तुम मात्र एक अंतराल पाओगे।
तुम दो शब्दों के मध्य भिन्नता अनुभव कर सकते हो किंतु दो अंतरालों
के मध्य अंतर महसूस नहीं कर सकते। शब्द सदा बहु वचन हैं, और अंतराल सदा एक वचन हैः अंतराल। वे विलय हो कर एक हो जाते हैं। ध्यान है- अंतराल पर अवधान। तब सारा दृष्टिकोण बदल जाता है।
एक और बात समझ लेनी है। यदि तुम गेस्टाल्ट चित्र को देख रहे हो और तुम्हारा अवधान बूढ़ी स्त्री पर केंद्रित है; तुम दूसरा चित्र नहीं देख सकते। किंतु यदि तुम लगातार बूढ़ी स्त्री पर अवधान केंद्रित कर रहे हो, और यदि उसी पर तुम केंद्रित रहो, यदि तुम उसके प्रति पूर्णतः अवधान पूर्ण हो जाओ, एक पल आयेगा जब अवधान परिवर्तित होता है और अचानक बूढ़ी स्त्री खो जाती है और दूसरा चित्र वहां होता है।
ऐसा क्यों होता है? यह घटता है क्योंकि मन लंबे समय तक केंद्रित नहीं
रह सकता। इसे विषय को बदलना पड़ेगा या यह सो जायेगा। केवल ये दो संभावनायें हैं। यदि तुम एक वस्तु पर अवधान केंद्रित किये रहो, मन सो जायेगा। यह स्थिर नहीं रह सकता, यह एक गतिशील प्रक्रिया है। यदि तुम इसे ऊबने दो, तो यह तुम्हारे अवधान की स्थिरता से बचने के लिए सो जायेगा। तब यह अपनी गतिशीलता स्वप्नों में जारी रखेगा।
यह एक गहरे योगी की तरह का ध्यान है। यह शांति पूर्ण है, स्फूर्तिदायक, सहज; वह तुम्हारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सहायक हो सकता है, किंतु यह ध्यान नहीं है। यही कार्य आत्म सम्मोहन द्वारा किया जा सकता है। भारतीय शब्द "मंत्र" का अर्थ सुझाव है और कुछ नहीं। उसे ध्यान की भांति लेना एक गंभीर भूल है। यह ध्यान नहीं है। और यदि तुम इसको ध्यान की भांति सोचते हो, तो तुम कभी भी प्रामाणिक ध्यान की खोज नहीं करोगे। यही वह वास्तविक हानि है, जो इन प्रयोगों और इन प्रयोगों के प्रचारकों से होती है। यह अपने को एक तरह से मनोवैज्ञानिक नशे में डुबाना है। इसलिये किसी मंत्र का प्रयोग शब्दों को रास्ते से हटाने के लिए मत करना।
केवल शब्दों के प्रति जागरुक हो जाओ और तुम्हारे मन की दिशा अपने आप अंतरालों की ओर परिवर्तित हो जायगी।

यदि तुम शब्दों से तादात्म्य करते हो तो तुम एक शब्द से दूसरे शब्द पर छलांग लगाते रहोगे और अंतराल से चूक जाओगे। दूसरा शब्द अवधान के लिये एक नयी चीज है। मन परिवर्तन करता रहता है, अवधान बदलता है। लेकिन यदि तुमने शब्दों से तादात्म्य नहीं किया है, तुम मात्र एक साक्षी हो, असंबद्ध,- मात्र शब्दों को एक प्रक्रिया की तरह आते देख रहे हो- तब संपूर्ण अवधान परिवर्तित हो जाएगा और तुम अंतराल के प्रति बोध पूर्ण हो जाओगे। यह ठीक इस तरह है जैसे तुम सड़क पर खड़े हो और लोगो को गुजरता हुआ देख रहें हो। एक व्यक्ति निकल चुका है, दूसरा अभी तक नहीं आया है। सड़क खाली है, वहां अंतराल होता है। यदि तुम देख रहे हो, तो तुम अंतराल को जानोगे।
और एक बार तुम इस अंतराल को जान लो तो अब तुम इसमें हो, तुमने इसमें छलांग लगा ली है। यह घाटी है- परम शांतिदायक, परम चेतनादायी। अंतराल में होना- यही ध्यान है और यही सही रूपांतरण है। अब भाषा की जरूरत न रही, अब तुम इसे छोड़ दोगे। यह सचेतन रूप से छोड़ना है। तुम मौन के प्रति, असीम मौन के प्रति चेतन हो जाते हो। तुम इसके हिस्से हो जाते हो। इसके साथ एक हो जाते हो। तुम घाटी के प्रति द्वैत भाव की तरह चेतन नहीं, तुम इसके प्रति अपनेपन की भांति चेतन हो। तुम जानते हो, लेकिन अब तुम जानना हो गये हो। तुम अंतराल को देखते हो, किंतु अब देखने वाला ही देखा जा रहा है।
जहां तक शब्दों और विचारों का संबंध है, तुम साक्षी होते हो, भिन्न होते हो और शब्द अन्य हैं। किंतु जब वहां शब्द नहीं होते, तुम अंतराल होते हो और फिर भी अपने होने के प्रति चेतन भी। तुम्हारे और अंतराल के मध्य, चेतना और अस्तित्त्व के मध्य अब कोई अवरोध नहीं होता। सिर्फ शब्द ही अवरोध है। अब तुम एक अस्तित्त्वगत स्थिति में होते हो। यही ध्यान हैः अस्तित्त्व के साथ एक होना; समग्रता पूर्वक इसमें होना, और फिर भी चैतन्य पूर्ण होना। यही विरोध है, यही विरोधाभास है। अब तुम एक ऐसी स्थिति को जान चुके हो, जिसमें तुम जागरुक थे, और उसके साथ एक भी।
सामान्यतः जब हम किसी चीज के प्रति सचेतन होते हैं, वह चीज दूसरी बन जाती है। यदि हम किसी चीज के साथ तादात्म्य में हैं, तो यह दूसरी नहीं होती, किंतु हम चेतन भी नहीं होते- जैसे कि क्रोध में, कामवासना में हम एक सिर्फ तब होते हैं जब हम अचेतन हों।
कामवासना का इतना अधिक आकर्षण इसीलिए है, क्योंकि कामवासना में तुम
एक पल को एक हो जाते हो। किंतु इस पल में तुम अचेतन होते हो। तुम अचेतनता को खोज लेते हो, क्योंकि तुम एकता को खोजते हो। किंतु तुम जितना उसे खोजो, उतने ही चेतन तुम हो जाओगे। तब कामवासना का सुख अनुभव नहीं करोगे, क्योंकि वह सुख अचेतनता से आ रहा था।
तुम उत्तेजना के क्षण में अचेतन हो सकते हो। तुम्हारी चेतना खो जाती है। एक पल के लिए तुम घाटी में होते हो- किंतु अचेतन। लेकिन जितना अधिक तुम इसे खोजो, उतना ही यह खोता है। अंतिम रूप से एक पल आता है जब तुम कामवासना में होते हो और अचेतनता का पल और अधिक नहीं रहता है। खाई खो जाती है, और सुख खो जाता है। तब कृत्य मूर्खता पूर्ण हो जाता है। यह मात्र एक यांत्रिक निकास होता है, उसमें कुछ भी आध्यात्मिक नहीं होता।
हम ने सिर्फ अचेतन एकता जानी है, हमने सचेतन एकता कभी नहीं जानी। ध्यान सचेतन एकता है। यह कामूकता का दूसरा ध्रुव है। काम एक ध्रुव है, अचेतन एकता। और ध्यान दूसरा ध्रुव है, सचेतन एकता। काम एकता का निम्नतम बिंदु है, और ध्यान शिखर है, एकता का चरम शिखर। उनका अंतर है, चेतनता की भिन्नता।
पश्चिमी मन अब ध्यान के बारे में सोच रहा है, क्योंकि काम का आकर्षण
खो चुका है। जब भी कोई समाज काम के प्रति में अदमित हो जाता है, ध्यान अनुगमन करेगा। क्योंकि वर्जनारहित काम, सेक्स के आकर्षण और कल्पना (रोमांस) को मार देगा, यह इसके आध्यात्मिक पहलू को मार देगा। अतिशय कामवासना तो होगी, पर तुम इसमें और अधिक अचेतन हीं रह सकते।
काम का दमन करने वाला समाज कामुक रह सकता है, किंतु अदमित, वर्जना रहित समाज, कामुकता के साथ सदा नहीं रह सकता। उसको इसका अतिक्रमण करना पड़ेगा। इसलिये यदि कोई समाज कामुक है, ध्यान उसमें अनुगमन करने लगेगा।
मेरे देखे तो एक "यौन स्वतंत्र" समाज खोज की ओर, तलाश की ओर, प्रथम कदम है।

किंतु चूंकि खोज है, इसका शोषण किया जा सकता है। ईसा पूर्व के द्वारा शोषण किया जा रहा है। गुरुओं की आपूर्ति की जा सकती है, उनका निर्यात किया जा सकता है। और उनका निर्यात हो रहा है। किंतु इन गुरुओं से सिर्फ ट्रिक्स ही सीखी जा सकती हैं। समझ तो जीवन के माध्यम से, जीवन शैली के माध्यम से आती है। इसे दिया नहीं जा सकता, यह हस्तांतरण नहीं हो सकती।
मैं तुम्हें अपनी समझ नहीं दे सकता। मैं इसके बारे में बात कर सकता हूं, किंतु मैं तुम्हें इसे दे नहीं सकता। तुम्हें इसे पाना होगा। तुम्हें जीवन में जाना पड़ेगा। तुम्हें त्रुटिवां करनी होंगी, तुम्हें असफल होना होगा, तुम्हें अनेंको हताशाओं से होकर गुजरना होगा। किंतु केवल असफलताओं, त्रुटियों, हताशाओं के द्वारा, वास्तविक जीवन शैली का सामना करने से ही, तुम ध्यान पर आओगे। इसीलिए मैं इसे विकास कहता हूं।
कुछ समझा जा सकता है, पर जो समझ दूसरे के माध्यम से आती है, बोद्धिक से अधिक कभी नहीं हो सकती। यही कारण है कि कृष्णमूर्ति असंभव की मांग करते हैं। वे कहते है, "मुझे बौद्धिक रूप से मत समझो" लेकिन किसी दूसरे से बौद्धिक समझ के अतिरिक्त और कुछ नहीं आ सकता। यही कारण है कि कृष्णमूर्ति का प्रयास बेतुका हो चुका है। वे जो कहते है, वह प्रमाणिक है, लेकिन जब वे श्रोताओं से बौद्धिक समझ से अधिक की मांग करते है, तो यह असंभव है। किसी और से, इससे अधिक कुछ नहीं आ सकता; उससे अधिक कुछ भी सौंपा नहीं जा सकता। किंतु बौद्धिक समझ पर्याप्त हो सकती है। यदि तुम यह समझ सको, कि मैं बौद्धिक रूप से क्या कह रहा हूं, तुम उसे भी समझ सकते हो, जो नहीं कहा गया। तुम अंतरालों को भी समझ सकते हो, तुम वह भी समझ सकते हो जो मैं नहीं कह रहा, जिसे मैं नहीं कह सकता। पहली समझ तो बौद्धिक होगी ही, क्योंकि बुद्धि द्वारा है। यह कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकती। आध्यात्मिकता तो अंतस-अनुभूति है।
मैं तुमसे सिर्फ बौद्धिकरूप से संवाद कर सकता हूं। यदि तुम इसे यर्थात समझ सके, तब जो नहीं कहा गया है वह अनुभव किया जा सकता है। मैं बिना शब्दो के संवाद नहीं कर सकता, लेकिन जब मैं शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं मैं मौन का प्रयोग भी कर रहा हूं। तुम्हें दोनों के प्रति जागरुक होना पड़ेगा। यदि सिर्फ शब्द समझे जा रहे हैं, तब यह संवाद है, किंतु यदि तुम अंतरालों के प्रति भी जागरुक हो सको; तब यह मिलन है।
कहीं से तो शुरू करना पड़ेगा। प्रत्येक आरंभ जब होगा तब एक झूठ की तरह
ही होगा किंतु आरंभ तो करना ही पड़ेगा। इसी झूठ के माध्यम से टटोलते हुए द्वार पा लिया जाता है। यदि कोई सोचता है कि वह सिर्फ तब शुरू करेगा, जब सही शुरुआत हो, तो वह कभी आरंभ नहीं करेगा। झूठा कदम भी सही दिशा में उठाया गया कदम है, क्योंकि यह एक कदम है; एक आरंभ है। तुम अंधःकार में टटोलने से शुरू करते हो और टटोलते-टटोलते द्वार मिल जाता है।
इसीलिए मैंने कहा कि भाषा की प्रक्रिया के प्रति, शब्दों की प्रक्रिया के प्रति होश पूर्ण रहो और अंतरालों के प्रति, मध्यांतरों के प्रति बोध को खोजो। कुछ पल ऐसे होंगे, जब तुम्हारी ओर से कोई सचेतन प्रयास नहीं होगा और तुम अंतरालों के प्रति जागरुक होगे। यही दिव्यता से सामना है, अस्तित्त्व के मूल स्त्रोत से सामना है।
जब भी कभी सामना हो, इससे बचना मत। इसके साथ रहो। शुरु-शुरु में यह भय पैदा करेगा और ऐसे होने के लिए यह बाध्य है। जब भी अज्ञात से सामना होता है, भय उत्पन्न हेता है क्योंकि हमारे लिए कुछ भी अज्ञात मृत्यु का तरह है। इसलिये जब भी अंतराल होगा, तुम्हें लगेगा मृत्यु आ रही है। तब मर जाओ, मात्र इस में रहो और अंतराल में पूर्णतः मर जाओ और तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। मौन में अपनी मौत मरने से, जीवन पुनः सृजित होता है। तब प्रथम बार तुम जीवित होते हो, यथार्थतः जीवित।
इसलिये मेरे लिए ध्यान कोई विधि नहीं बल्कि एक प्रक्रिया है; ध्यान कोई विधि नहीं बल्कि एक समझ है। यह सिखाया नहीं जा सकता, इसका मात्र संकेत दिया जा सकता है। तुम्हें इसके बारे में सूचित नहीं किया जा सकता क्योंकि कोई सूचना, वास्तविक रूप से सूचना नहीं है। क्योंकि यह बाहर से है, और ध्यान तुम्हारी अपनी भीतरी गहराइयों से आता है।

इसलिये खोजो, खोजी हो जाओ, और शिष्य मत बनो। तब तुम किसी एक गुरु के शिष्य नहीं होगे बल्कि समस्त जीवन के शिष्य होगे। तब तुम मात्र शब्दों को नहीं सीख रहे होगे। आध्यात्मिक सीख शब्दों से नहीं आ सकती, बल्कि अंतरालों से, उस मौन से जो तुम्हें सदा घेरे हुए है, आती है। वे भीड़ में, हाट में, बाजार में भी हैं। मौन को खोजो, अंदर और बाहर अंतरालों को खोजो और एक दिन तुम पाओगे कि तुम ध्यान में हो।
ध्यान तुम तक आता है। यह सदा आता है, तुम इसे ला नहीं सकते। किंतु तुम्हें इसकी खोज में होना पड़ेगा, क्योंकि जब तुम खोज में होते हो सिर्फ तभी तुम इसके प्रति खुल जाआगे, उपलब्ध होओगे, अब तुम इसके मेजबान हो। ध्यान अतिथि है। तुम इसे निमंत्रित कर सकते हो और इसकी प्रतीक्षा कर सकते हो। यह बुद्ध के पास आता है, जीसस के पास आता है, यह हर उस व्यक्ति के पास आता है, जो तैयार है, जो खुला है और खोज रहा है।
किंतु इसे कहीं और से मत सीखो; अन्यथा तुम धोखा खा जाओगे। मन सदा किसी सुगमतर को खोजता है। यह शोषण का कारण बन जाता है। तब गुरु हैं और गुरु परंपरायें हैं, और आध्यात्मिक जीवन विषाक्त हो जाता है।
सर्वाधिक खतरनाक व्यक्ति वह है जो किसी की आध्यात्मिक मांग का शोषण करता है। यदि कोई तुम्हारी संपदा पर डाका डाले, तो यह इतना खतरनाक नहीं है, यदि कोई तुम्हें असफल करता है, तो यह इतनी गंभीर बात नहीं है, किंतु यदि कोई तुम्हें मूर्ख बनाकर और तुम्हें तुम्हारी ध्यान की, दिव्यता की, समाधि की ओर जो प्यास है उसको मिटाता है या स्थगित भी करता है, तो यह पाप बहुत बड़ा और अक्षम्य है।
किंतु ऐसा किया जा रहा है। इसलिये इसके प्रति सावधान रहो और किसी से
मत पूछो, ध्यान क्या है? मैं ध्यान कैसे करूं? इसके स्थान पर पूछो, बाधायें क्या हैं? रुकावटें क्या हैं? पूछो, हम सदा ध्यान में क्यों नहीं होतेः विकास कहां रुक गया हैः हम कहां पंगु हो गये हैं? और गुरु मत खोजो क्योंकि गुरु पंगु बना रहे हैं। कोई भी जो तुम्हें पूर्व निर्मित सूत्र देता है, मित्र नहीं अपितु शत्रु है।
अंधःकार में टटोलो क्योंकि और कुछ भी नहीं किया जा सकता। यह टटोलना
ही समझ बनेगा जो तुम्हें अंधकार से मुक्त करेगा। जीसस ने कहा है, "सत्य स्वतंत्रता है।" इस स्वतंत्रता को समझो। सत्य सदा समझ के माध्यम से आता है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि तुम इससे मिलो और साक्षात्कार करो, यह कुछ ऐसा है जिसमें तुम विकसित होते हो। इसलिये समझ की खोज में रहो, क्योंकि जितना अधिक समझपूर्ण तुम होगे, उतना ही तुम सत्य के निकटतर होगे। और किसी अज्ञात, अनपेक्षित, अ-पूर्व कल्पनीय पल में, जब समझ अपनी चरमावस्था पर आती है, तुम खाई मे होते हो। अब तुम नहीं रहते और ध्यान घटित हो जाता है।
जब तुम नहीं होते, तब तुम ध्यान में हो। ध्यान तुम्हारा न होना है, यह सदा तुमसे पार है। जब तुम खाई में होते हो, ध्यान वहां होता है। तब अहंकार नहीं होता; तब तुम नहीं होते। तब अस्तित्त्व होता है। यही है, जो धर्मों का परमात्मा से, परम अस्तित्त्व से अर्थ है। यह सार है, सारे धर्मों का, सारी खोजों का किंतु यह तुम्हें कहीं भी पूव-निर्मित नहीं मिलेगा। इसलिये उनसे सावधान रहो, जो इसके बारे में दावा करते हैं।
टटोलते रहो और असफलता से मत डरो। असफलता को स्वीकार करो, किंतु वे ही असफलतायें फिर-फिर मत दोहराओ। एक बार पर्याप्त है, यही काफी है। जो व्यक्ति सत्य की खोज में गलतियां करता चला जाएगा, उसे सदा क्षमा मिलती है।
यह अस्तित्त्व का चरम गहराइयों से किया गया वादा है।

प्रवचन-8

काम, प्रेम और प्रार्थनाः दिव्यता की ओर तीन कदम

कृपया हमारे लिए काम ऊर्जा के आध्यात्मिक महत्त्व की व्याख्या करें।
हम काम का ऊर्ध्वगमन और आध्यात्मिकरण कैसे कर सकते हैं? क्या काम का, संभोग का, एक ध्यान की भांति, चेतना के उच्चतर आयामों में जाने हेतु छलांग लगाने के तख्ते की भांति उपयोग किया जा सकना संभव है?

काम ऊर्जा जैसी कोई चीज नहीं है। ऊर्जा एक है और एक समान है। काम इसका
एक निकास, इसके लिए एक दिशा, इस ऊर्जा के उपयोगो में से एक है। जीवन ऊर्जा एक है; किंतु यह बहुत सी दिशाओं में प्रकट हो सकती है। काम उनमें से एक है। जब जीवन ऊर्जा जैविक हो जाती है, तो यह काम ऊर्जा होती है।
काम जीवन ऊर्जा का मात्र एक उपयोग है। इसलिये ऊर्ध्वगमन का कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि जीवन ऊर्जा किसी अन्य दिशा में प्रवाहित होती है, वहां काम नहीं होता। किंतु यह ऊर्ध्वगमन नहीं है; यह रूपांतरण है।
काम जीवन ऊर्जा का प्राकृतिक आधार है, क्योंकि जीवन का अस्तित्त्व इसके बिना नहीं हो सकता, और यह निम्नतम है, क्योंकि यह आधार है, शिखर नहीं। जब काम सब कुछ हो जाता है, सारा जीवन मात्र एक व्यर्थता बन जाता है। यह आधार बनाने और केवल आधार ही बनाते रहने जैसा है, जैसे वह मकान तो बना ही नहीं जिसके लिए आधार रखा गया है।
काम जीवन ऊर्जा के उच्चतर रूपांतरण के लिए एक अवसर मात्र है। जब तक यह सामान्य रुप से चलता है, ठीक है किंतु जब काम सब कुछ हो जाता है, जब यह जीवन ऊर्जा का एकमात्र निकास बन जाता है, तब यह विध्वंसात्मक हो जाता है। यह मात्र साधन हो सकता है, साध्य नहीं। और साधनों का महत्त्व तभी तक है, जब साध्य प्राप्त कर लिए जायें। जब कोई व्यक्ति साधनों का दुरुपयोग करता है, सारा प्रयोजन नष्ट हो जाता है। यदि काम जीवन का केंद्र बन जाये, जैसा कि यह बन गया है, तब साधन, साध्यों में बदल जाते हैं। काम, जीवन के अस्तित्त्व के, सातत्य के लिए जैविक आधार निर्मित करता है। यह एक साधन है, इसे साध्य नहीं बन जाना चाहिए।
जिस पल काम साध्य बन जाता है, आध्यात्मिक आयाम खो जाता है। किंतु यदि काम ध्यानपूर्ण हो जाये, तो यह आध्यात्मिक आयाम की ओर उन्मुख हो जाता है।
यह सीढ़ी का पत्थर, छलांग लगाने का तख्ता बन जाता है।
ऊर्ध्वगमन की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि ऊर्जा जैसी वह है, न तो कामुक है और न आध्यात्मिक। ऊर्जा तो सदा तटस्थ है। अपने में यह अनाम है। जिस द्वार के माध्यम से यह प्रवाहित होती है, उसीका नाम इसे मिल जाता है।
यह नाम स्वयं ऊर्जा का नाम नहीं है, यह उस रूप का नाम है, जो ऊर्जा ग्रहण करती है। जब तुम कहते हो, काम ऊर्जा इसका अर्थ है, वह ऊर्जा जो काम के द्वार से प्राकृतिक निकास से प्रवाहित होती है। यह ऊर्जा आध्यात्मिक ऊर्जा है जब वह भगवत्ता में प्रवाहित होती है।
ऊर्जा अपने में तटस्थ है। जब इसकी प्राकृतिक अभिव्यक्ति होती है, यह काम है। जब इसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति होती है, यह प्रेम बन सकती है, घृणा बन सकती है, क्रोध बन सकती है। जब यह बौद्धिक रूप से अभिव्यक्त होती है, यह वैज्ञानिक बन सकती है, यह साहित्यिक बन सकती है। जब यह शरीर के माध्यम से गति करती है, यह भौतिक हो जाती है। जब यह मन के माध्यम से गुजरती है, यह मानसिक हो जाती है। ये अंतर ऊर्जा के अंतर नहीं हैं, वरन उसके उपयोग रूपो के हैं।
इसलिये "काम ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन" कहना सही नहीं है। यदि काम का निकास प्रयोग में न आये तो ऊर्जा फिर शुद्ध ही बनी रहती है। ऊर्जा तो सदा शुद्ध है। जब यह दिव्य द्वार के माध्यम से प्रकट होती है, यह आध्यात्मिक बन जाती है। किसी भी रूप में प्रवाहीत होना मात्र इसका एक प्रकटीकरण है।
शब्द ऊर्ध्वगमन के साथ बहुत गलत धारणाएं जुड़ी हैं। ऊर्ध्वगमन के सारे सिद्धांत दमन के सिद्धांत हैं। जब कभी तुम कहते हो, काम का ऊर्ध्वगमन, तुम

इसके प्रति शत्रुतापूर्ण हो चुके होते हो। इस शब्द में ही तुम्हारी निंदा का भाव छिपा है।
तुम पूछते हो, काम के बारे में कोई क्या कर सकता है। काम के प्रति प्रत्यक्ष रुप से कुछ भी किया जाना उसका दमन करना है। केवल अप्रत्यक्ष विधियां हैं जिनमें तुम काम ऊर्जा से कोई मतलब नहीं रखते, बल्कि दिव्यता का द्वार खोलने का उपाय खोजते हो। जब दिव्यता की और द्वार खुला होता है, तुम्हारे भीतर जो भी ऊर्जायें हैं, उस द्वार की ओर प्रवाहित होना शुरू कर देती है, और तब काम को उर्जा न मिलने से वह सोख लिया जाता है। जब कोई उच्चतर आनंद संभव हो तो आनंद का निम्नतर रूप असंगत हो जाता है। तुम्हें न तो उनको दबाना है, न उनके खिलाफ लड़ना है। वे बस विदा हो जायेंगी। काम का ऊर्ध्वगमन नहीं होता, उसका अतिक्रमण हो जाता है।
काम के साथ निषेधात्मक रूप से किया गया कोई भी कृत्य ऊर्जा का रूपांतरण नहीं करेगा। इसके बजाय यह तुम्हारे भीतर एक संघर्ष पैदा करेगा, जो विध्वंसक होगा। जब तुम किसी ऊर्जा से लड़ते हो, तुम खुद से लड़ रहे होते हो। कोई भी यह लड़ाई नहीं जीत सकता।
एक क्षण को तुम्हें लगेगा कि तुम जीत गये, और अगले ही पल तुम अनुभव करोगे कि काम जीत गया। यह सदा चलता रहेगा। किसी समय बिल्कुल भी काम अनुभव नहीं होगा और तुम महसूस करोगे कि तुमने इसे नियंत्रित कर लिया है, और अगले ही पल तुम काम का खिंचाव पुनः अनुभव करोगे और वह सब कुछ जो तुम्हें अर्जित किया हुआ लग रहा था खो जायेगा। कोई भी अपनी खुद की ऊर्जा के खिलाफ लड़ कर जीत नहीं सकता।
यदि तुम्हारी ऊर्जाओं की किसी अन्य स्थान पर आवश्यकता है, कहीं अधिक आनंद दायी स्थान पर, तो काम मिट जाएगा। यह ऐसा नहीं है कि ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन हो गया है, यह ऐसा नहीं है कि तुमने इसके साथ कुछ किया है बल्कि तुम्हारे लिए एक और अधिक आनंद की ओर एक नया रास्ता खुल गया है और फिर सहज स्फूर्त रूप से, ऊर्जा नये द्वार की ओर प्रवाहित होना आरंभ कर देती है। यदि तुम हाथ में पत्थर पकड़े हो और अचानक हीरे तुम्हारे सामने आ जायें,
तो तुम्हें यह ख्याल भी नहीं आयेगा कि तुमने पत्थरों को कब गिरा दिया। वे अपने से गिर जायेंगे जैसे कि वे तुम्हारे पास कभी थे ही नहीं। तुम्हें यह याद भी नहीं आयेगा कि एैसा कोइ त्याग हमसे किया गया है या कि तुमने उन्हें दूर फेंक दिया था। तुम इसे महसूस भी नहीं करोगे। यह ऐसा नहीं है कि किसी चीज का ऊर्ध्वगमन हो गया। प्रसन्नता का एक महत्तर स्रोत खुल गया है और कमतर स्रोत अपने आप ही छोड़ दिये गये हैं।
यह इतना स्वचालित, इतना सहजस्फूर्त है कि काम के विपरीत किसी सकारात्मक कृत्य की आवश्यकता नहीं होती। जब कभी तुम किसी ऊर्जा के विरुद्ध कुछ कर रहे हो यह नकारात्मक होता है। वास्तविक विधायक कार्य तो काम से संबंधित भी नहीं है, बल्कि यह ध्यानसे संबंधित है। तुम्हें तो यह पता भी न चलेगा कि काम कब विदा हो गया। यह तो बस नयी चीज के द्वारा अवशोषित हो जाता है।
ऊर्ध्वगमन एक कुरुप शब्द है। यह अपने में शत्रुता का, संघर्ष का स्वर लिए हुए है। काम को बस उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि उसका महत्त्व है। यह मात्र जीवन के अस्तित्त्व में रहने का जीव-शास्त्रीय आधार है। उसे कोई आध्यात्मिक या गैर आध्यात्मिक अर्थ मत दो। बस इसके तथ्य को समझो। जब तुम इसे जीव-शास्त्रीय तथ्य के रूप में लेते हो, तब तुम इसको जरा भी चिंता नहीं करते। तुम इसकी फिक्र सिर्फ तभी करते हो, जब इसको कोई आध्यात्मिक अर्थ दिया गया हो। इसलिये कोई अर्थ मत दो; इसके चारों ओर किसी दर्शन शास्त्र का निर्माण मत करो। मात्र तथ्यों को देखो। इसके पक्ष या विपक्ष में कुछ मत करो। इसे जैसा यह है वैसा ही रहने दो; इसे सामान्य चीज की भांति स्वीकार करो। इसके प्रति कोई असामान्य रुचि मत लो।
जैसे कि तुम्हारे पास आंखे और हाथ हैं, ऐसे ही काम भी है। तुम अपनी आंखों के या अपने हाथों के विरोध में तो नहीं होते इसलिये काम के विरुद्ध भी मत होओ। तब यह प्रश्न कि काम के बारे में क्या करना है असंगत हो जाता है। काम के पक्ष या विपक्ष में द्वैतवाद निर्मित करना अर्थहीन है। यह एक प्रमाणिक तथ्य है।

तुम काम के माध्यम से अस्तित्त्व में आये हो, और तुम्हारे पास पुनः काम के माध्यम से जन्म देने का पूर्व निर्मित कार्यम भी है। तुम एक बड़े सातत्य के हिस्से हो। तुम्हारे शरीर को मरना है, इसलिये इसके पास एक दूसरे शरीर को निर्मित करने के लिए पूर्व निर्घारित आयोजन होता है, जिससे यह प्रतिस्थापित हो जाये।
मृत्यु निश्चित है। यही कारण है कि काम इतना प्रभावशाली है। तुम यहां सदा नहीं होगे, इसलिये तुम्हें एक नये शरीर, एक प्रतिलिपि द्वारा प्रतिस्थापित होना पड़ेगा। काम इतना महत्त्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि सारी प्रकृति का जोर इसी पर है, अन्यथा मनुष्य का अस्तित्त्व सदा नहीं रह पायेगा। यदि यह स्वैच्छिक होता, तो धरती पर कोई भी नहीं बचता। काम इतना कामुक है, इस कदर विवश करनेवाला है, इसकी मांग इतनी सघन है, क्योंकि सारी प्रकृति इसके लिए है। इसके बिना जीवन नहीं चल सकता।
धार्मिक खोजियों के लिए काम के इतना महत्त्वपूर्ण हो जाने का कारण यह
है कि यह अत्यंत अनैच्छिक, विवशताजनक और प्राकृतिक है। यह किसी व्यक्ति विशेष की जीवन ऊर्जा दिव्यता तक पहुंच गई है अथवा नहीं, यह बात जानने की कसौटी बन गया है। हम प्रत्यक्षतः यह नहीं जान सकते कि कोई दिव्यता तक पहुंच चुका है या नहीं, हम सीधे यह नहीं जान सकते कि किसी के पास हीरे हैं अथवा नहीं, किंतु हम प्रत्यक्षतः यह जान सकते हैं कि किसी ने पत्थर फेंक दिये हैं, क्योंकि पत्थरों से हमारा परिचय है। हम प्रत्यक्षतः यह जान सकते हैं कि किसी ने काम का अतिक्रमण कर लिया है, क्योंकि हमारी काम से पहचान है।
काम इतना अनिवार्य, इतना अनैच्छिक है, इसमें इतना विराट बल है कि जब
तक कोई दिव्यता को न पाले, इसका अतिक्रमण संभव नहीं। इसलिये ब्रह्मचर्य, यह जानने की, कि कोई व्यक्ति दिव्यता तक पहुंच गया है अथवा नहीं कसौटी बन गया। तब ऐसे व्यक्ति के लिए काम, जैसा कि यह सामान्य जनों में होता है, का अस्तित्त्व ही न रहेगा।
इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई काम को छोड़कर दिव्यता प्राप्त कर लेगा।
यह विपरीत बात भ्रांति है। वह व्यक्ति जिसे हीरे मिल गये हैं, उन पत्थरों को फेंक देता है, जिन्हें वह लिए हुए था। किंतु इसका विपरीत सच नहीं है। तुम पत्थरों को दूर फेंक सकते हो लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम्हें इसके पार का कुछ मिल गया है।
तब तुम बीच में होगे। तुम्हारे पास एक दमित मन होगा, अतिक्रमण किया हुआ मन नहीं। काम तुम्हारे भीतर बुदबुदाता रहेगा और एक भीतरी नर्क निर्मित कर देगा। यह काम के पार जाना नहीं है। जब काम दमित हो जाता है यह कुरुप, रुग्ण और विक्षिप्त हो जाता है। यह विकृत हो जाता है।
काम के प्रति तथाकथित धार्मिक भाव ने, एक विकृत कामुकता, एक ऐसी संस्कृति जो पूर्णतः काम-विक्षिप्त है उसे निर्मित किया है। मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। काम एक तथ्य है; इसमें कुछ भी गलत नहीं है। इसलिये इससे संघर्ष मत करो, अन्यथा यह विकृत हो जाएगा। और यह विकृत काम कोई आगे बढ़ाया गया कदम नहीं है। यह सामान्यता से नीचे गिरना है।
यह पागलपन की ओर बढाया गया एक कदम है। जब दमन इतना सघन हो जाता है कि तुम इसके आगे जारी न रख सको, तब यह विस्फोटित होता है- और इस विस्फोट में तुम खो जाओगे।
तुममे सभी मानवीय गुण हैं, तुममें सभी संभावनायें हैं। काम का सामान्य तथ्य स्वस्थ है; किंतु जब यह असामान्य रूप से दमित हो जाता है, तो यह अस्वस्थ बन जाता है। तुम सामान्य से तो बहुत आसानी से दिव्यता की ओर जा सकते हो; लेकिन विक्षिप्त मन के साथ दिव्यता की ओर जाना कठिन और एक प्रकार से असंभव है। पहले तुम्हें स्वस्थ और सामान्य होना पड़ेगा। तब अंत में काम के अतिक्रमण की सांभवना पैदा हो सकती है।
तब क्या करना है? काम को जानो! इस में सचेतन रूप से प्रवेश करो। एक नये द्वार को खोलने का यही रहस्य है। यदि तुम काम में अचेतन रूप से जाते हो, तो तुम जैविक विकास के हाथों में मात्र एक उपकरण हो; किंतु यदि तुम काम कृत्य में सचेतन रह सको, तो वह चेतनता एक गहन ध्यान बन जाती है।

काम कृत्य इतना अनैच्छिक और इतना अनिवार्य है कि इसमें सचेतन रह पाना कठिन है, किंतु असंभव नहीं है। और यदि तुम काम कृत्य में सचेतन रह सको, तब जीवन में कोई और कृत्य ऐसा नहीं है जिसमें तुम सचेतन न रह सको, क्योंकि कोई कृत्य काम की भांति गहरा नहीं है।
यदि तुम काम कृत्य में होशपूर्ण हो सको, तो मृत्यु में भी तुम होशपूर्ण रहोगे। मृत्यु की गहराई और काम कृत्य की गहराई समान है, समानांतर है। तुम उसी बिंदु पर आते हो। इसलिये यदि तुम काम कृत्य में होशपूर्ण रह सको तो तुमने एक महान वस्तु को पा लिया है। यह अमूल्य है।
इसलिये काम को ध्यान के कृत्य की भांति उपयोग करो। इससे लड़ो मत, इसके विरुद्ध मत जाओ। तुम प्रकृति से लड़ नहीं सकते, तुम इसी का भाग और अंश हो। तुम्हें काम के प्रति मित्रतापूर्ण, सहानुभूति पूर्ण रुख अपनाना चाहिए। यह तुम्हारे और प्रकृति के मध्य गहनतम संवाद है।
वस्तुतः काम कृत्य वास्तविक रूप से पुरुष और स्त्री के मध्य संवाद नहीं है। यह पुरुष का, स्त्री के माध्यम से, प्रकृति से संवाद है; और स्त्री का पुरुष के माध्यम से प्रकृति से संवाद है। यह प्रकृति के साथ संवाद है। एक क्षण के लिए तुम ब्रह्मांडीय प्रवाह में होते हो, दिव्य लयबद्धता में होते हो, तुम समग्र के साथ एक हो जाते हो। इस प्रकार से पुरुष स्त्री के माध्यम से और स्त्री पुरुष के माध्यम से परितृप्त होते हैं। पुरुष समग्र नहीं है और स्त्री समग्र नहीं है। वे एक समग्रता के दो हिस्से हैं। इसलिये जब कभी काम कृत्य में वे एक हो जाते हैं, वे वस्तुओं के अंतरतम स्वभाव के साथ, ताओ के साथ लयबद्धता में हो सकते हैं। यह लयबद्धता एक नये प्राणी के लिए जीवशास्त्रीय जन्म हो सकती है। यदि तुम बेहोश हो तो यही एकमात्र संभावना है। किंतु यदि तुम होश से भरे हो, तो यह कृत्य तुम्हारे लिए जन्म, आध्यात्मिक जन्म बन सकता है। तुम्हारा इसके माध्यम से पुर्नजन्म होगा।
जिस क्षण तुम इसमें सचेतन रूप से भाग लेते हो, तुम इसके साक्षी हो जाते हो। और तुम एक बार काम कृत्य में साक्षी हो सके, तो तुम काम का अतिक्रमण कर लोगे; क्योंकि साक्षित्व में तुम मुक्त हो जाते हो। अब वहां बाध्यता नहीं होगी। तुम एक अचेतन भागीदार नहीं होगे। एक बार तुम कृत्य में साक्षी हो गए, तुमने इसका अतिक्रमण कर लिया। अब तुम जानते हो कि तुम मात्र शरीर नहीं हो। तुम्हारे भीतर के साक्षित्व की शक्ति ने उसके पार का कुछ जान लिया है।
यह पार सिर्फ तभी जाना जा सकता है, जब तुम गहनता से अपने भीतर हो। यह कोई सतही मामला नहीं है। जब तुम बाजार में मोलभाव कर रहे होते हो, तुम्हारी चेतना बहुत गहरी नहीं जा सकती, क्योंकि कृत्य बहुत सतही है। जहां तक मनुष्य का संबंध है, काम कृत्य सामान्यतः एक मात्र कृत्य है, जिसके माध्यम से कोई अपनी भीतरी गहराईयों का साक्षी बन सकता है।
जितना अधिक तुम काम के माध्यम से ध्यान में जाओगे, काम का प्रभाव उतना
ही कम होगा। इसमें से ध्यान विकसित होगा, और इस विकासमान ध्यान से एक नया द्वार खुलेगा और काम विदा हो जाएगा। वह ऊर्ध्वगमन नहीं होगा। यह ऐसे ही होगा जैसे कि सूखी पत्तियां वृक्ष से गिर पड़ें। वृक्ष को तो कभी पता भी नहीं चलता कि पत्तियां गिर रहीं हैं। ठीक उसी प्रकार तुम्हें कभी पता भी न चलेगा कि काम की यांत्रिक चाहत विदा हो रही है।
काम से ध्यान का सृजन करो, काम को ध्यान का विषय बनाओ। इसे मंदिर की भांति समझो, और तुम इसका अतिक्रमण कर लोगे और रूपांतरित हो जाओगे। तब काम वहां नहीं रहेगा, किंतु वहां कोई दमन, कोई ऊर्ध्वगमन भी नहीं होगा। काम बस असंगत, अर्थहीन हो जाएगा। तुम इसके पार विकसित हो गए हो। इसका अब तुम्हारे लिए कोई अर्थ नहीं रह जाता। यह एक विकसित हो रहे बालक की भांति है। अब खिलौने अर्थहीन है। उसने किसी चीज का ऊर्ध्वगमन नहीं किया है; उसने किसी चीज का दमन नहीं किया है। वह बस बड़ा हो गया है। वह वयस्क हो गया है। खिलौने अब अर्थहीन हैं। वे बचकाने हैं, और बच्चा अब बच्चा नहीं रहा है।
ठीक इसी प्रकार जितना अधिक तुम ध्यान में उतरोगे, तुम्हारे लिए काम
का आकर्षण उतना कम होने लगेगा। और धीमे-धीमे सहज स्फूर्ति से, बिना काम के ऊर्ध्वगमन का सचेतन प्रयास किये, ऊर्जा प्रवाहित होने के लिए एक नया

स्रोत पा लेगी। वही ऊर्जा जो काम के माध्यम से प्रवाहित हुई थी, अब ध्यान के माध्यम से प्रवाहित होने लगेगी। और जब यह ध्यान के माध्यम से प्रवाहित होती है, भगवत्ता का द्वार खोला जा रहा होता है।
एक बात और, तुमने दो शब्दों का प्रयोग किया है, "काम" और "प्रेम"। सामान्यतः हम इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस तरह करते हैं जैसे कि इनमें कोई भीतरी साहचर्य हे। ऐसा नहीं है। प्रेम सिर्फ तभी आता है, जब काम जा चुका होता है। इससे पूर्व प्रेम, मात्र एक प्रलोभन और कुछ नहीं। यह मात्र काम कृत्य के लिए आधार तैयार करना है। यह और कुछ नहीं, बल्कि काम की भूमिका, प्रस्तावना है। इसलिये जब दो व्यक्तियों के बीच में अधिक काम होगा, तो वहां कम प्रेम होगा, क्योंकि तब प्रस्तावना की जरूरत है।
यदि दो व्यक्ति प्रेम में हैं, और उनके मध्य जरा भी काम नहीं है, तो वहां अधिक उमंगपूर्ण प्रेम होगा। किंतु जिस पल काम भीतर आता है, प्रेम बाहर चला जाता है। काम इस कदर आकस्मिक होता है। अपने में यह इतना हिंसक है। इसे प्रस्तावना की जरूरत होती है। प्रेम जैसा कि हम इसे जानते हैं, काम के नग्न तथ्य को आवरण पहनाना मात्र है।
जिसे तुम प्रेम कहते हो, उसके भीतर यदि तुम गहराई से झांको, तुम काम को वहां खड़ा पाओगे, बाहर कूदने को तत्पर। यह सदा वहां मौजूद होता है। प्रेम बातचीत है। काम तैयारी कर रहा है। यह तथाकथित प्रेम काम से संबद्ध है, किंतु मात्र भूमिका की भांति। यदि काम आता है, तो प्रेम खो जाएगा। यही कारण है कि विवाह उमंग पूर्ण प्रेम को मार डालता है और पूरी तरह से मार डालता है। दो व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से परिचित हो गए हैं और प्रेम अनावश्यक हो जाता है।
वास्तविक प्रेम प्रस्तावना नहीं है। यह एक सुगंध है। यह काम के पूर्व नहीं वरन पश्चात है। यह प्राक्कथन नहीं वरन उपसंहार है। यदि तुम काम से होकर गुजर चुके हो, और दूसरे के प्रति करुणा अनुभव करते हो, तो तुम करुणावान होना अनुभव करोगे। यदि काम कृत्य में तुम ध्यान करो, तब तुम्हारा काम का साथी मात्र तुम्हारे शारीरिक आनंद हेतु उपकरण नहीं बनेगा। तुम्हें उस पुरुष या स्त्री के प्रति धन्यता का अनुभव होगा, क्योंकि तुम दोनो गहन ध्यान तक पहुंचे।
जब तुम काम में ध्यान करते हो, तुम दोनों के मध्य एक नयी मैत्री का उदय होगा, एक दूसरे के माध्यम से, तुमने सत्य की अज्ञात गहराइयों की एक झलक पा ली तुम एक दूसरे के प्रति धन्यता, करुणा अनुभव करोगे, कष्ट के प्रति करुणा, खोज के प्रति करुणा, सहगामी के प्रति करुणा, सहयात्री के प्रति करुणा, हमराही के प्रति करुणा।
यदि काम ध्यान पूर्ण हो जाए, सिर्फ तभी वहां एक सुगंध होती है,
जो पीछे रह जाती है; एक अनुभूति, जो काम की प्रतिक्रिया नहीं होती, वरन
एक परिपक्वता, एक विकास, एक ध्यानपूर्ण प्रत्यक्षीकरण होती है। इसलिये यदि काम कृत्य ध्यान पूर्ण हो जाता है, तुम प्रेम को अनुभव करोगे। प्रेम, धन्यता, मैत्री और करुणा का संगम है। यदि ये तीनो वहां हैं तो तुम प्रेम में हो।
यदि यह प्रेम विकसित हो, यह काम का अतिक्रमण कर लेगा। प्रेम काम के माध्यम से विकसित होता है, पर इसके परे जाता है। बिल्कुल एक फूल भांति, यह जड़ो के माध्यम से आता है, किंतु पार चला जाता है और यह वापस नहीं लौटेगा, वहां कोई वापस लौटना नहीं है। इसलिये यदि प्रेम विकसित होता है, वहां काम नहीं होगा। वस्तुतः यह, इस बात की जानने का उपाय है, कि प्रेम विकसित हो चुका है। काम अंडे के खोल की भांति है, एक खोल जिसके माध्यम से प्रेम को उभरना है। जिस पल यह उभरता है, खोल वहां और अधिक देर नहीं रहता। यह टूट जाएगा, बिखर जाएगा।
काम प्रेम तक सिर्फ तभी पहुंच सकता है, जब ध्यान वहां हो, अन्यथा नहीं। यदि ध्यान वहां नहीं है, तो उसी काम की पुनरावृत्ति होगी और तुम ऊब जाओगे। काम अधिक जड़ हो जाएगा और तुम दूसरे के प्रति धन्यता अनुभव नहीं करोगे। बल्कि तुम धोखा खाया अनुभव करोगे, तुम उसके प्रति शत्रुतापूर्ण अनुभव करोगे। वह तुम पर मालकियत करता है। वह काम के माध्यम से मालकियत करता है, क्योंकि यह तुम्हारे लिए आवश्यकता बन चुका है। तुम गुलाम बन चुके

हो, क्योंकि तुम काम के बिना नहीं रह सकते। लेकिन तुम उसके प्रति कभी मित्रता पूर्ण अनुभव नहीं कर सकते, जिसके तुम गुलाम हो गए हो।
और दोनों यही बात अनुभव करते हैं कि दूसरा मालिक है। मालकियत को इन्कार भी करते रहोगे और उसके खिलाफ संघर्ष भी होगा, किंतु काम की पुनरावृत्ति फिर भी होगी। यह रोजमर्रा का काम बन जाएगा। तुम अपने काम-साथी के साथ संघर्षरत होगे, और तब फिर से चीजो को व्यवस्थित करोगे। तब फिर संघर्ष करोगे, फिर तुम मैत्री पूर्ण अनुभव नहीं कर सकते, वहां कोई करुणा नहीं होती। इसके स्थान पर वहां क्रूरता और हिंसा होगी, तुम धोखा खाया अनुभव करोगे। तुम गुलाम बन गए हो। काम प्रेम में विकसित नहीं हो सकेगा, यह मात्र काम ही रहेगा।
काम से होकर गुजरो! इससे भयभीत मत हो, क्योंकि भय, डरना कहीं नहीं ले जाता। यदि किसी को किसी चीज से डर है, तो बस भय से ही डरता है। काम से मत डरो और इससे लड़ो भी मत, क्योंकि यह भी भय का ही एक रूप है। लड़ना या भागना; संघर्ष या पलायन- ये भय के ही दो पथ है। इसलिये काम से मत भागो, इससे लड़ो मत। इसे स्वीकार करो। इसे मान लो, इसमें गहरे जाओ, इसे पूर्णतः जानो, इसे समझो, इसमें ध्यान करो और तुम इसका अतिक्रमण कर लोगे। जिस पल तुम काम कृत्य में ध्यान कर सके, एक नया आयाम खुल गया। तुम एक नये आयाम में आते हो, एक नितांत अनजान, अनसुने आयाम में, और इसके माध्यम से एक महत्तर आनंद प्रवाहित होने लगता है।
तुम किसी इतनी आनंददायक चीज को पा लोगे कि काम असंगत हो जाएगा और यह स्वतः ही शांत हो जाएगा। अब तुम्हारी ऊर्जा इस दिशा में और अधिक नहीं बहेगी। ऊर्जा सदा आनंद की ओर प्रवाहित होती है। क्योंकि काम में आनंद का आभास होता है, ऊर्जा इस ओर बहती है; किंतु यदि तुम अधिक आनंद खोज लो, ऐसा आनंद जो काम का अतिक्रमण करता है, जो काम से परे जाता है, ऐसा आनंद जो अधिक तृप्तिदायक, गहनतर और महत्तर है- तब अपने से ही ऊर्जा काम की ओर प्रवाहित होना बंद कर देगी।
जब काम ध्यान हो जाता है तो वह प्रेम में खिल उठता है; और यह खिलना ही दिव्यता की ओर गति करना है। यही कारण है कि प्रेम दिव्य है। काम शारीरिक है, प्रेम आध्यात्मिक है। और यदि प्रेम का पुष्प वहां हो तो प्रार्थना आएगी, यह अनुगमन करेगी। अब तुम दिव्यता से दूर नहीं हो, तुम घर के निकट हो। अब प्रेम पर ध्यान करना आरंभ करो। यह दूसरा कदम है। जब वहां संवाद का
पल हो, जब वहां प्रेम का क्षण हो, ध्यान आरंभ कर दो। इसमें गहरे उतरो, इसके प्रति होशपूर्ण रहो। अब शरीरों का मिलन नहीं हो रहा है। काम में शरीर मिल रहे थे, प्रेम में आत्मा भी मिल रही हैं। अभी भी यह एक मिलन है, दो व्यक्तियों के बीच मिलन।
अब प्रेम को देखो, जैसे तुमने काम को देखा था। संवाद को, आंतरिक मिलन को, भीतर के संभोग को देखो। तब तुम प्र्रेम का भी अतिक्रमण कर लोगे, और तुम प्रार्थना पर आओगे। यह प्रार्थना द्वार है। अभी-भी यह मिलन है, किंतु दो व्यक्तियों का मिलन नहीं। यह तुम्हारे और समस्त के मध्य संवाद है। अब दूसरा; व्यक्ति की भांति नहीं रहा। यह अव्यक्ति की भांति दूसरा है- समग्र अस्तित्त्व और तुम।
किंतु प्रार्थना अभी भी मिलन है, इसलिये अंतिम रूप में इसका भी अतिक्रमण होना है। प्रार्थना में, पूजा करनेवाला और जिसकी पूजा की जा रहीं है वह भिन्न हैं, भक्त और भगवान अलग हैं। अभी भी यह मिलन है। इसी लिए मीरा या थेरेसा, अपनी प्रार्थना के अनुभव में काम की शब्दावली का उपयोग कर सकीं।
प्रार्थना पूर्ण क्षणों में ध्यान करना चाहिए। अब प्रार्थना के भी साक्षी हो जाओ। अपने और समग्र के मध्य संवाद को देखो। इसके लिए बहुत ही सूक्ष्म होश चाहिए। यदि तुम अपने स्व और समग्र के मिलन के मध्य होश पूर्ण रह सके, तब तुम स्वयं का और समग्र का, दोनों का अतिक्रमण कर लेते हो। तब तुम समग्र होते हो। और इस समग्र में कोई द्वैत नहीं है, वहां मात्र एकता है। यह एकता काम के माध्यम से, प्रेम के माध्यम से, प्रार्थना के माध्यम से, खोजी जाती है। यही एकता है, जिसकी अभिलाषा थी काम में भी, अभिलाषा एकता के लिए ही होती है। आनंद आता है, क्योंकि एकपल के लिए तुम एक हो जाते हो।

काम गहराता है प्रेम में, प्रेम गहराता है प्रार्थना में और प्रार्थना गहराती है संपूर्ण अतिक्रमण में, संपूर्ण एकता में।
यह गहराना सदा ध्यान के माध्यम से घटता है। विधि सदा वही है। स्तर भिन्न हैं, आयाम भिन्न हैं, पद भिन्न हैं, पर विधि वही है। काम में खोदो और प्रेम को पाओगे। प्रेम में गहरे जाओ और तुम प्रार्थना पर आओगे। प्रार्थना में खोदो और तुम विस्फोटित होकर एक हो जाओगे। यही एकता संपूर्ण है, यही एकता आनंद है, यही एकता समाधि है।
इसलिये संघर्ष का भाव न लेना मूलभूत बात है। प्रत्येक तथ्य में दिव्यता उपस्थित है। यह आवृत हो सकती है, यह वस्त्रों से ढकी हुई हो सकती है, किंतु तुम्हें इसे अनावृत करना पड़ेगा, उघाड़ना पड़ेगा। तुम और भी सूक्ष्म आवरण पाओगे। पुनः इसे अनावृत करो। जब तक कि तुम एकता को इसकी पूर्ण नग्नता में न देख लो, तुम्हें संतुष्टि नहीं मिलेगी, तुम तृप्त अनुभव नहीं करोगे।
जिस पल तुम इस अनावृत हुए एक पर, उघाड़े गये एक पर आते हो, तुम इसके साथ
एक हो जाते हो, क्योंकि जब तुम इसे पूरे उघाड़ लेते हो, यह और कोई नहीं वरन तुम ही होते हो। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति दूसरो के माध्यम से स्वयं को खोज रहा है। व्यक्ति को उसका अपना घर, दूसरों के द्वारों पर खटखटाकर पाना होता है।
वस्त्र बाधा है, इसलिये सत्यता को तुम तब तक अनावृत नहीं कर सकते जब
तक कि स्वयं को अनावृत न कर दो। इसीलिए ध्यान दुधारी तलवार है, यह सत्यता को अनावृत करता है और साथ ही यह तुम्हें अनावृत कर देता है। सत्यता नग्न हो जाती है और तुम भी नग्न हो जाते हो। और परम नग्नता के, परम शून्यता के पल में तुम एक हो जाते हो।
इसलिये मैं काम के विरोध में नहीं हूं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं काम के पक्ष में हूं। इसका अर्थ है कि मैं इसमें गहरे जाने और इसके पार को उघाड़ने के पक्ष में हूं। यह पार सदा वहां है, किंतु सामान्य काम केवल "छुओ और भागो" वाला काम है, इसलिये कोई गहरे में नहीं जाता। यदि तुम गहरे जा सको, तुम दिव्यता के प्रति आभारी अनुभव करोगे कि काम के माध्यम से, एक द्वार खुल गया; किंतु यदि काम सिर्फ छूना और भागना हो तो, तुम कभी न जान पाओगे कि तुम किसी श्रेष्ठतर के निकट हो।
हम इतने चालाक हैं कि हमने झूठा प्रेम निर्मित कर लिया है, जो काम के बाद नहीं, वरन इसके पूर्व आता है। यह उपजाई हुई, अस्वाभाविक वस्तु है। यही कारण है कि हम काम की परितृप्ति होने पर प्रेम को खोया हुआ अनुभव करते हैं। प्रेम मात्र भूमिका था, और अब भूमिका की और अधिक जरूरत न रही। किंतु वास्तविक प्रेम सदा काम के पार हैं, यह काम के पीछे छिपा है। इसमें गहरे उतरो, इसमें धार्मिकता से ध्यान करो, और तुम मन की प्रेम-मयी दशा में खिल उठोगे।
मैं काम के विरुद्ध नहीं हूं, और मैं प्रेम के पक्ष में भी नहीं हूं। तुमको इसका भी अतिक्रमण करना पड़ेगा। इस पर ध्यान करो, इसका अतिक्रमण करो। ध्यान से मेरा अर्थ है, तुम्हें इससे पूर्णतः होश से, जागरूकता से गुजरना पड़ेगा। तुम्हें इससे अंधे, अचेतन होकर नहीं गुजरना है। वहां महत आनंद हैं, किंतु तुम अंधे होकर गुजर सकते हो और इससे चूक सकते हो। इस अंधेपन को रूपांतरित करना पड़ेगा, तुम्हें खुली आंखवाला होना पड़ेगा। खुली आंखों से, काम तुम्हें एकता के रास्ते पर ले जा सकता है।
बूंद सागर बन सकती है। यह प्रत्येक बूंद के हृदय की अभिलाषा है। प्रत्येक कृत्य में, प्रत्येक इच्छा में, तुम इसी अभिलाषा को पाओगे। इसे अनावृत करो, इसका अनुगमन करो। यह एक महान साहसिक अभियान है। जैसे कि हम अपनी जिंदगी आज जीते हैं, हम अचेतन हैं। किंतु इतना तो किया ही जा सकता है। यह दुष्कर है, पर यह असंभव नहीं है। यह किसी जीसस, किसी बुद्ध, किसी महावीर के लिए संभव हुआ है, और यह हरेक के लिए संभव है।
जब तुम काम में इतनी त्वरा के साथ, इतनी जागरूकता के साथ, इतनी संवेदनशीलता के साथ जाते हो तो तुम इसका अतिक्रमण कर लोगे। वहां पर किसी तरह का कोई ऊर्ध्वगमन नहीं होगा। जब तुम अतिक्रमण करोगे, वहां कोई काम, ऊर्ध्वगमित काम भी नहीं होगा। वहां पर प्रेम, प्रार्थना और एकता होगी।

ये प्रेम के तीन चरण है, भौतिक प्रेम, मानसिक प्रेम और आत्मिक प्रेम।
और जब इनका अतिक्रमण होता है, वहां दिव्यता है। जब जीसस ने कहा है, "परमात्मा प्रेम है", यह उसकी निकटतम संभव परिभाषा है और उसकी ओर जानेवाले मार्ग पर हम जिस चिज को आखिर में जानते हैं, वह प्रेम है। इसके पार अज्ञात है, ओर अज्ञात को परिभाषित नहीं किया जा सकता। हम दिव्यता की अपनी अंतिम अनुभूति की ओर, प्रेम के माध्यम से संकेत मात्र कर सकते हैं। प्रेम के उस बिंदु के पार कोई अनुभव नहीं है क्योंकि वहां अनुभवकर्त्ता नहीं है। बूंद सागर से एक होकर सागर बन गई है।
एक- एक कदम चलो लेकिन एक मैत्री भाव के साथ, बिना किसी तनाव के, बिना संघर्ष के बस जागरूकता से जाओ। जीवन की अंधेरी रात में केवल जागरूकता ही एक मात्र प्रकाश है। इस प्रकाश के साथ, इसमें जाओ। प्रत्येक कोने को देखो और खोजो। हर जगह दिव्यता है, इसलिये किसी वस्तु के विरुद्ध मत होओ। किंतु किसी वस्तु के साथ रहो भी मत, उसके पार जाओ, क्योंकि श्रेष्ठतर आनंद तुम्हारी प्रतीक्षा में है, यात्रा जारी रहनी चाहिए।
यदि तुम काम के निकट हो, काम का उपयोग करो। यदि तुम प्रेम के निकट हो, प्रेम का उपयोग करो। दमन या ऊर्ध्वगमन की भाषा में मत सोचो; संघर्ष की भाषा में मत सोचो। दिव्यता किसी भी चीज के पीछे छिपी हो सकती है; इसलिये संघर्ष मत करो, किसी चीज से भागो मत। वस्तुतः यह हर चीज के पीछे है। इसलिये जहां कहीं भी तुम हो, निकटतम द्वार को चुन लो और तुम गति करोगे। कहीं भी ठहरो मत और तुम पहुंच जाओगे क्योंकि जीवन हर कहीं है।
जीसस ने कहा है, "प्रत्येक पत्थर के नीचे प्रभु है", किंतु तुम मात्र पत्थरों को देखते हो। तुम्हें मन की इस पाषाण-दशा से गुजरना पड़ेगा। जब तुम काम को शत्रु की भांति देखते हो, यह पत्थर बन जाता है। तब यह अपारदर्शी हो जाता है, तुम इसके पार नहीं देख सकते। इसका उपयोग करो, इस पर ध्यान करो, और पत्थर कांच की भांति हो जायेगा। तुम इसके पार देख लोगे, और तुम कांच को भूल जाओगे। जो कांच के पीछे है वह याद रहेगा।
कोई भी वस्तु जो पारदर्शी हो जाती है, मिट जाती है। इसलिये काम को पत्थर मत बनाओ, इसे पारदर्शी बनाओ। और यह ध्यान के द्वारा पारदर्शी हो जाता है।

प्रवचन-9

विकास के अवरोधः विभाजन और व्यवस्थायें

क्या शरीर और मन, पदार्थ और चेतना, भौतिक और आध्यत्मिक में कोई विभाजन है? कोई आध्यात्मिक चेतना को उपलब्ध करने के लिए शरीर और मन का अतिक्रमण कैसे कर सकता है?

पहली बात तो यह समझ लेनी है कि शरीर और मन के बीच विभाजन आत्यंतिक रूप
से झूठ है। यदि तुम विभाजन से आरंभ करो तो तुम कहीं नहीं पहुंचोगे; झूठा आरंभ कहीं नहीं ले जाता। इससे कुछ नहीं आ सकता क्योंकि प्रत्येक कदम का विकसित होने का अपना गणित है। दूसरा कदम पहले से आयेगा, और तीसरा दूसरे से, और इसी तरह हर अगला कदम पिछले कदम से आएगा। यह एक तार्किक श्रृंखला है इसलिये जिस पल तुम पहला कदम उठाते हो, तुमने एक प्रकार से सब कुछ चुन लिया है।
पहला कदम अंतिम से अधिक महत्त्वपूर्ण है, आरंभ अंत की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि अंत तो मात्र एक परिणाम है, एक विकास है। किंतु हम सदा अंत के बारे में उत्सुक होते हैं, आरंभ के बारे में कभी नहीं। हम सदा साध्य में रुचि रखते है, साधन में कभी नहीं। अंत हमारे लिए इतना महत्त्वपूर्ण हो गया है कि हम बीज का, प्रारंभ का पथ ही खो देते हैं। तब हम सपने देखते रह सकते हैं, पर हम वास्तविक पर कभी नहीं पहुंचेंगे।
किसी खोजी के लिए विभाजित व्यक्ति की यह धारणा, द्वैत अस्तित्त्व की
यह धारणा- शरीर और मन का द्वैत, भौतिक और आध्यात्मिक का द्वैत- एक झूठा कदम है। अस्तित्व अविभाजित है; सारे विभाजन मात्र मानसिक हैं। मन के देखने का तरीका ही, जिससे वह चिजों को देखता है; द्वैत निर्मित करता है। यह मन का कारागृह है, जो बांटता है।
मन और कुछ कर भी नहीं सकता। मन के लिए दो विरोधाभासों के एक होने का,
दो विपरीत ध्रुओं के एक होने का अनुमान लगाना भी कठिन है। मन की अनिवार्यता है, बाध्यता है कि वह तर्क संगत रहे। यह कल्पना नहीं कर सकता कि प्रकाश और अंधकार कैसे एक हो हो सकते हैं। यह बात तो अतर्क्य है, विरोधाभासी है।
मन को विरोध निर्मित करने पड़ते हैंः ईश्वर और शैतान, जीवन और मृत्यु, प्रेम और घृणा। तुम प्रेम और घृणा की एक ही ऊर्जा के रूप में कल्पना कैसे कर सकते हो? मन के लिए यह कठिन है। इसलिये मन बांटता है। तब यह कठिनाई नहीं रहती। घृणा प्रेम के विरुध्द है और प्रेम घृणा के विरुध्द है। अब तुम तर्क संगत हो सकते हो और मन आराम में हो सकता है। इसलिये विभाजन मन की सुविधा के लिए है- सत्य नहीं है, वास्तविकता नहीं है।
अपने को दो में बांट लेना सुविधाजनक रहता हैः शरीर और तुम। किंतु जिस
पल तुमने बांटा, तुमने गलत कदम उठा लिया। जब तक कि तुम वापस न आओ और पहले कदम को न बदलो, तुम अनेकों जन्मों में भटकते रह सकते हो, और इससे कुछ भी नहीं मिलेगा; क्योंकि एक झूठा कदम और झूठे कदमों की ओर ले जाता है। इसलिये सही आरंभ से शुरू करो। स्मरण रखो कि तुम और तुम्हारा शरीर दो नहीं हैं। यह दो मात्र एक सुविधा है। जहां तक अस्तित्व का संबंध है, एक पर्याप्त है। अपने आप को दो में बांटना प्राकृतिक नहीं है। वस्तुतः तुम सदा अनुभव करते हो कि तुम एक हो, किंतु एक बार तुमने इस बारे में सोचना शुरू कर दिया, समस्या उठती है। यदि तुम्हारे शरीर में चोट लगे, उस क्षण में तुम कभी यह अनुभव नहीं करते कि तुम दो हो। तुम्हें महसूस होता है कि तुम शरीर के साथ एक हो। सिर्फ बाद में जब तुम इसके बारे में सोचना आरंभ करते हो, तब तुम बांटते हो।
वर्तमान के क्षण में कोई विभाजन नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि कोई तुम्हारे सीने पर छुरा रखदे, ठीक उस क्षण में वहां कोई विभाजन नहीं होता। तुम नहीं सोचते कि वह तुम्हारे शरीर को मारने जा रहा है, तुम सोचते हो कि वह तुम्हें मारने जा रहा है। सिर्फ बाद में जब यह स्मृति का हिस्सा बन चुका होता है, तुम बांट सकते हो। अब तुम चीजो को देख सकते हो, उनके बारे में

सोच सकते हो। तुम कह सकते हो कि वह आदमी तुम्हारे शरीर को मारने जा रहा था। किंतु उस क्षण तुम तुम यह न कह सकते थे।
जब भी तुम अनुभव करो, उस तल पर तुम एकता अनुभव करते हो। जब भी तुम सोचते हो, तुम बांटना शुरू कर देते हो। तब शत्रुता निर्मित होती है। यदि तुम शरीर नहीं हो, एक विशिष्ट संघर्ष विकसित होता है। प्रश्न उठता है; "कौन मालिक है?" तब तुम शरीर का दमन करने लगते हो।
और जब तुम शरीर का दमन करते हो, तुम अपने को दबा रहे हो। जब तुम शरीर से संघर्ष करते हो, तुम अपने से लड़ रहे हो। इसलिये और अधिक संदेह निर्मित होता है। यह आत्मघाती हो जाता है। यदि तुम प्रयास भी करो, तुम वास्तव में अपने शरीर को नहीं दबा सकते।
मैं अपने बायें हाथ को अपने दायें हाथ से कैसे दबा सकता हूं? वे दो की भांति दिखते हैं, पर दोनों में एक ही ऊर्जा बहती है। यदि वे वास्तव में दो हो, तब दबाना संभव हो सकता था- और सिर्फ दबाना ही नहीं बल्कि चरम विनाश संभव होता- किंतु यदि दोनो में एक ही ऊर्जा बह रही है; तो मैं अपने बायें हाथ का पराजय कैसे कर सकता हूं?
यह मात्र बनाया हुआ विश्वास है। मैं अपने दायें हाथ को बायां हाथ नीचे गिराने दे सकता हूं, और मैं ऐसा दिखावा कर सकता हूं कि मेरा दायां हाथ जीत गया है, पर अगले क्षण मैं अपने बायें हाथ को ऊपर उठा सकता हूं और वहां कोई उसे रोकने वाला न होगा। यही वह खेल है जो हम खेलते हैं। यह चलता रहता है।
किसी समय तुम काम को नीचे धकेलते हो और किसी समय काम तुम्हें नीचे धकेल देता है। यह एक दुश्चक्र बन जाता है। तुम काम का दमन कभी नहीं कर सकते। तुम इसका रूपांतरण कर सकते हो, किंतु तुम इसका दमन कभी नहीं कर सकते।
तुम और तुम्हारे शरीर के बीच विभाजन का आरंभ दमन की ओर ले जाता है। इसलिये यदि तुम रूपांतरण चाहते हो तो तुम्हें विभाजन से आरंभ नहीं करना चाहिए। रूपांतरण सिर्फ पूर्ण को, पूर्ण की भांति समझने से ही आ सकता है। दमन तो पूर्ण को विभाजित; खंड़ों में बटा हुआ समझने की गलत फहमी के कारण पैदा होता है। यदि मैं जानता हूँ कि दोनों हाथ मेरे हैं तो एक को दबाने का प्रयास व्यर्थ हो जाता है। तब संघर्ष अर्थहिन हो जाता है क्योंकि कौन किसे दबायेगा? कौन किससे लड़ेगा? यदि तुम अपने शरीर के साथ विश्रांत अनुभव कर सको, तब तुम पहला कदम उठा सकते हो, जो ठीक कदम होगा। तब विभाजन या दमन नहीं आएगा।
यदि तुम स्वयं को अपने शरीर से अलग करते हो, बहुत सी बातें अपने आप उसके पीछे आएंगी। जितना अधिक तुम शरीर को दबाओगे; उतना ही अधिक तुम हताश होओगे, क्योंकि दमन असंभव है। क्षणिक युद्ध-विराम हो सकता है, किंतु फिर तुम पुनः पराजित होओगे। और तुम जितना अधिक हताश होओगे उतना ही विभाजन बढ़ेगा, तुम्हारे और शरीर के बीच खाई और अधिक चौड़ी हो जाएगी। तुम इसके प्रति और अधिक शत्रु भाव अनुभव करने लगोगे। तुम यह महसूस करोगे कि शरीर बहुत शक्तिशाली है और यही कारण है कि तुम इसका दमन कर पाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हो। तब तुम सेचते हो, "अब मुझे और अधिक ताकत से लड़ना होगा।"
यही कारण है कि मैं कहता हूं कि हर चीज का अपना तर्क है। यदि तुम गलत प्रस्तावना से शुरू करो तो तुम आगे और आगे, अंत तक चलते रह सकते हो, पर कहीं नहीं पहुंचते। प्रत्येक संघर्ष तुम्हें दूसरे संघर्ष में ले जाता है। मन महसूस करता है, "शरीर सबल है और मैं निर्बल हूं। मुझे इसका और अधिक दमन करना होगा।" या यह अनुभव करता है, "मुझे अब अपने शरीर को कमजोर करना चाहिए।" सारी तपस्यायें शरीर को कमजोर बनाने का प्रयास मात्र हैं। किंतु तुम शरीर को जितना कमजोर बनाते हो, तुम भी उतने ही कमजोर हो जाते हो। तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच वही तुलनात्मक शक्ति बनी रहती है।
जिस घड़ी तुम कमजोर होते हो, तुम और अधिक हताश अनुभव करने लगते हो।
क्योंकि अब तुम आसानी से पराजित किये जा सकते हो। और तुम इस बारे में कुछ भी नहीं कर सकतेः जितने और कमजोर तुम होगे, शरीर के खिंचाव से ऊपर उठने की संभावना उतनी ही कम होती जाएगी, और तुम्हें इससे और अधिक लड़ना पड़ेगा।

इसलिये पहली बात यह है कि विभाजन के रूप में न सोचना। यह विभाजन भौतिक
और आध्यात्मिक, पौदगलिक और मानसिक, चेतना और पदार्थ केवल भाषा की भ्रांति है। यह सब बेहूदगी भाषा के कारण उत्पन्न हुई है।
उदाहरण के लिए, यदि तुम कुछ कहो, मुझे हां या न कहना पड़ेगा। हमारे पास कोई तटस्थ भाव नहीं है। हां हमेशा पूर्ण है, न भी पूर्ण हैं। किसी भाषा में कोई तटस्थ शब्द नहीं है। इसलिये डि बोनो ने एक नया शब्द गढ़ा "पो", वह कहता है "पो" को एक निष्पक्ष शब्द के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए। इसका अर्थ हैः "मैंने तुम्हारा दुष्टिकोण सुन लिया है। मैं न तो हां कहता हूं और न न।"
पो का प्रयोग करो और सारी संभावना बदल जाती है। पो एक कृत्रिम शब्द है जिसे डि बोनो ने हायपोथीसिस या पोसिबिलिटी से या पोइट्री से लिया है। यह निष्पक्ष शब्द है जिसमें कोई मूल्य निर्धारण नहीं है, न निंदा है, न प्रशंसा, न वचन बद्धता, न पक्ष है न विपक्ष है। यदि कोई तुम्हारा अपमान कर रहा है, बस कहो, पो। तब अपने भीतर का अंतर महसूस करो। एक अकेले शब्द से इतना अंतर निर्मित हो सकता है। जब तुम कहते हो पो, तुम कह रहे हो, "मैंने तुम्हारी बात सुन ली है। अब मैं जानता हूं कि तुम्हारा मेरे प्रति क्या रुख है। तुम सही भी हो सकते हो, तुम गलत भी हो सकते हो। मैं कोई निर्धारण नहीं कर रहा हूं।"
भाषा विभाजन निर्मित करती है। महान विचारक भी भाषा के रूप में ऐसी चीजे निर्मित करते जाते हैं, जो होतीं ही नहीं। यदि तुम उनसे पूछो, "मन क्या है?" वे कहेंगे, "यह मन नहीं है।" यदि तुम उनसे पूछो, "पदार्थ क्या है? वे कहेंगे, "यह मन नहीं है।" न तो पदार्थ ही जाना गया है, न ही मन। वे पदार्थ को मन से परिभाषित करते है और मन को पदार्थ से परिभाषित करते हैं। मूल अज्ञात रहता है। यह अर्थहीन है, किंतु यह हमारे लिए यह कहने से कि "मैं नहीं जानता, इसके बारे में कोई जानकारी नहीं है", अपने अज्ञान का स्विकार करने से यह अधिक सुविधा जनक है।
जब हम कहते हैं, "मन पदार्थ नहीं है", हम विश्रांति अनुभव करते हैं- जैसे कि कुछ जान लिया गया हो। कुछ भी जाना नहीं गया है। मन और पदार्थ दोनों अज्ञात हैं, पर यह कहना कि "मैं नहीं जानता" अहंकार को छोटा करने वाला होगा। जिस घड़ी हम बांटते हैं, हम महसूस करते हैं कि हम उन चीजों के भी मालिक हो गए हैं; जिनके बारे में हम पूर्णतः अनभिज्ञ होते हैं। निन्यानबे प्रतिशत दर्शनशास्त्र भाषा से निर्मित हुआ है। विभिन्न भाषाओं ने दर्शनशास्त्रों के अनंत रूप निर्मित किये हैं, इसलिये यदि तुम भाषा बदल दो, दर्शनशास्त्र बदल जायेगा। यही कारण है कि दर्शन किंतु दर्शन शास्त्र नहीं। और काव्य तो और भी अनुवाद योग्य नहीं है, क्योंकि यह भाषा की विशेष ताजगी पर निर्भर होता है। जिस पल तुम भाषा बदलते हो, सुगंध खो जाती है; स्वाद खो जाता है। यह स्वाद शब्दों के एक विशेष आयोजन से, शब्दों के एक विशेष अनुप्रयोग से, संबधित है। उनका अनुवाद नहीं हो सकता।
इसलिये स्मरण रखने योग्य पहली बात है। विभाजन से शुरू मत करना। सिर्फ तभी तुम सही तरह से शुरू करते हो। मेरा अर्थ यह नहीं है कि तुम "मैं अखंड हूं" की धारणा से शुरू करो। मेरा यह अर्थ नहीं है। तब पुनः तुम किसी एक धारणा से शुरू करते हो। बस अनभिज्ञता से, विनम्र अनभिज्ञता से, इस आधार से कि मैं नहीं जानता, शुरू करो।
तुम यह कह सकते हो कि शरीर और मन अलग है, या तुम इसके विपरीत स्थिति ग्रहण कर सकते हो और कह सकते हो, "मैं अखंड हूं। शरीर और मन एक हैं।" किंतु यह कथन भी यह मान लेना ही है कि विभाजन है। तुम कहते हो एक किंतु तुम अनुभव कर रहे हो दो। दो के अनुभव के विरुद्ध तुम एकता का आग्रह करते हो। यह आग्रह फिर एक सूक्ष्म तरह का दमन है।
इसलिये अद्वैत के साथ, "दो नहीं" की धारणा के दर्शनशास्त्र के साथ शुरू मत करो। अस्तित्त्व के साथ शुरू करो, धारणाओं के साथ नहीं। एक गहन धारणाविहीन चेतना के साथ आरंभ करो। सम्यक आरंभ से मेरा यही अर्थ है। अस्तित्त्ववान के अनुभव से आरंभ करो। मत कहो, एक या दो; मत कहो यह या वह। जो है उसको अनुभव करना शुरू करो। और जो है का यह सिर्फ तब हो सकता है, जब मन वहां न हो, धारणाएं वहां न हों, दर्शनशास्त्र और मत वहां न हों- वस्तुतः जब

भाषा वहां न हो। जब भाषा अनुपस्थित होती है, तुम अस्तित्त्व में होते हो। जब भाषा उपस्थित होती है, तुम मन में होते हो।
अलग भाषा के साथ तुम्हारे पास अलग मन होगा। बहुत सी भाषाएं हैं। न केवल भाषाशास्त्रीय रूप से, वरन धार्मिक रूप से, राजनैतिक रूप से। कोई कम्यूनिस्ट जो मेरे बगल में बैठा है, किसी तरह मेरे साथ नहीं होगा। वह अलग भाषा में जीता है।
मेरी दूसरी ओर भी कोई बैठा हो सकता है जो कर्म में भरोसा रखता हो। कम्यूनिस्ट और वह अन्य व्यक्ति मिल नहीं सकते। कोई संवाद संभव नहीं है, क्योंकि वे एक दूसरे की भाषा जरा भी नहीं जानते। वे समान शब्दों का प्रयोग करते रह सकते हैं, किंतु फिर भी वे नहीं जानते कि दूसरा क्या कह रहा है? वे अलग संसारों में रहते हैं।
भाषा के साथ प्रत्येक अपने निजी संसार में रहता है। बिना भाषा के अर्थात मौन में तुम समान बोली के, अस्तित्त्व के हो जाते हैं। यही मेरा ध्यान से अर्थ हैः निजी भाषीय संसारों को छोड़कर निशब्द अस्तित्त्व में प्रवेश करना।
वे लोग जो शरीर और मन को विभाजित करते हैं, सदा काम के विरुद्ध होते हैं। कारण यह है, सामान्यतः काम ही एकमात्र निःशब्द, प्राकृतिक अनुभव है, जिसे हम जानते हैं। भाषा की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। यदि तुम काम में भाषा का प्रयोग करो, तुम इसमें गहरे नहीं जा सकते। इसलिये वे सभी जो तुमसे कहते है, तुम शरीर नहीं हो, काम के विरोध में होंगे; क्योंकि काम में तुम आत्यंतिक रूप से अविभाजित होते हो।
शब्दों के संसार में मत जीयो। स्वयं अस्तित्त्व में गहरे जाओ। किसी
भी चीज का उपयोग करो, पर बार बार लौट कर निशब्द के तल पर, चेतना के तल पर, आ जाओ। वृक्षों के साथ, पक्षियों के साथ, आकाश के, सूर्य के, बादलों के, वर्षा के साथ- हर कहीं निःशब्द अस्तित्त्व के साथ रहो और जितना अधिक तुम ऐसा करोगे, जितने गहरे तुम इसमें जाओगे, उतनी ही अधिक तुम ऐसी एकता का अनुभव करोगे, जो दो के विरोध में नहीं है। एक ऐसी एकता जो मात्र दो का जुड़ना नहीं वरन मुख्य भूमि के साथ एक ऐसे द्वीप की एकता है, जो सागर के तल के नीचे से होकर उसे मुख्य भूमि से जोड़े है। वे दो सदा सदा एक रहे हैं। तुम उन्हें दो की भांति देखते हो क्योंकि तुम सिर्फ सतह पर देखते हो।
भाषा सतही है। सभी प्रकार की भाषाएं- धार्मिक, राजनैतिक- सतह पर हैं।
जब तुम निःशब्द अस्तित्त्व के साथ रहते हो, तुम एक सूक्ष्म एकता पर पहुंचते हो जो गणितिय एकता नहीं है वरन अस्तित्त्वगत एकता है।
इसलिये वे शाब्दिक खेल; शरीर और मनविभाजित हैं; शरीर और मन एक है; खेलने का प्रयास मत करो। उन्हें छोड़ो। वे दिलचस्प हैं, पर व्यर्थ हैं। वे कहीं नहीं ले जाते। यदि तुम उनमें कोई सत्य भी पा लो तो वे मात्र शाब्दिक सत्य हैं। तुम उनसे क्या सीखने जा रहे हो? हजारों वर्ष से तुम्हारा मन यह खेल खेलता आया है, पर यह बचकाना है, कोई भी शाब्दिक खेल बचकाना है। तुम इसे कितनी ही गंभीरता से खेलो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। तुम बहुत सी बातों को, बहुत से अर्थों को अपनी स्थिति के समर्थन में पा सकते हो; पर यह बस एक खेल है। जहां तक रोजमर्रा के काम का संबंध है, भाषा उपयोगी है; किंतु तुम इससे गहनतर क्षेत्रों में नहीं उतर सकते; क्योंकि ये क्षेत्र निःशाब्दिक हैं। भाषा बस एक खेल है। यदि तुम शब्द और निःशब्द के मध्य कोई साहचर्य पा
लो तो कारण यह नहीं है कि तुमने कोई महत्त्वपूर्ण सुराग पा लिया, नहीं। तुम बहुत से साहचर्य पा सकते हो, जो महत्त्वपूर्ण दिखते हैं, किंतु वे वास्तविक अर्थों में अर्थपूर्ण नहीं हैं। वे वहां हैं, क्योंकि तुम्हारे मन ने अचेतन रूप में उन्हें निर्मित कर लिया है।
प्रत्येक स्थान पर मनुष्य का मन मूलभूत रूप से समान है, इसलिये प्रत्येक बात जो मानवीय मन से विकसित हुई है, समानता लिए होती है। उदाहरण के लिए मां के लिए हर भाषा में शब्द समानता लिए हैं। इसलिए नहीं कि इसमें कोई अर्थवत्ता है, बल्कि ध्वनि "माँ" वह ध्वनि है जो प्रत्येक बच्चे द्वारा सर्वाधिक आसानी से कही जाती है। एक बार ध्वनि हो तो तुम उससे विभिन्न शब्द निर्मित कर सकते हो, पर एक ध्वनि तो मात्र एक ध्वनि है। बच्चा तो बस एक ध्वनि कर रहा है, मां, पर तुम इसे एक शब्द की तरह सुनते हो।

कभी कभी कोई समानता पाई जा सकती है, जो मात्र सांयोगिक हो। गॉड शब्द डॉग का उलटा है। यह मात्र एक संयोग है। किंतु हम उसमें कहते है कि गॉड इसका उलटा है, यह हमारी व्याख्या है यह भी हो सकता है कि हमने शब्द गॉड के विपरीत शब्द डॉग बताया हो और तब यह नाम कुत्तों को दे दिया हो। वे किसी भी तरह से संबंधित नहीं है; किंतु यदि तुम उनके मध्य संबंध निर्मित कर सको, तो यह तुम्हें अर्थपूर्ण प्रतीत होता है।
तुम किसी भी बात से समानताएं निर्मित करते रह सकते हो। तुम अनंत समानताओं के साथ, शब्दों का महासागर बना सकते हो। उदाहरणार्थ शब्द मंकी, तुम इस शब्द के साथ खेल-खेल कर कुछ सहचर्य पा सकते हो, किंतु डार्विन से पूर्व यह असंभव रहा होता। क्योंकि अब हम जानते हैं कि मनुष्य बंदर से आता है। हम शब्दों के खेल खेल सकते हैं, हम कह सकते है मंकी (मैन यानी मनुष्य और की यानी चाबी)- मनुष्य की चाबी। अन्य लोगों ने इन दो शब्दों को (मैन और मंकी को) एक अलग तरह से जोड़ा है। उन्होंने कहा है, "बंदर और मनुष्य अपने मन के कारण संबंधित है। मनुष्य के पास बंदर जैसा मन है।"
इसलिये तुम साहचर्य निर्मित कर सकते हो और उन का मजा ले सकते हो; तुम इसे एक अच्छे खेल की भांति महसूस कर सकते हो; पर यह मात्र एक खेल है। इसको याद रखना चाहिए। अन्यथा तुम, क्या वास्तविक है और क्या मात्र एक खेल है इनकी सीमाओं को भूल जाओगे और विक्षिप्त हो जाओगे।
जितना गहरे तुम शब्दों में उतरोगे, उतने ही शब्द साहचर्य तुम पा लोगे। और तब बस उन्हें घुमाने फिराने से, तुम पूरा एक दर्शन शास्त्र निर्मित कर सकते हो। बहुत से लोग ऐसे करते हैं। रामदास ने भी यह बहुत किया है। वे शब्द मंकी के साथ इस तरह खेले हैं, उन्होंने इसी तरह डॉग और गॉड की तुलना की है। यह सब ठीक है, इसमें कोई गलती नहीं है। जो मैं कह रहा हूं वह यह हैः यदि तुम एक खेल खेल रहे हो और उसका मजा ले रहे हो, तब उसका मजा लो- किंतु इसके द्वारा मूर्ख मत बनो। और तुम मूर्ख बनाये जा सकते हो। यह खेल इतना अधिक प्रभावी हो सकता है कि तुम इसको ज़ारी रखे जाओगे और बहुत ऊर्जा व्यर्थ जाएगी।
लोग सोचते हैं क्योंकि भाषाओं में बहुत सी समानताएं आयी हैं। किंतु
ये समानताएं किसी सार्वभाषा के कारण नहीं हैं; वे मानवीय मन की समानता के कारण है। सारे संसार में वे लोग जो हताश हैं, एक ही ध्वनि करते हैं। वे लोग जो प्रेम में हैं, एक ही ध्वनि करते हैं। मनुष्यों में आधारभूत समानता के कारण हमारे शब्दों में भी एक निश्चित समानता निर्मित हो जाती है। किंतु इसको गंभीरता से मत लेना क्योंकि तब तुम अपने को इसमें खो दोगे। यदि तुम कुछ अर्थपूर्ण स्रोत पा भी जाओ, यह अर्थहीन है, असंगत है। आध्यात्मिक खोजी के लिए यह लक्ष्य से हटता है।
और हमारे मन ऐसे हैं कि जब हम कुछ खोजने जाते हैं, तो हम पूर्व निर्धारित धारणा से आरंभ करते हैं। यदि मैं महसूस करता हूं कि मुसलमान बूरे हैं, तो मैं उन बातों की खोज करने लगूंगा जो मेरे तर्क के पक्ष में हों और अंत में मैं स्वयं को सत्य सिद्ध कर लेता हूं। तब, जब कभी मैं किसी मुस्लिम से मिलूंगा, मैं त्रुटियां खोजना शुरू कर दूंगा, और कोई न कह सकेगा कि मैं गलत हूं क्योंकि मेरे पास प्रमाण है।
कोई उसी व्यक्ति के पास विपरीत धारणा लेकर आ सकता है। उसके लिए यदि मुस्लिम का अर्थ हो, "एक भला आदमी", तो वह उसी मुस्लिम में उस भलेपन का प्रमाण खोज ले सकता है। भलापन और बुरापन विरुध्द नहीं हैं, वे एक साथ होते हैं। मनुष्य के पास दोनों में से एक होने की संभावना है, इसलिये तुम उसमें जो भी गुण खोज रहे हो उन्हें तुम पा लोगे। कुछ परिस्थितियों में वह भला होगा, और कुछ परिस्थितियों में वह बुरा होगा। जब तुम उसके निर्णय लेते हे, यह परिस्थिति के बजाये तुम्हारी परिभाषाओं पर अधिक निर्भर होगा। यह इस पर निर्भर है कि तुम, इस या उस, किस तरह देखते हो।
यदि तुम उदाहरण के लिए, सोचो कि धूम्रपान बुरा है, तो यह बुरा हो जाता है। यदि तुम सोचो, किसी खास तरह का व्यवहार करना, बुरा है, तो यह बुरा हो जाता है। यदि हम यहां बैठे हों और कोई हमारी बातचीत के दौरान सो जाए, अगर तुम इसे बुरे की तरह सोचो तो यह बुरा है। लेकिन वास्तव में न कुछ भला है न कुछ बुरा है। कोई किसी अलग भाव से उसी चीज को भले की भांति सोचेगा। वह

सोचेगा कि यदि कोई मित्रों के मध्य में लेट जाता है और सो जाता है, तो यह अच्छी बात है कि वह इसे कर पाने की स्वतंत्रता, अनुभव करता है। इसलिये यह तुम्हारे भाव पर निर्भर है।
मैं ए.एस.नील द्वारा, उसके विद्यालय, समर हिल में किए गए कुछ प्र्रयोगों के बारे में पढ़ रहा था। उसने एक नए प्रकार के विद्यालय का परीक्षण किया जहां पूर्ण स्वतंत्रता थी। वह प्रधान-अध्यापक था, पर वहां कोई अनुशासन नहीं था। एक बार एक अध्यापक बीमार पड़ गया इसलिये उसने विद्यार्थियों कहा कि उस रात कोई शोर शराबा न करें ताकि वह अध्यापक पीड़ित न हो।
किंतु रात में लड़कों नें, बीमार के ठीक बगल वाले कमरे में, लड़ना शुरू
कर दिया। नील सीढ़ियों से ऊपर चढ़ा। जब बच्चों ने किसी के आने की आवाज सुनी तो वे चुप हो गए और पढ़ने लगे। नील ने कमरे में खिड़की से झांका। एक लड़के ने जो बिस्तर पर सोने जाने का बहाना कर रहा था, ऊपर देखा और खिड़की में उसे देखा। उसने अन्य छात्रों से कहा, "यह कोई और नहीं बल्कि नील है। आओ, रुकने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो बस नील है।" इसलिये उन्होंने दोबारा लड़ना शुरू कर दिया। और नील प्रधान अध्यापक था।
नील लिखता है, " मैं इतना प्रसन्न था कि वे मुझसे इतने निर्भय थे कि वे
कह सके, चिंता की कोई जरूरत नहीं है। यह तो बस नील ही है।" उसने इसके प्रति अच्छा अनुभव किया; किंतु किसी अन्य प्रधान अध्यापक को यह कभी अच्छा नहीं लगेगा। किसी अन्य प्रधान अध्यापक को! इतिहास में कभी नहीं!
इसलिये यह तुम पर निर्भर करता है, तुम किस तरह चीजों की परिभाषा करते हो, उस पर निर्भर करता है। नील ने इसे प्रेम की भांति अनुभव किया, पर फिर यह उसकी परिभाषा है। हम जिसकी खोज करते हैं सदा वही मिल जाता है। तुम संसार में हर चीज पा सकते हो, यदि तुम गंभीरता से उसकी खोज में लगे हो।
इसलिये कुछ पाने को, सुनिश्चित मन के साथ आरंभ मत करो। बस शुरू करो।
एक खोजी मन का अर्थ किसी चीज की खोज में होना नहीं है वरन सिर्फ खोज में होना है। मात्र खोज, बिना किन्हीं पूर्व-धारित प्रत्ययों के, बिना किसी सुनिश्चित चीज को पाने के। हम चीजें मिल जाती हैं, क्योंकि हम उन्हें खोज रहे थे।
बाइबिल की "बाबेल की मीनार" की कहानी का अर्थ भी यही है कि जिस पल तुम बोलते हो, तुम विभाजित हो जाते हो। जिस पल तुम बोलते हो, संदेह आ जाता है। जिस पल तुम कुछ उच्चारित करते हो; तुम खंडित हो जाते हो। सिर्फ मौन ही एक है।
बहुत से लोगो ने चीजों की खोज में अपना जीवन बेकार कर डाला है। जब कोई चीज गंभीरता से ली जाती है तो तुम अपना जीवन आसानी से बेकार कर सकते हो। शब्दों से खेलना अहंकार को इतना भरता है कि तुम इसे करने में अपना जीवन नष्ट कर ले सकते हो। भले ही यह दिलचस्प हो, एक अच्छा खेल हो, मन बहलाने वाला हो, आध्यात्मिक खोजी के लिए यह व्यर्थ है। आध्यात्मिक खोज कोई खेल नहीं है।
यही खेल अंको के साथ भी खेला जा सकता है। तुम संबंध बना सकते हो। तुम गणित बिठा सकते हो कि सप्ताह में सात दिन क्यों हैः संगीत के सात स्वर, सात लोक, सात शरीर? हमेशा सात ही क्यों? तब तुम इसके चारो ओर दर्शन शास्त्र निर्मित कर सकते हो, किंतु यह दर्शन शास्त्र मात्र तुम्हारी कल्पना का ही निर्माण होगा।
कभी-कभी चीजें बड़े निर्दोष कारणों से शुरू हो जाती है। उदाहरण के लिए, जिस तरह गिनती शुरू हुई। अंको के दस होने का एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य की दस उंगलियां हैं। सारे संसार में पहली बार गिनती उंगलियों पर ही हुई। इसलिये दस चुनी हुई सीमा बन गयी। यह पर्याप्त था, क्योंकि उसके बाद तुम दोहरा सकते हो। इसलिये सारे संसार में नौ ही अंक हैं।
एक बार नौ निश्चित हो गया तो यह विश्वास करना मुश्किल हो जाता है कि
नौ अंको से कम या ज्यादा से भी काम किया जा सकता है। किंतु कम का उपयोग हो सकता है। लिबनित्ज ने सिर्फ तीन अंको का प्रयोग किया। कोई भी समस्या तीन अंको से भी उसी तरह सुलझायी जा सकती है जिस तरह नौ अंको से। आइन्सटीन ने सिर्फ दो अंक उपयोग किए और तब गिनती उस तरह हो जाती हैः 1, 10, 11... । हमारे

लिए वहां आठ का अंतर लगता है, किंतु यह अंतर है नहीं, यह मात्र हमारे मन में है।
हमारे पास एक निश्चित भाव है कि 2 को 1 के बाद आना चाहिए। ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। लेकिन यह हमारे लिए भ्रमपूर्ण हो जाता है। हम सोचते है और सदा होते हैं; किंतु इसमें कोई अंतर्निहित अनिवार्यता नहीं है। यदि तुम दो अंको की पंक्तिबध्द रचना करो तो 1 और मिल कर 11 होंगे किंतु 11 और का अर्थ समान होगा। तुम कह सकते हो कि दो कुर्सियां और दो कुर्सियां मिलकर चार कुर्सियां हैं; या तुम कह सकते हो वे ग्यारह कुर्सियां हैं, किंतु जो भी व्यवस्था तुम लागू करना चाहो, अस्तित्त्वगत रूप से कुर्सियां की संख्या वही रहती है।
तुम हर बात के लिए तर्क पा सकते हो- सप्ताह में सात दिन क्यों होते हैं; स्त्री के मासिक चक्र में अठाईस दिन क्यों होते है, संगीत में सात स्वर क्यों होते हैं, सात ही लोक क्यों हैं? और इन में से कुछ चीजों के पीछे वास्तव में कोई कारण हो सकता है।
उदाहरण के लिए मेन्सेस शब्द का अर्थ होता है महीना। यह संभव है कि मनुष्य ने पहली बार महीनों की गणना, स्त्री के मासिक चक्र से की हो, क्योंकि प्राकृतिक स्त्राव चक्र एक निर्धारित समय अवधि हैः अठाईस दिन। यह इस बात को जानने का आसान तरिका रहा होगा कि एक माह गुजर चुका। जब तुम्हारी पत्नी का मासिक स्त्राव आरंभ होता है, एक महीना बीत गया।
या तुम महीनों को चंद्रमा के अनुसार गिन सकते हो। किंतु तब समय की अवधि, जिसे हम कहते हैं एक महीना बदल कर तीस दिन की हो जाती है। चंद्रमा पंद्रह दिन तक बढ़ता जाता है और पंद्रह दिन छोटा होता जाता है; इसलिये तीस दिनों में यह एक पूरे वर्तुल से गुजर चुकता है।
हमने महीनों को चंद्रमा के अनुसार निर्धारित किया हैः इसलिये हम कहते
है कि एक माह में तीस दिन होते हैं। किंतु यदि तुम इसे स्त्री के मासिक चक्र से नापो, इसमें अठाईस दिन होंगे। तुम इस अंतर को, अठाईस दिन के चक्र को बांट कर, सात दिन के सप्ताहों के बारे में सोचकर, मिटा सकते हो। फिर एक बार यह विभाजन मन में निश्चित हुआ कि अन्य बातें भी स्वतः आएगी।
यही मेरा अर्थ है कि हर बात का अपना तर्क है। एक बार तुमने सात दिन के सप्ताह को ख्याल में लिया, तुम सात के अन्य रूपों को भी पा लोगे; और सात एक महत्त्वपूर्ण अंक बन जाएगा; एक जादुई अंक की तरह। यह है नहीं। या तो सारा जीवन जादुई है या कुछ भी जादुई नहीं है। यह तो कल्पना के लिए बस खेल बन जाता है।
तुम इन बातों से खेल सकते हो, और बहुत सी समानताएं होंगी। संसार इतना बड़ा है, इतना असीम है, हर घड़ी इतनी घटनाएं रही हैं, कि वहां समानताएं होना अनिवार्य हैं। समानताओं को एकत्रित करने लगो, अंत में तुम्हारे पास इतनी लंबी सूची बनेगी कि तुम उससे संतुष्ट हो जाओगे। तब तुम आश्चर्य करोगे, "सदा सात ही क्यों होते हैं? इसमें कोई रहस्य होना चहिए।" रहस्य इतना ही है कि तुम्हारा मन एकरूपताएं देखता है और उन्हें एक तर्क युक्त ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है।
गुर्जिएफ ने कहा है कि मनुष्य चंद्रमा के लिए आहार है। यह बात पूर्णतः तर्क युक्त है। यह तर्क की मूर्खता प्रदर्शित करता है। जीवन में हर चीज किसी अन्य के लिए आहार है, इसलिये गुर्जिएफ एक बहुत खोजपूर्ण विचार पर पहुंचाः कि मनुष्य भी किसी के लिए आहार होना चाहिए। तब, "मनुष्य किस के लिए आहार है?" पूछे जाने के लिए एक तर्कपूर्ण प्रश्न हो जाता है।
सूर्य मनुष्य का भक्षक नहीं हो सकता, क्योंकि सूर्य की किरणें दूसरी चीजों, पौधों के लिए आहार हैं। तब मनुष्य को अन्य प्रजातियों से निम्नतर स्तर पर होना चाहिए। लेकिन यह नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य के अनुसार वह सर्व श्रेष्ठ प्राणी है। इसलिये मनुष्य सूर्य के लिए आहार नहीं हो सकता। चंद्रमा हमसे सूक्ष्म रूप में संबंधित है, पर उस रूप में नहीं जैसा गुर्जिएफ ने कहा है। यह स्त्री के मासिक चक्र से सूक्ष्म रूप से संबंधित है। यह पानी से, मन से, सागर के प्रवाह से संबंधित है। पूर्ण चंद्र के दिन अधिक लोग पागल होते देखे गए हैं। इसी से शब्द लूनेटिक (चांदमारा) आता है, लूनर का अर्थ है चंद्रमा से संबंधित।

चंद्रमा ने सदा मनुष्य के मन को सम्मोहित किया है। गुर्जिएफ ने कहा है, "मनुष्य को चंद्रमा के लिए आहार होना चाहिए क्योंकि भोजन को भक्षक के द्वारा आसानी से सम्मोहित किया जा सकता है।" पशु, विशेषकर सांप अपने शिकार को पहले सम्मोहित कर लेते हैं। वे इतने पंगु हो जाते हैं कि उन्हें खाया जा सकता है। यह दूसरी समानता है जिसको गुर्जिएफ ने उपयोग किया। कवि, लूनेटिक लोग, सौंदर्य शास्त्री, विचारक सभी चंद्रमा से सम्मोहित हैं। वहां कोई बात तो होनी चाहिए। मनुष्य को आहार होना चाहिए।
तुम इस विचार के साथ खेल सकते हो। गुर्जिएफ जैसे प्रतिभावान मस्तिष्क
के साथ, बातें तार्किक रूप में समायोजित होती जाती हैं। गुर्जिएफ महान प्रतिभाशाली था, जो बातों को इस तरह से प्रस्तुत करता था कि भले ही वे कितनी असंगत हों, पर वे तार्किक, बुद्धिपूर्ण, और अर्थपूर्ण प्रतीत होती थीं। उसने इस सिद्धांत की कल्पना की और फिर उसकी कल्पना ने बहुत से अंतर संबंध, बहुत से प्रमाण पा लिए।
हर नयी पद्धति को निर्माण करनेवाला तर्कों का प्रयोग तोड़ मरोड़ के लिए, अपनी बात को सिद्ध करने के लिए करता है। हर पद्धति निर्माण-कर्त्ता! वे जो सत्य के साथ रहना चाहते हैं, पद्धतियां नहीं बना सकते। उदाहरण के लिए, मैं कभी कोई पद्धति नहीं बना सकूंगा, क्योंकि मेरे लिए उसका प्रयास ही गलत है। जो मैं कहता हूं उसमें मैं केवल आंशिक ही प्रकट हो सकता हूं और जो अंतराल होंगे वे अपूर्ण होंगे, जिनको जोड़ा न जा सके ऐसे अंतराल। मेरे साथ तो तुम्हें एक बिंदु से दूसरे पर कूदना पड़ेगा।
पद्धति बहुत आसामी से बनायी जा सकती है क्योंकि अंतराल कल्पना से भरे
जा सकते हैं। तब सारी बात बहुत स्पष्ट और साफ, तर्कपूर्ण हो जाती है किंतु जैसे ही यह तर्कपूर्ण होती है; यह अपने अस्तित्त्वगत स्रोत से दूर, और दूर होती जाती है।
जितना अधिक तुम जानते हो, उतना ही तुम अनुभव करते हो कि बीच में कुछ अंतराल हैं, जो भरे नहीं जा सकते। अस्तित्त्व कभी भी तर्क संगत नहीं हो सकता, कभी भी नहीं। पद्धति को तर्क संगत होना जरूरी है किंतु अस्तित्त्व कभी-भी स्वतः तर्क संगत नहीं है। इसलिये कोई पद्धति इसे कभी परिभाषित नहीं कर सकती।
जहां कहीं भी मनुष्य ने अस्तित्त्व को परिभाषित करने के लिए व्यवस्थाएं निर्मित की हैं, भारत में, ग्रीस में, चीन में, उसने खेल ही निर्मित किए हैं। यदि तुम पहले कदम को सच्चा मान लो, तो सारी व्यवस्था कुशलता पूर्वक कार्य करती है; किंतु यदि तुम पहले कदम को स्वीकार न करो, तो सारा ढांचा गिर जाता है। यह सारा ढांचा केवल काल्पनिक कसरत है। यह अच्छा है, काव्यपूर्ण है, सौंदर्य युक्त है किंतु यदि कोई व्यवस्था जोर देती है कि अस्तित्त्व की इसकी परिभाषा ही परमसत्य है तब फिर यह हिंसक और विध्वंसात्मक हो जाती है। सत्य की ये व्यवस्थाएं काव्य हैं, वे सुंदर हैं, पर वे मात्र काव्य हैं। उनमें बहुत से अंतराल कल्पना द्वारा भरे गए हैं। गुर्जिएफ सत्य के कुछ अंशों की ओर इंगित कर रहा था, किंतु किसी सिद्धांत के लिए, एक या दो टुकड़ों पर खड़ा हो पाना, आसान नहीं है, इसलिये उसने बहुत से टुकड़े जोड़े। तब उसने इन अंशों को एक सुसंबधित व्यवस्था के रूप में जोड़ने का प्रयास किया। उसने अंतराल भरने शुरू कर दिए। किंतु जितने ज्यादा अंतराल भरे जाते हैं, उतना ही अधिक सत्य खोता जाता है। और आत्यंतिक रूप से सारी व्यवस्था धराशायी हो जाती है, उन भरे गए अंतरालों की वजह से।
कोई व्यक्ति जो शिक्षक के व्यक्तित्व के जादूई प्रभाव से मुग्ध है, उसके सिद्धांत के अंतरालों को शायद न जान पाए, किंतु जो प्रभावित नहीं हैं, वे सिर्फ अंतराल देखेंगे, सत्य के अंश नहीं। अपने अनुयायियों के लिए बुद्ध एक बुद्ध पुरुष हैं, संबोंधि को प्राप्त एक व्यक्ति हैं, किंतु दूसरों के लिए वे संदेह पैदा करते हैं, क्योंकि दूसरे तो सिर्फ अंतराल ही देखते हैं। यदि तुम सारे अंतरालों को एकत्रित कर लो तो यह विध्वंसात्मक हो जाता है किंतु यदि तुम सत्य के सारे अंशों को एक साथ जोड़ लो, तो यह तुम्हारे रूपांतरण की आधारशिला बन सकता है।

सत्य आंशिक न होने के लिए बाध्य है। यह इतना असीम है कि अपने सीमित मन
के साथ तुम कभी समस्त को नहीं पा सकते। और यदि तुम समग्र को पाने पर जोर दो, तो तुम अपने मन को खो दोगे, तुम अपने मन का अतिक्रमण कर लोगे। किंतु यदि तुम एक व्यवस्था बनाओ, तुम अपने मन कभी न खोओगे; क्योंकि तब तुम्हारा मन अंतरालों को भरता है। व्यवस्था स्पष्ट और समझ में आती है। यह प्रभावशाली, तर्क युक्त, समझ में आने योग्य हो जाती है; किंतु इससे अधिक कभी नहीं। और इससे कुछ अधिक ही चाहिए, एक शक्ति जो तुम्हें रूपांतरित करे। किंतु यह सामर्थ्य मात्र आंशिक झलकों के माध्यम से ही आ सकती है।
मन बहुत सी व्यवस्थाएं, बहुत सी विधियां बनाता है। यह सोचता है, "यदि मैं इस जीवन से जो कि मैं जी रहा हूं हट जाऊं, कोई और गहरी चीज मिल जाएगी।" यह अर्थहीन बात है। पर मन सोचता चला जाता है कि तिब्बत में कहीं पर, मेरु पर्वत पर किसी जगह, वास्तविक बात घटित हो रही होगी। मन इस संघर्ष में पड़ता हैः वहां कैसे जाया जाए? उन गुरुओं के संपर्क में कैसे आया जाए? जो वहां पर कार्यरत हैं। मन कभी सदा किसी और जगह, किसी और चीज को तलाशता रहता है, उसको कभी नहीं, जो यहीं और अभी है- मन कभी यहां नहीं है। और प्रत्येक सिद्धांत लोगो को आकर्षित करता है, "इसी समय मेरु पर्वत पर वास्तविक घटना घट रही है। वहां जाओ, वहां के गुरुओं के साथ संबंध जोड़ो, और तुम रूपांतरित हो जाओगे।" इन चीजों का शिकार मत बनो। यदि उनमें कोई आधार भी हो, उन में मत फंसो। कोई तुम्हें कोई ऐसी बात बता भी सकता है, जो वास्तविक हो, लेकिन तुम्हारे आकर्षण का कारण गलत है। सत्य तो यहां और अभी है; यह अभी तुम्हारे साथ है। बस अपने पर कार्य करो। यदि कोई मेरु पर्वत पर चला भी जाए, उसे अपने पर लौट कर आना पड़ेगा। अंतिम रूप से व्यक्ति पाता है कि मेरु पर्वत यहीं है, तिब्बत यहीं है, यहीं मेरे भीतर। और मैं भटकता रहा और सब जगह तलाशता रहा। कोई व्यवस्था जितनी अधिक तर्क संगत होगी, उतनी ही यह हमें अपनेसे दूर
ले जाती है और फिर किसी अतर्क्य को प्रविष्ट करना पड़ेगा। लेकिन जिस पल तुम अतर्क्य तत्त्व को भीतर लाते हो, मन बिखरने लगता है। इसलिये व्यवस्थाओं की चिंता मत लो। बस यहां और अभी में कूद पड़ो।

प्रवचन-10

स्वप्नों का मनोविज्ञान

क्या आप समझाएंगे कि स्वप्नों से आपका क्या अर्थ है?

हमारे सात शरीर हैंः 1. भौतिक 2. भाव 3. सूक्ष्म 4. मनस 5. आत्मिक 6. ब्रह्म और 7. निर्वाण
1. प्रत्येक शरीर के अपने स्वप्न होते हैं। पश्चिमी मनोविज्ञान में भौतिक शरीर को चेतन, भाव शरीर को अचेतन और सूक्ष्म शरीर को सामूहिक अवचेतन के नाम से जाना जाता है।
भौतिक शरीर अपने स्वप्न निर्मित करता है। यदि तुम्हारा पेट गड़बड़ है
तो एक विशेष प्रकार का सपना निर्मित होगा। यदि तुम अस्वस्थ, ज्वरग्रस्त हो तो भौतिक शरीर अपनी तरह से सपने निर्मित करेगा। एक बात निश्चित है कि स्वप्न किसी रुग्णता (डिस-ईज) से उत्पन्न होता है।
भौतिक तकलीफ, भौतिक रुग्णता (बे-चैनी) अपना अलग स्वप्न आयाम निर्मित करती है, इसलिये एक भौतिक स्वप्न बाहर से उपजाया जा सकता है। तुम नींद में हो। यदि तुम्हारी टांगो पर एक भीगा कपड़ा रख दिया जाए, तो तुम सपना देखने लगोगे। तुम देख सकते हो कि तुम एक नदी पार कर रहे हो। यदि तुम्हारे सीने पर तकिया रख दिया जाए; तुम सपना देखने लगोगे। तुम सपना देख सकते हो कि कोई तुम्हारे ऊपर बैठा है, या कोई पत्थर तुम पर गिर पड़ा है। ये वे स्वप्न हैं जो भौतिक शरीर के द्वारा आ सकते हैं।
भाव शरीर, दूसरा शरीर अपनी तरह से सपने देखता है। इन भाव शरीर के स्वप्नों ने पश्चिमी मनोविज्ञान में काफी विभ्रम उत्पन्न किया है। फ्रायड ने भाव शरीर के सपनों को भूल से दमित इच्छाओं से जनित सपनों के रूप में समझा। दमित इच्छाओं से जनित सपने भी हैं, लेकिन ये सपने, पहले शरीर; भौतिक शरीर से संबधित हैं।
यदि तुमने अपनी भौतिक इच्छाओं का दमन किया है, उदाहरण के लिए यदि तुमने उपवास किया है- तो इस बात की बहुत संभावना है कि तुम नाश्ते का सपना देखो। या, अगर तुमने काम का दमन किया है तब इस बात की हर संभावना है कि तुम कामुक कल्पनाएं देखो। किंतु ये सपने प्रथम शरीर से संबधित है। मनोवैज्ञानिक खोज से भाव शरीर अछूता रह गया है, इसलिये इसके सपनों की पहले शरीर; भौतिक शरीर से संबंधित होने की भांति व्याख्या की जाती है तब बहुत संभ्रम उत्पन्न होता है।
भाव शरीर सपनों में यात्रा कर सकता है। इसके द्वारा तुम्हारे शरीर को छोड़ने की हर संभावना है। जब तुम इसे याद करते हो, यह एक अपने के रूप में याद आता है, लेकिन यह उन अर्थों में सपना नहीं है जिस तरह भौतिक शरीर के सपने हैं।
जब तुम सोए हुए होते हो, तो भाव शरीर तुमसे बाहर जा सकता है। तुम्हारा भौतिक शरीर वहां होगा, पर तुम्हारा भाव शरीर बाहर जा सकता है और आकाश में यात्रा कर सकता है। आकाश भी उसकी सीमा नहीं बनाता, उसके लिए दूरी का भी कोई प्रश्न नहीं है। वे जो इसको नहीं समझते, जो भाव शरीर के अस्तित्त्व को नहीं पहचानते; वे अचेतन के आयाम के रूप में इसकी व्याख्या कर सकते हैं। वे मनुष्य के मन को चेतन और अचेतन में बांटते हैं। तब भौतिक शरीर के स्वप्नों को चेतन और भाव शरीर के स्वप्नों को अचेतन कहा जाता है। यह अचेतन नहीं है। यह शारीरिक स्वप्नों की भांति चेतन है, यह एक दूसरे ही तल पर चेतन है। यदि तुम अपने भाव शरीर के प्रति चेतन हो जाओ, तो उस आयाम से संबधित स्वप्न चेतन बन जाते हैं।
जैसे शारीरिक सपने बाहर से निर्मित किए जा सकते हैं, वैसे ही भाव शरीर
के सपने बाहर से आरोपित, निर्मित किए जा सकते हैं। मंत्र उन उपायों में से एक है जिन से भाव दृश्य, भाव स्वप्न, निर्मित किए जा सकते हैं। एक विशेष मंत्र या एक विशेष नाद (एक विशेष शब्द, जिसका भाव केंद्र पर बारंबार उच्चार किया जाए) भाव शरीर के स्वप्न निर्मित कर सकता है। बहुत से उपाय हैं। ध्वनि उनमें से एक है।

सूफियों ने भाव दृश्यों को निर्मित करने के लिए सुगंधों का प्रयोग किया है। मोहम्मद स्वयं भी सुगंध के बहुत शौकीन थे। कोई विशेष गंध किसी विशेष सपने को निर्मित कर सकती है।
रंगों से भी सहायता मिल सकती है। लीडबीटर ने एक बार नीलिमा का, मात्र नीलिमा पर एक विशेष ढंग की नीलिमा का भावस्वप्न देखा। उसने संसार के सारे बाजारों में उस विशेष नीले रंग की खोज शुरू कर दी। कई साल खोजने के बाद, यह इटली की एक दुकान में मिला एक मखमल जिसका वैसा ही विशेष रंग था। इस मखमल का प्रयोग दूसरों में भी भाव-स्वप्न उत्पन्न करने के लिए भलीभांति किया गया। इसलिये जब कोई गहन ध्यान में जाता है और रंग देखता है और संगुधें अनुभव करता है और बिल्कुल अज्ञात संगीत और ध्वनियां सुनता है, तो ये भी स्वप्न हैं। भाव शरीर के स्वप्न, आध्यात्मिक दर्शन भाव शरीर से संबधित हैं; वे भाव-स्वप्न हैं। अपने शिष्यों के समक्ष गुरुओं द्वारा अपने को प्रकट करना और कुछ नहीं वरन भाव शरीर की यात्रा, भाव स्वप्न हैं। लेकिन क्योंकि हमने मन को सिर्फ अस्तित्त्व के एक तल पर खोजा है, इसलिये शारीरिक तल पर ये सपने या तो शरीरशास्त्रीय भाषा में समझाए गएं या उपेक्षित कर दिए गएं या अचेतन में रख दिए गए।
यह कहना कि कोई चीज अचेतन का हिस्सा है, मात्र यह स्वीकार करना है कि
हम इसके बारे में कुछ नहीं जानते। यह तकनीकी रूप से एक युक्ति है। कुछ भी अचेतन नहीं है। पर कोई भी चीज जो किसी गहरे तल पर चेतन है, पिछले तल पर अचेतन होती है। इसलिये भौतिक के लिए भाव अचेतन है, भाव के लिए सूक्ष्म अचेतन है, सूक्ष्म के लिए मनस अचेतन है। चेतन का अर्थ है वह जो जाना हुआ है, अचेतन का अर्थ है वह जो अभी तक नहीं जाना गया, अज्ञात।
सूक्ष्म शरीर के भी सपने हैं। सूक्ष्म शरीर के सपनों में तुम अपने पुराने जन्मों में जाते हो। यह तुम्हारे सपनों का तीसरा आयाम है। कभी-कभी एक सामान्य स्वप्न में भाव का एक हिस्सा, या सूक्ष्म का एक हिस्सा भी हो सकता है। तब स्वप्न एक विभ्रम, एक गड़बड़ी बन जाता है, तुम इसे समझ नहीं पाते। क्योंकि तुम्हारे सातों शरीर एक साथ अस्तित्त्व में हैं, इसलिये एक आयाम से कोई बात दूसरे में जा सकती है, इसे भेद सकती है। इसलिये कभी-कभी सामान्य सपनों में भी भाव या सूक्ष्म के अंश होते है।
प्रथम शरीर में, भौतिक में, तुम न तो समय में यात्रा कर सकते हो, न आकाश में। तुम अपनी भौतिक अवस्था में सीमित हो, और निर्धारित समय में भी- जैसे कि रात के दस बजे, तुम्हारा भौतिक शरीर इस विशेष समय और आकाश में स्वप्न देख सकता है पर इससे अलग नहीं।
भाव शरीर में तुम आकाश में यात्रा कर सकते हो पर समय में नहीं। तुम कहीं भी जा सकते हो, पर समय अभी भी रात के दस बजे का ही होता है। सूक्ष्म के आयाम में, तीसरे शरीर में तुम न सिर्फ आकाश में, वरन समय में भी यात्रा कर सकते हो। सूक्ष्म शरीर समय की रुकावट को पार कर सकता है- पर सिर्फ अतीत की ओर, भविष्य की ओर नहीं। सूक्ष्म मन अतीत की समस्त अनंत श्रृंखला में जा सकता है- अमीबा से आदमी तक।
जुंग के मनोविज्ञान में, सूक्ष्म मन को सामूहिक अचेतन का नाम दिया गया। यह तुम्हारे जन्मों का निजी इतिहास है। कभी-कभी यह सामान्य सपनों में प्रविष्ट हो जाता है, पर बहुधा बीमारी की दशा में, स्वास्थ्य की तुलना में। किसी व्यक्ति में जो मानसिक रूप से रुग्ण है, ये प्रथम तीन शरीर एक दूसरे से अपनी सामान्य पृथकता खो देते हैं। कोई व्यक्ति जो मानसिक रूप से बीमार है, अपने पिछले जन्मों का सपना देख सकता है, पर कोई उसका विश्वास नहीं करेगा। वह स्वयं भी इस पर विश्वास नहीं करेगा। वह कहेगा यह तो बस एक सपना था।
यह भौतिक तल पर स्वप्न देखना नहीं है। यह सूक्ष्म के सपने हैं। और सूक्ष्म के सपनों का बहुत अर्थ है, बहुत महत्ता है। लेकिन तीसरा शरीर सिर्फ अतीत के बारे में सपना देख सकता है, इस बारे में नहीं कि क्या होना है?
चौथा शरीर, मनस शरीर है। यह अतीत में और भविष्य में यात्रा कर सकता है। किसी परम आपातकाल में, कभी-कभी एक सामान्य व्यक्ति भी भविष्य की झलक पा सकता है। यदि तुम्हारा कोई निकट और प्रिय जन मर रहा है तो यह संदेश

तुम्हें सामान्य स्वप्न द्वारा दिया जा सकता है। क्योंकि तुम सपनों का कोई और आयाम नहीं जानते, क्योंकि तुम अन्य संभावनाओं को नहीं जानते, इसलिये वह संदेश तुम्हारे सामान्य सपने में प्रविष्ट हो जाता है।
किंतु, उन अवरोधों के कारण उस संदेश को तुम्हारी सामान्य स्वप्नावस्था तक आनेपर यह सपना स्पष्ट नहीं होगा। प्रत्येक अवरोध किसी चीज को लप्तु कर देता है, रूपांतरित कर देता है। प्रत्येक शरीर का अपना लक्षण-शास्त्र है, इसलिये हर बार जब कोई सपना एक शरीर से दूसरे में जाता है यह उस शरीर के लक्षण विज्ञान के अनुसार रूपांतरित हो जाता है तब हर बात भ्रमपूर्ण हो जाती है।
यदि स्पष्ट रूप से चौथे शरीर में स्वप्न देख लो- बिना किसी अन्य शरीर
के बल्कि स्वयं चौथे शरीर द्वारा- तो तुम भविष्य में देख पाओगे। लेकिन सिर्फ अपने भविष्य में। यह अब भी निजी है; तुम किसी अन्य व्यक्ति के भविष्य में नहीं झांक सकते।
चौथे शरीर के लिए अतीत भी उतना ही वर्तमान है, जितना कि भविष्य वर्तमान है। अतीत, भविष्य और वर्तमान एक हो जाते हैं। प्रत्येक बात अभी बन जाती है, अभी जो पीछे देख ले, अभी जो आगे देख ले। वहां न अतीत होता है न भविष्य, पर समय वहां अभी भी होता है।
समय वर्तमान की भांति भी, अभी भी काल का प्रवाह है। तुम्हें अभी भी अपने मन को केंद्रित करना पड़ेगा। तुम अतीत की ओर देख सकते हो, पर तुम्हें उस दिशा में अपने मन को केंद्रित करना पड़ेगा। तब भविष्य और वर्तमान अनुपस्थित हो गये होंगे। जब तुम भविष्य की ओर केंद्रित करते हो तो बाकी दो- अतीत और वर्तमान- अनुपस्थित होंगे। तुम अतीत, वर्तमान और भविष्य को देखने में सक्षम होंगे- पर एक की भांति नहीं। और तुम अपने निजी सपनें देखने में समर्थ हो जाओगे, सपने जो तुमसे एक व्यक्ति के रूप से संबधित हैं।
पांचवा शरीर, आत्मिक शरीर निजता का आयाम और समय का आयाम पार कर लेता है। अब तुम शाश्वत में होते हो। सपने देखना तुम से, जैसे कि तुम हो, संबधित नहीं होता वरन यह समग्र की चेतना से जुड़ जाता है। अब तुम सारे अस्तित्त्व का सारा अतीत जानते हो, किंतु भविष्य नहीं।
इस पांचवें शरीर के माध्यम से सृष्टि की सारी पुराण कथायें विकसित हुई हैं। वे सभी एक सी हैं। प्रतीक भिन्न हैं, कहानियां भी कुछ अलग हैं, पर भले ही वे ईसाई हों, या हिंदू या यहूदी या मिस्त्री, सृजन की पुराण कथायें- यह संसार कैसे रचा गया? अस्तित्त्व में कैसे आया? सभी समान हैं; उनमें समानता की एक अंतर्धारा है। उदाहरण के लिए विराट जल प्रलय की समान कहानियां सारे संसार में हैं। उनका कोई ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं है, पर फिर भी अस्तित्व है। यह अस्तित्व पाचंवे मन, आत्मिक शरीर से संबधित है। पाचंवा मन उनके बारे में सपना देख सकता है।
जितना तुम भीतर की ओर प्रवेश करो, स्वप्न सत्य के निकट और निकटतर आते जाते हैं। शारीरिक स्वप्न इतना वास्तविक नहीं है। इसकी अपनी वास्तविकता है, पर यह इतना वास्तविक नहीं है। भाव स्वप्न और अधिक वास्तविक है, सूक्ष्म स्वप्न और भी अधिक वास्तविक है, मानसिक स्वप्न करीब-करीब वास्तविक है और अंतिम रूप से पांचवे शरीर में तुम अपने स्वप्नों में प्रमाणिक रूप से यथार्थवादी हो जाते हो। यह वास्तविकता को जानने का मार्ग है। इसलिए अब इसे स्वप्न कहना पर्याप्त नहीं है।
वे दो व्यक्ति जिन्होंने पांचवे शरीर को साक्षात कर लिया है, एक साथ सपना देख सकते हैं, जो इसके पूर्व संभव न था। सामान्यतः एक ही सा सपना देखने का कोई उपाय नहीं है, किंतु पांचवे शरीर से आगे एक ही सपना बहुत से लोगों द्वारा साथ-साथ देखा जा सकता है। यही कारण है कि एक प्रकार से सपने वस्तुगत हैं। उनके अभिव्यक्ति की हम तुलना कर सकते हैं। यही कारण है कि कैसे वे बहुत से लोग जो पांचवे शरीर में स्वप्न देख रहे थे, उन्होंने समान पुराण कथाओं को जाना। ये पुराण कथायें किसी एक व्यक्ति द्वारा रची गई नहीं हैं। वे एक विशेष विचारधारा द्वारा, विशेष परंपरा द्वारा जो साथ-साथ कार्य कर रहे थे, निर्मित हुई।

इसलिये सपनो का पाचंवा प्रकार और अधिक वास्तविक हो जाता है। पिछले चारो प्रकार एक तरह से तो अवास्तविक हैं, क्योंकि वे वैयक्तिक हैं। इस अनुभव में किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा भाग ले पाने की कोई संभावना नहीं है; इसकी प्रमाणिकता को जांचने का कोई उपाय नहीं है- कि यह कल्पना है या नहीं। कल्पना वह चीज है जिसे तुमने प्रक्षेपित किया हो, स्वप्न वह चीज है जो अस्तित्त्व में वैसी ही नहीं थी, बल्कि तुमने उसे जाना है। जैसे-जैसे तुम भीतर जाओगे स्वप्न कम काल्पनिक, कम मानसिक और अधिक वस्तुनिष्ठ, अधिक वास्तविक; अधिक प्रमाणिक होते जाते हैं।
सारी धर्मशास्त्रीय धारणाएं पांचवे शरीर द्वारा निर्मित हैं। उनकी भाषा, उनकी शाब्दिक अभिव्यक्ति, उनकी अवधारणाएं भिन्न हैं पर मूलतः वे एक हैं। वे पांचवें शरीर के सपने हैं।
छठे शरीर, ब्रह्म शरीर में तुम चेतन- अचेतन, पदार्थ, मन की सीमा लांघ जाते हो। तुम सारे भेदों से मुक्त हो जाते हो। छठा शरीर ब्रह्मांड के बारे में स्वप्न देखता है। तुम चेतनता की देहरी लांघ जाते हो और अचेतन संसार भी चेतन हो जाता है। अब प्रत्येक चीज जीवित और चेतन होती है। यहां तक कि जिसे हम पदार्थ कहते हैं अब वह भी चेतना का हिस्सा हो जाता है।
छठे शरीर में ब्रह्मांड की पुराण कथाओं के सपनों का साक्षात हो जाता है। तुमने निजता का अतिक्रमण कर लिया है, तुम चेतनता का अतिक्रमण कर चुके हो, तुमने काल और द्कि (आकाश) का अतिक्रमण कर लिया है, यह किसी और चीज का संकेत देती है। ब्रह्म, माया का सिद्धांत, एकता की, अनंतता की अवधारणायें, ये सभी इस छठे प्रकार के स्वप्न में प्रत्यक्ष होती है। उन लोगों ने जिन्होंने ब्रह्मांडीय आयाम में सपने देखे महान व्यवस्थाओं की, महान धर्मों की रचना की।
मन के छठे प्रकार के द्वारा होने के रूप में सपने बनते हैं, न होने के रूप में नहीं, विधायक अस्तित्त्व को तो जाना़ है पर अनस्तित्व का भय है। पदार्थ और मन एक हो चुके हैं, किंतु अस्तित्त्व और अनस्तित्त्व एक नहीं हुए हैं, होना और न होना एक नहीं हुए हैं। वे अभी तक भिन्न हैं। यह अंतिम अवरोध है।
सातवां शरीर, निर्वाण शरीर सकारात्मक की सीमा पार कर लेता है और शून्यता में छलांग ले लेता है। इसके अपने निजी सपने हैः अनअस्तित्त्व के सपने, ना कुछ के सपने, शून्यता के सपने। हां, पीछे छूट गयी है, और न भी अब न नहीं रही। बल्कि यह कुछ नहीं और अधिक असीम हो गया है। विधायक की सीमाएं तो होगी ही, यह असीम नहीं हो सकता। नहीं की ही कोई सीमाएं नहीं होतीं। इसलिये सातवे शरीर के अपने निजी सपने होते हैं। अब वहां पर कोई प्रतीक, कोई रूप, नहीं होते। मात्र अरूप होता है। अब वहां कोई ध्वनि नहीं वरन ध्वनि शून्यता होती है, वहां परम मौन है। मौन के ये सपने पूर्ण अनंत होते हैं।
ये सात शरीर हैं। उनमें से प्रत्येक के अपने निजी स्वप्न हैं। लेकिन सपनों के ये सात आयाम सत्यता के सात रूपों को जानने में रुकावट बन सकते हैं।
तुम्हारे भौतिक शरीर के पास सत्य को जानने का भी उपाय है और इसका स्वप्न देखने का उपाय है। जब तुम भोजन करते हो, यह एक यथार्थ है, किंतु जब तुम सपना देखते हो कि तुम भोजन कर रहे हो, यह वास्तविकता नहीं है। स्वप्न वास्तविक आहार का विकल्प है। इसलिये भौतिक शरीर के पास अपनी निजी वास्तविकता और अपनी स्वप्न देखने की विधि है। ये दो भिन्न मार्ग हैं जिनमें भौतिक शरीर कार्य करता है और वे एक दूसरे से काफी दूर हैं।
तुम जितना अधिक केंद्र की ओर जाते हो- तुम जितने उच्चतर शरीर में होते हो- स्वप्न और सत्य एक दूसरे के प्रति निकटतर होते जाते हैं। वैसे हो जैसे कि परिधि से केंद्र की ओर खींची गई रेखाएं ज्यों- ज्यों केंद्र के निकट होती जाती हैं, वे पास आने लगती हैं, और ज्यों- ज्यों परिधि की ओर बढ़ती हैं वे और दूर होने लगती हैं। इसी तरह स्वप्न और सत्य भी जैसे-जैसे तुम केंद्र की ओर जाते हो निकट और निकट आते हैं और यदि तुम परिधि की ओर जाओ तो वे दूर और दूर हो जाते हैं। इसलिये जहां तक भौतिक शरीर का संबंध है, स्वप्न और सत्य बहुत दूर हैं। उनके मध्य बहुत अंतर है। स्वप्न मात्र कल्पनाएं हैं।

भावशरीर में यह अलगाव इतना बड़ा नहीं होगा। वास्तविकता और स्वप्न निकट
तर आएंगे, इसलिये भाव शरीर में यह जानना कि क्या वास्तविक है और क्या स्वप्न है, भौतिक शरीर की अपेक्षा अधिक कठिन होगा। किंतु फिर भी अंतर जाना जा सकता है। यदि तुम्हारी भाव शरीर की यात्रा होगी, यदि यह स्वप्न था तो यह जब तुम सो रहे हो तभी घटित होगी। यदि यह स्वप्न था तो यह जब तुम सो रहे हो तभी घटित होगी। अंतर जानने के लिए तुम्हें भाव शरीर के तल पर जागृत होना पड़ेगा।
तुम्हें भाव शरीर के तल पर जागृत करने की विधियां हैं। अंदर कार्य करने वाली सभी विधियां जैसे जप (एक मंत्र की पुनुरुक्ति) तुम्हें बाह्य संसार से अलग कर देती है। यदि तुम सो जाओ, सतत पुनरावृत्ति एक सम्मोहित निद्रा पैदा कर सकती है। तब तुम स्वप्न देखोगे। किंतु यदि तुम अपने जप के प्रति जागरुक रह सको और यह तुम पर सम्मोहक प्रभाव नहीं डाल पाए, तब जहां तक भाव शरीर का संबंध है, तुम वास्तविकता को जानोगे।
तीसरे शरीर में सूक्ष्म शरीर में, अंतर को जान पाना और भी कठिन होता
है क्योंकि दोनो और अधिक निकट आ गये हैं। यदि तुम ने सच्चे सूक्ष्म शरीर को जान लिया है और मात्र सूक्ष्म स्वप्नों को नहीं जाना है, तब तुम मृत्यु के भय के पार हो जाओगे। यहां से व्यक्ति अपने अमृत को जान लेता है। किंतु यदि सूक्ष्म मात्र स्वप्न ही हो, और यथार्थ न हो, तब तुम मृत्यु के भय से पंगु हो जाओगे। यही पहचान का बिंदु है, यही कसौटी हैः मृत्यु का भय।
कोई व्यक्ति जो विश्वास करता है कि आत्मा अमर है और बार बार इसे दोहराता चला जाता है, अपने आप को सांत्वना दिए चला है, वह यह नहीं जान पायेगा कि सूक्ष्म शरीर में जो यथार्थ है और जो सूक्ष्म स्वप्न है उन में क्या भेद है। अमरत्व में विश्वास नहीं करना चाहिए, इसे जानना चाहिए। लेकिन जानने से पूर्व, इसके बारे में संदेह होना चाहिए, अनिश्चितता होनी चाहिए। सिर्फ तभी तुम जानोगे कि क्या तुम इसे वास्तविक रूप से जानते हो, या कि तुमने मात्र इसकी कल्पना कर ली है। यदि तुम यह विश्वास करते हो कि आत्मा अमर है, यह विश्वास तुम्हारे सूक्ष्म मन तक पहुंच सकता है। तब तुम सपने देखना शुरू कर दोगे, पर यह मात्र एक सपना होगा।
लेकिन यदि तुम्हारे पास कोई विश्वास न हो, मात्र एक प्यास हो जानने की, खोजने की- बिना जाने कि क्या खोजा जाना है, बिना जाने कि क्या पाया जाएगा, बिना किसी पूर्वधारणा या पूर्वाग्रह के- यदि तुम बस शून्य में खोज रहे हो, तो तुम अंतर जान लोगे। इसलिये वे लोग, जो आत्मा की अमरता में विश्वास रखते है, पिछले जन्मों में विश्वास रखते हैं वे जो उन्हें विश्वास के रूप में मानते हैं; सूक्ष्म के तल पर स्वप्न देखते रह जा सकते है, और सत्य को नहीं जान सकते।
चौथे शरीर में, मनस शरीर में, स्वप्न और वास्तविकता पड़ोसी हो जाते हैं। उनके चेहरे इतने एक रूप होते है कि बड़ी संभावना है कि एक दूसरे की भांति प्रतीत हो। मनस शरीर ऐसे स्वप्न देख सकता है जो इतने यथार्थ हों कि वास्तविक जैसे हों। और ऐसे स्वप्न निर्मित करने की विधियां है- योग की, तंत्र की, और अन्य विधियां। कोई व्यक्ति जो, व्रत, एकांत, अंधकार आदि का अभ्यास कर रहा है चौथे प्रकार के स्वप्न, मानसिक स्वप्न, निर्मित कर लेगा। वे अत्याधिक वास्तविक होंगे, हमारे बाकी चारों यथार्थ से अधिक वास्तविक। चौथे शरीर में, मन पूर्णतः सृजनात्मक होता है- किसी भी बाह्य बाधा के बिना रुके, भौतिक सीमाओं के बिना रुके। अब यह सृजन के लिए पूर्णतः मुक्त होता है। कवि, चित्रकार ये सभी, स्वप्नों के चौथे प्रकार में रहते हैं। सारी कला सपनों के चौथे प्रकार द्वारा निर्मित हुई है। कोई व्यक्ति जो चौथे आयाम में स्वप्न देख सकता हो, महान कलाकार बन सकता है, पर ज्ञानी नहीं।
चौथे शरीर में, व्यक्ति को किसी भी प्रकार के मानसिक सृजन के प्रति होश पूर्ण रहना पड़ेगा। व्यक्ति को कोई चीज प्रक्षेपित नहीं करनी चाहिए। अन्यथा ऐसा हो जाएगा। कोई अभिलाषा नहीं करनी चाहिए; अन्यथा इस बात की प्रत्येक संभावना है कि वह अभिलाषा पूर्ण हो जाएगी। न सिर्फ अंतस में, बाह्य लोक में भी अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। चौथे शरीर में मन बहुत अधिक

शक्तिशाली, बहुत अधिक सुस्पष्ट होता है, क्योंकि चौथा शरीर मन के लिए अंतिम घर है। इससे बाद अ-मन आरंभ होता है।
चौथा शरीर मन का मूल स्रोत है, इसलिये तुम कुछ भी निर्मित कर सकते हो। व्यक्ति को इस बात का निरंतर होश रखना चाहिए कि कोई अभिलाषा, कोई कल्पना, कोई प्रतिमा, कोई ईश्वर, कोई गुरु न हो। अन्यथा वे सभी तुमसे निर्मित हो जाएंगे। तुम स्रष्टा होंगे। यह इतना आनंद दायी है कि व्यक्ति उन्हें निर्मित करने में आसक्त हो जाता है। यह साधक के लिए, खोजी के लिए अंतिम अवरोध है। यदि कोई इसे पार कर लेता है, उसे इससे बड़ी रुकावट फिर नहीं मिलेगी।
यदि तुम जागरुक हो, यदि तुम चौथे शरीर में मात्र साक्षी हो, तो तुम यथार्थ को जान लोगे। अन्यथा तुम स्वप्न देखते रह सकते हो। और कोई वास्तविकता इन सपनों से तुलना नहीं कर सकती। वे हर्षविभोर करने वाले होंगे, उनसे किसी आनंद की तुलना नहीं हो सकती। इसलिये इस हर्षविभोरता से, इस प्रसन्नता से इस आनंद से सजग रहना पड़ेगा, और व्यक्ति को किसी भी प्रकार की प्रतिमा से सतत रूप से सावधान रहना होगा। जिस पल वहां कोई भी प्रतिमा होती है; चौथा मन स्वप्न में प्रवाहित होने लगता है। एक प्रतिमा दूसरी पर ले लाती है और तुम स्वप्न देखते रहते हो।
चौथे प्रकार के स्वप्नों को सिर्फ तभी रोका जा सकता है जब तुम साक्षी
हो जाओ। साक्षित्व से अंतर निर्मित हो जाता है, क्योंकि यदि स्वप्न हों तो, तुम उनसे तादात्म्य कर लोगे। जहां तक चौथे शरीर का प्रश्न है तादात्म्य ही स्वप्न है। चौथे शरीर में होश और साक्षी बन गया मन ही सत्य की ओर जानेवाला मार्ग हैं।
पांचवे शरीर में स्वप्न और सत्य एक हो जाते हैं। द्वैत का हर रूप खो जाता है। यहां अब होश का कोई प्रश्न नहीं है। यदि तुम बिना होश के भी हो, तो भी तुम अपनी बेहोशी के प्रति होशपूर्ण होगे। अब सपने वास्तविकता का प्रतिबिंब मात्र बन जाते हैं। वहां अंतर नहीं होता, पर भेद होता है। यदि मैं अपने को शीशे में देखूं तो मुझमें और प्रतिबिंब में कोई अंतर नहीं होगा, पर भेद होगा। मैं वास्तविक हूं और प्रतिबिंबि वास्तविक नहीं है। पांचवा मन, यदि इसने विभिन्न धारणाएं बनाई हैं, अपने आप को जान लेने
का भ्रम पाल सकता है, क्योंकि इसने अपने को दर्पण में प्रतिबिंबित देख लिया है। यह अपने को जान रहा होगा, किंतु वैसा नहीं, जैसा यह है- बस जैसा यह प्रतिबिंबित हुआ है, उस तरह। यही एकमात्र भेद है। पर एक प्रकार से यह खतरनाक है। खतरा यह है कि तुम प्रतिबिंब से संतुष्ट हो जाओ और दर्पण का प्रतिबिंब असली समझ लिया जाए।
जहां तक स्वयं पांचवें शरीर का संबंध है, यदि ऐसा होता भी है, तो उस तल
पर कोई वास्तविक खतरा नहीं है, लेकिन छठे शरीर के संबंध में यह एक खतरा है। यदि तुमने अपने को मात्र दर्पण में ही देख लिया है, तब तुम पांचवे की सीमा पार नहीं कर सकते, और छठे में नहीं जा सकते। तुम दर्पण के द्वारा कोई सीमा पार नहीं कर सकते। इसलिये ऐसे लोग हुए है, जो पांचवे में ही रहे। वे लोग जो कहते है कि अनंत आत्माएं हैं और प्रत्येक आत्मा की अपनी निजता है- ये लोग पांचवे में ही रहे हैं। उन्होंने अपने को जान लिया है पर सीधे ही नहीं, प्रत्येक्षतः ही नहीं- बल्कि दर्पण के माध्यम द्वारा।
यह दर्पण कहां से आता है? यह आता है इन बनाई गयी धारणाओं से कि मैं आत्मा हूं, शाश्वत, अमृत। मृत्यु के परे, जन्म के परे, अपने आपको बिना जाने आत्मा मान लेना दर्पण बनाना है। तब तुम अपने आप को ऐसे नहीं जानोगे, जैसे कि तुम हो, बल्कि जैसे कि तुम अपनी धारणाओं के द्वारा प्रतिबिंबित किए गए हो।
एकमात्र भेद यह होगाः यदि ज्ञान प्रत्यक्ष, सीधा, बिना किसी दर्पण के है, यह वास्तविक है। यही एक मात्र भेद है, किंतु यह विराट भेद है- उन शरीरो के संबंध में नहीं जिन्हें तुमने पार कर लिया है, बल्कि उन शरीरों के संबंध में जिनसे तुम्हें अभी भी पार जाना है।
व्यक्ति इसके प्रति कि पांचवे शरीर में वह स्वप्न देख रहा है या वास्तविकता में रह रहा है, कैसे होश साधे? एकमात्र उपाय हैः हर तरह के शास्त्र का त्याग, हर तरह के दर्शन शास्त्र से छुटकारा पा लेना। अब वहां

कोई गुरु नहीं होना चाहिए, अन्यथा गुरु दर्पण बन जाएगा। यहां से आगे; तुम पूर्णतः अकेले हो। किसी को पथ प्रदर्शक की भांति साथ नहीं रखा जा सकता, अन्यथा वह पथ प्रदर्शक दर्पण बन जाएगा। अब यहां से आगे, एकांत पूर्ण और समस्त है। अकेलापन नहीं वरन एकांत। अकेलापन सदा दूसरो से संबंधित होता है, एकांत अपने से संबंधित है। मैं अकेलापन अनुभव करता हूं जब मेरे और किसी अन्य के मध्य कोई संपर्क नहीं होता, किंतु जब मैं होता हूं तो मैं एकांत अनुभव करता हूं।
अब व्यक्ति को हर आयाम में, शब्दों, धारणाओं, तत्त्व शास्त्रों, नीतियों, गुरुओं, शास्त्रों, ईसाईयत, हिंदू, बौद्ध, ईसा, कृष्ण, महावीर, से अलग होकर एकांत में होना चाहिए। अब व्यक्ति को अकेले होना चाहिए, अन्यथा जो भी उपस्थित होगा, दर्पण बन जाएगा। बुद्ध अब दर्पण बन जाएंगे। बहुत प्यारे लेकिन बेहद खतरनाक।
यदि तुम आत्यंतिक रूप से अकेले हो जाओ, तो वहां कुछ न रहेगा जिसमें तुम परावर्तित हो सको। इसलिये पांचवे शरीर के लिए ध्यान ही सही शब्द है। इसका अर्थ है, मन के किसी भी प्रकार से मुक्त होकर, पूर्णतः अकेले हो जाना।
इसका अर्थ है अ-मन के साथ होना। यदि वहां मन किसी भी रूप में रह गया तो यह दर्पण बन जाएगा और तुम इसमें प्रतिबिंबित हो जाओगे। अब व्यक्ति को बिना विचारो के, बिना मनन के, अ-मन होना चाहिए।
छठे शरीर में कोई दर्पण नहीं है। अब केवल ब्रह्म है। तुम खो गये हो। तुम अब नहीं बचे, स्वप्न देखने वाला नहीं है। किंतु स्वप्न अब भी स्वप्न देखने वाले के बिना अस्तित्त्व में रह सकता है। और जब स्वप्न देखने वाले के बिना स्वप्न होता है, तो यह प्रामाणिक यथार्थ की भांति प्रतीत होता है। वहां मन नहीं है। न सोचने वाला कोई है, इसलिये जो भी जाना गया वह सिधा ज्ञान हो जाता है। यह तुम्हारा ज्ञान बन जाता है। सृजन की पुराण कथाएं आती हैं, वे सामनेसे गुजरती हुअी चली जाती हैं। तुम नहीं होते, विचार, भाव ये चीजें सामनेसे गुजरती रहती हैं। वहां कोई निर्णायक नहीं होता, कोई स्वप्न देखने वाला भी नहीं होता।
किंतु वह मन जो नहीं है, अभी भी होता है। वह मन जो मिट गया था, अब भी होता है- निजी मन की भांति नहीं, वरन ब्रह्मांडीय समग्रता की भांति। तुम नहीं हो, पर ब्रह्म है। यही कारण है कि वे कहते हैं कि सारा संसार ब्रह्म का सपना है।
यह सारा संसार स्वप्न है, माया है। किसी एक का सपना नहीं बल्कि समस्त का, समग्र का सपना। तुम नहीं हो पर समग्र स्वप्न देख रहा है।
अब एक मात्र बात यह है कि स्वप्न विधायक है अथवा नहिं। यदि यह विधायक
है तो यह छलावा है, यह स्वप्न है, क्योंकि परम अर्थों में बस नकार ही होता है। जब प्रत्येक चीज उस परम का भाग बन गयी हो, जब हर चीज मूल स्रोत पर वापस आ चुकी हो, तभी प्रत्येक चीज है और साथ ही नहीं है। विधायक ही एक मात्र बची हुई बात रह जाता है। इसके भी पार छलांग लगानी पड़ेगी।
इसलिये यदि छठे शरीर में विधेय खो जाए तो तुम सांतवे में प्रविष्ट हो जाते हो। छठे की वास्तविकता सातवें का द्वार है। यदि वहां कुछ भी विधायक नहीं है- न कोई पुराणकथा, न कोई प्रतिमा-तब स्वप्न समाप्त हो जाता है। तब वही होता है जो हैः तथाता। अब अस्तित्त्व के सिवा और कुछ नहीं होता, पर बीज होता है।
जिन्होंने जाना है उन्होंने मन के इस प्रकार को बीज सहित समाधि (सबीज समाधि) कहा है। प्रत्येक चीज खो चुकी है, प्रत्येक चीज अपने मूल स्रोत, ब्रह्मांडीय बीज, पर लौट आयी है। वृक्ष नहीं है, पर बीज है। किंतु बीज से, स्वप्न देखना अभी भी संभव है इसलिये बीज को भी नष्ट करना पड़ेगा।
सातवें में न तो स्वप्न है और न वास्तविकता, तुम मात्र उसी बिंदु तक कुछ वास्तविकता भी देख सकते हो जहां स्वप्न देखना भी संभव हो। यदि स्वप्नों की कोई संभावना नहीं है, तब न वास्तविक बचता है और न आभासी।
इसलिये सातवां असली केंद्र है। अब स्वप्न और वास्तविकता एक हो गए हैं।
कोई अंतर नहीं है। या तो तुम ना कुछ का स्वप्न देखते हो या तुम ना कुछ को जानते हो, किंतु यह नाकुछपन वही रहता है।

यदि मैं तुम्हारे बारे में स्वप्न देखूं, यह आभास है। यदि मैं तुम्हें देखूं, यह वास्तविक है, लेकिन यदि मैं तुम्हारी अनुपस्थिति के बारे में स्वप्न देखूं या मैं तुम्हारी अनुपस्थिति के बाद में स्वप्न देखूं या मैं तुम्हारी अनुपस्थिति को देखूं, कोई अंतर नहीं है।
यदि तुम किसी चीज की अनुपस्थिति के बारे में स्वप्न देखो, स्वप्न वैसा ही होगा जैसी अनुपस्थिति स्वतः है। केवल किसी विधायक चीज के बारे में वास्तविक अंतर होता है। इसलिये छठे शरीर तक अंतर होता है। सातवे शरीर में मात्र ना कुछपन बचता है। यह बीज की भी अनुपस्थिति है। यह निर्बीज समाधि, बीजरहित समाधि है। इसलिये स्वप्नों की कोई संभावना नहीं है। इसलिये ये सात प्रकार के स्वप्न और सात प्रकार की वास्तविकताएं हैं।
वे एक दूसरे को बेधते हैं और इसीके कारण इतना संभ्रम होता है। किंतु यदि तुम सातों के मध्य अंतर कर लो, यदि तुम्हारी समझ इस बारे में साथ हो, तो यह बहुत सहायता करेगा। मनोविज्ञान अभी तक स्वप्नों के बारे में जानने से काफी दूर है। जो भी इसे ज्ञात है वह भौतिक के बारे में है और कभी-कभी भाव के बारे में। पर भाव की भी भौतिक की भांति ही व्याख्या की जाती है।
जुंग, फ्रायड से कहीं अधिक गहरा गया है, पर मानवीय मन के उसके विश्लेषण को पौराणिक, धार्मिक के रूप में लिया गया है। फिर भी उसके पास बीज है। यदि पाश्चात्य मनोविज्ञान को विकसित होना हो तो यह जुंग के माध्यम से होगा। वैसे फ्रायड अग्रस्थान पर था पर हर अग्रदूत आगे के विकास के लिए अवरोध बन जाता है, यदि उसके विचारों से आसक्त हो जाए; बंध जाए। अब यद्यपि फ्रायड तिथिवाह्य हो गया है, पाश्चात्य मनोविज्ञान अभी भी अपने फ्रायडीय-आरंभ से बंधा हुआ है। अब फ्रायड को इतिहास का भाग बन जाना चाहिए, मनोविज्ञान को और आगे बढ़ना चाहिए।
अमेरिका में, वे प्रयोगशाला की विधियों द्वारा, स्वप्नों के बारे में सीखने की कोशिश कर रहे हैं। वहां बहुत सी स्वप्न प्रयोगशालाएं हैं, किंतु जो विधियों का प्रयोग हो रहा हैं, वे मात्र भौतिक से संबधित हैं। यदि स्वप्नो का सारा संसार जानना हो तो योग, तंत्र और अन्य गुह्य प्रशिक्षण लेना पड़ेगा। हर प्रकार के सपने के साथ, उसके समानांतर प्रकार की वास्तविकता है, और यदि सारी माया नहीं जानी गई, यदि आभासों का सारा संसार नहीं जाना गया, तो वास्तविकता को जानना असंभव है। सिर्फ आभासी के माध्यम से ही वास्तविक को जाना जा सकता है।
किंतु जो मैंने कहा है उसे किसी सिद्धांत या व्यवस्था के रूप में मत लो। बस इसे आरंभ का बिंदु बनाओ और सचेतन मन से स्वप्न देखना शुरू करो। सिर्फ जब तुम अपने सपनों में सचेतन होते हो, सत्य जाना जा सकता है।
हम अपने भौतिक शरीर के प्रति भी अभी होशपूर्ण नहीं है। हम इसके प्रति बेहोश रहते हैं। सिर्फ जब इसका कोई भाग रुग्ण होता है, हम होशपूर्ण हो जाते हैं। व्यक्ति को अस्वास्थ शरीर के प्रति जागरुक होना तो आपातकालीन उपाय है, यह एक प्राकृतिक, अंर्तनिर्मित क्रिया है। जब शरीर का कोई हिस्सा रुग्ण हो तो तुम्हारे मन को उस पर अवधान देना ही चाहिए ताकि उसकी देखभाल की जा सके; लेकिन जिस पल यह पुनः ठीक हो जाता है तुम इसके प्रति पुनः मुर्छित हो जाते हो।
तुम्हें अपने शरीर के प्रति, इसकी गतिविधियों; सूक्ष्म संवेदनाओं, इसके संगीत, इसके मौन के प्रति जागरुक होना पड़ेगा। कभी शरीर मौन है, कभी इसमें शोरगुल होता है, कभी यह विश्रांत होता है। हर स्थिति में अनुभूति इतनी भिन्न होती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमें इसका बोध नहीं होता। जब तुम सोने जा रहे होते हो, तुम्हारे शरीर में सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं। जब तुम सुबह नींद से बाहर आ रहे हो, तो पुनः परिवर्तन होते है। उनके प्रति बोध पूर्ण होना पड़ेगा।
तुम सुबह अपनी आंखें खोलने जा रहे हो, उन्हें एक दम से न खोलो। जब तुम्हें होश आ जाये कि निंद्रा जा चुकी है, अपने शरीर के प्रति बोध पूर्ण हो जाओ। अभी अपनी आंखें मत खोलो। क्या चल रहा है? भीतर एक महत परिवर्तन घट रहा है। निंद्रा तुम्हें छोड़कर जा रही है और जागरण आ रहा है। तुमने सुबह का उगता हुआ सूरज देखा है किंतु अपने शरीर को उठते हुए कभी नहीं देखा।

इसका अपना निजी सौंदर्य है। तुम्हारे शरीर में भी भोर और सांज है। यह संध्या कहीं जाती है, संधीकाल; रूपांतरण का पल, परिवर्तन का क्षण।
जब तुम सोने जाओ; मौन पूर्वक देखो क्या घट रहा है। नींद आएगी, यह आ रही होगी। जागरुक हो जाओ। सिर्फ तभी तुम अपने भौतिक शरीर के प्रति वास्तविक रूप से जाग सकोगे और जिस पल तुम इसके प्रति जागते हो, तुम जान लोगे कि भौतिक शरीर के सपने क्या हैं? तब सुबह तुम यह स्मरण रख पाने में समर्थ होगे कि क्या भौतिक स्वप्न था और क्या नहिं। यदि तुम भीतरी अनुभूतियों, भीतरी जरूरतों, और अपने शरीर की भीतरी लय को जानते हो, तब जब वे तुम्हारे स्वप्नों में प्रतिबिंबित होती हैं तो तुम उस भाषा को समझने में समर्थ होगे।
हम अपने खुद के शरीरों की भाषा नहीं समझते। शरीर के पास अपनी स्वयं की बुद्धिमत्ता है। इसके पास हजारों-हजारों साल का अनुभव है। मेरे शरीर के पास मेरे पिता और मेरी माता का अनुभव है, और उनके माता और पिता का, और इसी भांति सदियों-सदियों का अनुभव इसे है। जिस दौरान मेरे शरीर का बीज उस रूप में विकसित हुआ है जैसा कि मेरा शरीर इस समय है उसकी निजी भाषा है। सर्वप्रथम इसे समझना पड़ेगा। जब तुम इसे समझोगे, तुम जान लोगो कि भौतिक स्वप्न क्या है? और तब सुबह तुम भौतिक स्वप्नों और अ-भौतिक सपनों का अंतर बता सकते हो।
केवल तभी एक नई संभावना खुलती है, अपने भाव शरीर के प्रति जागरुक हो पाने की। केवल तभी, पहले नहीं। तुम अधिक सूक्ष्म हो जाते हो। तुम ध्वनियों, सुगंधों, प्रकाश के अधिक सूक्ष्म स्तरों को अनुभव कर सकते हो। तब जब तुम चलते हो, तुम जानते हो कि भौतिक शरीर चल रहा है, भाव शरीर नहीं चल रहा है। भेद बिल्कुल स्पष्ट होता है। तुम खा रहे हो, भौतिक शरीर खा रहा है, भाव शरीर नहीं। भाव-प्यास, भाव-भूख, भाव-अभिलाषाएँ भी होती हैं पर ये चीजें सिर्फ तब देखी जा सकती हैं जब भौतिक शरीर पूर्णतः जान लिया गया हो। तब धीमे-धीमे अन्य शरीर ज्ञात हो जाएंगे।
स्वप्न देखना महत्तम विषयों में से एक है। यह अभी तक अनखोजा, अज्ञात, छिपा हुआ है। यह गुह्य ज्ञान का भाग है। पर अब समय आ चुका है कि हर चीज जो- गुप्त थी, खोल दी जाए। अब तक जो हर बात छुपी थी, वह अब और ज्यादा छुपी रहनी चाहिए अन्यथा यह घातक सिद्ध होगी।
अतीत में कुछ बातों के लिए आवश्यक था कि वे गुप्त बनी रहें क्योंकि अज्ञानी के हाथों में ज्ञान खतरनाक हो सकता है। यही वह घटना जो पश्चिम में वैज्ञानिक ज्ञान के साथ घट रही है। अब वैज्ञानिक इस संकट से सावधान हैं और वे मानते हैं कि कुछ वैज्ञानिक राज राजनीतिज्ञों को ज्ञात नहीं कराए जाने चाहिए थे। आगे की खोजें अज्ञात रहनी चाहिए। हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब मनुष्य इतना सक्षम हो जाए कि जानकारी खोली जा सके और यह घातक न बने।
इसी प्रकार, अध्यात्म के क्षेत्र में, पूरब में बहुत कुछ जाना गया। किंतु यदि यह अज्ञानी लोगो के हाथों में पड़ता तो यह खतरनाक सिद्ध होता, इसलिये कुंजियां छिपा दी गई। ज्ञान को गुप्त, गुह्य बना दिया गया। यह बहुत सावधानी पूर्वक एक व्यक्ति से दूसरे को दिया गया। लेकिन अब, वैज्ञानिक प्रगति के कारण, समय आ चुका है कि इसे खोल दिया जाए। यदि आध्यात्मिक; गुह्य सत्य अब भी अज्ञात रहे तो विज्ञान खतरनाक सिद्ध होगा। उन्हें खोल देना पड़ेगा ताकि आध्यात्मिक ज्ञान, वैज्ञानिक ज्ञान के साथ-साथ चलने में समर्थ हो सके।
स्वप्न, महत्तम गुह्य आयामों में से एक है। मैंने इसके बारे में कुछ कहा है ताकि तुम इसके प्रति होश पूर्ण होना शुरू कर दो किंतु मैंने तुम्हें इसका सारा विज्ञान नहीं बतलाया है। यह न तो आवश्यक है और न सहायक। मैंने अंतराल छोडा़ हैं। यदि तुम भीतर उतरो, तो वे अंतराल स्वतः भर जाएंगे। जो भी मैंने कहा, वह मात्र बाहरी पर्त है। यह तुम्हारे लिए, इसके बारे में सिद्धांत बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है, परंतु तुम्हारे आरंभ करने के लिए पर्याप्त है।

प्रवचन-11

सात शरीरों का अतिक्रमण

आपने कहा कि हमारे पास सात शरीर हैः एक भाव शरीर, एक मनस शरीर और इसके आगे अन्य। कभी-कभी भारतीय भाषा को पाश्चात्य मनोविज्ञान की शब्दावली के साथ समायोजित करना कठिन हो जाता है। हमारे पास पश्चिम में इसके बारे में कोई सिद्धांत नहीं हैं, इसलिये हम अपनी भाषा में इन विभिन्न शरीरों का अनुवाद कैसे कर सकते हैं? आत्मिक, कोई समस्या नहीं है, किंतु भाव, सूक्ष्म, मनस, हम ऐसा नहीं कह पाते हैं।

शब्दों का अनुवाद किया जा सकता है, लेकिन उन स्रोतों से जहां तुमने इसके लिए नहीं देखा है। जहां तक सतही चेतना के पार की खोज का संबंध है, जुंग फ्रायड से उत्तम है, पर जुंग भी मात्र एक आरंभ है। तुम, स्टेनर की एन्थ्रोपोसोफीकल या थियोसोफिकल लेखों से जैसे मैडम ब्लावटस्की की सीट डाक्ट्राइन इसिस अनवेल्ड और अन्य पुस्तकों से जैसे एनी वेसेन्न्न, लीड बीटर, कर्नल आल्काट की रचनाओं से, इसकी और झलक पा सकते हो कि इन चीजों का क्या अर्थ है। तुम रोजीसियन परंपराओं से इनकी झलक पा सकते हो।
पश्चिम में भी महान संन्यास परंपरा है, साथ ही एसेन्स के गुह्य लेख,
वह संन्यास परंपरा जिसके द्वारा जीसस को दीक्षा दी गई थी। और हाल ही में हुए गुर्जिएफ और आस्पेन्स्की सहायक हो सकते हैं। इसलिये टुकड़ों में कोई चीज पायी जा सकती है और ये टुकड़े साथ-साथ रखे जा सकते हैं।
और मैंने जो कहा तुम्हारी शब्दावली में कहा है। मैंने सिर्फ एक शब्द
का उपयोग किया है जो पश्चिमी शब्दावली का भाग नहीं है; निर्वाण शरीर, बाकी छः शब्द-भौतिक भाव, सूक्ष्म, मनस, आत्मिक और ब्रह्म- भारतीय नहीं हैं। वे भी पश्चिम के ही हैं। पश्चिम में सातवें की बात कभी नहीं की गई, इसलिए नहीं कि वहां कोई व्यक्ति नहीं थे जो सातवें को जानते हों, बल्कि इसलिए कि सातवें के बारे में संवाद करना असंभव है।
यदि तुम्हें ये शब्द कठिन लगते हैं, तुम मात्र, प्रथम, द्वितीय, तृतीय
और इसी तरह अन्य को भी कह सकते हो। उन्हें परिभाषित करने के लिए किसी शब्द का उपयोग मत करो; बस उनका वर्णन कर दो। यह वर्णन पर्याप्त है, शब्दावली का कोई महत्त्व नहीं है।
इन सात तक बहुत सी दिशाओं से पहुंचा जा सकता। जहां तक स्वप्नों का संबंध है, फ्रायड के, जुंग के, एडलर के शब्दों का प्रयोग हो सकता है। जिसे वे चेतन के रूप में जानते हैं, प्रथम शरीर है। अचेतन दूसरा है- बिल्कुल ठीक-ठीक वही नहीं, पर इसके काफी निकट। जिसे वे सामूहिक अवचेतन कहते हैं- तीसरा है, पुनः बिल्कुल वही नहीं वरन कुछ ऐसा जो करीब-करीब वैसा है।
और यदि कोई समतुल्य शब्द व्यवहार में नहीं है, नये शब्द गढ़े जा सकते हैं। वस्तुतः यह सदा बेहतर है क्योंकि नये शब्दों के साथ कोई पुराना अर्थ जुड़ा हुआ नहीं होता। जब एक नया शब्द उपयोग होता है, क्योंकि तुम्हारे पास इसके प्रति कोई पुराना साहचर्य नहीं है, अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है और अधिक गहनता से समझ लिया जाता है। इसलिये तुम नये शब्द गढ़ सकते हो।
भाव का अर्थ है जो आकाश और अंतरिक्ष से संबधित है। सूक्ष्म का अर्थ है सबसे छोटा, सूक्ष्म, अंतिम, परमाणुस्वरुप, जिसके पार पदार्थ का अस्तित्त्व नहीं रह पाता। मानसिक के लिए कोई परेशानी नहीं है। आत्मिक के लिए कोई कठिनाई नहीं है। ब्रह्मांडीय के लिए भी कोई मुश्किल नहीं है।
तब तुम सातवें, निर्वाण शरीर पर आते हो। निर्वाण का अर्थ है पूर्ण विराम, चरम शून्यता। अब बीज भी नहीं बचता, हर चीज समाप्त हो जाती है। भाषा शास्त्रीय रूप से इस शब्द का अर्थ है- "लौ का बुझ जाना"। लौ बुझ गयी है, रोशनी मिट गई है। तब तुम यह नहीं पूछ सकते कि यह कहां चली गयी है। इसका बस होना मिट गया है।
निर्वाण का अर्थ है लौ जो बुझ गयी। अब यह कहीं नहीं है, या सब कहीं है।
अब न तो कोई विशेष स्थान है जहां यह हो, न कोई विशेष समय या क्षण है जिसमें कि इसका अस्तित्त्व हो। अब यह स्वयं ठीक हो गया है, स्वयं काल भी हो गया

है। यह अस्तित्त्व है या अन-अस्तित्त्व, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि अब यह सब कहीं है इसलिये तुम कोई भी शब्द उपयोग कर सकते हो यदि सब कहीं नहीं हो सकता, और यदि यह सब कहीं हो तो यह कहीं (किसी स्थान-विशेष पर) नहीं हो सकता; इसलिये कहीं नहीं और सब कहीं का एक ही अर्थ है। इसलिये सातवें शरीर के लिए तुम्हें निवार्ण शरीर का प्रयोग करना पड़ेगा, क्योंकि उसके लिए अन्य कोई बेहतर शब्द नहीं है।
शब्दों में स्वयं कोई अर्थ नहीं होता। केवल अनुभवों में अर्थ होता है। अगर तुमने इन सात शरीरों के बारे में कुछ अनुभव किया हो तभी वह तुम्हारे लिए अर्थ पूर्ण होगा। तुम्हारी सहायता के लिए, हर तल पर उपयोग होने के लिए विभिन्न विधियां हैं।
भौतिक से शुरू करो। तब हर अगला कदम तुम्हारे लिए खुल जाता है। जिस क्षण तुम प्रथम शरीर पर कार्य करते हो तुम्हें दूसरे की झलकें मिलती हैं। इसलिये भौतिक से शुरू करो। हर पल इसके प्रति बोध पूर्ण रहो। और न सिर्फ बाहर से बोध पूर्ण बनो, तुम भीतर से भी अपने शरीर के प्रति जागरुक हो सकते हो। मैं अपने हाथ के प्रति बोधपूर्ण हो सकता हूं। जैसे मैं इसे बाहर से देख रहा हूं, लेकिन इसके प्रति एक अंतस अनुभूति भी है। जब मैं आंख बंद करता हूं तो हाथ नहीं दिखता, लेकिन फिर भी एक भीतरी अनुभूति होती है कि वहां कुछ है। इसलिये जिस तरह तुम्हारा शरीर बाहर से दिखता है उसके प्रति बोध पूर्ण मत होओ। यह तुम्हें भीतर की ओर नहीं ले जा सकता। भीतर की अनुभूति काफी भिन्न है।
जब तुम शरीर को भीतर से अनुभव करते हो, तो तुम पहली बार जानोगे कि शरीर
के भीतर होना क्या होता है। जब तुम इसे सिर्फ बाहर की ओर से देखते हो तुम इसके रहस्यों को नहीं जान सकते। तुम सिर्फ बाहरी परिधि को जानते हो, यह दूसरों को कैसा दिखता है।
यदि मैं अपने शरीर को बाहर से देखूं, तो मैं इसे उस तरह से देखता हूं जैसा यह दूसरों को दिखता है लेकिन मैंने यह नहीं जाना कि यह मेरे लिए कैसा है। तुम बाहर से मेरे हाथ को देख सकते हो और मैं इसे देख सकता हूं। यह वस्तुगत बात है। तुम मेरे साथ इस जानकारी को बांट सकते हो। लेकिन उस तरह से देखा गया मेरा हाथ, भीतर की ओर से नहीं जाना गया है। यह एक सार्वजनिक संपदा बन गया है। तुम भी इसे जान सकते हो मैं भी इसे जान सकता हूं।
केवल जिस पल मैं इसे भीतर से देखता हूं, यह मेरा होता है और एक ऐसे प्रकार से जो बंट सकने योग्य नहीं है। तुम इसे नहीं जान सकते, तुम नहीं जान सकते कि यह मुझे भीतर से कैसा लग रहा है। सिर्फ मैं ही यह जान सकता हूं। जो शरीर हम जानते हैं, हमारा शरीर नहीं है। यह वह शरीर है जो वस्तुगत रूप में सभी को पता है, वह शरीर नहीं है जो वास्तव में है। केवल निजी, वैयक्तिक जानकारी तुम्हें भीतर ले जा सकती है; सार्वजनिक ज्ञान नहीं। उसी कारण शरीर विज्ञान या मनोविज्ञान जो बाहर से किये गए निरीक्षण हैं, हमारे भीतरी शरीरों को नहीं जान पाए। यह मात्र भौतिक शरीर है जिसके बारे में वे जानते हैं।
इसलिये इसके कारण बहुत सी दुविधाएं बनीं है। किसी को अपने भीतर सौंदर्य का बोध हो सकता है, पर हम उसे यह मानने को बाध्य कर सकते हैं कि वह कुरूप है। यदि सामूहिक रूप से हम इस पर राजी हैं तो वह भी राजी हो सकता है। किंतु कोई भी भीतर कुरूपता अनुभव नहीं करता। भीतरी अनुभव सदा सौंदर्य का है।
बाहरी अनुभव किसी तरह वास्तविक रूप से अनुभव नहीं है। यह मात्र एक फैशन है, एक बाहर से थोपी गई कसौटी है। कोई व्यक्ति जो एक समाज में सुंदर है, दूसरे समाज के अनुसार कुरुप हो सकता है, कोई व्यक्ति जो इतिहास के एक काल में सुंदर हो, दूसरे काल में हो सकता है सुंदर न हो। किंतु भीतरी अनुभूति सदा सौंदर्य की एक निश्चित प्रतिमा है जिसमें हर व्यक्ति सहभागी है। यही कारण है कि कुरुपता और सौंदर्य हैं, अन्यथा वे नहीं होते। यदि हम सभी अंधें हो जाए, कोई कुरुप न होगा। हरेक सौंदर्यवान होगा।
इसलिये शरीर की भीतर से अनुभूति प्रथम कदम है। विभिन्न परिस्थितियों में शरीर भीतर से विभिन्न अनुभव करेगा। जब तुम प्रेम में होते हो, तुम्हें एक विशेष प्रकार की अंतर अनुभूति होती है; जब तुम घृणा महसूस करते हो, तो

अंतर अनुभूति भिन्न होती है। यदि तुम बुद्ध से पूछो, वो कहेंगे, प्रेम सौंदर्य है; क्योंकि अपनी अंतस अनुभूति में वे जानते है कि जब वे प्रेममय थे तो वे सौंदर्य युक्त थे। जब वहां घृणा, क्रोध, ईर्ष्या होती है, तो तुम्हारे भीतर कुछ ऐसा घटित होता है जो तुम्हें कुरूपता अनुभव कराने लगता है। इसलिये तुम विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न क्षणों में, मन की विभिन्न अवस्थाओं में, स्वयं को भिन्न भिन्न भांति अनुभव करोगे।
जब तुम आलस्य अनुभव करते हो और जब तुम सेये अनुभव करते हो, दोनों में भेद है। जब तुम सुप्तप्राय होते हो, तभी भी फर्क है। इन भेदों को स्पष्टता से जानना पड़ेगा। सिर्फ तब तुम अपने शरीर के अंदर के जीवन से परिचित होगे। तब अपने शरीर का भीतरी इतिहास, भीतरी भूगोल, बचपन में, यौवन में और वृद्धावस्था में जान लेते हो।
जिस पल कोई भीतर से अपने शरीर के प्रति पूर्णतः जागरुक हो जाता है तो दूसरा शरीर स्वतः नजरों में आ जाता है। अब यह दूसरा शरीर बाहर से जाना जाएगा। यदि तुम पहले शरीर को भीतर से जानते हो तो तुम दूसरे शरीर के प्रति बाहर से जागरुक हो जाओगे। पहले शरीर के बाहर से, तुम कभी दूसरे शरीर को नहीं जान सकते, किंतु इसके भीतर से तुम दूसरे शरीर का बाह्य तल देख सकते हो। प्रत्येक शरीर के दो आयाम हैं, बाहरी और भीतरी। बिल्कुल जैसे दीवार की दो सतहें होती हैं- एक बाहर से दिखती हुई और दूसरी भीतर से दिखती हुई- हर शरीर की भी एक सीमा, एक दीवार है। जब तुम पहले शरीर को भीतर से जानते हो, तो तुम दूसरे शरीर के प्रति बाहर से जागरुक हो जाते हो।
अब तुम बीच में हो, प्रथम शरीर के भीतर और दूसरे शरीर के बाहर। यह दूसरा शरीर, भाव शरीर, सघन धुएं की भांति है। तुम इसके पार बिना किसी अवरोध के जा सकते हो, लेकिन यह पारदर्शक नहीं है, तुम बाहर से इसमें देख नहीं सकते। पहला शरीर ठोस है, दूसरा शरीर, जहां तक आकृति का संबंध है पहले की ही भांति है पर ठोस नहीं है।
जब प्रथम शरीर मरता है तो दूसरा शरीर तेरह दिन जीवित रहता है। यह तुम्हारे साथ यात्रा करता है। तब तेरह दिनों के बाद यह भी मृत हो जाता है। यह बाष्पित, विसर्जित हो जाता है। यदि पहले शरीर के जीवित रहते हुए ही तुमने दूसरे को जान लिया हो, तो तुम इस घटना के प्रति होशपूर्ण हो सकते हो। दूसरा शरीर तुम्हारे शरीर से बाहर जा सकता है। कभी-कभी ध्यान में यह दूसरा शरीर ऊपर या नीचे जाता है, और तुम्हें अनुभव होता है कि गुरुत्व का तुम पर कोई खिंचाव न रहा, तुमने धरती छोड़ दी है। किंतु जब तुम अपनी आंखें खोलते हो, तुम भूमि पर होते हो, और तुम जानते हो कि तुम सारे समय वहीं थे। यह अनुभूति कि तुम ऊपर उठ गए हो, पहले के नहीं दूसरे के कारण आती है। दूसरे के लिए कोई गुरुत्व बल नहीं है, इसलिये जिस पल तुम दूसरे को जानते हो तुम एक विशेष मुक्ति अनुभव करते हो, जो भौतिक शरीर के लिए अनजानी थी। अब तुम अपने शरीर के बाहर जा सकते हो और लौट सकते हो।
यदि तुम दूसरे शरीर के अनुभवों को जानना चाहते हो तो यह दूसरा कदम है।
और विधि कठिन नहीं है। बस अपने शरीर से बाहर होने की इच्छा करो और तुम इसके बाहर होते हो। इच्छा स्वतः ही पर्याप्त है। दूसरे शरीर के लिए कोई प्रयास नहीं है। पहले शरीर के साथ कठिनाई है, गुरुत्वीय बल के कारण। यदि मैं तुम्हारे घर आना चाहूंगा, मुझे गुरुत्व बल से संघर्ष करना पड़ेगा। लेकिन यदि कोई गुरुत्व न हो तो मात्र मामूली सी इच्छा ही काफी होगी। घटना घट जाएगी।
भाव शरीर ही वह शरीर है जिस पर सम्मोहन में काम किया जाता है। सम्मोहन में पहला शरीर शामिल नहीं होता, दूसरा होता है। यही कारण है कि एक व्यक्ति परिपूर्ण दृष्टि होते हुए भी अंधा हो सकता है। यदि सम्मोहक कहता है कि तुम अंधे हो गये हो, तुम मात्र यह विश्वास करते ही अंधे हो जाते हे। यह भाव शरीर है जो प्रभावित हो गया है, ये सुझाव भाव शरीर पर जाता है।
यदि तुम गहन सम्मोहन में हो, तुम्हारा दूसरा शरीर प्रभावित किया जा सकता है। एक व्यक्ति जो बिल्कुल ठीक है, मात्र उसे सुझाव देने से कि "तुम पंगु हो", पंगु किया जा सकता है। सम्मोहक को ऐसी भाषा उपयोग नहीं करना चाहिए जो संदेह उत्पन्न करे। यदि वह कहता है, "ऐसा प्रतीत होता है कि तुम

अंधे हो गये हो" तो यह कार्य नहीं करेगा। उसे इसके बारे में पूर्णतः निश्चित होना चाहिए। सिर्फ तभी वह सुझाव कार्य करेगा।
इसलिये दूसरे शरीर में मात्र कहो; "मैं शरीर के बाहर हूं"। बस इसके बाहर होने की इच्छा करो और तुम इसके बाहर होगे।
सामान्य नींद पहले शरीर से संबधित है। यह पहला शरीर है- दिनभर के श्रम, कार्य, तनाव से थका हुआ- जो विश्राम में है। सम्मोहन में यह दूसरा शरीर है, जो सुला दिया जाता है। यदि यह सुला दिया जाए, तुम इसके साथ कार्य कर सकते हो।
जब तुम किसी रोग से घिरते हो, इसका पचहत्तर प्रतिशत दूसरे शरीर से आता
है और पहले पर फैल जाता है। दूसरा शरीर सुझावों के प्रति इतना अधिक ग्राह्य होता है कि पहले वर्ष में चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थी सदा वह बीमारी पकड़ लेते हैं जो पढ़ाई जा रही हो। उनमें वे लक्षण पैदा होने लगते हैं। यदि सिरदर्द पर चर्चा चल रही हो तो अनजाने में हर व्यक्ति भीतर पूछने लगता है, क्या मुझे भी सिरदर्द है? क्या ये लक्षण मेरे भी है? क्योंकि भीतर जाना भाव शरीर को प्रभावित करता है, इसलिये सुझाव ग्रहण कर लिया जाता है और सिरदर्द निर्मित हो जाता है।
शिशु जन्म का दर्द प्रथम शरीर का नहीं है यह दूसरे का है। इसलिये सम्मोहन के माध्यम से, शिशु जन्म बिल्कुल पीड़ा रहित बनाया जा सकता है- मात्र सुझाव द्वारा। कुछ आदिम समाज है जिनमें स्त्री प्रसव पूर्व के दर्द महसूस नहीं करती क्योंकि यह संभावना ही उनके मन में कभी नहीं आयी है। किंतु हर प्रकार की सभ्यता समान सुझाव निर्मित करती है, जो तब प्रत्येक व्यक्ति की अपेक्षाओं का भाग और विषय वस्तु बन जाते हैं।
सम्मोहन के प्रभाव में कोई दर्द नहीं होता। सम्मोहन के प्रभाव में शल्य क्रिया भी की जा सकती है, क्योंकि अगर दूसरे शरीर ने यह सुझाव ग्रहण कर लिया कि कोई दर्द नहीं होगा तो कोई दर्द नहीं होता है। जहां तक मेरी बात है; हर प्रकार की पीड़ा और हर प्रकार का हर्ष भी, दूसरे शरीर से आते हैं और पहले पर फैल जाते हैं। इसलिये यदि सुझाव बदल जाए तो वही बात जो पीड़ा पूर्ण थी हर्षदायक हो सकती है और इसका विपरीत भी हो सकता है।
सुझाव को बदलो, भाव-मन को बदलो और हर चीज बदल जाएगी। बस समग्रता से अभिलाषा करो और यह हो जाएगा। अभिलाषा और संकल्प में केवल समग्रता का ही भेद है। जब तुमने किसी बात की समग्रता से, पूर्णता से अपने सारे मन से अभिलाषा की है तो यह संकल्प शक्ति बन जाती है।
यदि तुम अपने भौतिक शरीर से बाहर जाने की समग्रतः अभिलाषा करो, तुम इसके बाहर जा सकते हो। तब यह संभावना है कि तुम दूसरे शरीर को भीतर से जानो; अन्यथा नहीं। जब तुम अपने भौतिक शरीर से बाहर जाते हो, तुम फिर बीच में नहीं होते, पहले के भीतर और दूसरे के बाहर। अब तुम दूसरे के भीतर हो। प्रथम शरीर नहीं है।
अब तुम भीतर से अपने दूसरे शरीर के प्रति जागरुक हो सकते हो, बिल्कुल वैसे ही जैसे कि तुम पहले शरीर के प्रति भीतर से जागरुक हुए थे। इसकी भीतरी कार्यविधि, भीतरी यांत्रिकता, भीतरी जीवन के प्रति जागरुक हो जाओ। प्रथम बार तुम यह प्रयास करोगे तो यह मुश्किल होगा, किंतु बाद में तुम सदा दो शरीरों के भीतर रहोगे, पहले और दूसरे के। अब तुम्हारे अवधान का बिंदु दो आयामों, दो क्षेत्रों में होगा।
जिस पल तुम दूसरे शरीर के भीतर होते हो तुम तीसरे शरीर, सूक्ष्म के बाहर होगे। जहां तक सूक्ष्म का संबंध है, वहां किसी संकल्प की भी कोई जरूरत नहीं है। मात्र भीतर होने की अभिलाषा पर्याप्त है। यहां पर अब समग्रता का प्रश्न नहीं है। यदि तुम भीतर जाना चाहो, तुम भीतर जा सकते हो। सूक्ष्म शरीर दूसरे शरीर की भांति वाष्प के रूप में होती है, लेकिन यह पारदर्शी है। इसलिये जिस पल तुम बाहर हो, तुम भीतर आ जाओगे। तुम जान भी नहीं पाओगे कि तुम अंदर हो या बाहर हो क्योंकि सीमा पारदर्शी है। सूक्ष्म शरीर का आकार पहले शरीरों के समान होता है। पांचवें शरीर तक आकार वही होता है। विषय वस्तु बदलेगी, पर आकार वही रहेगा- पांचवे तक। छठे शरीर के साथ आकार ब्रह्मांडीय हो जाएगा। और सातवें के साथ- कोई आकार नहीं होगा; ब्रह्मांडीय भी नहीं।

चौथा शरीर बिल्कुल दीवारहीन है। तीसरे शरीर के भीतर से कोई पारदर्शी दीवार भी नहीं होती। यह मात्र एक सीमा है, दीवार रहित, इसलिये भीतर प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं है और किसी विधि की भी आवश्यकता नहीं है। इसलिये वह जिसने तीसरे को उपलब्ध कर लिया, चौथे को बहुत आसानी से उपलब्ध कर सकता है।
लेकिन चौथे के पार जाना, इसमें उतनी ही कठिनाई है, जितनी पहले के पार जाने में, क्योंकि अब मनस मिट जाता है। पांचवा आत्मिक शरीर है। इस तक पहुंचने से पूर्व पुनः एक दीवार है, उन अर्थों में नहीं जिस तरह पहले शरीर और दूसरे शरीर के बीच दीवार थी। अब दीवार विभिन्न आयामों के मध्य है। यह दूसरे तल की है।
चारों निम्नतर शरीर एक ही तल से संबधित थे। विभाजन क्षैतिज था। अब यह ऊर्ध्वगामी है। इसलिये चौथे और पांचवें के मध्य की दीवार, नीचे के किन्हीं दो शरीरों के बीच की दीवार से ज्यादा दुरूह है- क्योंकि हमारे देखने की सामान्य शैली आसपास देखने की है, ऊपर-नीचे नहीं। किंतु चौथे शरीर से पांचवें शरीर को जाना एक निम्नतर तल से उच्चतर तल की ओर जाना है। अंतर भीतर और बाहर का नहीं है बल्कि ऊपर और नीचे का है। अब जब तक कि तुम ऊपर की ओर देखना शुरू न करो तुम पांचवे पर न पहुंचोगे।
मन सदा नीचे की ओर देखता है। यही कारण है कि योग मन के विरुद्ध है। मन, पानी की तरह नीचे की ओर बहता है। पानी कभी किसी आध्यात्मिक व्यवस्था का प्रतीक नहीं बनाया गया क्योंकि इसका अंतरतम स्वभाव नीचे की ओर बहना है। अग्नि बहुत सी व्यवस्थाओं की प्रतीक रही हैं। अग्नि ऊपर की ओर जाती है, यह कभी नीचे की ओर नहीं जाती। इसलिये चौथे शरीर से पांचवे शरीर में जाने में अग्नि प्रतीक है। व्यक्ति को ऊपर की ओर देखना चाहिए, उसे नीचे की ओर देखना रोकना पड़ेगा।
ऊपर कैसे देखा जाए? क्या विधि है? तुमने सुना ही होगा कि ध्यान में आंखों को ऊपर आज्ञा चक्र की ओर देखती हुई होना चाहिए। आंखों को ऊपर की ओर केंद्रित होना चाहिए जैसे कि तुम अपनी खोपड़ी के अंदर देखना चाहते हो। आंखें बहुत प्रतीकात्मक है। वास्तविक प्रश्न देखने का है। हमारी दृष्टि, हमारा देखने का क्षेत्र, आंखों से जुड़ा है; इसलिये जब अंर्तदृष्टि घटती है, तो आंखें ही इसका माध्यम बनती हैं। यदि तुम अपनी आंखों को ऊपर उठाओ, तो तुम्हारी दृष्टि भी ऊर्ध्वगामी हो जाती है।
राजयोग चौथे शरीर से आरंभ होता है। सिर्फ हठयोग पहले शरीर से शुरू होता है। दूसरे योग किसी और बिंदु से शुरू होते हैं। थियोसोफी दूसरे शरीर से शुरू होती है, और दूसरी व्यवस्थाएं तीसरे से। जैसे सभ्यता प्रगति करते करते चौथे शरीर तक पहुंचती है, बहुत से लोग वहां से शुरू करने में समर्थ हो जाएंगे।
लेकिन यदि उन्होंने अपने पीछे के जन्मों में तीन शरीरों पर कार्य कर लिया है, तो ही चौथे का प्रयोग हो सकेगा। वे लोग जो शास्त्रों से, या स्वामियों और गुरुओं से, बिना यह जाने हुए कि उन्होंने अपने पहले तीन शरीरों पर कार्य कर लिया है अथवा नहीं, राजयोग का अध्ययन करते हैं, उनको ठीक ठीक समझना होगा, क्योंकि कोई चौथे से शुरू ही नहीं कर सकता। पहले तीनों को पार करना पड़ेगा। केवल तभी चौथा आ सकता है।
चौथा शरीर आरंभ करने के लिए अंतिम शरीर है। चारयोग हैं; प्रथम शरीर के लिए हठ योग, दूसरे के लिए मंत्र योग, तीसरे के लिए भक्ति योग और चौथे के लिए राज योग। पुराने दिनों में, प्रत्येक को पहले शरीर से शुरू करना पड़ता था, लेकिन अब बहुत प्रकार के लोग हैं, किसी ने दूसरे शरीर तक का कार्य अपने पिछले जीवन में ही कर लिया है, किसी ने तीसरे तक का और इसी तरह किसी ने किसी शरीर तक। लेकिन जहां तक स्वप्नों का प्रश्न है, व्यक्ति को पहले शरीर से शुरू करना पड़ेगा। केवल तब ही तुम इसका पूरा विस्तार, पूरा वर्णन जान सकते हो।
इसलिये चौथे शरीर में तुम्हारी चेतना को अग्नि की भांति, ऊर्ध्वगामी
हो जाना पड़ेगा। इसे मालूम करने के बहुत से उपाय हैं। उदाहरण के लिए, यदि मन काम की ओर प्रवाहित हो रहा है, यह पानी के नीचे की ओर बहने के सदृश है,

क्योंकि काम केंद्र नीचे की ओर है। चौथे शरीर में व्यक्ति को आंखों को ऊपर की ओर उठाना शुरू करना पड़ेगा, नीचे की ओर नहीं।
यदि चेतना को ऊपर की ओर जाना हो, तो व्यक्ति को उस केंद्र से शुरू करना चाहिए जो नेत्रों के ऊपर हो, नेत्रों के नीचे नहीं। आंखों के ऊपर मात्र एक केंद्र है जिससे द्वारा गति ऊर्ध्वगामी हो सकती है, यह है आज्ञा चक्र। अब दोनों आंखों को ऊपर की ओर, तीसरी आंख की ओर देखना पड़ेगा।
तीसरी आंख को बहुत से उपायों से याद रखा गया है। भारत में क्वांरी और विवाहिता लड़की के मध्य अंतर, विवाहिता की तीसरी आंख पर रंगीन चिह्म (बिंदी) अंकित करके, किया जाता है। क्ंवारी तो नीचे की ओर, काम केंद्र की ओर देखने के लिए बाध्य है, लेकिन जिस पल उसकी शादी हो गयी उसे ऊपर की ओर देखना आरंभ कर देना चाहिए। काम को कामुकता से अकामुकता में बदला जाना चाहिए। ऊपर देखने की स्मृति में सहायता के लिए एक रंगीन चिह्म, एक तिलक तीसरी आंख पर लगाया जाता है।
तिलक का चिंह्म बहुत से लोगों जैसे संन्यासियों, उपासकों के माथों पर अंकित किया गया है- बहुत से रंगों के विभिन्न चिह्म। या यह भी संभव था कि चंदन का उपयोग हो। जिस पल तुम्हारी दोनों आंखें ऊपर की और, तीसरी आंख की ओर देखती हैं, उस केंद्र पर बहुत उत्ताप निर्मित होने लगता है, जलने की संवेदना वहां होती है। तीसरी आंख खुलना शुरू कर रही है और इसे शीतल रखा जाना चाहिए। इसलिये भारत में चंदन के लेप का उपयोग होता है। यह न सिर्फ शीतल है, इसमें एक विशेष तरह की गंध भी होती है जो तीसरे शरीर और इसके अतिक्रमण के संबधित है। सुगंध की शीतलता, और वह विशेष स्थान जहां यह लगायी गई है, एक ऊर्ध्वमुखी आकर्षण, तीसरी आंख की स्मृति, बन जाते हैं।
यदि तुम आंखे बंद कर लो और मैं अपनी उंगली तुम्हारी तीसरी आंख के स्थान पर रखूं, मैं वस्तुतः तुम्हारी तीसरी आंख को छू नहीं रहा होऊंगा, पर तुम इसे अनुभव करने लगोगे। मात्र इतना दबाव ही पर्याप्त है। मात्र एक स्पर्श, बस सिर्फ एक ऊँगली छुआना। इसलिये सुगंध, इसका सूक्ष्म स्पर्श और इसकी शीतलता, पर्याप्त हैं। तब तुम्हारा अवधान सदा तुम्हारी आंखों से तीसरी आंख की ओर प्रवाहित होता रहता है।
इसलिये चौथे शरीर को पार करने के लिए मात्र एक ही विधि है, एक ही तरकीब है, और वह है ऊपर देखना। शीर्षासन (सर के बल खड़ा होना) शरीर की उल्टी स्थिति का भी प्रयोग इसके लिए किया गया है, क्योंकि सामान्यतः हमारी आंखें नीचे की ओर देखती हैं। यदि तुम सर के बल खड़े हो जाओ तो तुम अब भी नीचे की ओर देखोगे। किंतु अब नीचे की ओर ऊर्ध्वमुखी दिशा है। तुम्हारी ऊर्जा का अधोगामी प्रवाह, ऊर्ध्वगामी प्रवाह में बदल जाएगा।
यही कारण है कि ध्यान में, कुछ लोग, अनायास भी उल्टी स्थिति में चले जाएंगे। वे शीर्षासन करने लगेंगे क्योंकि ऊर्जा का प्रवाह बदल चुका है। उनका मन अधोगामी प्रवाह का इतना आदी है कि जब ऊर्जा दिशा बदलती है तो वे बेचैनी महसूस करेंगे। जब वे अपने सर के बल खड़े होना शुरू कर देंगे तो वे पुनः ठीक अनुभव करेंगे, क्योंकि ऊर्जा का प्रवाह पुनः अधोगामी हो जाएगा। लेकिन वास्तविक रूप से यह नीचे की ओर नहीं जा रही होगी। तुम्हारे केंद्रों, चक्रों के संदर्भ में, ऊर्जा अभी भी ऊपर की ओर जा रही होगी। इसलिये तुम्हें चौथे से पांचवें में ले जाने के लिए शीर्षासन का प्रयोग एक विधि के रूप में किया गया। मुख्य बात जो याद रखनी है वह है- ऊपर की ओर देखना। यह त्राटक के (एक निश्चित वस्तु को एकटक देखना) द्वारा, सूर्य पर अवधान केंद्रित करके बहुत सी वस्तुओं के माध्यम से किया जा सकता है। लेकिन इसे अंदर से करना उत्तम है। बस आंखें बंद कर लो।
लेकिन पहले, पूर्व के चार शरीरों को पार करना पड़ेगा। केवल तब ही यह सहायक होगा, अन्यथा नहीं। अन्यथा यह गड़बड़ी पैदा कर सकता है, यह अनेकों प्रकार के मानसिक रोग उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि व्यवस्था का सारा समायोजन अस्तव्यस्त हो जाएगा। चारों शरीर नीचे देख रहें हैं और अपने भीतरी मन से तुम ऊपर की ओर देख रहे हो। तब बहुत संभावना है कि इसका परिणाम स्कीजोफ्रेनिया, खंडीत मानसिकता हो।
मेरे लिए, खंडीत मानसिकता इसी तरह के कृत्य का परिणाम है। यही कारण है
कि सामान्य मनोविज्ञान खंडीत मानसिकता के गहरे कारण नहीं खोज सकता।

खंडीत मानसिकता में मन एक साथ विरोधी दिशाओं में कार्य करता है, बाहर रहकर भीतर देखना, बाहर रहते हुए, ऊपर देखना। तुम्हारा सारा तंत्र लयबद्धता में होना चाहिए। यदि तुमने अपने भौतिक शरीर को भीतर से नहीं जाना है, तब तुम्हारी चेतना अधोमुखी ही होगी। यही स्वास्थ्यप्रद होगा, यह समायोजन उचित है। तुम्हें बर्हिगामी मन को ऊर्ध्वगामी बनाने का प्रयास कभी नहीं करना चाहिए। अन्यथा खंडीत मानसिकता, मन का बंटवारा, परिणाम में आएगा। हमारी सभ्यतायें, हमारे धर्म, मनुष्यता के विभक्त व्यक्तित्व के मूल भूत कारण हैं। वे हमारी परिपूर्ण लयबद्धता से संबंधित नहीं रहे हैं। ऐसे शिक्षक हैं, जो उन व्यक्तियों को, जो अपने भौतिक शरीर के भीतर भी नहीं गये हैं, ऊर्ध्वगमन की विधियां सिखाते हैं। विधि कार्य करने लगती है और व्यक्ति का एक भाग शरीर के बाहर ही रह जाता है जबकि दूसरा ऊर्ध्वगामी हो जाता है। तब इन दोनों के मध्य एक विभाजन होगा। वह दो व्यक्ति बन जाएगा, कभी यह कभी वह, कभी चंदूलाल और कभी नसरुद्दीन।
इस बात की बहुत संभावना है कि एक व्यक्ति एक साथ सात व्यक्ति बन जाए।
तब विभाजन पूर्ण हो जाता है। वह सात विभिन्न ऊर्जायें बन जाता है। उसका एक भाग अधोगामी है, पहले शरीर से संबंधित है, दूसरा भाग दूसरे शरीर से चिपका हुआ है, एक अन्य भाग तीसरे से। एक भाग ऊपर की ओर जा रहा है; एक अन्य कहीं और जा रहा है। उस व्यक्ति में कहीं भी कोई केंद्र नहीं है।
गुर्जिएफ कहा करता था कि ऐसा व्यक्ति एक मकान की भांति है, जिसका मालिक अनुपस्थित है और हर नौकर अपने मालिक होने का दावा करता है। और कोई इससे इनकार नहीं कर सकता, क्योंकि मालिक स्वयं अनुपस्थित है। जब कोई कोई इस मकान में आता है और दरवाजा खटखटाता है तो जो नौकर निकट होता है, मालिक बन बैठता है। अगले दिन कोई और नौकर द्वार पर की पुकार का उत्तर देता है और अपनी मालकियत का दावा करता है।
खंडीत मानसिकता का व्यक्ति बिना केंद्र के होता है। और हम सभी उस तरह
के हैं। बस इतना है कि हमने अपने को समाज के साथ समायोजित कर रखा है। अंतर तो मात्र अंशों का है। मालिक अनुपस्थित है या सुप्त है और हर भाग मालकियत का दावा करता है। जब काम की पुकार होती है तो काम मालिक हो जाता है। तुम्हारी नैतिकता, तुम्हारा परिवार, तुम्हारा धर्म, हर चीज अस्वीकृत हो जाएगी। काम मकान का संपूर्ण मालिक हो जाता है। और जब काम जा चुकता है तो हताशा आती है। तुम्हारा तर्क मालिक हो जाता है और कहता है, "मैं मालिक हूं"। सब तर्क सारे मकान की मालकियत का दावा करेगा और काम को स्थान देने से रोकेगा।
हरेक पूरे मकान का दावा करता है। जब क्रोध उठता है वह मालिक हो जाता है। अब वहां कोई तर्क, कोई चेतनता नहीं होती। क्रोध में कोई और हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इसी कारण हम औरों को नहीं समझ पाते। एक व्यक्ति जो प्रेमपूर्ण था, क्रोधित हो जाता है और वहां अचानक कोई प्रेम नहीं होता। अब यह बात हम नहीं समझ पाते कि वह प्रेमपूर्ण है अथवा नहीं। प्रेम तो मात्र एक नौकर था और क्रोध भी मात्र एक नौकर है। मालिक अनुपस्थित है। यही कारण है कि तुम किसी अन्य पर सामान्यतः भरोसा नहीं कर सकते। वह खुद अपना मालिक नहीं है, कोई भी नौकर मालकियत ले सकता है। वह एक नहीं है, वह एक इकाई नहीं है।
जो मैं कह रहा हूं वह यह है कि व्यक्ति को पहले चार शरीरों को पार किए बिना, ऊपर देखने की विधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अन्यथा एक विभाजन निर्मित हो जाएगा, जिसे जोड़ना असंभव होगा; और व्यक्ति को पुनः आरंभ करने के लिए अपने अगले जन्म तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यह अधिक उत्तम है कि उन विधियों का अभ्यास करो जो आरंभ से शुरू होती हैं।
यदि तुमने अपने पिछले जन्मों में अपने पहले तीन शरीरों को पार कर लिया है, तो तुम उन्हें पुनः एक क्षण में पार कर लोगे। उसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम सीमाओं को जानते हो, तुम पथ से परिचित हो। एक पल में वे तुम्हारे समक्ष आ जाते हैं। तुम उन्हें पहचान लेते हो- और बस तुमने उन्हें पार कर लिया। तब तुम आगे जा सकते हो। इसलिये मेरा जोर सदा प्रथम शरीर से आरंभ करने पर है, हरेक के लिए।

चौथे शरीर से आगे जाना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है। चौथे शरीर तक तुम मानव हो। अब तुम अतिमानव हो जाते हो। पहले शरीर में तुम मात्र एक पशु हो। केवल दूसरे शरीर के साथ मनुष्यता अस्तित्त्व में आती है। और केवल चौथे में ही यह पूरी तरह खिलती है। सभ्यता कभी चौथे के पार नहीं गई। चौथे के पार मनुष्यता का अतिक्रमण होता है। हम जीसस को मानव के रूप में नहीं रख सकते। एक बुद्ध, एक महावीर, एक कृष्ण मानव के पार हैं। वे अतिमानव हैं। ऊर्ध्वमुखी दृष्टि चौथे शरीर से छलांग है। जब मैं अपने भौतिक शरीर को बाहर से देख रहा हूं; मैं मात्र एक पशु हूं जिसमें मनुष्य हो पाने की संभावना है। अंतर मात्र यह है कि मैं मनुष्य हो सकता हूं और पशु ऐसा नहीं हो सकता। जहां तक वर्तमान स्थिति का संबंध है, हम दोनों मानवीयता से नीचे हैं, अव-मानवीय हैं। किंतु मुझमें पार जाने की संभावना है और दूसरे शरीर से तथा इससे आगे, मनुष्य की खिलावट घटित होती है।
चौथे शरीर में भी कोई व्यक्ति हमें अति मानवीय लग सकता है। वे होते नहीं है। एक आइंस्टीन या एक वाल्टेयर अतिमानव लगते हैं पर वे हैं नहीं। वे मानवीयता की समग्र खिलावट हैं और हम मानव से नीचे हैं; इसलिये वे हमसे ऊंचे हैं। लेकिन वे मनुष्य से ऊपर नहीं हैं। सिर्फ कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, या कोई जरथुस्त्र मनुष्य से कुछ और अधिक हैं। ऊपर देखने से, अपनी चेतना को चौथे शरीर से ऊपर उठाने से, उन्होंने मन की सीमा पार कर ली है, वे मानसिक शरीर का अतिक्रमण कर चुके हैं।
हमारे समझने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टांत हैं। मोहम्मद ऊपर की
ओर देखते हुए, कहते हैं कि उनके पास कुछ ऊपर से आया है; इलहाम हुआ है। हम इस ऊपर की भूगोलीय व्याख्या करते हैं, इसलिये आकाश देवताओं का निवास बन जाता है। हमारे लिए ऊपर की ओर का अर्थ है आकाश, नीचे की ओर का अर्थ है धरती से नीचे की पर्त। लेकिन यदि हम इस तरह व्याख्या करें, तो प्रतीक समझा नहीं गया है। जब मोहम्मद ऊपर की ओर देख रहे हैं, वे आकाश की ओर नहीं देख रहे हैं, वे आज्ञा चक्र की ओर देख रहे हैं। जब वे कहते है कि कुछ ऊपर से आया है, उनका अनुभव सही है। किंतु ऊपर का हमारे लिए भिन्न अर्थ है।
प्रत्येक चित्र में जरथुस्त्र ऊपर की ओर देख रहे है। उनकी आंखें कहीं अधोमुखी नहीं हैं। जब उन्होंने पहली बार दिव्यता को देखा तो वे ऊपर की ओर देख रहे थे। दिव्यता उन तक अग्नि के रूप में आयी। यही कारण है कि पारसी लोग अग्निपूजक हैं। अग्नि की अनुभूति आज्ञा चक्र से आती है। जब तुम ऊपर की ओर देखते हो, वह स्थान अग्निमय अनुभव होता है, जैसे कि सब कुछ जल रहा हो। उस दहन से तुम रूपांतरित हो जाते हो। निचला अस्तित्त्व जल जाता है, यह मिट जाता है, और ऊपरी अस्तित्त्व उत्पन्न होता है। आग से गुजरने का यही अर्थ है।
पांचवें शरीर के बाद तुम एक अन्य ही क्षेत्र, एक अन्य ही आयाम में पहुंचते हो। पहले शरीर से चौथे शरीर तक, गति बाहर से भीतर की ओर है, चौथे से पांचवे तक यह अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी है, पांचवें से यह अहंकार से निर-अहंकार की ओर है। अब आयाम भिन्न है। अब बाहर, भीतर, अधोमुखी या ऊर्ध्वमुखी का कोई प्रश्न नहीं है। प्रश्न मैं और न-मैं का है। अब प्रश्न इससे संबंधित है कि कोई केंद्र है या नहीं।
पांचवे शरीर तक व्यक्ति बिना केंद्र का होता है- कई भागों में बंटा। सिर्फ पांचवे शरीर के लिए केंद्र होता हैः एक एकता, एक इकाई। किंतु यह केंद्र अहंकार बन जाता है। अब यह केंद्र आगे की प्रगति के लिए अवरोध होगा। प्रत्येक कदम जो सहायक था, आगे की प्रगति के लिए रुकावट बन जाता है। हर उस पुल को जो तुमने पार किया था, अब तुम्हें छोड़ना पड़ेगा। यह पार करने में सहायक था, लेकिन यदि तुम इससे चिपक जाओ, तो यह अवरोध बन जाएगा।
पांचवें शरीर तक केंद्र निर्मित करना पड़ता है। गुर्जिएफ कहता है कि
यह पांचवा केंद्र स्वामित्व है। अब वहां नौकर न रहे, मालिक ने उत्तरदायित्व संभाल लिया है। अब मालिक ही स्वामी है। वह जाग गया है, वह वापस लौट आया है। अब मालिक उपस्थित है, नौकर हट जाते हैं, वे खामोश हो जाते हैं।
इसलिये जब तुम पांचवें शरीर में प्रविष्ट होते हो; अहंकार का घनीभूत होना घटित होता है। लेकिन अब, आगे की प्रगति हेतु इस घनीभूत होने को भी खो

देना पड़ेगा। शून्य में, ब्रह्म में खो जाओ। केवल वही जिसके पास है, खो सकता है, इसलिये पांचवें शरीर से पूर्व अहंकार शून्यता की बातें करना मूर्खता है, असंगत बात है। तुम्हारे पास अहंकार है ही नहीं, इसलिये तुम इसे कैसे छोड़ सकते हो? या तुम कह सकते हो कि तुम्हारे पास बहुत से अहंकार हैं, हर नौकर का एक अहंकार है। तुम बहु अहंवान, बहु व्यक्तित्ववान, बहु चित्तवान हो किंतु एक एकीकृत अहं नही हो।
तुम अहंकार नहीं छोड़ सकते, क्योंकि तुममें यह है ही नहीं। एक धनी आदमी अपने धन को छोड़ सकता है, लेकिन एक गरीब नहीं। उसके पास त्यागने के लिए, छोड़ने के लिए, कुछ भी नहीं है। लेकिन ऐसे गरीब लोग हैं जो त्याग के बारे में सोचते हैं। एक धनी व्यक्ति छोड़ने से भयभीत होता है क्योंकि उसके पास खोने के लिए कुछ है; लेकिन एक गरीब आदमी सदा त्याग के लिए तैयार रहता है। वह तैयार है, पर उसके पास त्याग ने को कुछ नहीं है।
पांचवा शरीर समृद्धतम है। यह उन सभी बातों की, जो मनुष्य के लिए संभव हैं, चरम ऊंचाई है। पांचवा, व्यक्तित्व का शिखर है, प्रेम का, करुणा का, और हर उस चीज का, जो सार्थक है, शिखर है। कांटे खो चुके हैं। अब फूल को भी खो जाना चाहिए। तब वहां केवल सुगंध ही बचेगी, फूल नहीं।
छठा सुगंध का, ब्रह्मांडीय सुगंध का आयाम है। कोई फूल नहीं, कोई केंद्र नहीं, एक परिधि, लेकिन केंद्र नहीं। तुम कह सकते हो कि हर चीज केंद्र बन गयी है या कि अब कोई केंद्र नहीं है। वहां मात्र एक विस्तीर्णता का अनुभव है। वहां कोई बंटवारा, कोई विभाजन नहीं है- "मैं" और न मैं, मैं और दूसरा के बीच में भी व्यक्ति का कोई विभाजन नहीं है। वहां किसी भी तरह विभाजन नहीं है।
इसलिये व्यक्ति दो तरह से मिट सकता है, एक स्कीजोफ्रेनिक, अनेको व्यक्तित्व में बंटा हुआ और दूसरा ब्रह्मांडीय- परम में, महत्तम में, ब्रह्म में लीन; विस्तीर्णता में विसर्जित। अब फूल नहीं है, लेकिन सुगंध है।
फूल भी एक रुकावट है, लेकिन जब सिर्फ सुगंध होती हेै, यह परिपूर्ण होती है। अब वहां कोई स्रोत नहीं है; इसलिये यह मिट नहीं सकता। यह अमर्त्य है। हर चीज जिसका जन्म है, मिटेगी, लेकिन अब फूल नहीं है इसलिये कोई स्रोत भी नहीं है। सुगंध अकारण है, इसलिये न तो इसका अंत है और न इसकी सीमा है। फूल की सीमाएं, सुगंध असीमित है। इसमें अब कोई अवरोध नहीं है। यह फैलती चली जाती है और अतिक्रमण कर जाती है।
इसलिये पांचवें शरीर से अब प्रश्न ऊर्ध्वगामी, अधोगामी, बगल से, भीतर, बाहर, का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि अब अहं के साथ रहो या बिना अहं के साथ रहो। और अहंकार को खोना सबसे मुश्किल चीज है। पांचवें शरीर तक अहंकार कोई समस्या नहीं है क्योंकि प्रगति अहंकार को तृप्त करने वाली है। कोई भी खंडीत-मन का होना नहीं चाहता, प्रत्येक व्यक्ति एकीकृत व्यक्तित्व को प्राथमिकता देगा। इसलिये हर साधक, हर खोजी, पांचवे शरीर तक गति कर सकता है।
पांचवे शरीर से पार जाने की कोई विधि नहीं है, क्योंकि हर प्रकार की विधि अहंकार से संबधित है। जिस समय तुम कोई विधि उपयोग करते हो, अहंकार शक्तिशाली होता है। इसलिये वे लोग जो पांचवे के पार जाने में उत्सुक हैं, अ-विधि की बात करते हैं। वे विधि रहितता की, अ-विधि की बात करते हैं। अब वहां कोई "कैसे" नहीं है। पांचवे से कोई विधि संभव नहीं है।
तुम पांचवे तक कोई विधि प्रयोग कर सकते हो, पर तब अ-विधि काम की होगी क्योंकि प्रयोगकर्त्ता को ही मिटना है। यदि तुम कुछ प्रयोग करो तो प्रयोगकर्त्ता सशक्त होगा। उसका अहंकार घनीभूत होता रहेगा, यह घनीभूत होने का केंद्र बन जाएगा। यही कारण है कि जो पांचवे शरीर में रहें उन्होंने कहा कि अनंत आत्माएं हैं, अनंत रूहें हैं। उन्होंने हर आत्मा को एक परमाणु की तरह सोचा। दो परमाणु नहीं मिल सकते। वे द्वार हीन हैं, हर चीज के प्रति, जो उनसे बाहर है, वे बंद हैं।
अहंकार द्वारहीन है। तुम लिबनिज का शब्द, मोनाड, प्रयोग कर सकते हो।
जो लोग पांचवें शरीर में रहते हैं, मोनाड (चैतन्यबिंदु) हो जाते हैं- द्वारहीन, झरोखा रहीत परमाणु। अब तुम अकेले, और अकेले, और अकेले हो।

लेकिन इस घनीभूत अहंकार को खो देना पड़ेगा। जब कोई विधि नहीं है तो इसे कैसे खोएं? पार कैसे जाएं जबकि पथ ही नहीं है? इससे कैसे हटें? वहां कोई द्वार नहीं है। झेन साधु, द्वार हीन द्वार के बाबत बात करते हैं। अब वहां कोई द्वार नहीं है और अब भी व्यक्ति को इसके पार जाना है।
इसलिये क्या करें? पहली बात इस घनीभूत होने के साथ तादात्म्य मत करो।
बस मैं के इस बंद घर के प्रति होशपूर्ण हो जाओ- कुछ मत करो- और विस्फोट होता है। तुम इसके पार होगे।
झेन में उन के पास एक दुष्टांत है। एक हंस बोतल में रख दिया गया है। हंस अंडे से बाहर निकल आता है और बड़ा होने लगता है, लेकिन बोतल का मुंह इतना छोटा है कि हंस बोतल से बाहर नहीं आ सकता। यह बड़ा और बड़ा हो जाता है और बोतल इसके रहने के लिए छोटी पड़ जाती है। अब या तो हंस को बचाने के लिए बोतल को तोड़ना पड़ेगा या हंस मर जाएगा। साधकों से पूछा जाता है, "क्या किया जाना चाहिए? हम दोनों में से किसी को खोना नहीं चाहते। हंस को बचाया जाना है और बोतल को भी, इसलिये क्या करें? यह पांचवें शरीर का प्रश्न है। जब कोई निकलने का रास्ता न हो और हंस बड़ा हो रहा हो, जब घनीभूत होने की प्रक्रिया बढ़ चुकी हो, अब क्या करें?
साधक एक कमरे के भीतर चला जाता है। कमरा बंद कर लेता है और इस पर गहन विचार करने लगता है। क्या करना है? केवल दो बाते संभव प्रतीत होती हैं; या तो बोतल नष्ट कर दें और कलहंस को बचा लें या हंस को मरने दें और बोतल बचा लें। ध्यानी सोचता चला जाता है, सोचता रहता है। वह कोई बात सोचता है, शिक्षक उसे और सोचने के लिए वापस भेज देते हैं।
कई रातें और कई दिन साधक सोचता रहता है; लेकिन इसे करने का कोई उपाय नहीं है। अंतिम रूप से एक पल आता है जब सोचना रुक जाता है। वह चिल्लाता हुआ दौड़ता आता है, यूरेका! हंस बाहर है! अध्यापक कभी नहीं पूछता कैसे, क्योंकि सारी बात मात्र एक मूर्खता थी।
इसलिये पांचवें शरीर से आगे जाना, यह समस्या झेन का ज्ञान बन जाती है। व्यक्ति को बस घनीभूत होने के प्रति होश पूर्ण होना होता है- और हंस बाहर होता है। एक पल आता है जब तुम बाहर होते हो, वहां कोई मैं नहीं है। घनीभूत होना अर्जित किया गया है और खो भी दिया गया है। पांचवे के लिए घनीभूत होना- केंद्र, अहंकार- आवश्यक था। मार्ग की तरह, पुल की तरह, यह आवश्यक था; अन्यथा पांचवा शरीर पार नहीं होता। लेकिन इसकी और अधिक जरूरत नहीं है।
ऐसे लोग हैं जिन्होंने चौथे के माध्यम से गुजरे बिना पांचवे को उपलब्ध कर लिया है। कोई व्यक्ति जो बहुत सार्मथ्यों से युक्त है, पांचवे को उपलब्ध कर चुका है; एक तरफ से वह एकीकृत है। कोई व्यक्ति जो किसी देश का राष्ट्रपति हो गया है, एक तरह से एकीकृत हो गया है। कोई हिटलर, कोई मुसोलिनी, एक तरह से एकीकृत हैं। लेकिन यह एकीकरण पांचवे शरीर में है। यदि नीचे के चार शरीर इसके अनुसार समायोजित नहीं हैं, तो यह एकीकरण रुगण्ता बन जाता है। महावीर और बुद्ध भी एकीकृत हैं, पर उनका एकीकरण भिन्न हैं।
हम सभी अहंकार को परिपूर्ण करने की अभिलाषा रखते हैं, क्योंकि पांचवें शरीर तक पहुंचने की गहनतम आवश्यकता है। लेकिन यदि हम छोटा रास्ता चुनें तो अंत में हम खो जाएंगें। सबसे छोटा रास्ता धन, शक्ति, राजनेता से है। अहंकार उपलब्ध हो सकता है, लेकिन यह झूठा एकीकरण है, यह तुम्हारे समग्र व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं है। यह गांठ की तरह है जो तुम्हारे पांव में बनती है और घनीभूत हो जाती है। यह झूठा, एक अप्राकृतिक विकास है, एक रुग्णता है।
यदि पांचवें में हंस बाहर है, तो तुम छठे में हो। पांचवें से छठे की ओर रहस्य का आयाम है। पांचवे तक वैज्ञानिक विधियां उपयोग हो सकती हैं, इसलिये योग सहायक है। लेकिन इसके बाद यह अर्थहीन है, क्योंकि योग विधि- विज्ञान है, एक वैज्ञानिक तंत्र है।
पांचवें में झेन बहुत सहायक है। यह पांचवे से छठे तक जाने की विधि है। झेन जापान में पल्लवित हुआ, पर यह भारत में शुरू हुआ था। इसकी जड़ें योग से आती हैं। योग झेन के रूप में पुष्पित हुआ।
झेन का पश्चिम में बहुत आकर्षण है, क्योंकि पाश्चात्य अहंकार, एक अर्थ में घनीभूत है। पश्चिम में वे संसार के मालिक हैं, उनके पास सब कुछ

है। लेकिन अहंकार एक गलत प्रक्रिया द्वारा घनीभूत किया गया है। यह प्रथम चार शरीरों के अतिक्रमण के द्वारा विकसित नहीं हुआ है। इसलिये झेन पश्चिम के लिए आकर्षण हो गया है, लेकिन यह सहायक नहीं होगा, क्योंकि घनीभूत होना गलत ढंग से हुआ है। गुर्जिएफ पश्चिम के लिए अधिक सहायक है। वह पांचवें के पार सहायक नहीं है। केवल पांचवें तक, घनीभूत होने तक। उसकी विधियों के द्वारा, तुम सम्यक घनीभूत होना उपलब्ध कर सकते हो।
झेन पश्चिम में एक सनक मात्र है, इसकी वहां कोई जड़ें नहीं हैं। यह पूर्व में एक बहुत लंबी प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुआ है; हठ योग से शुरू होकर और बुद्ध में शिखर पर पहुंच कर। विनम्रता के हजारों-हाजरों साल, अहंकार के नहीं वरन ग्राहकता के, सकारात्मक कृत्य के नहीं वरन ग्राहकता के- स्त्रैणचित्त के। पश्चिम पुरुष है; आक्रमण, सकारात्मक। पूर्व खुला, ग्राहणशील रहा है। झेन पूर्व में सहायक हो सकता है, क्योंकि अन्य विधियां, अन्य व्यवस्थाएं, चार निम्नतर शरीरों पर कार्य कर चुकी हैं। ये चार जड़ें बन जाते है और झेन पुष्पित हो सकता है।
आज झेन जापान में करीब-करीब अर्थहीन हो चुका है। कारण यह है कि जापान आत्यंतिक रूप से पाश्चिमात्य हो चुका है। कभी जापानी सर्वाधिक विनम्र लोग थे, पर अब उनकी विनम्रता मात्र एक दिखावा है। यह उनके भीतरी तल का भाग अब नहीं रही। इसलिये झेन की जड़ें जापान से उखड़ गई हैं और यह अब पश्चिम में लोकप्रिय है। लेकिन यह लोकप्रियता केवल अहंकार के झूठे घनीभूत होने के कारण है।
पांचवे शरीर से छठे की ओर झेन बहुत सहायक है। लेकिन सिर्फ तब, न पहले,
न बाद में। यह अन्य शरीरों के लिए बिल्कुल व्यर्थ है, बल्कि नुकसान दायक भी है। विश्वविद्यालय स्तर के पाठयक्रम को प्राथमिक पाठशाला में पढ़ाना न सिर्फ मदद नहीं करता वरन यह हानिकारक हो सकता है।
यदि पांचवे शरीर से पूर्व झेन उपयोग हो, तुम सतोरी का अनुभव कर सकते हो, किंतु यह समाधि नहीं है। सतोरी झूठी समाधि है। यह समाधि की एक झलक है, लेकिन मात्र एक झलक। जहां तक चौथे शरीर का-मनस शरीर का-संबंध है, सतोरी तुम्हें अधिक कलात्मक, अधिक सौंदर्यबोध युक्त बना देगी। यह तुममें सौंदर्य का भाव उत्पन्न करेगी, यह अच्छापन का भाव निर्मित करेगी। किंतु यह घनीभूत होने में सहायक नहीं होगी। यह तुम्हारी चौथे से पांचवे शरीर में जाने में सहायता नहीं करेगी।
घनीभूत होने के बाद ही झेन सहायक है। हंस, बिना किसी प्रयास के कैसे बोतल से बाहर है। लेकिन केवल इसी बिंदु पर इसका अभ्यास हो सकता है, बहुत सी अन्य विधियों के बाद जो पहले उपयोग हो चुकी हैं। एक चित्रकार बंद आंखो से चित्र बना सकता है; वह ऐसे चित्र बना सकता है जैसे कि यह खेल हो। एक अभिनेता ऐसे अभिनय में तभी परिपूर्ण होता जब यह अभिनय जैसा नहीं दिखता। लेकिन इसमें परिश्रम के कई वर्ष लगे हैं, अभ्यास के कई वर्ष। अब अभिनेता पूर्णतः विश्राम में है, लेकिन यह विश्राम की अवस्था एक दिन में उपलब्ध नहीं हो गयी है। इसकी अपनी विधियां हैं।
हम चलते हैं पर हम कभी नहीं जानते हम ऐसा कैसे कर पाते हैं। कोई तुमसे अगर पूछे, "तुम कैसे चलते हो" तुम कहते हो, "मैं तो बस चलता हूं। इसमें कोई कैसे नहीं है।" लेकिन कैसे का महत्त्व होता है? जब कोई बच्चा चलना शुरू करता है, वह सीखता है। यदि तुम बच्चे को बताओ कि चलने के लिए किसी विधि की जरूरत नहीं है- "तुम बस चलो!"- यह निरर्थक होगा। बच्चा इसे नहीं समझेगा। कृष्णमूर्ति इसी तरह से बोलते रहे हैं, ऐसे वयस्कों से बोलते रहे हैं जिनके पास बच्चों का मन है, यह कहते हुए कि "तुम चल सकते हो, तुम बस चलो।" लोग सुनते हैं। वे प्रभावित होते हैं। यह तो बड़ा आसान है। बिना किसी विधि के चलना। तब हर व्यक्ति चल सकता है।
कृष्णमूर्ति भी पश्चिम में, बस इसी कारण से, आकर्षक हो गए हैं। यदि तुम हठ योग, या मंत्र योग, या भक्ति योग या राजयोग या तंत्र योग को देखो, यह इतना लंबा, इतना दुर्गम, इतना कठिन जान पड़ता है। सदियों-सदियों के परिश्रम की, जन्मों-जन्मों की आवश्यकता है। वे प्रतीक्षा नहीं कर सकते। कोई छोटा रास्ता, कोई क्षणभर में फल देने वाला होना चाहिए। इसलिये कृष्णमूर्ति उन्हें अच्छे लगते हैं। वे कहते हैं, "तुम बस चलो। तुम परमात्मा में चलते

चलो। कोई विधि नहीं है।" लेकिन अ-विधि उपलब्ध करना सर्वाधिक दुष्कर है। इस तरह कार्य करना जैसे कोई कार्य न कर रहा हो, ऐसे बोलना जैसे कोई न बोल रहा हो, प्रयास रहित होकर चलना, जैसे कोई न चल रहा हो, लंबे प्रयास पर आधारित है।
परिश्रम और प्रयास आवश्यक हैं, उनकी जरूरत है। लेकिन उनकी एक सीमा है। उनकी पांचवें शरीर तक जरूरत है, लेकिन पांचवे से छठे तक वे अनुपयोगी हैं। तुम कहीं नहीं जाओगे, हंस कभी बाहर नहीं होगा।
भारतीय योगियों के साथ यही समस्या है। वे पांचवें को पार करना दुष्कर पाते है क्योंकि वे विधि उन्मुख हैं, विधियों से सम्मोहित हैं। उन्होंने सदा विधियों के साथ कार्य किया है। पांचवें तक एक स्पष्ट विज्ञान भी रहा है और उन्होंने आराम से इससे प्रगति की। यह एक प्रयास था- और वे इसे कर सके। चाहे कितनी सघनता जरूरी थी, यह उनके लिए समस्या न थी। चाहे कितना ही प्रयास आवश्यक हो, वे इसे कर सकते थे लेकिन अब पांचवें में उन्हें विधि के क्षेत्र को पार करके अविधि के क्षेत्र में आना पड़ेगा। अब वे एक बिगूचन में हैं। वे बैठ जाते हैं, वे रुक जाते हैं। और बहुत से खोजियों के लिए पांचवा ही अंतिम हो जाता है।
यही कारण है कि पांच शरीरों की बात होती है, सात की नहीं। वे लोग जो केवल पांचवें तक गए हैं, समझते है कि यही मंजिल है। यह मंजिल नहीं है, यह एक नया आरंभ है। अब व्यक्ति को निजता से अनिजता में जाना पड़ेगा। झेन या झेन की तरह की विधियां, अप्रयास से की जानेवाली विधियां सहायक हो सकती हैं। झाझेन का अर्थ है मात्र बैठना, कुछ न करना। एक व्यक्ति जिसने बहुत कुछ किया है, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। मात्र बैठना और कुछ न करना! यह अकल्पनीय है। गांधी इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। वे कहते है, "मैं अपना चरखा चलाऊंगा। कुछ किया जाना चाहिए। यही मेरी प्रार्थना है, मेरा ध्यान है।" अकर्म का उनके लिए अर्थ है कुछ न करना। अकर्म का अपना निज़ी क्षेत्र है; अपना निजी आनंद है, अपना निजी समायोजन है, पर यह पांचवे शरीर से छठे की ओर है। उसके पूर्व इसे नहीं समझा जा सकता।
छठे से सातवें तक, अविधि भी नहीं है। विधि पांचवे में छूट जाती है और अविधि, छठे में छूट जाती है। एक दिन तुम बस पाओगे कि तुम सातवें में हो। ब्रह्म भी जा चुका; मात्र न-पन है। यह बस घट जाता है। छठे से सातवें तक यह एक घटना है। अकारण, अज्ञात।
केवल जब यह अकारण होती है, यह जो भी पूर्व में हुआ है उसके सातत्य में नहीं होती। यदि यह सकारण हो तो एक सातत्य होगा और होना मिट नहीं सकता- सातवें में भी। सातवां पूर्णतः अनस्तित्त्व है, निर्वाण शून्यता, अनस्तित्त्व।
अस्तित्त्व से अनअस्तित्त्व में जाने के लिए किसी सातत्य की संभावना नहीं है। यह मात्र एक छलांग है, अकारण। यदि यह सकारण होती, तो वहां एक सातत्य होगा, और यह बस छठे शरीर की भांति होती। इसलिये छठे शरीर से सातवें तक जाने के विषय में बात भी नहीं की जा सकती। यह एक अ-सातत्य, एक अंतराल है। कुछ था; और अब कुछ है- और इन दोनों के मध्य कोई संबंध नहीं है। कोई चीज बस न रही, और कोई चीज बस आ गई। उनके मध्य कोई संबंध नहीं है। यह ऐसे है कि जैसे कोई मेहमान एक दरवाजे से गया और दूसरा मेहमान दूसरे दरवाजे से भीतर आ गया। एक के जाने में और दूसरे के आने में कोई संबंध नहीं है। वे असंबंधित हैं। सातवां शरीर परम है, क्योंकि अब तुमने कारण की दुनिया भी पार कर ली है। तुम मूल स्रोत पर पहुंच गए हो, उस स्रोत पर जो सृष्टि के पूर्व था और जो सारे संसार की समाप्ति के बाद भी बचेगा। इसलिये छठे से सातवें को ओर अविधि भी नहीं है। कुछ भी सहायक नहीं है, सब कुछ रुकावट बन सकता है। ब्रह्म से शून्यता की ओर मात्र एक घटना है; अकारण, बिना तैयारी के, बिना मांगे। यह अचानक घटता है। केवल एक बात याद रखनी है; तुम्हें छठे से नहीं चिपकना है। आसक्ति तुम्हें सातवें तक जाने से रोकेगी। सातवें तक जाने का कोई विधायक पथ नहीं है; लेकिन नकारात्मक अवरोध हो सकता है। तुम कह सकते हो, "मैं पहुंच गया।" वे लोग जो कहते है कि वे पहुंच गए, सातवें तक नहीं जा सकते।

वे जो कहते है, "मैंने जान लिया", छठे में रहते हैं। इसलिये वे जिन्होंने वेद लिखे, छठे में रहे। केवल कोई बुद्ध छठे को पार करता है, क्योंकि वह कहता है, "मैं नहीं जानता।" वह परम प्रश्नों के उत्तर देने से इंकार कर देता है। वह कहता है, "कोई नहीं जानता। किसी ने नहीं जाना"। बुद्ध समझे नहीं जा सकते थे। उन्होंने जिन्होंने उन्हें सुना, कहा, "नहीं, हमारे शिक्षकों ने जान लिया है। वे कहते है कि ब्रह्म है।" लेकिन बुद्ध सातवें शरीर की बात कर रहे हैं। कोई गुरु नहीं कह सकता कि उसने सातवें के बारे में जान लिया क्योंकि जिस पल तुम इसे कहते हो, तुम इसके साथ संपर्क खो देते हो। एक बार तुमने इसे जान लिया; तुम कह नहीं पाते। छठे शरीर तक संकेतो से अभिव्यक्ति हो सकती है, पर सातवें के लिए कोई प्रतीक नहीं है। यह मात्र एक रिक्तता है।
चीन में एक मंदिर है, जो पूर्णतः खाली है। इसमें कुछ भी नहीं है, न मूर्ति, न शास्त्र, कुछ नहीं। यह है बस खाली, रिक्त दीवारें। पुजारी भी बाहर रहता है। वह कहता है, "एक पुजारी मंदिर के बाहर ही हो सकता है, वह भीतर नहीं हो सकता।" यदि तुम पुजारी से पूछो कि मंदिर के देवता कहां हैं, वह कहेगा, "इसे देखो!"- और वहां रिक्तता है, वहां कोई नहीं है। वह कहेगा, "देखो! यहां! अभी!" और वहां मात्र खाली, रिक्त मंदिर है।
यदि तुम विषयों के लिए देखो तो तुम छठा पार करके सातवें तक नहीं पहुंच सकते। इसलिये वहां नकारात्मक तैयारियां हैं। एक नकारात्मक मन की जरूरत है, एक मन जो किसी के प्रति आसक्त न हो- मोक्ष के प्रति भी नहीं, मुक्ति के प्रति भी नहीं, निर्वाण के प्रति भी नहीं, सत्य के प्रति भी नहीं; एक मन जो किसी प्रतीक्षा न हीं कर रहा है- न परमात्मा की, न ब्रह्म की। यह बस है; बिना किसी आसक्ति के, बिना किसी इच्छा के, बिना किसी कामना के। मात्र "है पन"। तब यह घटता है... और ब्रह्म भी चला जाता है।
इसलिये तुम शनै-शनै सातवें में पहुंच सकते हो। शारीरिक से शुरू करो
और भाव के माध्यम से कार्य करो। तब सूक्ष्म, मनस, आत्मिक। पांचवें तक तुम कार्य कर सकते हो और तब, पांचवें से आगे बस होशपूर्ण हो जाओ। तब कृत्य महत्त्वपूर्ण नहीं है, चेतना महत्त्वपूर्ण है। और अंत में छठे से सातवें तक; चेतना भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। मात्र है पन; होना। यह हमारे बीजों की क्षमता है। यह हमारी संभावना है।

प्रवचन-12

जानकारी का भ्रम

भगवान, आप क्या सिखाते हैं और आपका पंथ क्या हैं?

मैं किसी पंथ की शिक्षा नहीं दे रहा हूं। किसी पंथ की शिक्षा देना अर्थहीन ही है। मैं कोई दर्शन शास्त्री नहीं हूं; मेरा मन गैर दर्शनशास्त्रीय है। दर्शन शास्त्र कहीं नहीं ले गया और न ही कहीं ले जा सकता है। वह मन जो सोचता है, जो प्रश्न उठाता है, वह जान नहीं सकता।
बहुत से पंथ हैं। लेकिन पंथ एक कल्पना है, एक मानवीय कपोल-कल्पना। यह कोई खोज नहीं, वरन एक अविष्कार है। आदमी का मन अनंत व्यवस्थायें और पंथ निर्मित करने में समर्थ है, लेकिन सत्य को सिद्धांतों से जानना असंभव है। वह जो जानकारी से भरा हुआ है, ऐसा जो मन है, जो अज्ञानी ही रहेगा।
जिस पल जानना बंद हो जाता है, तभी रहस्य अनावृत होता है। दो संभावनायें हैंः या तो हम किसी चीज के बारे में विचार कर सकते हैं, या हम अस्तित्त्वगत रूप से इसमें जा सकते हैं। जितना अधिक कोई व्यक्ति सोचता है; उतना ही अधिक वह यहां और अभी से दूर हट जाता है। किसी चीज के बारे में विचार करना उससे संपर्क खो देना है।
इसलिये जो मैं सिखाता हूं वह अ-पंथ, अ-दर्शन शास्त्रीय, अ-परिकल्पित अनुभव है। किस तरह हुआ जाये? बस कैसे हुआ जाये। उस पल में जो यहां और अभी है, उसके प्रति खुले हुअे, उपलब्ध, उसके साथ एक, कैसे हुआ जाये। इसी को मैं ध्यान कहता हूं।
जानकारी सिर्फ कल्पना पर, वस्तुओं को प्रक्षेपित करने पर ही ले जा सकती है। यह सत्य को उपलब्ध करने का वाहन नहीं हो सकती। किंतु एक बार तुमने सत्य को जान लिया, जानकारी संवाद का माध्यम, जो नहीं जानता है उसके साथ बांटने का माध्यम बन सकती है। तब भाषा, पंथ, सिद्धांत एक माध्यम हो सकते हैं। किंतु यह अब भी पर्याप्त नहीं है। यह झूठ ही होनेवाला है।
कुछ भी जो अस्तित्त्वगत रूप से जाना गया है, पूर्णता अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। तुम बस इसका इशारा कर सकते हो। जिस मैंने जाना है, उसे मैं अभिव्यक्त करता हूं, शब्द तुम तक पहुंच जाता है पर अर्थ पीछे छूट जाता है। एक मृत शब्द तुम तक आता है। एक अर्थ में यह अर्थहीन है, क्योंकि अर्थवत्ता तो स्वयं अनुभव में थी।
इसलिये जानकारी अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकती है, पर आत्मसाक्षात्कार की उपलब्धि का साधन नहीं। जानने वाला मन अवरोध है; क्यों कि जब तुम जान लेते हो, तुम्हारे भीतर अज्ञात को ग्रहण करने के लिए कोई रिक्त स्थान नहीं होता। मन को खाली; शून्य, हो जाना चाहिए, एक गर्भ जैसा, पूर्ण ग्राहणशील।
जानकारी तुम्हारा अतीत है। यह वह है जो तुमने जाना। यह तुम्हारी स्मृति, तुम्हारा संग्रह, तुम्हारी स्वामित्व की हुई चीज है। यह संग्रह अवरोध बन जाता है। यह तुम्हारे और नये, तुम्हारे और अज्ञात के मध्य आ जाता है।
तुम अज्ञात के प्रति सिर्फ तब खुले हुए हो सकते हो, जब तुम विनम्र हो। व्यक्ति को अपनी अनभिज्ञता के प्रतिः कि अब भी कुछ अनजाना रह गया है, सतत जागरुक रहना चाहिए। एक मन जो स्मृतियों, सूचनाओं, शास्त्रों, सिद्धांतों पंथो, संप्रदायों पर आधारित है, अहं केंद्रित होता है, विनम्र नहीं। जानकारी तुम्हें विनम्रता नहीं दे सकती। केवल विराट अज्ञात तुम्हें विनम्र बना सकता है।
इसलिये स्मृति को रोकना पड़ेगा। यह ऐसा नहीं है कि तुम बिना स्मृति के होगे, बल्कि जानने के क्षण में, अनुभूति के क्षण में, स्मृति को वहां नहीं होना चाहिए। उस पल में एक खुला, उपलब्ध मन चाहिए होता है। रिक्तता का, शून्य का यह क्षण में मेडिटेशन है, ध्यान है।

क्या अनुभूति स्वतः एक पंथ नहीं बन जाती है?

अनुभूति सिर्फ नकारात्मक रूप से दूसरों को संप्रेषित की जा सकती है। मैं नहीं कह सकता कि यह क्या है? पर मैं कह सकता हूं कि यह क्या नहीं है। जब मैं कहता हूं भाषा इसे अभिव्यक्त नहीं कर सकती, तब भी मैं इसे अभिव्यक्त कर रहा हूं। जब मैं कहता हूं कोई पंथ इसके बारे में संभव नहीं है, यह मेरा पंथ है। पर यह नकारात्मक है। मैं किसी बात को स्वीकार नहीं कर रहा हूं; मैं किसी चीज को इनकार कर रहा हूं। न को तो कहा जा सकता है, पर हां को नहीं कहा जा सकता। हां को तो उपलब्ध करना पड़ेगा।
यदि जानकारी में कोई पुराना विश्वास है, कोइ धारणा है, यह शून्य को उपलब्ध करने में, ध्
यान को उपलब्ध करने अवरोध बन जाएगा। पहले तो व्यक्ति को अतीत की, जाने हुए की, मन की जानकारी की, निरर्थकता समझ लेनी चाहिए। जहां तक अज्ञात का संबंध है, जहां तक सत्य का संबंध है, ऐसी जानकारी निरर्थक है।
या तो तुम जो तुमने जाना है उसके साथ तादात्म्य जोड़ सकते हो, या तुम इसके साक्षी हो सकते हो। यदि तुम इससे तादात्म्य जोड़ लो, तो तुम और तुम्हारी स्मृति एक हो जाते हैं। लेकिन यदि कोई तादात्म्य न हो- तुम अपनी स्मृतियों से अलग बने रहे, भिन्न; उनसे तादात्म्य नहीं जोड़ा- तो तुम अपने प्रति, अपनी स्मृतियों से भिन्न किसी और की तरह, बोध पूर्ण हो जाते हो। यह बोध अज्ञात की ओर एक पथ बन जाता है।
जितना अधिक तुम अपनी जानकारी के प्रति साक्षी होने में समर्थ होते हो, उतना ही तुम एक जानकार के रूप में स्वयं से कम तादात्म्य करते हो, उतनी ही कम संभावना है कि तुम्हारा अहंकार हावी हो जाए, इस जानकारी का मालिक बन जाए। यदि तुम अपनी स्मृतियों से भिन्न हो जाओ, तो स्मृतियां बस एक तरह की धूल मात्र हो जाती हैं।
वे अनुभवो से आयी हैं और तुम्हारे मन का ही हिस्सा बन गयी हैं परंतु तुम्हारी चेतना अलग है। वह जो करता है उस कृत्य से वह अलग है। जो जाना गया है वह, जो जान रहा है उससे अलग है। यदि तुम्हें यह भिन्नता स्पष्ट हो जाए, तो तुम शून्य के और और निकट होते जाते हो। बिना तादात्म्य के तुम खुल सकते हो, तुम अपने और अज्ञात के बीच आती हुई स्मृतियों के बिना हो सकते हो। शून्य को हम उपलब्ध हो सकते हैं पर हम इसे निर्मित नहीं कर सकतें। यदि तुम इसे निर्मित करो; यह तुम्हारे पुराने मन द्वारा, तुम्हारी पुरानी जानकारी द्वारा ही निर्मित होगा। यही कारण है कि इसे उपलब्ध करने की कोई विधि नहीं है। विधि सिर्फ तुम्हारे द्वारा संग्रहीत सूचना से आ सकती है, इसलिये अगर तुम किसी विधि को प्रयोग करने का प्रयास करोगे यह तुम्हारे पुराने मन का ही सातत्य है। किंतु अज्ञात तुम्हारे पास सातत्य के रूप में नहीं आ सकता। यह तो सिर्फ एक सातत्यहीन अंतराल के रूप में आ सकता है। केवल तभी यह तुम्हारी जानकारी के पार है।
इसलिये इस तरह की कोई विधि, कोई विधि विज्ञान हो नहीं सकता; केवल एक समझ कि "मैं उससे भिन्न हूं जिसको मैंने एकत्रित किया है", हो सकती है। यदि यह समझ लिया गया, तब शून्य को विकसित करने की कोई जरूरत नहीं है। घटना घट चुकी है। तुम शून्य हो जाते हो, अब इसे निर्मित करने की कोई जरूरत नहीं है। कोई शून्य निर्मित नहीं कर सकता। निर्मित शून्य, शून्य नहीं होगा, यह तुम्हारा सृजन मात्र होगा। तुम्हारा सृजन कभी भी नाकुछपन, शून्यता नहीं हो सकता, क्योंकि इस नाकुछपन की सीमायें होंगी। तुमने इसे निर्मित किया है, इसलिये यह तुमसे अधिक नहीं हो सकता; यह उस मन से बड़ा नहीं हो सकता जिसने इसे निर्मित किया है। तुम शून्य को निर्मित नहीं कर सकते, इसे तुममें प्रवेश करना होगा। तुम केवल ग्रहणशील मात्र हो सकते हो। और तुम इसको ग्रहण करने के लिए सिर्फ एक नकारात्मक रूप से तैयार किए जा सकते हो। तैयार इन अर्थो में कि तुम्हें अपनी जानकारी से अपने तादात्म्य को तोड़ना होगा, तैयार इन अर्थो में कि तुमने वह सब कुछ जो तुमने जाना था, उसकी निरर्थकता, अर्थहीनता को समझ लेना है।
केवल विचार प्रक्रिया के प्रति यह होश तुम्हें उस अंतराल में फेंक सकता है, जिसमें तुम्हें डूब जाना है, जहां वह शून्यता सदा उपस्थित है। अब

तुम्हारे स्व के और इसके मध्य कोई अवरोध नहीं होता। तुम इस क्षण के साथ एक, शाश्वत के साथ एक, अनंत के साथ एक हो जाते हो।
जिस पल कोई इस क्षण को अपनी जानकारी बनाता है, यह पुनः स्मृति का हिस्सा बन जाता है। तब यह खो जाता है। इसलिये कोई कभी नहीं कह सकता, "मैंने जान लिया"। अज्ञात अनजाना ही रहता है। कितना ही अधिक किसी ने इसका अनुभव कर लिया हो, अज्ञात फिर भी जानने को शेष रह जाता है। इसका आकर्षण, इसका सौंदर्य, इसकी ओर खिंचाव वही बना रहता है।
जानने की प्रक्रिया शाश्वत है, इसलिये कोई इस बिंदु पर कभी नहीं जा सकता, जब वह कह सके, "मैं पहुंच गया हूं।" यदि कोई यह कहता है, वह पुनः स्मृति के ढांचे में; जानकारी के जाल में, फंस जाता है। तब वह नष्ट हो जाता है। जिस पल जानकारी का दावा किया जाता है, वह क्षण मृत्यू का है। फिर जीवन रुक जाता है।
जीवन सदा अज्ञात से अज्ञात की ओर है। यह पार से आता है और पार की ओर चला जाता है। इसलिये मेरे लिए धार्मिक व्यक्ति जो ज्ञान का दावा करता हो, धर्मशास्त्री हो सकता। एक धार्मिक मन परम रहस्य को, परम अज्ञातपन को, अनभिज्ञता के आत्यंतिक अनुभव को, अनभिज्ञता के चरम आनंद को स्वीकार करता है।
ध्यान का, खालीपन का, क्षण निर्मित नहीं किया जा सकता; यह प्रक्षेपित नहीं किया जा सकता। तुम अपने मन को शून्य नहीं बना सकते। यदि तुम ऐसा करो तो या तो तुमने इसे नशा दे दिया है, या तुमने इसे सम्मोहित कर दिया है; लेकिन यह शून्यता नहीं है। शून्यता आती है। यह कभी निर्मित नहीं की जा सकती, कभी लायी नहीं जा सकती।
इसलिये मैं कोई विधि नहीं सिखा रहा हूं। विधियों, उपायों, पंथों के अर्थ में मैं शिक्षक नहीं हूं।
इसे एैसा समझें, जैसे आपने मुझे संतुष्ट कर दिया है, अब मैं इस संतुष्टि को एक अनुभव में कैसे रूपांतरित कर सकता हूं?
यहां कोई "कैसे" नहीं है। क्योंकि कैसे का अर्थ है- विधि। यह तो सिर्फ
एक जागरण है। यदि तुम मुझे सुन रहे हो और कुछ तुम्हारे भीतर जाग जाता है, तब अनुभव तुम्हें घटित होगा; तुम कुछ महसूस करोगे। मैं तुम्हें संतुष्ट करने का प्रयास नहीं कर रहा हूं। एक बौद्धिक संतुष्टि वास्तव में संतुष्टि नहीं है। मैं तो तुम्हें बस एक तथ्य संप्रेषित कर रहा हूं।
जो मैंने कहा उससे तुम संतुष्ट क्यों हो? दो संभावनायें हैः या तो तुम मेरे तर्कों से संतुष्ट हो गये, या जो मैंने तुम्हारे भीतर के तथ्य के विषय में कहा, उसमें तुम एक सच्चाई देखते हो। यदि मेरे तर्क संतुष्टि बन जाते हैं तो तुम पूछोगे कैसे? किंतु यदि जो मैं कह रहा हूं वह तुम्हारी अनुभूति हो जाए, यदि इसे तुम, अपने भीतर सत्य की भांति जान लो, तो वह जानकारी मुझसे अलग हो जाती है। मैं तुम्हें कोई जानकारी नहीं दे रहा हूं। बल्कि जब मैं बोल रहा हूं तो अनुभव स्वतः घटित हो रहा है।
जब बुद्धि संतुष्ट हो जाती है, यह पूछती हैः "कैसे? रास्ता क्या है?"
यह जानना चाहती है। लेकिन मैं तुम्हें कोई पंथ नहीं दे रहा हूं। मैं तो बस अपना अनुभव बता रहा हूं। जब मैं कहता हूं कि स्मृति एक संग्रह है कि यह मृत है, यह अतीत की छाया मात्र है- मेरा अर्थ यह है कि यह अतीत का एक हिस्सा है जो तुमसे चिपका हुआ है, किंतु तुम इससे अलग हो।
यदि जो मेरा अर्थ है इसकी अनुभूति तुम्हें होती है, और तुमने अपने स्व
और अपनी स्मृति के बीच के अंतराल की झलक पा ली- तुम्हारी चेतना, जागरुकता तुम्हारी स्मृति और तुम्हारे मध्य सतत मौजूद है, तो कोई कैसे "नहीं" होगा। कुछ घटित हो गया है, और यह कुछ तुम्हें पल-पल बेधता रह सकता है- किसी विधि के माध्यम से नहीं; पर तुम्हारी जागरूकता, तुम्हारे सतत होश के माध्यम से। अब तुम यह जानते हो कि चेतना, चेतना की विषय-वस्तुओं से भिन्न है। यदि
यह हर पल का बोध बन जाए, जब तुम चल रहे हो, बोल रहे हो, खा रहे हो, सो रहे हो, तब कुछ घटता है। यदि तुम सतत रूप से जागरुक रहो कि मन एक कम्प्यूटर की भांति स्मृति संग्रह की एक पूर्व निर्मित प्रक्रिया है, और यह तुम्हारे अस्तित्त्व का हिस्सा नहीं है; तब यह बोध ही, यह अविधि ही, इस कुछ को तुम्हारे भीतर घटने देने में सहायक होगी।

कोई नहीं कह सकता यह कब घटेगा, यह कैसे घटेगा, यह कहां घटेगा, लेकिन यदि होश जारी रहे, तो यह स्वतः ही गहरा और गहरा होता चला जाता है। यह एक स्वचालित प्रक्रिया है। बुद्धि से यह हृदय की ओर जाता है, बुद्धिमत्ता से यह तुम्हारे चेतन मन पर जाता है, चेतन से यह धीमे-धीमे अब अचेतन तक चला जाता है। और एक दिन तुम पूर्णतः जाग्रत होते हो। कुछ घटित हो गया है। विकास की भांति नहीं बल्कि स्मरण की सह-उत्पत्ति के रूप में। किसी पंथ के विकसित होने से नहीं बल्कि क्योंकि तुम एक अंत-र्तथ्य; एक अंर्तदुष्टि के प्रति जाग गये हो। तुममें कुछ गहराई तक प्रविष्ट हो गया है।
जब वह पल आता है, यह पूर्णतः अप्रत्यशित, अज्ञात- एक प्रस्फूटन की तरह आता है। प्रस्फूटन के उस पल में तुम पूर्णतः खाली होते हो। तुम नहीं होते, तुम्हारा होना समाप्त हो जाता है। वहां कोई बुद्धि, तर्क, स्मृति नहीं होते वहां मात्र चेतना होती है, ना कुछपन के प्रति चेतनता, शून्य के प्रति चेतनता। शून्य में ज्ञान होता है। लेकिन यह बिल्कुल ही भिन्न अर्थ में ज्ञान होता है। अब वहां न ज्ञाता है और न ही ज्ञेय। वहां बस ज्ञान है। वह अस्तित्त्व गत है।
शून्य में क्या होता हैः शून्य क्या है? यह संप्रेषित नहीं किया जा सकता। केवल मार्ग या प्रक्रिया संप्रेषित की जा सकती है। लेकिन इस प्रक्रिया की विधि के रूप में कल्पना नहीं हो सकती; यह अभ्यास करने के लिए नहीं है। अभ्यास के लिए कुछ भी नहीं है। या तो तुम स्मरण रखते हो या नहीं रखते।

क्या जीवन जीने की तैयारी करने की किसी शैली की आप सलाह दे सकते हैं?

जिस पल तुम होश पूर्ण हो जाते हो, तुम्हारा सारा जीवन, तुम्हारी सारी जीवन शैली बदल जाएगी। लेकिन ये परिवर्तन तुममें आयेंगे, उनका अभ्यास नहीं करना है। जिस पल तुम किसी बात का अभ्यास करते हो, उसमें जो महत्त्वपूर्ण होता है वह खो जाता है। इसलिये जो भी परिवर्तन आये उसे सहज स्फूर्त होना चाहिए।
किसी भी बात का अभ्यास करने का कोई प्रश्न नहीं है। प्रश्न है तो बस
यह सरल सी बात समझ जाना कि तुम शून्य को नहीं चाह सकते। यह शब्दों का विरोधाभास है। तुम इसकी इच्छा नहीं कर सकते, क्योंकि इच्छा मात्र तुम्हारे पुराने मन से, तुम्हारी जानकारी से आती है। जो कुछ तुम कर सकते हो वह, तुम क्या हो? के प्रति बोध पूर्ण हो जाते हो, एक भिन्नता, एक विभाजन, एक बंटवारा घट जाता है। तुम्हारा एक हिस्सा तुम्हारे बाकी के हिस्से के प्रति तादात्म्य रहित हो जाता है।
तब वहां दो होते होः मैं और मेरा। यह मेरी स्मृति है, मन है और यह मैं चेतना है, आत्मा है।
तुम मुझे सुनो और साथ ही अपने अंतर्मन को भी सुनो। यह प्रक्रिया सारे समय चलती रहनी चाहिए। जो मैं कह रहा हूं तुम्हारे मेरा का; तुम्हारे संग्रह का; तुम्हारी जानकारी का हिस्सा बन रहा है। यह जानकारी आगे और जानकारी की मांग करेगी- कैसे के बारे में, विधि के बारे में। और अगर कोई विधि दिखाई गयी वह भी तुम्हारी जानकारी का हिस्सा बन जाएगी। तुम्हारा मेरा मजबूत हो जाएगा, यह और अधिक जानकार बन जाएगा।
मेरा जोर तुम्हारे "मेरा" पर नहीं है, मैं तुम्हारे मेरा से बात नहीं
कर रहा हूं। यदि तुम्हारा "मेरा" बीच में आ जाये तो यह संप्रेषण, संवाद नहीं बनता। तब यह मात्र एक चर्चा होती है, एक संवाद नहीं। यह संवाद केवल तभी बनता है जब मेरा न हो। यदि तुम यहां हो; किंतु तुम्हारा मेरा यहां नहीं है; तो कैसे का कोई प्रश्न नहीं उठता। जो मैं कह रहा हूं या तो एक सत्य की तरह, या एक असत्य की भांति, या तो एक तथ्य की तरह या एक ऊटपटांग मार्ग की भांति देखा जा सकेगा।
मेरी रुचि तो बस एक स्थिति निर्मित करना है- या तो बोलकर या चुप होकर,
या तुम्हें संदेह से भरकर। मेरा उद्देश्य तो एक स्थिति निर्मित करना है जहां तुम्हारा मैं, तुम्हारे बाहर आ जाता हो, तुम्हारे मैं, तुम्हारे मेरा

के बाहर आ जाता हो। मैं बहुत सी स्थितियां निर्मित करने का प्रयास करता हूँ।
यह भी एक प्रकार की स्थिति है। मैं तुमसे अतर्क्य बातें कह रहा हूं। मैं कुछ पाने के लिए कह रहा हूं और फिर भी किसी विधि से इन्कार कर रहा हूं। यह अतर्क्य है। मैं कैसे कुछ कहता रह सकता हूं? और फिर भी कहता हूं कि यह नहीं कहा जा सकता?
लेकिन यह स्वयं अतर्क्यता ही है, जो स्थिति निर्मित कर सकती है। यदि मैं तुम्हें संतुष्ट कर दूं, इससे स्थिति निर्मित नहीं होगी। यह तुम्हारे मेरा का भाग; तुम्हारी जानकारी का हिस्सा बन जाएगी। तुम्हारा मेरा पूछता रहेगाः कैसे? क्या मार्ग है? मैं मार्ग से इन्कार करुंगा और फिर भी रूपांतरण की बात करुंगा। तब स्थिति इतनी अतर्क्य हो जाती है कि तुम्हारा मन संतुष्ट नहीं होता। केवल तभी पार का कुछ साथ हो सकता है।
सारे समय मैं स्थितियां निर्मित कर रहा हूं। बौद्धिक लोगों के लिए, अतर्क्यता ही स्थिति होनी चाहिए। जागरूकता केवल तब आती है जब कोई ऐसी स्थिति निर्मित हो जाए जहां सातत्य भंग हो जाता हो। यह अतर्क्यता और स्थिति का तर्कातीत होना ही एक अंतराल पैदा कर देता है, जो व्यक्ति को झकझोर देता है, हक्का-बक्का कर देता है और उसे होश के बिंदु तक ले आता है। मुझे बुद्ध के जीवन की एक घटना याद आती है। एक सुबह वे एक गांव में आएं। जैसे ही उन्होंने गांव में प्रवेश किया, किसी ने उनसे कहा, "मैं उस परम में विश्वास रखता हूं। कृपया मुझे बताएं, क्या ईश्वर है?"
बुद्ध ने इससे बिल्कुल इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, "कोई ईश्वर नहीं है। कभी नहीं था और न ही कभी होगा। तुम क्या व्यर्थ की बात कह रहे हो।" वह व्यक्ति हक्का बक्का रह गया। पर स्थिति निर्मित हो गयी।
दोपहर बाद एक और व्यक्ति बुद्ध के पास आया और बोला, "मैं एक नास्तिक हूं। मैं ईश्वर में विश्वास नहीं रखता। क्या ईश्वर है? आप इसके बारे में क्या कहते हैं?
बुद्ध ने कहा, "सिर्फ ईश्वर ही है। उसके सिवा और किसी का अस्तित्त्व नहीं है?" वह व्यक्ति भी हक्काबक्का रह गया। फिर शाम को, एक तीसरा व्यक्ति बुद्ध के पास आया और बोला, "मैं अज्ञानी हूं! मैं न तो विश्वास करता हूं और न अविश्वास करता हूं। आप क्या कहते हैं? ईश्वर है या नहीं?
बुद्ध चुप रहें। वह व्यक्ति भी चौंक गया। लेकिन एक भिक्षु, आनंद, जो सदा बुद्ध के साथ रहता था वह और अधिक चौंका। सुबह बुद्ध ने कहा, "कोई ईश्वर नहीं है।" दोपहर बाद उन्होंने कहा था, "केवल ईश्वर ही है" और शाम को वे चुप रहें। उस रात आनंद ने बुद्ध से कहा, "इसके पूर्व कि आप सोने जायें, कृपया मेरे प्रश्न का उत्तर दें। आपने मेरी शांति अस्तव्यस्त कर दी है। मैं कुछ समझ पाने में असमर्थ हूं। आपका इन अतर्क्य, विरोधाभासी उत्तरों से क्या अर्थ है?" बुद्ध ने कहा, "उनमें से कोई भी तुम्हें नहीं दिया गया था। उन्हें तुमने क्यों सुन लिया। वे उत्तर उस व्यक्ति को दिये गए थे जिसने पूछा। यदि उत्तरों ने तुम्हें उलझा दिया है, अच्छा हुआ। यही तुम्हारे लिए उत्तर है।"
इसलिये स्थितियां निर्मित की जा सकती हैं। एक झेन साधु अपने ढंग से परिस्थति निर्मित करता है। वह तुम्हें अपने कमरे से बाहर धक्का दे सकता है, या तुम्हारे चेहरे पर चपत लगा सकता है। यह असंगत दिखता है। तुमने एक बात पूछी और वह किसी और के बारे में उत्तर देता है। कोई पूछता है, "मार्ग क्या है?" परंतु झेन साधु का उत्तर मार्ग से जरा भी संबधित नहीं होता। वह कह सकता है, "नदी को देखो!" या "वृक्ष को देखो!" यह कितना लंबा है! यह अतर्क्य है।
मन सातत्य खोजता है। यह अतर्क्यता से भयभीत है। यह अ-तर्क से; अज्ञात
से भयभीत है। लेकिन सत्य कोइ बौध्दिक बात नहीं है। यह न तो कुछ घटाना है और न ही कुछ बढ़ाना है। यह तार्किक नहीं है, यह निष्पत्ति नहीं है।
मैं तुम्हें कुछ संप्रेषित नहीं कर रहा हूं। मैं मात्र एक परिस्थिति निर्मित कर रहा हूं। यदि परिस्थिति निर्मित हो जाती है, तब कुछ जो संप्रेषित नहीं हो सकता, संप्रेषित हो जाता है। इसलिये मत पूछो कि कैसे। बस हो रहो। जागरुक हो रहो यदि तुम हो सको, और यदि न हो सको ते अपनी बेहोशी

के प्रति जागरुक हो रहो। बस जो है उसके प्रति अवधान दो। यदि तुम ऐसा न कर सको तो अपने गैर अवधान पर अवधान दो। और घटना घटेगी। घटना घटती है।
एक "बेबूझ परिस्थिति" निर्मित करने से क्या आपका अर्थ है कि व्यक्ति
को किसी प्रकार से उलझाया जाए? इसका क्या परिणाम होगा?

लोग पहले से ही काफी उलझे हुए हैं। लेकिन क्योंकि वे पहले से उलझे हुए हैं, उन्होंने अपनी उलझनों से अपना तादात्म्य कर लिया है। वे उनके साथ राजीं हो गए हैं। उलझनों के वे आदी हो गए हैं। हम पहले से ही उलझे हुए हैं। बिना उलझे रहना और सत्य को न जानना असंभव है। उलझन हमारी सामान्य परिस्थिति है, इसलिये जब मैं तुम्हें उलझाता हूं, तो तुम्हारी उलझन ही उलझती है। तब उलझन समाप्त हो जाती है। तुम पहली बार शांत हो जाते हो। जब मैं एक बेबूझ स्थिति निर्मित करने के बारे में बात करता हूं, यह कुछ परिणाम प्राप्त करने के लिए नहीं है, वरन, एक ऐसा संदेश संप्रेषित करने के उपाय के रूप में है, जो कि संप्रेषित नहीं किया जा सकता।
तुम पूछते हो, "परिणाम क्या होगा?" इस बारे में कुछ प्रतीकात्मक ही कहा जा सकता है इसलिये जो कहा जाए उसे सत्य न मान लिया जाए। यह मात्र प्रतीकात्मक, काव्यात्मक, पौराणिक अर्थों में ग्रहण किया जाना चाहिए। मेरे लिए हरेक धार्मिक ग्रंथ पुराण कथा है और उस घटना से गुजरे हुए व्यक्ति द्वारा कही गयी हर बात एक अर्थ में असत्य है। यह सत्य नहीं वरन एक संकेत मात्र है। इसके पहले कि सत्य जाना जाए संकेत को भूल जाना पड़ेगा। तीन शब्द हैं जो उस सीमा को इंगित करते हैं जिसके बाद सिर्फ मौन है।
ये शब्द हैं सत्, चित्, आनंदः अस्तित्त्व, चेतना, आनंद। अनुभव एक है, लेकिन जब हम इसकी धारणा बनाते है तो हम इसे तीन भागो में बांट लेते हैं। यद सदा एक की भांति अनुभव होता है, पर इन्हें तीन की भांति समझाया जाता है।
इस समग्र अस्तित्त्व में, सत में, इस समग्र "है-पन" में तुम अकेले होते हो। तुम न यह हो न वह; तुम्हारा किसी से तादात्म्य नहीं है। वहां मात्र "है-पन" है।
दूसरा है चेतना, चित्। इसका अर्थ चेतन मन नहीं है। चेतन मन तो एक बड़े अचेतन का हिस्सा मात्र होता है। सामान्यतः जब हम चेतन होते हैं तो हम किसी चीज के प्रति चेतन होते हैं। यह चेतना वस्तुगत है, यह किसी वस्तु के विषय में है। चित शुद्ध चेतना है, कुछ नहीं के प्रति चेतना या सब कुछ के प्रति।
वहां कोई एक विषय नहीं है। चेतना किसी एक की तरफ उन्मुख नहीं है, यह बस है। यह अनंत है, शुद्ध है।
अंतिम है आनंद, ब्लिस। प्रसन्नता नहीं, हर्ष नहीं, बल्कि आनंद।
प्रसन्नता में एक अप्रसन्नता की दशा भी शामिल होती है। हर्ष में भी एक तनाव होता है; कुछ निष्कासित होता है, कुछ निकालना है। आनंद है- प्रसन्नता जिसमें अप्रसन्नता का कोई अंश न हो, यह हर्ष है जिसके चारों ओर कोई खालीपन नहीं है। यह है प्रसन्नता, बिना किसी तनाव के।
आनंद, एक अति पर हर्ष और दूसरी अति पर विषाद के मध्य का बिंदु है। यह मध्यबिंदु है, अतिक्रमण का बिंदु। इसमें विषाद की गहराई और हर्ष की ऊंचाई दोनों हैं। हर्ष में ऊंचाई है, पर कोई गहराई नहीं, जब कि विषाद में गहराई है, घाटी जैसी गहराई है, पर कोई शिखर नहीं है। आनंद में दोनों हैं, हर्ष की ऊंचाई और विषाद की गहराई, इसलिये यह दोनों के पार जाता है। केवल मध्यबिंदु ही दोनो अतियों का पूर्ण अतिक्रमण बन सकता है।
ये तीन शब्द सत चित आनंद सीमा हैं, वह अधिकतम जो कहा जा सके उसकी, और वह अल्पतम जो अनुभव किया जा सके उसकी। यह वह अंतिम बात है जो अभिव्यक्त की जा सकती है। और वह सीमा है जिससे कोई अनिर्वचनीय में कूद सकता है। यह अंत नहीं है, यह मात्र एक आरंभ है।
सच्चिदानंद मात्र एक अभिव्यक्ति है, वास्तविकता नहीं। यदि यह याद रखा
जा सके तो कोई हानि न पहुंचेगी। परंतु मन भूल जाता है और तब अभिव्यक्ति सच्चिदानंद वास्तविकता बन जाती है। हम इसके चारो और सिद्धांत, पंथ निर्मित कर लेते हैं और मन बंद हो जाता है। तब कोई छलांग नहीं लगती। सारी परंपरा इन तीन शब्दों के चारो और बना ली गयी है। पर वास्तविकता सच्चिदानंद नहीं है, यह इसके पार है। यह उसका बस इतना ही हिस्सा है जिसे

शब्द दिये जा सकते हैं। इसे एक रूपक की भांति समझना चाहिए। सारा धार्मिक साहित्य एक दृष्टांत है, यह प्रतीकात्मक है। यह जो आत्यांतिक रूप से अनिर्वचनीय है उसका व्याख्या है।
मैं तो सच्चिदानंद शब्द का प्रयोग भी करना पसंद नहीं करता क्योंकि जिस पल मन जान लेता है कि क्या होना है यह उसकी चाह और उसकी मांग करना शुरू कर देता है। तब यह सच्चिदानंद की मांग करता है, और शिक्षक आ जाते हैं जो इस मांग की पूर्ति मंत्रों से, विधियों से, उपायों से करने लग जाते हैं। हर मांग की पूर्ति की जा सकती है; इसलिये एक निरर्थक मांग की पूर्ति असंगतियों द्वारा ही की जा सकती है। इसी तरह से सारे धर्मशास्त्र और सारी गुरु परंपरायें निर्मित हो जाती हैं।
व्यक्ति को पूरे समय इस बात के प्रति बोध रखना पड़ेगा कि वह परम को पाया जाने वाला लक्ष्य मत बना ले। इसे एक अभिलाषा, या एक वस्तु जो उपलब्ध करनी है, या एक मंजिल जहां तक यात्रा करनी है, मत बनाओ। यह इसी समय अभी और यहीं है। यदि हम होशपूर्ण हो सकें, तो यह अभी घट सकता है। यह पहले से ही निकट है, यह हमारा निकटतम पड़ोसी है, लेकिन हम दूर की कामना करते चले जाते हैं। यह हमारे पास है, और हम लंबी तीर्थ यात्राओं को जाते रहते हैं। यह हमारा छाया की भांति अनुगमन करता है, पर हम इसे कभी नहीं देखते हैं क्योंकि हमारी आंखें कहीं बहुत दूर लगी हैं।
जीवन को "होनें" की तरह; "मिला ही हुआ है" इस तरह होना चाहिए। लाओत्से
का एक कथन है, "खोजो और तुम खो दोगे। मत खोजो और पा लो।"

प्रवचन-13

भगवत्ता के झरोखे

भारतीय दर्शन में परम सत्य की प्रकृति को सत्य (सत्यम्) सौंदर्य (सुंदरम्) और शुभ (शिवम्) की भांति वर्णित किया गया है। ये क्या ईश्वर के चारित्रिक गुण हैं?

ये ईश्वर के गुण नहीं है। बल्कि ये ईश्वर का हमारा अनुभव हैं। वे जैसे हैं उस तरह भगवत्ता से संबधित नहीं है। वे हमारे दृष्टि बोध हैं। भगवत्ता, स्वयं अज्ञेय है। या तो यह हर गुण है या कोई गुण नहीं है। पर जिस तरह से मानवीय मन निर्मित है, यह भगवत्ता को तीन झरोखों के माध्यम से अनुभव कर सकता हैः तुम उसकी झलक या तो सौंदर्य के माध्यम से, या सत्य के माध्यम से या शुभ के माध्यम से पा सकते हो।
मनुष्य के मन के ये ही तीन आयाम है। ये हमारी सीमायें हैं। उसे आकार
या रुप हमारे द्वारा दिया गया है। भगवत्ता स्वयं सब रुपों के पार है। यह इसी तरह है, हम आकाश को खिड़की के माध्यम से देख सकते हैं। खिड़की आकाश के चारों ओर एक चौखटे की भांति दिखती है, लेकिन आकाश के चारों ओर कोई चोखटा नहीं है। यह अनंत है। केवल खिड़की ही इसे चौखटा देती है। इसी प्रकार से सौंदर्य, सत्य और शुभ तीन झरोखे है जिनसे हम भगवत्ता की झलक पा सकते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व तीन पर्तों में बंटा हुआ है। यदि बुद्धि अधिक प्रबल हो तो भगवत्ता सत्य का रूप ग्रहण कर लेती है। बौद्धिक रुझान सत्य का झरोखा, सत्य का चौखटा निर्मित करती है। यदि मन भावुक है- यदि कोई सत्यता की ओर सिर से नहीं वरन हृदय के माध्यम से आता है- तो भगवत्ता सौंदर्य बन जाती है। यह काव्यात्मक गुण तुम्हारे द्वारा दिया गया है। यह मात्र चौखटा है। बुद्धि सत्य का चौखटा देती है, भाव इसे सौंदर्य का चौखटा देता है। और यदि व्यक्तित्व न भावुक हो न बौद्धिक- यदि कर्म प्रबल हो- तो यह चौखटा शुभ बन जाता है।
इसलिये यहां भारत में हम भगवत्ता के लिए ये तीन शब्द उपयोग करते हैं।
भक्ति योग का अर्थ है भक्ति का मार्ग और यह भावुक प्रकार के लिए है।
परमात्मा को सौंदर्य की भांति देखा गया है। ज्ञान योग ज्ञान का मार्ग है।
परमात्मा को सत्य की भांति देखा गया है। और कर्म योग कर्म का मार्ग है।
परमात्मा शुभ है।
गाड शब्द भी शब्द गुड से आता है। इस शब्द का महत्तम प्रभाव रहा है, क्योंकि अधिकतम मानवता, मुख्यतः कर्म-प्रधान है, न बौद्धिक न भावुक। इसका वह अर्थ नहीं है कि वहां कोई बुद्धि या भाव नहीं है, केवल उनका प्रभाव कम हैं। बहुत कम लोग बौद्धिक हैं और बहुत कम भावुक हैं। मानव-जाति की अधिक संख्या मुख्यतः कर्म प्रधान है। कर्म के माध्यम से गाड गुड बन जाता है। लेकिन विपरीत ध्रुव का अस्तित्त्व भी होना चाहिए, इसलिये ईश्वर यदि शुभ के रूप में देखा गया है तो शैतान अशुभ के रूप में समझा जाएगा। क्रियाशील मन शैतान को अशुभ की भांति देखेगा, भावुक मन शैतान को कुरूप की भांति देखेगा और बौद्धिक मन शैतान को असत्य, भ्रम, मिथ्या के रूप में देखेगा। ये तीनों गुड, सत्य, शुभ और सौंदर्य, मनुष्य निर्मित श्रेणियां है, जो उसने दिव्यता के चारों ओर बना दी हैं, जो कि स्वयं निराकार है। वे सच में भगवत्ता की विशिष्टतायें नहीं हैं। यदि मनुष्य का मन भगवत्ता को किसी चौथे आयाम से देख सके तो यह चौथा आयाम भी भगवत्ता का गुण बन जाएगा। मेरा यह अर्थ नहीं है कि भगवत्ता शुभ नहीं है। मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूं यह शुभ एक गुण है जो हमारे द्वारा चुना गया और देखा गया है। यदि संसार में मनुष्य का अस्तित्त्व न होता तो भगवत्ता शुभ नहीं होती, तो भगवत्ता, सौंदर्यवान नहीं होती, तो भगवत्ता सत्य नहीं होती। भगवत्ता जैसी है वैसी ही होती, किंतु ये गुण, जो कि हमारे द्वारा चुने गये हैं, उसमें नहीं होते। ये मात्र मानवीय दृष्टि बोध हैं। हम भगवत्ता में अन्य गुणों को भी देख सकते हैं। हम नहीं जानते कि पशु भगवत्ता को देखते हैं अथवा नहीं, कि वे चीजों को कैसे अनुभव करते हैं, पर एक बात तो निश्चित है कि वे भगवत्ता को मानवीय

शब्दों में नहीं समझेंगे। यदि वे किसी भांति भगवत्ता को देखते हैं, उनका इसका अनुभव और समझ हमसे काफी भिन्न होगा। जो गुण वे महसूस करते हैं वे वही नहीं होंगे जो हमारे लिए हैं।
यदि कोई व्यक्ति मुख्यत्तः बौद्धिक है, वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता
कि कैसे तुम कहते कि ईश्वर सौंदर्यवान है। यह धारणा उसके मन के लिए बिल्कुल बाहरी है। और एक कवि यह कल्पना नहीं कर सकता कि सत्य का सौंदर्य के अतिरिक्त कोई और भी अर्थ होता है। उसके लिए इसका कोई और अर्थ नहीं हो सकता। सत्य सौंदर्य है, शेष सभी मात्र बौद्धिक है। कवि के लिए, चित्रकार के लिए, उस व्यक्ति के लिए जो संसार को हृदय के भाव से समझता है, सौंदर्य के बिना सत्य केवल एक वस्तु है। यह मात्र एक बौद्धिक व्यवस्था है।
इसलिये यदि कोई विशेष गुण मुख्यतः बौद्धिक है, तो यह भावुक मन को नहीं समझ सकता और इसका उलटा भी सच है। यही कारण है कि इतनी अधिक गलतफहमियां और इतनी ज्यादा परिभाषायें हैं। कोई एक परिभाषा सारी मानव-जाति द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती। ईश्वर को तुम्हारे अपने शब्दों में तुम तक आना चाहिए। जब तुम ईश्वर को परिभाषित करते हो, तो तुम उस परिभाषा का भाग हो जाते हो। वह परिभाषा तुमसे आएगी, ईश्वर तो अपरिभाष्य है। इसलिये उन लोगों ने, जो उसे इन तीन झरोखों के द्वारा देखते हैं, एक प्रकार से अपने को, अपनी निजी परिभाषाओं को भगवत्ता पर थोप दिया है।
भगवत्ता को देखने के एक चौथे रास्ते की भी संभावना है उसके लिए, जिसने अपने व्यक्तित्व के इन तीन भागों का अतिक्रमण कर लिया है। भारत में हमारे पास चौथे के लिए कोई शब्द नहीं है। हम इसे बस तुरीय, चौथा कहते हैं। चैतन्य की एक दशा है जब तुम न तो बौद्धिक होते हो, न भावुक और न कर्मठ, वरन मात्र चेतन होते हो। तब तुम आकाश को किसी खिड़की के द्वारा नहीं देख रहे हो। तुम अपने घर से बाहर आ गये होते हो और तुम खिड़की रहित आकाश को जानते हो। वहां कोई ढांचा, कोई चौखटा नहीं होता। केवल इसी प्रकार की चेतना जिसने चौथे को उपलब्ध कर लिया हो, अन्य तीनों की सीमाओं को समझ सकती है। यह दूसरों के मध्य समझ पाने की कठिनाई को समझ सकती है और सौंदर्य, सत्य और शुभ में अंतर्निहित समानताओं को भी समझ सकती है। केवल चौथे प्रकार की चेतना ही समझ सकती है और सहन कर सकती है। अन्य तीनों प्रकार सदा झगड़ते रहेंगे। सारे धर्म इन तीनों श्रेणियों में से किसी एक से संबधित हैं। और वे सदा झगड़ते आए हैं। बुद्ध इस संघर्ष में भाग नहीं ले सकते। वे चौथे प्रकार के व्यक्ति हैं। वे कहते हैं, "यह सब मूर्खता है। तुम भगवत्ता के गुणों के बारे में नहीं झगड़ रहे हो। किसी भी खिड़की से देखा गया हो पर आकाश तो वही है।"
इसलिये ये भगवत्ता के गुण नहीं हैं। यह भगवत्ता के गुण उस तरह है जैसा
कि हमने उनका अनुभव किया है। यदि हम अपनी खिड़कियां नष्ट कर सकें; हम भगवत्ता को गुणातीत, निर्गुण के रूप में जान सकते हैं। तब हम गुणों के पार जा सकते हैं। केवल तभी मानवीय प्रक्षेप नहीं होता। लेकिन तब कुछ भी कहना बहुत कठिन हो जाता है। जो कुछ भी भगवत्ता के बारे में कहा जा सकता है, वह केवल झरोखों के माध्यम से ही कहा जा सकता है; क्योंकि जो भी कहा जा सकता है; वह वास्तव में उन झरोखों के बारें में ही कहा जा रहा है; आकाश के बारे में नहीं। जब हम झरोखों के पार देखते हैं, आकाश इतना विराट इतना असीम है। यह परिभाषित नहीं किया जा सकता। सारे शब्द असमर्थ है, सारे सिद्धांत अपर्याप्त हैं।
इसलिये कोई जो चौथे में होता है, सदा इसके बारे में मौन रहता है, और भगवत्ता की परिभाषाएं पहले तीनों से आयी हैंः यदि कोई जो चौथे में बोला भी है तो वह जो शब्द बोला है, वे असंगत, अतर्क्य, तर्कातीत प्रतीक होते हैं। वह स्वयं का विरोध करता है। विरोधाभास के द्वारा वह कुछ दिखाने का प्रयास करता है, कुछ कहने का नहीं, कुछ दिखाने का।
विट्गिन्सटीन ने इस अंतर को स्पष्ट किया है। उसने कहा, ऐसे सत्य हैं
जो कहे जा सकते हैं, और ऐसे सत्य हैं जो दिखाए जा सकते हैं पर कहे नहीं जा सकते। कोई चीज परिभाष्य है, क्योंकि यह अन्य वस्तुओं के साथ अस्तित्त्व रखती है। इसे अन्य वस्तुओं से जोड़ा जा सकता है, तुलना की जा सकती है।

उदाहरण के लिए हम सदा कह सकते हैं कि एक मेज, कुर्सी नहीं है। हम इसकी परिभाषा किसी अन्य के संदर्भ में कर सकते हैं। इसकी एक सीमा है, जहां तक यह फैली है और इसके पार कुछ और शुरू हो जाता है। वस्तुतः सीमा मात्र परिभाषित की गई है। परिभाषा का अर्थ है वह सीमा जहां से अन्य सब कुछ शुरू हो जाता है।
पर हम भगवत्ता के बारे में कुछ नहीं कह सकते। भगवत्ता सब कुछ है इसलिये वहां कोई सीमा नहीं है, वहां कोई सीमांत नहीं है जिससे कुछ अन्य शुरू होता हो। वहां कोई कुछ अन्य नहीं है। भगवत्ता सीमांतविहीन है इसलिये यह परिभाषित नहीं हो सकती।
चौथा केवल दिखा सकता है, यह मात्र संकेत कर सकता है। यही कारण है कि चौथा रहस्यपूर्ण रहा है। और चौथा ही सर्वाधिक प्रमाणिक है, क्योंकि यह मानवीय दृष्टि द्वारा रंगा हुआ नहीं है। सारे महान संतो ने केवल संकेत दिये हैं; उन्होंने कुछ कहा नहीं है। भले ही वे जीसस, बुद्ध, महावीर या कृष्ण हों, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। वे कुछ नहीं कह रहें हैं, वे तो बस कुछ इंगित कर रहे हैं- बस चंद्रमा की ओर संकेत करती एक उंगली मात्र!
लेकिन सदा यह कठिनाई है कि तुम उंगली से आसक्त हो जाओ। उंगली अर्थहीन
है, यह कुछ और इंगित कर रही है। तुम्हारी आंख को इसे नहीं पकड़ लेना चाहिए। यदि तुम चांद की ओर देखना चाहते हो तो उंगली को पूर्णतः भूल जाना पड़ेगा। जहां तक भगवत्ता का संबंध है, यही महानतम कठिनाई रही है। तुम संकेत को देखते हो और तुम महसूस करते हो कि यह संकेत ही स्वयं सत्य है। तब सारा प्रयोजन व्यर्थ हो जाता है। उंगली चंद्रमा नहीं है, वे आत्यंतिक रूप से भिन्न हैं। चंद्रमां उंगली के माध्यम से दिखाया जा सकता है, पर व्यक्ति को उंगली से चिपकना नहीं चाहिए। यदि कोई ईसाई बाइबिल न भूल पाये, यदि कोई हिंदू गीता न भूल पाये तो सारा प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। सारी बात उद्देश्य विहीन, अर्थहीन और एक प्रकार के अ-धार्मिक, धर्म विरोधी हो जाती है।
जब भी कोई व्यक्ति भगवत्ता की ओर उन्मुख हो, तो उसे अपने मन के प्रति जागरुक होना चाहिए। यदि कोई भगवत्ता की ओर मन के माध्यम से उन्मुख होता है तो भगवत्ता इसके द्वारा अभिरंजित हो जाती है। यदि तुम भगवत्ता की ओर बिना मन के, अपने मनुष्य होने को भीतर लिए बिना उन्मुख होते हो, यदि तुम भगवत्ता की ओर एक रिक्ताता की भांति, एक शून्य की भांति, एक नाकुछपन की तरह उन्मुख होते हो, बिना किसी पूर्व निर्मित धारणा के, बिना वस्तुओं को एक विशिष्ट ढंग से देखने की आदत के- तभी तुम भगवत्ता की गुणातीत अवस्था को जान सकोगे, अन्यथा नहीं। वरना तो जो सारे गुण हम भगवत्ता को प्रदान करते है, हमारी मानवीय खिड़की पर आधारित हैं। हम उन्हें भगवत्ता पर थोप देते हैं।

क्या आप कह रहे हैं कि हमें आकाश को देखने के लिए खिड़की का प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं है?

हां। बिल्कुल न देखने से तो खिड़की से देखना उत्तम है, पर खिड़की से देखने की, खिड़की रहित आकाश से तुलना नहीं हो सकती।

लेकिन व्यक्ति बिना खिड़की के कमरे से आकाश की ओर जा सकता है?

तुम आकाश की ओर जाने के लिए खिड़की से होकर गुजर सकते हो, पर तुम्हें खिड़की पर रुके नहीं रहना चाहिए। अन्यथा खिड़की वहां सदा रहेगी। खिड़की को पीछे छूट जाना चाहिए। इससे होकर गुजरना और इसका अतिक्रमण करना पड़ेगा।
एक बार कोई आकाश में हो तो कोई शब्द नहीं होते- जब तक कि वह कमरे में वापस नहीं लौटता। तब बाद में कहानी आती है... हां, व्यक्ति वापस लौटता है। लेकिन वह वही नहीं हो सकता जैसा कि वह पहले था। उसने अरूप को, अनंत को, जान लिया है। अब तो खिड़की से भी वह जानता है कि आकाश किसी आकार में सीमित नहीं है, खिड़की जितना ही नहीं है। अब खिड़की के पीछे से भी वह धोखा नहीं खा सकता। यदि खिड़की बंद भी कर दी जाए और कमरा अंधकारमय हो जाए, तो भी वह जानता है कि अनंत आकाश वहां है। अब वह पुनः वही नहीं हो सकता है।

एक बार तुमने अनंत को जान लिया तो तुम अनंत हो गए। हम वही होते हैं तो हमने जाना है, जो हमने अनुभव किया है। एक बार तुमने बंधन रहित, सीमा रहित को जान लिया; तो एक प्रकार से तुम अनंत हो गए। कुछ जानने का मतलब वही हो जाना है। प्रेम को जानना, प्रेम हो जाना है, प्रार्थना को जानना प्रार्थना हो जाना है; भगवत्ता को जानना भगवान हो जाना है। ज्ञान प्रत्यक्षीकरण है, ज्ञान होना है।

क्या सभी तीनों खिड़कियां एक हो जाती है?

नहीं। प्रत्येक खिडकी़ जैसी थी वैसी रहेगी। खिड़की नहीं बदली हैं, तुम बदल गये हो। यदि व्यक्ति भावुक है, वह उस खिड़की के माध्यम से बाहर जाएगा और भीतर आएगा; किंतु अब वह अन्य खिड़कियों से इन्कार नहीं करेगा, उनके प्रति वह शत्रुता पूर्ण नहीं होगा। अब वह दूसरो के प्रति भी समझपूर्ण होगा। वह जानेगा कि दूसरी खिड़कियां भी उसी आकाश में ले जाती हैं।
एक बार तुम आकाश के नीचे हो गए, तुम जानते हो कि अन्य खिड़कियां भी उसी
घर का भाग हैं। अब तुम दूसरी खिड़कियों तक जा सकते हो या नहीं भी जा सकते। यह तुम पर निर्भर करता है। तुम्हें जरूरत नहीं है, एक खिड़की पर्याप्त है।
यदि कोई व्यक्ति रामकृष्ण की भांति है तो वह अन्य खिड़कियों से भी गुजर सकता है, यह देखने के लिए कि क्या वही आकाश उनसे भी दिखता है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है। कोई दूसरी खिड़कियों से देख भी सकता है या न भी देखे। और वास्तव में, इसकी कोई जरूरत नहीं है। आकाश को जानना पर्याप्त है।
पर कोई जांच कर सकता है, जिज्ञासु हो सकता है। तब वह अन्य खिड़कियों द्वारा देखेगा। ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने इसका प्रयोग किया, और ऐसे जिन्होंने नहीं किया। लेकिन एक बार किसी व्यक्ति ने खुला आकाश जान लिया, वह अन्य खिड़कियों से इन्कार नहीं करेगा; वह अन्य पथों से इन्कार नहीं करेगा। वह सुनिश्चित कर देगा कि उनकी खिड़कियां भी उसी चीज की ओर खुलती हैं। इसलिये वह व्यक्ति जिसने आकाश जाना धार्मिक हो जाता है, न कि पंथवादी। पंथ वादी मन खिड़की के पीछे रहता है, धार्मिक मन इसके पार होता है।
वह जिसने आकाश को देख लिया है वह एैसे भ्रमण कर सकता है, वह अन्य खिड़कियों पर भी जा सकता है। अनंत खिड़कियां हैं। ये मुख्य प्रकार हैं पर ये ही एकमात्र खिड़कियां नहीं हैं। बहुत से संयोजन संभव हैं।

क्या हर चेतना के लिए; हर व्यक्ति के लिए एक खिड़की है?

हां। एक प्रकार से हर व्यक्ति भगवत्ता को अपनी निजी खिड़की से ही पहुंचता है। और हर खिड़की अन्य किसी से मुलतः भिन्न है। अनंत खिड़कियां है, अनंत पंथ हैं। हर व्यक्ति का अपना निजी पंथ होता है। दो ईसाई समान नहीं हैं। एक ईसाई दूसरे से इतना अधिक भिन्न है जितनी ईसाईयत हिंदू धर्म से भिन्न है।
एक बार तुम आकाश तक आ गये, तुम जानते हो कि सारी भिन्नतायें घर से संबंधित हैं। वे तुमसे कभी संबधित नहीं हैं। वे उस घर की हैं जिस में तुम रहे, जिससे तुमने देखा, जिससे तुमने अनुभव किया, लेकिन वे तुमसे कभी संबधित न थीं।
जब तुम आकाश के नीचे आते हो, तुम जानते कि तुम भी आकाश का हिस्सा थे- बस दीवारों में रह रहे थे। घर के भीतर का आकाश, घर के बाहर के आकाश से भिन्न नहीं है। एक बार हम बाहर आ जाएं, हम जान लेते हैं कि अवरोध वास्तविक नहीं थे। आकाश के लिए एक दीवार भी अवरोध नहीं है, इसने आकाश को किसी भी तरह बांटा नहीं है। इससे ऐसा आभास निर्मित होता है कि आकाश विभाजित हो गया है- कि यह मेरा मकान है और यह मकान तुम्हारा है; यह कि मेरे घर का आकाश मेरा है, और तुम्हारे घर का आकाश तुम्हारा है- लेकिन एक बार तुमने स्वयं आकाश को जान लिया, तो कोई अंतर नहीं रहता। तब वहां कोई व्यक्ति नहीं होते। तब लहरें खो जाती हैं और मात्र सागर बचता है। तुम (घर के) भीतर पुनः वापस आ जाओगे पर अब तुम आकाश से भिन्न नहीं होगे।

ऐसा लगता है कि कुछ ईसाई हुए हैं, जो आकाश में गये और जो इस धारणा के साथ वापस आ गए।
कुछ हैं। संत फ्रांसिस, एकहार्ट, बोहमे... उन्होंने हमें नहीं बताया
कि यह वही आकाश था, क्या उन्होंने बताया?

उन्होंने नहीं बताया। आकाश सदा वही है, पर वे एक ही प्रकार से आकाश की सूचना नहीं दे सकते। आकाश के बारे में सूचनाएं भिन्न होंगी ही, पर जिसकी सूचना दी जा रही है वह एक ही है।
उन लोगों के लिए जिन्होंने उस चीज को; जिस चीज की खबर की गयी है, उस को
ही नहीं जाना हो, सूचना ही सब कुछ होगी, महत्वपूर्ण होगी। तब अंतर और भी स्पष्ट हो जाते हैं। किंतु वह सभी जो सूचित किया गया है मात्र एक चुनाव है। समग्रता को नहीं कहा जा सकता; समग्रता का एक हिस्सा ही सूचित किया जा सकता है। और जब यह कह दिया जाता है तो यह मृत हो जाता है।
संत फ्रांसिस वैसी ही सूचना दे सकते हैं जैसी कि सूचना एक फ्रांसिस
दे सकता है। वे मौहम्मद की भांति सूचना नहीं दे सकते; क्योंकि सूचना आकाश से नहीं आती है। यह सूचना व्यक्तित्व से, ढांचे से आती है। यह मन से आती हैः स्मृति, शिक्षा, अनुभव से; यह शब्दों से आती है भाषा से, पंथ से, जीवन से। इस सभी से सूचना आती है। यह संभव नहीं है कि संवाद सिर्फ संत फ्रांसिस के द्वारा आएं; क्योंकि सूचना कभी निजी नहीं हो सकती। इसे संप्र्रेषीत होना पड़ेगा वरना वह पूर्णतः असफल हो जाएगी।
यदि मैं अपनी निजी भाषा में सूचना दूं, कोई इसे नहीं समझेगा। जब मैंने आकाश को अनुभव किया, मैंने इसे समाज के बिना अनुभव किया है। मैं ज्ञान के क्षण में पूर्णतः अकेला था वहां कोई भाषा नहीं थी, वहां कोई शब्द नहीं थे। लेकिन जब मैं सूचना देता हूं, मैं उन्हें सूचित करता हूं उनको जिन्होंने जाना नहीं है, मुझे उनकी भाषा में बोलना चाहिए। मुझे ऐसी भाषा उपयोग करनी पड़ेगी जो कि अपने ज्ञान से पूर्व मुझे पता थी।
संत फ्रांसिस ईसाई भाषा उपयोग करते हैं। जहां तक मेरा संबंध है, धर्म मात्र विभिन्न भाषाएं हैं। मेरे लिए ईसाईयत वह विशिष्ट भाषा है जो जीसस क्राइस्ट से निकली है। हिंदू धर्म एक अन्य भाषा है, बुद्ध धर्म एक अन्य भाषा है। अंतर सदा भाषा का है। लेकिन यदि कोई मात्र भाषा जानता है और उसने अनुभव को स्वतः नहीं नहीं जाना है, तो अंतर बड़ा होगा ही।
जीसस ने कहा "परमात्मा का राज्य" क्योंकि वे ऐसे शब्द उपयोग कर रहे थे
जो उनके श्रोताओं की समझ में आ सकें। "राज्य" शब्द कुछ लोगों द्वारा ठीक समझा गया और दूसरों द्वारा गलत समझा गया और जीसस को सूली दी गयी। लेकिन जिन्होंने जीसस को समझा था, वे समझ गये कि "परमात्मा के राज्य" का क्या अर्थ है, लेकिन जो नहीं समझ उन्होंने सोचा के वे पृथ्वी पर के राज्य की बात कर रहे थे।
लेकिन जीसस बुद्ध के शब्द उपयोग नहीं कर सकते थे। बुद्ध ने कभी राज्य शब्द का प्रयोग नहीं किया होता। इस अंतर के बहुत से कारण हैं। जीसस एक गरीब परिवार से आते हैं; उनकी भाषा निर्धन व्यक्ति की भाषा थी। निर्धन व्यक्ति के लिए राज्य शब्द बहुत भावपूर्ण है, लेकिन बुद्ध के लिए इस शब्द के बारे में कुछ भी महत्त्वपूर्ण न था, क्योंकि बुद्ध स्वयं एक राजकुमार थे। यह शब्द बुद्ध के लिए अर्थहीन पर जीसस के लिए अर्थपूर्ण था।
बुद्ध भिखारी बन गए और जीसस राजा बन गए। यह होना ही था। दूसरा छोर अर्थपूर्ण बन जाता है। अनजाना छोर अज्ञात के लिए अभिव्यक्तिपूर्ण हो जाता है। बुद्ध के लिए भीख मांगना सर्वाधिक अनजानी बात थी, इसलिये उन्होंने अजनबी का रूप, भिखारी का रूप ग्रहण कर लिया। उनके लिए भिक्खु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शब्द बन गया।
भारत में भिक्खु शब्द कभी नहीं उपयोग किया गया था यहां वैसे ही बहुत
से भिखारी हैं। इसके बजाय हमने स्वामी, मालिक शब्द का प्रयोग किया। जब कोई संन्यासी हो जाता है, जब वह छोड़ देता है, वह स्वामी, मालिक बन जाता है। लेकिन जब बुद्ध ने छोड़ा वे एक भिक्खु, एक भिखारी हो गए। बुद्ध के लिए इस शब्द में कुछ अर्थ था जो जीसस के लिए इसमें नहीं हो सकता था।

जीसस मात्र उस भाषा में बोल सके जो यहूदी संस्कृति की भाषा थी। यहां- वहां उन्होंने कुछ परिवर्तन किया, पर सारी भाषा न बदल सके अन्यथा कोई उनकी बात समझने में समर्थ न हो पाता। इसलिये एक अर्थ में, वे ईसाई नहीं थे। संत फ्रांसिस के समय तक, एक ईसाई संस्कृति अपनी निजी भाषा के साथ विकसित हो चुकी थी। इसलिये संत फ्रांसिस, स्वयं क्राइस्ट की तुलना में अधिक ईसाई थे। क्राइस्ट एक यहूदी ही रहे, उनका सारा जीवन यहूदी था। यह अन्यथा नहीं हो सकता था।
यदि तुम एक जन्मजात ईसाई हो, तो ईसाईयत तुम्हारे लिए भावपूर्ण नहीं
हो पाएगी, यह तुम्हें न छू सकेगी। जितना अधिक तुमने इसको जाना उतनी ही अधिक यह अर्थहीन हो जाती है। रहस्य खो जाता है। ईसाई के लिए हिंदू दृष्टिकोण अधिक अर्थपूर्ण, अधिक महत्त्वपूर्ण लग सकता है। क्योंकि यह अनजाना है, यह अज्ञेय के लिए अभिव्यक्तिपूर्ण हो सकता है।
जहां तक मेरा संबंध है, व्यक्ति के लिए अपने जन्म के साथ मिले हुए धर्म में जो विश्वास दिये गए हैं, उसे उनसे इनकार कभी न कभी करना ही पड़ेगा, अन्यथा, यह साहसिक यात्रा कभी न शुरू होगी। व्यक्ति को जहां वह पैदा हुआ है, वहीं नहीं रहना चाहिए। व्यक्ति को अनजाने छोरों तक जाना चाहिए और इसका आनंद अनुभव करना चाहिए।
कभी कभी तो हम उसी बात को ही नहीं समझ सकते जिसके बाबत हम सोचते हैं कि हमने सर्वाधिक समझा हुआ है। एक ईसाई सोचता है कि वह ईसाईयत को समझता है। यही अवरोध बन जाता है। एक बौद्ध सोचता है कि वह बुद्ध धर्म को समझता है क्योंकि वह इसे जानता है, लेकिन जानने का यही भाव एक अवरोध बन जाता है। केवल अज्ञात ही चुंबकीय, गुप्त, गुह्य बन सकता है।
व्यक्ति कोअपनी प्राप्त परिस्थितियों का अतिक्रमण करना चाहिए। यह मात्र परिस्थितिजन्य है कि कोई जन्म से ईसाई है, यह मात्र परिस्थिति जन्य है कि कोई जन्म से हिंदू है। व्यक्ति को अपने जन्म के संस्कारों में बंधा नहीं रहना चाहिए। जहां तक धर्म का संबंध है उसे दोबारा पैदा होना चाहिए। व्यक्ति को अनजान छोरों तक जाना चाहिए। तब रोमांच होता है और असली खोज शुरु होती है।
धर्म एक अर्थ में पूरक हैं। उन्हें अन्य धर्मों के लिए कार्य करना चाहिए, उन्हें अन्य धर्मों को स्वीकार करना चाहिए। एक ईसाई, एक हिंदू या एक यहूदी को आस्था परिवर्तन के रोमांच का अनुभव करना चाहिए। आस्था परिवर्तन का रोमांच ही रूपांतरण की पृष्ठभूमि तैयार करता है। जब कभी कोई पश्चिम से पूर्व को आता है तो कुछ नयापन है। पूर्वीय दृष्टिकोण इतना भिन्न है कि इसे परिचित श्रेणियों में नहीं रखा जा सकता। सारा दृष्टिकोण, तुम जिससे परिचित हो उससे इतना विपरीत होना चाहिए कि यदि तुम इसे समझना चाहो तो तुम्हें स्वयं अपने को ही बदलना पड़ेगा।
यही घटना घटती है उस व्यक्ति को जो पूर्व से पश्चिम को जाता है। यह एक
ही धरती ही है। व्यक्ति को इसके प्रति खुला होना चाहिए ताकि यह घट सके। यह अज्ञात ही है, जो परिवर्तन निर्मित करेगा।
भारत में, हम इसाईयत जैसा धर्म निर्मित नहीं कर सके। हम धर्मशास्त्र निर्मित नहीं कर सके। हम वैटिकन, चर्च निर्मित नहीं कर सके। यहां पर मंदिर हैं पर कोई चर्च नहीं है। पूर्वीय मन मौलिक रूप से अतर्क्य है इसलिये एक अर्थों में यह अराजक होगा ही। यह वैयक्तिक होने ही वाला है, यह संगठनात्मक नहीं हो सकता।
एक कैथोलिक पादरी होना एक बहुत ही भिन्न बात है। उसे एक संगठन का भाग होने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। वह धर्मसत्ता की श्रेणियों से किसी स्तर पर संबधितहै। और यह बात काम करती है। एक व्यवस्था, एक श्रेणीयुक्त धर्मसत्ता तर्कयुक्त है, इसलिये ईसाईयत सारे विश्व में फैलने में समर्थ हो गयी।
हिंदू धर्म ने किसी की आस्था परिवर्तन का कभी प्रयास नहीं किया। यदि किसी ने अपने को परिवर्तित भी कर लिया तो हिंदू धर्म उसके साथ समायोजित नहीं हैं। यह परिवर्तन न करने वाला, संगठनरहित धर्म है। जिन अर्थों में यह कैथोलिक धर्म में है इस तरह का पुरोहित वाद इसमें नहीं है। हिंदू साधू मात्र एक भ्रमण करता हुआ व्यक्ति है- बिना किसी धर्मसत्ता के, बिना किसी

व्यवस्था से संबधित हुए। वह आत्यंतिक रूप से बिना जड़ो के है। जहां तक बाह्य संसार का संबंध है यह विधि असफल होने ही वाली है, किंतु जहां तक व्यक्ति का संबंध है, जहां तक भीतरी गहराई का संबंध है यह सफल होगी ही। विवेकानंद ईसाईयत से बहुत आकर्षित थे। उन्होंने रामकृष्ण की आश्रम-व्यवस्था; कैथोलिक पादरी व्यवस्था पर आधारित की। यह पूर्व के लिए बहुत अपरिचित, बहुत बाहरी है। यह आत्यंतिक रूप से पाश्चात्य है। विवेकानंद का मन बिल्कुल भी पूर्वीय नहीं है। और जैसे मैं कहता हूं कि विवेकानंद पाश्चिमात्य थे, मैं कहता हूं कि एकहार्ट, और संत फ्रांसिस पूर्वीय थे। मूलतः वे पूर्व से संबधित थे।
जीसस स्वयं पूर्व से संबधित थे। पर ईसाईयत पूर्व से संबधित नहीं है,
यह पश्चिम से संबधित है। जीसस मूलतः पूर्वीय थे, वे चर्च विरोधी, संगठन विरोधी थे। यही तो संघर्ष था।
पश्चिमी मन तर्क, कारण, व्यवस्था, युक्ति के रूप में सोचता है। यह बहुत गहरा नहीं जा सकता, यह सतह पर ही रहेगा। यह बर्हिगामी होगा, अंर्तगामी कभी नहीं। इसलिये संगठित धर्म हमारे लिए एक अवरोध है। उन्हें जाना होगा ताकि हम आकाश देख सकें।
हां। वे खिड़की को ढके हैं। वे रुकावटें हैं।

क्या पश्चिमी मन को पूर्वीय मन की भांति विस्तीर्ण होना पड़ेगा?

पश्चिमी मन, जहां तक विज्ञान का संबंध है, सफल हो सकता है, पर यह धार्मिक चेतना में सफल नहीं हो सकता। जब भी कभी कोई धार्मिक मन जन्मता है, पश्चिम में भी, यह पूर्वीय ही होता है। एकहार्ट में, बोहम में, मन की गुणवत्ता पूर्वीय है। और जब कभी भी पूर्व में कोई वैज्ञानिक मन उत्पन्न होता है यह पाश्चिमात्य होगा ही। पूर्व और पश्चिम भौगोलिक नहीं हैं। पश्चिम का अर्थ है, "अरिस्टोटलियन" और पूर्व का अथ "गैर-अरिस्टोटलियन"। पश्चिम का अर्थ है साम्यता और पूर्व का अर्थ है असाम्यता, पश्चिम का अर्थ है तार्किक और पूर्व का अर्थ है अतार्किक।
तर्तुलियन पश्चिम के सर्वाधिक पूर्वीय मनों में एक था। उसने कहा, "मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं; क्योंकि विश्वास करना एक असंभव बात है। मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं क्योंकि यह अतर्क्य है।" यह मूलभूत पूर्वीय दृष्टिकोण हैः क्योंकि यह अतर्क्य है। पश्चिम में कोई इसे नहीं कह सकता। पश्चिम में वे कहते है, तुम्हें किसी बात में केवल तभी विश्वास करना चाहिए जब कि यह तर्क युक्त हो अन्यथा यह मात्र एक विश्वास है। एकहार्ट भी एक पूर्वीय मन है। वह कहता है, यदि तुम संभव में विश्वास करते हो, यह कोई विश्वास नहीं है। यदि तुम तर्क में विश्वास करते हो; यह कोई धर्म नहीं है। ये तो विज्ञान के अंग है। केवल अगर तुम अतर्क्य में विश्वास करो तो ही कुछ, जो मन के पार है, तुम तक आता है।" यह धारणा पाश्चात्य नहीं है। यह पूर्व की है।
दूसरी ओर, कन्फयूशियस एक पश्चिमी मन है। वे लोग जो पश्चिम में हैं, कन्फयूशियस को समझ सके, पर वे लाओत्से को कभी नहीं समझ सकते। लाओत्से कहता है, "तुम मूर्ख हो, क्योंकि तुम केवल तर्कयुक्त हो।" तर्कयुक्त होना, युक्तिपूर्ण होना पर्याप्त नहीं है। अतर्क्य को भी अस्तित्त्ववान होने के लिए अपनी भूमि चाहिए। केवल यदि कोई व्यक्ति तर्कयुक्त और अतर्क्य दोनों है, तभी युक्तिपूर्ण है।
कोई पूर्णतः तर्कयुक्त व्यक्ति कभी बिल्कुल युक्तिपूर्ण नहीं हो सकता। युक्ति में उसका अपना अतर्क्यता का अंधेरा छोर होता है। एक बच्चा अंधेरे गर्भ में उत्पन्न होता है। एक फूल अंधेरे में, भूमि के भीतर स्थित जड़ों में जन्म लेता है। अंधेरे से इनकार नहीं करना चाहिए, यह तो आधार है। यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, सर्वाधिक जीवनदायी चीज है।
पश्चिमी मन के पास संसार को देने के लिए कुछ है। यह विज्ञान है, धर्म नहीं। पूर्वीय मन सिर्फ धर्म दे सकता है, विज्ञान या विधि नहीं। विज्ञान और धर्म परस्पर पूरक हैं। यदि हम उनके अंतरों और उनकी पूरकताओं दोनों को जान सकें तो एक बेहतर विश्व संस्कृति इससे उत्पन्न हो सकती है।

यदि किसी को विज्ञान की जरूरत हो तो उसे पश्चिम जाना चाहिए। लेकिन यदि पश्चिम कोई धर्म निर्मित करता है तो यह धर्म, शास्त्र से अधिक कभी नहीं हो सकता। पश्चिम में तुम परमात्मा को सिद्ध करने के लिए अपने को तर्क देते हो। तर्क! परमात्मा को सिद्ध करने के लिए! पूर्व में यह अकल्पनीय है। तुम परमात्मा को सिद्ध नहीं कर सकते। यह प्रयास ही अर्थहीन है। वह जो सिद्ध किया जा सके परमात्मा कभी न होगा; यह एक वैज्ञानिक निष्पत्ति होगा। पूर्व में हम कहते हैं कि भगवान का प्रमाण नहीं दिया जा सकता। जब तुम अपने प्रमाणों से ऊब जाओ, तब स्वयं अनुभव में छलांग लगा दो, स्वयं भगवत्ता में छलांग लगा दो।
पूर्वीय मन सिर्फ मिथ्या वैज्ञानिक हो सकता है, जैसे कि पश्चिम मन सिर्फ मिथ्या धार्मिक हो सकता है। तुमने पश्चिम में एक महत धर्म शास्त्र निर्मित कर लिया है, धार्मिक परंपरा नहीं। ठीक इसी प्रकार पूर्व में जब कभी हम विज्ञान की ओर प्रयास करते हैं, हम सिर्फ टेक्नीशियन्स निर्मित करते हैं, वैज्ञानिक नहीं। कैसे करें यह जानने वाले व्यक्ति, कुछ नया करने वाले, सृजन करने वाले व्यक्ति नहीं।
इसलिये पश्चिमी मन के साथ पूर्व में मत लाओ अन्यथा तुम सिर्फ गलत समझोगे। तब तुम अपनी गलत समझ को ही सही समझ की भांति साथ लिए रहोगे। पूर्व का दृष्टिकोण पूरी तरह से विपरीत हैं- स्त्री और पुरुष की भांति। पूर्वीय मन स्त्रैण है, पश्चिमी मन पुरुष है। पश्चिमी मन कामुक है। तर्क को कामुक, हिंसक होना ही पड़ेगा। धर्म ग्राहक है, बिल्कुल एक स्त्री की भांति। ईश्वर को केवल ग्रहण किया जा सकता है, उसकी खोज या अविष्कार नहीं हो सकता। व्यक्ति को स्त्री की भांति होना पड़ेगा, पूर्णतः ग्रहणशील, बस खुला और प्रतीक्षारत। यही है ध्यान का अर्थ: खुला और प्रतीक्षारत होना।
रामकृष्ण ने कहा है कि भक्ति योग सर्वाधिक उपयुक्त मार्ग है क्योंकि
यह उनके लिए सर्वाधिक उपयुक्त था। यह वह आधारभूत खिड़की थी जिसके द्वारा वे आकाश के नीचे आये। यह किसी विशेष युग के लिए, किसी मार्ग के उपयुक्त या अनुपयुक्त होने का सवाल नहीं है। हम युगों के हिसाब से नहीं सोच सकते। सदियां समकालिकता से जी सकती हैं। हम समकालीन प्रतीत होते हैं, हम समकालिक नहीं भी हो सकते। मैं बीस शताब्दी पूर्व रह रहा हो सकता हूं। कुछ भी आत्यंतिक रूप से अतीत नहीं है। किसी के लिए यह वर्तमान है। कुछ भी आत्यंतिक रूप से भविष्य नहीं है। किसी के लिए यह वर्तमान है। और कुछ भी आत्यंतिक रूप से वर्तमान भी नहीं है। किसी के लिए यह अतीत है, और किसी अन्य के लिए यह भी अभी आना है। इसलिये किसी युग के लिए इस तरह कोई भी सुनिश्चित वक्तव्य नहीं दिया जा सकता।
रामकृष्ण एक भक्त थे। वे परमात्मा तक प्रेम और प्रार्थना से, भाव के सहारे पहुंचे। उन्होंने उस विधि से उपलब्ध किया इसलिये उन्हें यह लगा कि यह हर व्यक्ति के लिए सहायक हो सकता है। वे समझ नहीं सके, दूसरों के लिए उनका मार्ग कैसे कठिन हो सकता है। हम कितने भी सहानुभूति पूर्ण क्यों ना हों, हम सदा दूसरों को अपने निजी अनुभवों के प्रकाश में देखते हैं। इसलिये रामकृष्ण के लिए भक्ति योग, उपासना का मार्ग प्रतीत हुआ।
यदि हम युगों के रूप में सोचना चाहें, हम कह सकते हैं कि यह युग सर्वाधिक बौद्धिक, सर्वाधिक वैज्ञानीक, सर्वाधिक विधि पर भरोसा करनेवाला है- यह सबसे कम उपासक, सबसे कम भावात्मक है। जो रामकृष्ण कह रहे थे, वह उनके लिए सही था। जो लोग उनके साथ थे, उनके लिए भी सही हो सकता है, पर रामकृष्ण एक बड़े जगत को कभी प्रभावित नहीं कर पाए। वे मूलतः गांव के थे, अवैज्ञानिक मन से संबधित थे। वे एक देहाती थे- अशिक्षित, वृहत्तर संसार से अपरिचित-इसलिये जो उन्होंने कहा, वह उनकी देहात की भाषा के अनुसार समझा जाना चाहिए। वे इन दिनों की कल्पना भी नहीं कर सकते थे जो अब हैं। वे मूलतः कृषक जगत का भाग थे, जहां बुद्धि कुछ नहीं थी और भाव सब कुछ था। वे इस युग के व्यक्ति भी नहीं थे। जो वे कह रहे थे वह उस जगत के लिए बिल्कुल उचित था जिसमें वे रह रहे थे, पर उस संसार के लिए नहीं जो अब है।
ये तीन प्रकार सदा रहे हैं; बौद्धिक, क्रियाशील, भावुक। उनमें सदा एक संतुलन रहेगा; बिल्कुल ऐसे ही जैसे कि पुरुषों और स्त्रियों में सदा

संतुलन रहता है। यह संतुलन लंबे समय के लिए मिटता नहीं। यदि यह खो जाता है तो यह पुनः जल्दी ही उपलब्ध कर लिया जाएगा।
पश्चिम में तुम संतुलन खो चुके हो। बुद्धि सर्वाधिक असर डालने वाली वस्तु बन चुकी है। यह तुम्हें आकर्षित करेगा कि रामकृष्ण कहते हैं, "इस युग के लिए भक्ति मार्ग है" क्योंकि तुम संतुलन खो चुके हो। पर विवेकानंद बिल्कुल दूसरी ही बात कहते हैं। क्योंकि पूर्व भी संतुलन खो चुका है; वह मुख्यतः बौद्धिक हैं। यह वर्तमान अतियों को मात्र संतुलित करना है। यह एक अर्थ में परस्पर पूरक है।
राम कृष्ण भावुक प्रकार के थे और उनका मुख्य शिष्य बौद्धिक प्रकार का था। उन्होंने ऐसा होना ही था। यह युग्म बनाना हैः पुरुष और स्त्री। रामकृष्ण पूर्णतः स्त्रैण थेः अनाक्रमक, ग्रहणशील। यौन जीवविज्ञान में ही नहीं होता; यह हर स्थान पर होता है। हर क्षेत्र में, जहां ध्रुवीयता है, वहां यौन है और विपरीत आकर्षित हो जाता है।
विवेकानंद किसी बौद्धिक व्यक्ति से कभी आकर्षित न हो सके। वे हो ही नहीं सकते थे; वे धु्रवीय विपरीत नहीं थे। बंगाल में असाधारण प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। वे वहां उनसे मिलने गये थे और खाली हाथ वापस लौटे। वे आकर्षित नहीं हुए। रामकृष्ण कम से कम संभव बौद्धिक व्यक्ति थे। वे वह सब कुछ थे जो विवेकानंद नहीं थे, वह सबकुछ जो वे खोज रहे थे।
विवेकानंद रामकृष्ण के विपरीत थे, इसलिये जो उन्होंने रामकृष्ण के नाम पर पढ़ाया, वह वही नहीं था जो रामकृष्ण की शिक्षा स्वयं थी। इसलिये जो रामकृष्ण के पास विवेकानंद के माध्यम से आता है वह रामकृष्ण के पास बिल्कुल नहीं आता। जो भी रामकृष्ण की विवेकानंद द्वारा की गयी अभिव्यक्ति समझता है, कभी स्वयं रामकृष्ण को नहीं समझ सकता। यह अभिव्यक्ति विपरीत ध्रुव से आती है।
जब लोग कहते हैं, "विवेकानंद के बिना हमने रामकृष्ण के बारे में कभी जाना भी न होता" यह एक अर्थ में सही है। बुहत्तर संसार ने विवकानंद के बिना रामकृष्ण के बारे में कभी न सुना होता। लेकिन विवेकानंद के साथ, जो भी रामकृष्ण के बारे में जाना गया है मूलतः गलत है। यह मिथ्या व्याख्या है। ऐसा इसीलिए है क्योंकि उनका प्र्रकार रामकृष्ण के प्रकार का बिल्कुल उलटा है। रामकृष्ण ने कभी तर्क नहीं किया, विवेकानंद तर्कशील थे। रामकृष्ण भोले थे, विवेकानंद ज्ञानपूर्ण व्यक्ति थे। जो विवेकानंद ने रामकृष्ण के बारे में कहा वह विवेकानंद के दर्पण के माध्यम से कहा गया। यह कभी प्रमाणिक न था। यह हो नहीं एकता था।
यह सदा से होता रहा है। यह होता रहेगा। बुद्ध उन लोगो को आकर्षित करते हैं जो उनसे विपरीत धु्रव के हैं। महावीर और जीसस उन व्यक्तियों को आकर्षित करते हैं जो आध्यात्मिक रूप से दूसरे यौन के हैं। ये विपरीत लोग तब संगठन, व्यवस्था निर्मित करते हैं। वे लोग ही फिर व्याख्या करेंगे। ये शिष्य ही गलत रूप से प्रस्तुतीकरण करेंगे। लेकिन ऐसा होना ही है। इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता।

प्रवचन-14

सम्यक प्रश्न

सैद्धांतिक प्रश्न मत पूछो। सिद्धांत समस्या को हल कम करते हैं और उलझाते अधिक हैं। यदि कोई सिद्धांत न हों तो समस्याएं कम होंगी। ऐसा नहीं है कि सिद्धांत प्रश्नों का, समस्याओं का हल करते हों। इसके विपरीत प्रश्न सिद्धांतों से ही खड़े होते हैं।
और दार्शनिक प्रश्न मत पूछो। दार्शनिक प्रश्न सिर्फ प्रश्न प्रतीत होते हैं, पर वे हैं नहीं। यही कारण है कि कोई उत्तर संभव नहीं हो पाया। यदि कोई प्रश्न वास्तव में एक प्रश्न है तो यह उत्तर पाने के योग्य है, पर यदि यह झूठा है, मात्र एक भाषा शास्त्रीय संदेह है, तो इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। दर्शनशास्त्र सदियों-सदियों से उत्तर देता चला आ रहा है, लेकिन प्रश्न अब भी वही के वही हैं। तुम किसी भी तरह से एक दार्शनिक प्रश्न का उत्तर दो, तुम इसका उत्तर कभी नहीं दे पाते क्योंकि प्रश्न अपने आप में झूठा है। यह इसलिए है ही नहीं कि इसका उत्तर दिया जा सके। प्रश्न स्वाभाविक रूप से ही ऐसा है कि उसका कोई उत्तर संभव ही नहीं है।
और तत्त्व चिंतन के प्रश्न मत पूछो। उदाहरण के लिए यदि तुम पूछते हो, संसार को किसने बनाया? इसका उत्तर संभव नहीं है। यह असंगत है। ऐसा नहीं है कि तत्त्वचिंतन के प्रश्न वास्तविक प्रश्न नहीं हैं, पर उनका उत्तर नहीं दिया जा सकता। उनको हल किया जा सकता है, पर उनका उत्तर नहीं दिया जा सकता। वे प्रश्न पूछो जो व्यक्तिगत, अंतरंग, अस्तित्त्वगत हों। व्यक्ति को,
वह वास्तव में वह क्या पूछ रहा है के इसके प्रति बोधपूर्ण होना चाहिए। यह कौन सी ऐसी बात है जिसका तुम्हारे लिए वास्तव में कोई अर्थ है? यदि इसका उत्तर दे दिया गया तो क्या कोई नया आयाम तुम्हारे लिए खुल जाएगा? क्या तुम्हारे अस्तित्त्व में कुछ जुड़ जाएगा? क्या तुम्हारा अस्तित्त्व किसी प्रकार से इसके द्वारा रूपांतरित होगा? केवल ऐसे प्रश्न ही धार्मिक हैं। धर्म समस्याओं से संबंधित है, प्रश्नों से नहीं। प्रश्न तो मात्र एक कौतुहल से आ सकता है पर एक समस्या निजी और व्यक्तिगत है। इसमें तुम उलझे हो, यह तुम हो। एक प्रश्न जो तुमसे भिन्न है; एक समस्या जो तुम ही हो। अतः कुछ भी पूछने से पूर्व अंतस में गहरे उतरो और कुछ ऐसी बात पूछो जो निजी और वैयक्तिक हो, कोई बात जिसमें तुम संदेह से ग्रस्त हो, जिसमें तुम उलझे हुए हो। सिर्फ तब तुम्हारी सहायता हो सकती है।

क्या हमारे जीवन पूर्व निर्धारित हैं, या नहीं?

यह कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं है, यह एक दार्शनिक प्रश्न है।
हमारी जिंदगी दोनों है, पूर्व निर्धारित भी और नहीं भी। दोनों, हां भी
और नहीं भी। और जीवन के सारे प्रश्नों के लिए दोनों उत्तर सत्य हैं।
एक अर्थ में हर बात पूर्व निर्धारित है। तुममें जो कुछ भी भौतिक है, पौदगलिक है, जो कुछ भी मानसिक है, पूर्व निर्धारित है। किंतु तुम्हारे अंदर कुछ है जो सदा अनिर्धारित रहता है, जिसकी कभी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। यह कुछ ही तुम्हारी चेतना है।
यदि तुमने अपने शरीर और अपने भौतिक अस्तित्त्व से तादात्म्य किया हुआ है, उसी अनुपात में तुम कारण और परिणाम के नियम से निर्धारित किये जाते हो। तब तुम एक यंत्र हो। लेकिन अगर तुमने अपने भौतिक अस्तित्त्व से तादात्म्य नहीं किया है, न शरीर से, न मन से- यदि तुम अपने आप को कुछ अलग, भिन्न, ऊपर और शरीर और मन के पार अनुभव कर सको- तब वह अतिक्रमण की हुअी चेतना पूर्व निर्धारित नहीं होती। यह स्वच्छंद होती है, मुक्त होती है। चेतना का अर्थ है स्वतंत्रता, पदार्थ का अर्थ है- दासता। अतः यह इस पर निर्भर करता है कि तुम अपने को कैसे परिभाषित करते हो। यदि तुम कहते हो, "मैं सिर्फ शरीर हूं" तब तुम्हारे बारे में हर बात पूर्णतः निर्धारित है। कोई व्यक्ति जो कहता है कि मनुष्य मात्र शरीर ही है वह यह नहीं कह सकता कि मनुष्य पूर्व निर्धारित नहीं है। साधारणतः वे लोग जो चेतना जैसी

किसी चीज में विश्वास नहीं रखते, वे पूर्व निर्धारण में भी विश्वास नहीं रखते। जबकि वे लोग जो धार्मिक हैं, और चेतना में विश्वास करते हैं, पूर्व निर्धारण में सामान्यतः विश्वास रखते हैं। अतः जो मैं कह रहा हूं वह बहुत विरोधाभासी दिख सकता है। पर फिर भी, यही बात है।
किसी व्यक्ति ने, जिस ने चेतना जानी, स्वतंत्रता जान ली। अतः केवल एक आध्यात्मिक व्यक्ति कह सकता है किसी तरह का पूर्व निर्धारण नहीं है। यह अनुभव सिर्फ तब आता है जबकि तुम्हारा शरीर से तादात्म्य बिल्कुल भी न हो। यदि तुम महसूस करते हो कि तुम मात्र एक भौतिक अस्तित्त्व हो, तब कोई स्वतंत्रता संभव नहीं है। पदार्थ जो है वह मुक्त नहीं हो सकता। इसे तो कारण और परिणाम की श्रृंखला के प्रवाह में बहना ही है।
एक बार कोई चेतना को, बुद्धत्व को, उपलब्ध कर ले, वह कारण और परिणाम के क्षेत्र के पूर्णतः बाहर होता है। वह पूर्णतः भविष्यवाणियों के परे हो जाता है। तुम उसके बारे में कुछ नहीं कह सकते। वह हर पल को जीने लगता है, उसका अस्तित्त्व आण्विक हो जाता है।
तुम्हारा अस्तित्त्व एक श्रृंखला है जिस में हर कदम अतीत द्वारा निर्धारित होता है। तुम्हारा भविष्य वास्तव में भविष्य नहीं है, यह मात्र अतीत से ही उत्पन्न हुआ है। यह तो बस अतीत द्वारा तुम्हारे भविष्य को निश्चित करना, आकार देना, सूत्रबद्ध करना और संस्कारित करना है। यही कारण है कि तुम्हारा भविष्य पहले से बताया जा सकता है।
स्किनर कहता है कि मनुष्य की किसी अन्य वस्तु की भांति भविष्यवाणी की
जा सकती है। एकमात्र कठिनाई यह है कि हमारे पास अभी तक उसके सारे अतीत को जानने के उपाय नहीं हैं। जिस पल हम उसके अतीत को जान सकें; हम उसके भविष्य के बारे में सब कुछ बता सकते हैं। जिन लोगो के साथ उसने कार्य किया उनके आधार पर स्किनर सही है; क्योंकि वे सभी आत्यंतिक रूप से पूर्व-निर्धारणीय हैं। उसने सैंकड़ों लोगो के साथ प्रयोग किये और उसने पाया कि वे सभी यांत्रिक अस्तित्त्व हैं, उनके भीतर कुछ ऐसा नहीं है जिसे स्वतंत्रता कहा जा सके।
पर उसका अध्ययन सीमित है। कोई बुद्ध उसकी प्रयोगशाला में अपने पर प्रयोग करवाने नहीं आया। यदि सिर्फ एक व्यक्ति भी मुक्त हो, यदि सिर्फ एक व्यक्ति भी यांत्रिक न हो, पूर्व निर्धारणीय न हो, स्किनर का सारा सिद्धांत व्यर्थ हो जाता है। बात तो मानव जाति के सारे इतिहास में एक व्यक्ति भी मुक्त और पूर्व निर्धारणीय न होने की है।
स्वतंत्रता की पूर्ण संभावना इस बात पर निर्भर है। यदि जोर तुम्हारे शरीर पर है या तुम्हारी चेतना पर है, यदि तुम जीवन के एक बर्हिगामी प्रवाह मात्र हो तब सबकुछ निर्धारित है। या फिर, क्या तुम कुछ भीतर भी हो? कोई पूर्व सूत्रबद्ध उत्तर मत दो। मत कहो, "मैं आत्मा हूं"। यदि तुम महसूस करते हो कि तुम्हारे अंदर कोई चीज नहीं है तब इसके प्रति ईमानदार रहो। यह ईमानदारी चेतना की भीतरी स्वतंत्रता की ओर पहला कदम होगी।
यदि तुम अंदर की ओर गहरे जाओ, तुम महसूस करोगे कि हर चीज बाहर का हिस्सा मात्र है। तुम्हारा शरीर बाहर से आया है, तुम्हारे विचार बाहर से आये हैं, तुम्हारा स्व भी तुम्हें दूसरों द्वारा दिया गया है। यही कारण है कि तुम दूसरों की राय के प्रति इतने भयभीत रहते हो- क्योंकि तुम्हारे स्व पर उनका पूर्ण नियंत्रण है। वे तुम्हारे बारे में अपनी राय किसी पल बदल सकते हैं। तुम्हारा स्व, तुम्हारा शरीर, तुम्हारे विचार तुम्हें दूसरों द्वारा दिये गये हैं, अतः शरीर क्या है? तुम्हे बाहर से जो मिला है उसके संग्रह की पर्त दरपर्त है। यदि तुमने अपने इस व्यक्तित्व, जो दूसरों से आता है उसके साथ तादात्म्य कर लिया है, तब हर बात पूर्व निर्धारित है।
हर उस बात के प्रति जो बाहर से आती है, होशपूर्ण हो जाओ और इससे तादात्म्य मत करो। तब एक पल आएगा, जब बाह्य पूर्णतः गिर जाता है। तुम शून्य में होगे। यह शून्यता बाहरी जगत और भीतरी जगत के बीच का रास्ता है, द्वार है।
हम शून्यता से इतना भयभीत हैं, रिक्त होने से इतना भयभीत हैं कि हम बाहर से मिले इस संग्रह से चिपकते हैं। व्यक्ति को पर्याप्त साहसी होना पड़ेगा कि वह इस संग्रह से तादात्म्य तोड़ सके और शून्यता में रह सके। यदि

तुम पर्याप्त साहसी नहीं हो, तुम बाहर ही जीओगे और किसी बात से चिपकोगे और इसीसे भर जाओगे। लेकिन शून्यता में होने का यही क्षण ही ध्यान है। यदि तुम पर्याप्त साहसी हो, यदि तुम इस पल में रह सको, जल्दी ही तुम्हारा समग्र अस्तित्त्व अंदर की ओर मुड़ जाएगा।
जब बाहर से जुड़ने के लिए कुछ भी नहीं होता, तुम्हारा अस्तित्त्व भीतर
की ओर मुड़ जाता है। तब पहली बार तुम जानते हो कि तुम वह कुछ हो जो हर उस चीज के पार है जिसे तुम सोच रहे थे कि तुम हो। अब तुम अस्तित्त्व हो। यह होना मुक्त है, कोई इसका पूर्वनिर्धारण नहीं कर सकता। यह आत्यंतिक स्वतंत्रता है। कारण और प्रभाव की कोई श्रृंखला अब संभव नहीं है।
तुम्हारे कृत्य पुराने कृत्यों से जुड़े हैं। "क" ने एक स्थिति निर्मित की जिससे "ख" संभव हो पाया, "ख" ने एक परिस्थिति निर्मित की जिसमें "ग" पुष्पित होता है। तुम्हारे कृत्य तुम्हारे अतीत के कृत्यों से जुड़े हैं और यह पीछे की ओर आरंभरहित आरंभ तक जाता है और आगे की ओर अंतहीन अंत तक जारी रहता है। न सिर्फ तुम्हारे कृत्य तुम्हें निर्धारित करते हैं, बल्कि तुम्हारे मात-पिता के कृत्यों की भी तुम्हारे कृत्यों के साथ सातत्य है। तुम्हारा समाज, तुम्हारा इतिहास जो कुछ भी पहले घटित हुआ है वह किसी रूप में तुम्हारे वर्तमान कृत्य से जुड़ा है। सारा इतिहास तुममें पुष्पित हुआ है।
कुछ भी जो पहले कभी भी घटा है, तुम्हारे कृत्य से जुड़ा है, अतः तुम्हारा कृत्य प्रत्यक्षतः पूर्वनिर्धारित है। यह सारे चित्र का बहुत छोटा भाग है। इतिहास एक जीवंत प्रबलता है और तुम्हारा निजी कृत्य इसका एक छोटा सा भाग है।
मार्क्स ने कहा है, "यह चेतना नहीं है जो सामाजिक परिस्थितियां निर्धारित करती है। यह समाज और उसकी परिस्थितियां हैं, जो चेतना का निर्धारण करते हैं। ये महान लोग नहीं हैं जिन्होंने महान समाज निर्मित किये। ये महान समाज है जिन्होंने महान व्यक्ति निर्मित किये।"
और एक अर्थ में वह सही है क्योंकि तुम अपने कृत्यों के मूल स्रोत नहीं हो। सारे इतिहास ने उनका निर्धारण किया है। तुम तो मात्र उन्हें पूरा कर रहे हो।
तुम्हारे जैविक कोष में सारी विकास प्रक्रिया निहित है। तुम्हारे भीतर के ये कोष किसी अन्य व्यक्ति के भाग बन सकते हैं। तुम सोच सकते हो कि तुम पिता हो, पर तुम मात्र नाटक के एक मंच थे, जिस पर सारे जीवशास्त्रीय विकास ने नाटक खेला है और तुम्हें भी इस के लिए बाध्य कर दिया है। प्रजनन का कृत्य इतना अधिक पूर्वनिर्धारित है क्योंकि यह तुमसे पार है, यह तो सारी विकास प्रक्रिया का केवल तुम्हारे माध्यम से कार्य करना है।
यह एक ढंग है जिसमें कृत्य अतीत के कृत्यों से संबंधित होकर घटते हैं। परंतु जब कोई व्यक्ति संबुद्ध हो जाता है, एक नयी घटना घटनी शुरू हो जाती है। कृत्य पिछले कृत्यों से संबद्ध नहीं रहते। अब कोई भी कृत्य सिर्फ उसकी चेतना से जुड़ा होता है। यह उसकी चेतना से आता है, अतीत से नहीं। यही कारण है कि संबुद्ध व्यक्ति के विषय में कोई भी भविष्यवाणी नहीं हो सकती है।
स्किनर कहता है कि हम निर्धारित कर सकते हैं कि तुम क्या करोगे यदि तुम्हारे पिछले कृत्य पता हों तो। वह कहता है कि पुरानी कहावत "तुम घोड़े को पानी तक ले जा सकते हो पर तुम उसे पानी पिला नहीं सकते" गलत है। तुम उसे बाध्य कर सकते हो। तुम एक ऐसा वातावरण निर्मित कर सकते हो जिससे कि घोड़े को पानी पीना पड़े। घोड़े को बाध्य किया जा सकता है और तुम्हें भी बाध्य किया जा सकता है, क्योंकि तुम्हारे कृत्य परिस्थितियों से; हालातों से निर्मित होते हैं।
लेकिन अगर तुम एक बुद्धपुरुष को नदी तक ले भी आओ, तुम उसे पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। जितना तुम उसे बाध्य करोगे उतना ही यह असंभव हो जाएगा। कोई उत्तेजना उससे यह करवा नहीं सकती। बुद्ध पुरुष के पास कृत्य का अलग मूल स्रोत होता है। यह अन्य कृत्यों से संबद्ध नहीं है, यह चेतना से संबद्ध है।

यही कारण है कि मेरा जोर इस बात पर है कि तुम सचेतन रूप से कृत्य करो।
तब हर पल तुम कृत्य करते हो, यहां अन्य कृत्यों के साथ सातत्य का प्रश्न नहीं होता। तुम मुक्त होते हो। अब तुम कृत्य करना शुरू कर देते हो और कोई नहीं कह सकता कि तुम कैसे कृत्य करोगे।
आदतें यांत्रिक होती हैं; वे स्वयं को पुनरूक्त करती हैं। जितना अधिक तुम किसी बात को दोहराते हो, उतने ही अधिक तुम दक्ष होते जाते हो। दक्षता का अभिप्राय है कि अब जागरुकता की और जरूरत न रही। यदि कोई व्यक्ति एक दक्ष टाइपिस्ट है, तो इसका अर्थ यह है कि किसी प्रयास की जरूरत न रही, टाइपिंग अजागरुकता से की जा सकती है। यदि वह किसी अन्य चीज के बारे में सोच भी रहा है, टाइपिंग जारी रहती है। शरीर टाइप कर रहा है, व्यक्ति की जरूरत न रही। दक्षता का आभिप्राय है कि यह काम इतना सुनिश्चित है कि कोई त्रुटि संभव न रही। स्वतंत्रता के साथ त्रुटि सदा संभव है। कोई यंत्र गलती नहीं कर सकता। गलती करने के लिए व्यक्ति को चेतन होना पड़ेगा।
अतः तुम्हारे कृत्यों का तुम्हारे पिछले कृत्यों से श्रृंखला-बद्ध संबंध है। वे निर्धारित हैं। तुम्हारी बाल्यावस्था तुम्हारे यौवन का निर्धारण करती है, तुम्हारा जन्म तुम्हारी मृत्यु का निर्धारण करता है। हर बात निर्धारित है। बुद्ध कहा करते थे, "कारण उत्पन्न करो और परिणाम होगा।" यह कारण और परिणाम का संसार है जिसमें हर चीज सुनिश्चित है।
यदि तुम समग्र चेतना से कार्य करो, एक पूर्णतः भिन्न स्थिति बन जाती है। तब हर बात क्षण क्षण होती है। चेतना एक प्रवाह है, यह स्थिर नहीं होती। यह स्वतः जीवन है, अतः यह बदलती रहती है। यह जीवंत है। यह विस्तीर्ण होती जाती है, यह नई, ताजी, युवा होती चली जाती है। तब तुम्हारे कृत्य स्वःस्फूर्त होंगे।
मुझे एक झेन कथा याद आती है। एक झेन गुरु ने अपने शिष्य से एक विशेष प्रश्न पूछा। प्रश्न का उत्तर बिल्कुल ठीक उसी ढंग से दिया गया जैसे कि इसका उत्तर दिया जाना चाहिए था। अगले दिन गुरु ने बिल्कुल वही प्रश्न पूछा। शिष्य ने कहा, "किंतु मैं ने कल इस प्रश्न का उत्तर दिया था।"
गुरु ने कहा, "अब मैं तुमसे पुनः पूछ रहा हूं।" शिष्य ने वही उत्तर दोहराया। गुरु ने कहा, "तुम नहीं जानते हो"।
शिष्य बोला, "पर कल मैंने इसी प्रकार उत्तर दिया था और आपने अपना सर सहमति मे हिलाया था। अतः मैंने समझा कि उत्तर सही था। अब आपने अपना मन क्यों बदल दिया?"
गुरु ने कहा, "कोई भी बात जो पुनरुक्त हो सके तो जानना कि तुमसे नहीं आ रही है। उत्तर तुम्हारी स्मृति से आया है, तुम्हारी चेतना से नहीं। यदि तुमने वास्तव में जाना होता, तो उत्तर भिन्न हुआ होता क्योंकि बहुत कुछ बदल चुका है। मैं वही व्यक्ति नहीं रहा जिसने कल तुमसे यह प्रश्न पूछा था। सारी परिस्थिति भिन्न है। तुम भी बदले हो; पर उत्तर वही रहा। मुझे पुनः प्रश्न पूछना पड़ा मात्र यह देखने के लिए कि क्या तुम उत्तर दोहराओगे? कुछ भी पुनरुक्त नहीं हो सकता।
तुम जितने जीवंत होगे, उतनी कम पुनरुक्ति करोगे। केवल एक मृत व्यक्ति
ही संगत हो सकता है। जीवन जीना असंगतता है, जीवन स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता संगत नहीं हो सकती। किसके साथ संगत होना है? तुम सिर्फ अतीत के साथ संगत हो सकते हो।
एक संबुद्ध व्यक्ति मात्र अपनी चेतना में ही संगत हो सकता है; वह कभी अतीत से संगत नहीं होता है। वह पूर्णतः कृत्य में होता है। कुछ भी पीछे नहीं छूटता; कुछ भी बाद में नहीं बचता। अगले ही पल कृत्य संपन्न हो जाता है और उसकी चेतना पुनः ताजी हो जाती है। कैसी भी परिस्थिति कभी भी हो, चेतनता वहां रहेगी जैसे कि यह प्रथम बार हो कि वह व्यक्ति इस विशेष परिस्थिति में आया है।
यही कारण है कि मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हां और न दोनों में दिया है। यह तुम पर निर्भर करता है- इस पर कि क्या तुम चेतना हो या कि तुम एक संग्रह हो; एक शारीरिक अस्तित्त्व हो।
धर्म स्वतंत्रता देता है क्योंकि धर्म चेतना प्रदान करता है। जितना अधिक विज्ञान पदार्थ के बारे में जानता है उतना ही संसार को गुलाम बनाया

जा सकता है। पदार्थ की सारी घटना कारण और परिणाम की है। यदि तुम जानते हो कि ऐसा करने पर वैसा होता है; तब सब कुछ निश्चित निर्धारित किया जा सकता है।
इस सदी के पूरे होने से पहले हम समस्त मनुष्यता को अनेकों उपायों से निर्धारित होता हुआ देखेंगे। जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य संभव है वह आण्विक युद्ध नहीं है। यह तो मात्र नष्ट कर सकता है। वास्तविक दुर्भाग्य मनोवैज्ञानिक विज्ञानों से आएगा। वे सीख लेंगे कि एक मनुष्य किस भांति पूर्णतः नियंत्रित किया जा सकता है। क्योंकि हम चेतन नहीं हैं अतः हमे पूर्व निर्धारित ढंग से व्यवहार करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। जैसे कि हम हैं, हमारे बारे में सब कुछ निर्धारित है। कोई व्यक्ति हिंदू है, अन्य कोई व्यक्ति मुसलमान है। यह पूर्व निर्धारण है, स्वतंत्रता नहीं। माता पिता ने निश्चित कर दिया, समाज निश्चित कर रहा है। कोई डाक्टर है और कोई अन्य एक इंजीनियर है। अब उसका व्यवहार निर्धारित है।
हम सदा से ही पहले से नियंत्रित किये जा रहे हैं लेकिन प्रत्येक कृत्य पूर्ण स्वतंत्रता में किया जाएगा। हमारी विधियां अब भी बहुत आदिम हैं। नवीन उपायों से हमारा व्यवहार इस सीमा तक निर्धारित किया जा सकता है कि कोई व्यक्ति यह कहने योग्य भी न रहेगा कि आत्मा है। यदि तुम्हारी हर कृतियां निर्धारित हैं, तो आत्मा का अर्थ ही क्या रहा?
तुम्हारी प्रतिक्रियाएं शरीर के रसायन से निर्धारित की जा सकती हैं। यदि तुम्हें अल्कोहोल दे दी जाए, तुम और तरह से व्यवहार करोगे। एक समय में तंत्र की एक चरम विधि भी कि नशीले पदार्थ खाना और फिर भी चेतन बने रहना। यदि कोई तब भी चेतन बना रहता, जब हर बात से यह लगता हो कि उसे अचेतन हो जाना चाहिए, केवल तब तंत्र कहता कि यह व्यक्ति संबुद्ध है, अन्यथा नहीं।
यदि शरीर रसायन तुम्हारी चेतना को बदल सके तो चेनता का अर्थ ही क्या है? यदि एक इंजेक्शन तुम्हें अचेतन बना सकता हो; तो अर्थ ही क्या है? तब इंजेक्शन की रासायनिक औषधि तुम्हारी अपनी चेतना से ज्यादा शक्तिशाली है। तंत्र कहता है कि यह संभव है कि हर नशे से होकर गुजरा जाए और चेतन रहा जा सके। उत्तेजक पदार्थ दे दिया गया हो और प्रतिक्रियां न हो।
यौन एक रासायनिक घटना है। एक विशेष हारमोन की एक विशेष मात्रा यौनेच्छा उत्पन्न करती है। तुम कामुक हो जाते हो। जब तुम्हारे शरीर-रसायन अपनी सामान्य अवस्था में लौट जाता है, तब तुम पछता सकते हो, परंतु यह पछतावा अर्थहीन है। जब हारमोन वहां पुनः होंगे, तुम इसी तरह करोगे। अतः तंत्र ने यौन के साथ भी प्रयोग किया है। यदि तुम उस परिस्थिति में जो पूर्णतः कामुक है, कामेच्छा न अनुभव करो, तब तुम मुक्त हो। तुम्हारा शरीर-रसायन काफी पीछे छूट गया है। शरीर वहां है, पर तुम शरीर में नहीं हो। क्रोध भी मात्र एक रसायन है। जैव रसायन शास्त्री जल्दी ही तुम्हें क्रोध-हीन या काम-हीन बना सकनें में समर्थ हो जाएंगे। पर तुम बुद्धपुरुष नहीं हो जाओगे। बुद्ध क्रोध करने में असमर्थ नहीं थे। वे ऐसा कर सकते थे, पर क्रोध अनुभव करने का प्रभाव ही वहां पर न था।
यदि तुम्हारे शरीर-रसायन पर नियंत्रण कर लिया जाए, तुम क्रोधित होने में असमर्थ हो जाओगे। वह रासायनिक परिस्थिति जो तुम्हें क्रोधित अनुभव कराती है वहां नहीं होगी, अतः क्रोध का प्रभाव वहां नहीं होगा। या अगर तुम्हारे सेक्स हारमोन तुम्हारे शरीर से हटाये जा सकें, तुम कामुक न रहोगे। लेकिन असली बात यह नहीं है कि तुम कामुक हो या नहीं हो, या क्रोधपूर्ण हो या नहीं हो। असली बात यह है कि उस परिस्थिति में बोधपूर्ण कैसे हुआ जाए, जिसमें तुम्हारी मूर्छा की जरूरत होती है, जो सिर्फ अचेतनता में घटती है।
जब भी ऐसी परिस्थिति हो, इस पर ध्यान करो। तुम्हें एक महान अवसर मिला है। यदि तुम ईर्ष्यालु अनुभव करते हो, तो इस पर ध्यान करो। यही सही समय है। तुम्हारा शरीर-रसायन तुममें कार्य कर रहा है। यह तुम्हें अचेतन बना देगा, यह तुमसे ऐसा व्यवहार करवायेगा जैसे कि तुम पागल हो। अब चेतन हो जाओ।
ईर्ष्या को होने दो, इसका दमन मत करो, पर चेतन हो जाओ; इसके प्रति साक्षी हो जाओ।

यदि क्रोध है, इसके साक्षी हो जाओ, यदि काम है, इसके साक्षी हो जाओ। जो
भी तुम्हारे भीतर घटता है; घट जाने दो, और सारी स्थिति पर ध्यान करने लगो। धीरे-धीरे, जितनी अधिक तुम्हारी जागरूकता गहराती है, उतनी ही कम संभावना होती जाती है कि तुम्हारा व्यवहार तुम्हारे लिए पूर्व निर्धारित हो सके। तुम मुक्त जाते हो। मोक्ष, स्वतंत्रता का अर्थ कुछ और नहीं है। इसका अर्थ बस एक चेतना है, जो इतनी मुक्त है कि अब कुछ भी इसका निर्धारण नहीं कर सकता।

दिव्य प्रेम क्या है? एक संबुद्ध व्यक्ति प्रेम को कैसे अनुभव करता है?
पहले हम इस प्रश्न को ही देखें। तुम इसे पूछने की प्रतीक्षा ही कर रहे होगे। यही बस अभी तुम्हारे मन में नहीं आ सकता था; तुमने पहले से ही इसका फैसला कर लिया होगा। यह पूछे जाने के लिए प्रतीक्षा रह था, यह तुम्हें पूछे जाने के लिए बाध्य कर रहा था। तुम्हारी स्मृति ने इसे पूछने का निश्चय किया है, तुम्हारी चेतना ने नहीं। यदि तुम इसी समय चेतन होते, यदि तुम इसी क्षण में होते, यह प्रश्न न उठा होता। यदि तुम सुन रहे होते कि मैं क्या कह रहा हूं, तो यह प्रश्न असंभव होता।
यदि प्रश्न तुममें मौजूद हो, तो जो कुछ भी मैं कह रहा हूं यह असंभव है
कि तुमने उसे सुना हो। कोई प्रश्न जो मन में सतत रूप से उपस्थित हो, एक तनाव निर्मित करता है और इस तनाव के कारण तुम यहां नहीं हो सकते। यही कारण है कि तुम्हारी चेतना स्वतंत्रता के साथ कार्य नहीं कर सकती। यदि तुम इसे समझ लो, तब हम तुम्हारा प्रश्न ले सकते हैं।
यह प्रश्न अपने में अच्छा है, पर जो मन इसके बारे में सोच रहा है वह रुग्ण है। होश पल पल होना चाहिए, न सिर्फ कृत्यों में, बल्कि प्रश्नों में भी, हर भाव भंगिमाओं में भी। मैं यदि अपनी ऊँगली उठाऊं, यह मात्र एक आदत हो सकती है। तब मैं अपने शरीर का मालिक नहीं हूं। किंतु अगर यह किसी ऐसी बात की सहज स्फूर्त अभिव्यक्ति है जो ठीक अभी मेरी चेतना में उपस्थित है तो यह बिल्कुल अलग बात है।
एक ईसाई धर्म प्रचारक की हर मुद्रा पूर्व निर्धारित होती है। उसे यह सिखाया गया है। एक बार मैं एक ईसाई धर्म शास्त्रीय कालेज में था। इस विद्यालय में पांच साल बिताने के बाद, व्यक्ति डाक्टर आफ डिवनिटी हो जाता है। बेहूदी बात! डाक्टर आफ डिवनिटी होना मात्र मूढ़ता है। वे हर बात ने प्रशिक्षित किये जा रहे थे, अपने आसन पर कैसे खड़ा होना है? प्रवचन कैसे शुरू करना है? भजन किस प्रकार से गाना है? श्रोताओं की और किस तरह देखना है? कहां रूकना है और कहां एक अंतराल या खाली जगह छोड़ना है? सब कुछ! यह मूर्खतापूर्ण तैयारी नहीं होनी चाहिए। यह एक महान दुर्भाग्य है।
अतः क्षण में जीयो। कुछ भी पहले से तय मत करो। बोध रखो कि प्रश्न तुममें उपस्थित है, कि यह लगातार मन का दरवाजा खटखटा रहा है। तुम जरा भी मुझे नहीं सुन रहे थे- बस इस प्रश्न के कारण ही! और जब मैं तुम्हारे प्रश्न के बारे में बात करना शुरू करता हूं, तुम्हारा मन एक अन्य प्रश्न निर्मित कर लेगा। पुनः तुम चूक जाओगे। जो मैं कह रहा हूं यह तुम्हारे लिए व्यक्तिगत रूप से नहीं है। यह प्रत्येक के लिए सत्य है।
अब प्रश्न...
जब भी प्रेम होता है यह दिव्य ही होता है, अतः "दिव्य प्रेम" कहना अर्थहीन है। प्रेम सदा दिव्य होता है। पर मन चालाक है। यह कहता है, "हम जानते हैं कि प्रेम क्या है? बस इतनी बात है कि हम यह नहीं जानते कि दिव्यप्रेम क्या है?" पर हम प्रेम को भी नहीं जानते। यह सर्वाधिक अजीब चीजों में से एक है। इसके बारे में बहुत बातचीत अधिक होती है; इसे कभी जीया नहीं जाता। यह मन की एक तरकीब है। जिसे हम जी नहीं सकते उसके बारे में हम बातचीत करते हैं।
साहित्य, संगीत, काव्य, नृत्य- प्रत्येक चीज प्रेम के चारों ओर घूमती है। यदि वास्तव में प्रेम होता तो हम इसके बारे में इतनी ज्यादा बातचीत नहीं करते। प्रेम के बारे में हमारी अत्याधिक बातचीत यह प्रदर्शित करती है कि प्रेम का अस्तित्त्व नहीं है। जो चीजें नहीं है उनके बारे में

बातचीत करना एक परिपूरक है। बातचीत से, भाषा से, प्रतीकों से, कला से, हम एक भ्रम उत्पन्न करते है कि वह चीज है। कोई जिसने कभी प्रेम को न जाना हो, उसकी तुलना में जिसने प्रेम को जाना हो, एक बेहतर कविता लिख सकता है; क्योंकि अभाव कहीं ज्यादा गहरा है। इसको भरा जाना है। प्रेम के स्थान पर कुछ तो विकल्प होना है।
प्रेम क्या है, इसे पहले समझना बेहतर रहेगा, क्योंकि जब तुम दिव्य प्रेम के बारे में पूछते हो, ऐसा लगता है कि प्रेम को तो जान ही लिया है। पर प्रेम नहीं जाना गया है। प्रेम की तरह से जो जाना गया है वह कुछ और है। इसके पूर्व कि कदम वास्तविक की ओर, सत्य की ओर उठाये जाएं, झूठ को जान लेना चाहिए।
प्रेम की तरह जो जाना गया है वह मात्र आसक्ति है। तुम किसी से प्रेम करने लगते हो। यदि वह कोई पूर्णतः तुम्हारा हो जाए, प्रेम जल्दी ही मर जाएगा; लेकिन अगर रुकावटें हों, तुम उस व्यक्ति को न पा सको जिसे तुम प्रेम करते हो, तो प्रेम प्रगाढ़ हो जाएगा। जितनी अधिक रुकावटें होंगी, उतनी ज्यादा प्रगाढ़ता से प्रेम महसूस होगा। यदि प्रेमिका या प्रेमी को प्राप्त कर पाना असंभव है, तो प्रेम शाश्वत हो जाता है, परंतु यदि तुम अपने प्रियपात्र को आसानी से उपलब्ध कर लो तो प्रेम आसानी से मर जाता है।
जब तुम कुछ पाने की कोशिश करते हो और तुम इसे नहीं प्राप्त कर पाते, तुम प्रगाढ़ता से इसे पाना चाहने लगते हो। जितनी अधिक रुकावटें होती है, उतना ही अधिक तुम्हारा अहंकार महसूस करता है कि कुछ करना जरूरी है। यह एक अहंकार की समस्या बन जाता है। जितनी ज्यादा तुम्हें अस्वीकृति मिलती है, उतने ही ज्यादा तुम तनाव को प्रेम कहते हो। यही कारण है कि जब हनीमून समाप्त होता है, प्रेम पुराना पड़ जाता है। बल्कि उससे पूर्व ही। जिसे तुम प्रेम के रूप में जानते थे, वह प्रेम नहीं था। वह मात्र अहंकार की दीवानगी, अहंकार का तनाव थाः एक संघर्ष, एक कलह।
प्राचीन मानव समाज बहुत होशियार थे। उन्होंने प्रेम को स्थायी बनाने
के उपाय निकाले थे। यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को लंबे समय के लिए न देख पाएं तो आसक्ति निर्मित हो जाएगी, तनाव निर्मित होगा। तब व्यक्ति अपने सारे जीवन भर एक पत्नी के साथ रह सकता है।
पर अब पश्चिम में विवाह और अधिक नहीं टिक सकता। ऐसा नहीं है कि पश्चिमी मन अधिक कामुक है। बस इतना है कि आसक्ति इकट्ठी नहीं होने दी जाती। काम इतनी आसानी से उपलब्ध है कि शादी टिकी रह नहीं सकती। प्रेम भी इस प्रकार की स्वतंत्रता से अस्तित्त्व में नहीं रह सकता। यदि कोई समाज काम की ओर से पूर्णतः स्वतंत्र है; तो मात्र काम ही टिका रह सकता है। अब इस आसक्ति का दूसरा पक्ष है।
यदि तुम किसी को प्रेम करते हो और अपने प्रिय व्यक्ति को प्राप्त नहीं कर पाते तो आसक्ति गहरी हो जाती है, लेकिन तुम यदि उसे उपलब्ध कर लो तो तुम ऊब, बोझिलता, अनुभव करने लगते हो। बहुत से द्वैत हैंः आसक्ति-ऊब; प्रेम-घृणा, आकर्षण-विकर्षण। आसक्ति के साथ तुम आकर्षण, प्रेम, अनुभव करते हो और ऊब के साथ तुम विकर्षण, घृणा महसूस करते हो।
कोई आकर्षण वास्तव में प्रेम नहीं बन सकता क्योंकि विकर्षण आना ही है। चीजों का यह मूल स्वभाव है कि दूसरा पक्ष आएगा ही। यदि तुम नहीं चाहते हो कि विपरीत आये, तब तुम्हें अवरोध निर्मित करने पड़ेंगे, ताकि आसक्ति कभी समाप्त न हो, तुम्हें रोज तनाव निर्मित करने पड़ेंगे। तब आसक्ति जारी रहती है। यही सारी प्राचीन व्यवस्था द्वारा प्रेम के प्रति अवरोध निर्मित करने का कारण है।
किंतु जल्दी ही यह और अधिक संभव नहीं रह पाएगा। अब विवाह मिट जाएगा और प्रेम भी मिट जाएगा। यह पृष्ठभूमि में गहरा चला जाएगा। मात्र काम बचा रहेगा। लेकिन काम अपने से खड़ा नहीं रह सकता, यह बहुत यांत्रिक हो जाता है। नीत्से ने घोषणा की कि ईश्वर मर गया है। वह असली चीज जो इस सदी में मरने जा रही है, काम है। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि लोग कामुक नहीं होंगे। वे कामुक रहेंगे, लेकिन काम को दिया जाने वाला अत्याधिक महत्त्व मिट जाएगा। काम किसी अन्य कृत्य जैसे-पेशाब करना, भोजन करना, या अन्य किसी कृत्य की

भांति सामान्य कृत्य बन जाएगा। यह अर्थपूर्ण नहीं होगा। यह उन्हीं अवरोधों के कारण अर्थपूर्ण है जो इसके चारों ओर निर्मित किये गये हैं।
जिसे तुम प्रेम कहते हो, प्रेम नहीं है। यह विलंबित किया गया काम है।
तब प्रेम क्या है? प्रेम किसी भी तरह से भी काम से संबद्ध नहीं है। काम इसमें प्रविष्ट हो सकता है या नहीं भी हो सकता; लेकिन वास्तव में यह काम से जरा भी संबद्ध नहीं है। यह पूर्णतः भिन्न बात है।
मेरे लिए, प्रेम एक ध्यानपूर्ण मन का उप-उत्पादन है। यह काम से संबद्ध नहीं है, यह ध्यान से संबद्ध है। जितने अधिक तुम मौन में डूबते हो, जितना अधिक तुम अपने साथ विश्रांतिपूर्ण हो जाते हो, उतनी ही परितृप्ति तुम महसूस करोगे, और तुम्हारे अस्तित्त्व की एक नई अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक होगी। तुम प्रेम करने लगोगे। किसी विशेष व्यक्ति से नहीं। यह किसी विशेष व्यक्ति के साथ घट सकता है, किंतु यह दूसरी बात है। तुम प्रेम करने लगते हो। प्रेम करना तुम्हारे होने की शैली हो जाती है। यह कभी विकर्षण में नहीं बदल सकता क्योंकि यह आकर्षण नहीं है।
तुम्हें इस अंतर को स्पष्टता से समझ लेना चाहिए। सामान्यतः जब तुम किसी के साथ प्रेम में पड़ते हो, तो वास्तव में अनुभूति यह होती है कि कैसे उससे प्रेम पाओ। ऐसा नहीं है कि प्रेम तुमसे उसकी ओर जा रहा है। बल्कि यह एक अपेक्षा है कि प्रेम उससे तुम्हारी ओर आये। इसी कारण प्रेम कब्जा जमाने का प्रयास हो जाता है। तुम किसी पर कब्जा जमा लेते हो ताकि तुम उससे कुछ पा सको। लेकिन जिस प्रेम के बारे में मैं बात कर रहा हूं, वह न तो मालकियत है और न यह कोई अपेक्षाएं रखता है। यह तो मात्र यह है कि तुम कैसे व्यवहार करते हो! तुम इतने मौन, इतने प्रेमपूर्ण हो गये होते हो कि तुम्हारा मौन अब दूसरों तक जाता है।
जब तुम क्रोधित होते हो, तुम्हारा क्रोध दूसरों तक जाता है। जब तुम घृणा करते हो, तुम्हारी घृणा दूसरों तक जाती है। जब तुम प्रेम में होते हो, तुम महसूस करते हो कि तुम्हारा प्रेम दूसरों की ओर जा रहा है, पर तुम भरोसे योग्य नहीं हो। एक क्षण की वहां प्रेम होता है, और अगले ही पल वहां घृणा होगी। घृणा प्रेम की विपरीत नहीं है, यह उसी का एक आधारभूत हिस्सा है, एक सातत्य है।
यदि तुमने किसी को प्रेम किया है, तो तुम उससे घृणा करोगे। तुम भले ही इसे स्वीकार करने योग्य साहसी न हो, पर तुम उसे घृणा करोगे। प्रेमी जब वे साथ होते हैं, तो सदा एक संघर्ष में रहते हैं। जब वे साथ नहीं होते तो वे एक दूसरे के प्रति प्रेम के गीत भी गा सकते हैं, परंतु जब वे साथ होते हैं, वे सदा लड़ते रहते हैं। वे अकेले नहीं रह सकते और वे साथ साथ भी नहीं रह सकते। जब दूसरा नहीं होता, आसक्ति निर्मित हो जाती है, दोनों पुनः एक दूसरे के लिए प्रेम अनुभव करते हैं। किंतु जब दूसरा मौजूद होता है, आसक्ति विदा हो जाती है और पुनः घृणा महसूस होती है।
उस प्रेम का; जिसके बारे में बात कर रहा हूं, अभिप्राय यह है कि तुम इतने मौन हो गये हो कि वहां न तो क्रोध है, न आकर्षण, न विकर्षण। वास्तव में अब वहां न प्रेम होता है और न घृणा। तुम किसी भी तरह से पर-उन्मुख नहीं होते। दूसरा खो गया है, तुम अपने साथ अकेले हो। एकांत की इस अनुभूति में प्रेम तुम पर सुगंध की भांति आता है।
दूसरे से प्रेम के लिए मांग करना सदा कुरूप है। दूसरे पर निर्भर करना, किसी से कुछ मांगना, सदा बंधन, कष्ट, संघर्ष निर्मित करता है। व्यक्ति को अपने में ही पर्याप्त होना चाहिए। मेरा ध्यान से जो अभिप्राय है वह होने की एक ऐसी अवस्था है जहां व्यक्ति अपने में संतुष्ट होता है। तुम एक वर्तुल बन जाते हो, अकेले पूरे हो जाते हो।
तुम अपना अपूर्ण वर्तुल दूसरों के साथ पूर्ण करने का प्रयास कर रहे होः पुरुष स्त्री के साथ, स्त्री पुरुष के साथ। किन्हीं विशेष क्षणों में रेखाएं मिलती हैं, पर करीब मिल पाने से पूर्व ही अलगाव शुरू हो जाता है। केवल यदि तुम एक परिपूर्ण वर्तुल बन जाओ- पूर्ण, अपने में परितृप्त- प्रेम तुममें पुष्पित होने लगता है। जब जो भी तुम्हारे निकट आता है, तुम प्रेम करते हो। यह किसी तरह एक कृत्य नहीं है; यह कुछ ऐसा नहीं है जिसे तुम करते

हो। तुम्हारा अस्तित्त्व ही, तुम्हारी उपस्थिति ही, प्रेम हो जाती है। प्रेम तुम्हारे द्वारा प्रवाहित होता है।
यदि तुम किसी ऐसे व्यक्ति से जो इस स्थिति में पहुंच चुका है, पूछो, "क्या तुम मुझे प्रेम करते हो?" उसके लिए इसका उत्तर देना कठिन होगा। वह नहीं कह सकता, "मैं तुम्हें प्रेम करता हूं" क्योंकि यह उसकी ओर से कृत्य नहीं है; यह एक करना नहीं है। और वह यह भी नहीं कह सकता, "मैं तुम्हें प्रेम नहीं करता", क्योंकि वह प्रेम करता है। वस्तुतः वह प्रेम ही है।
यह प्रेम सिर्फ उस स्वतंत्रता के साथ आता है जिसकी मैं बात करता रहा हूं। स्वतंत्रता वह अनुभूति है जो तुम्हें होती है और प्रेम वह अनुभूति है जो दूसरों को तुम्हारे बारे में होती है। जब भीतर ध्यान घटित होता है, तुम पूर्णतः मुक्त अनुभव करते हो। यह स्वतंत्रता एक भीतर की अनुभूति है, वह दूसरों द्वारा अनुभव नहीं की जा सकती।
कभी कभी तुम्हारा व्यवहार दूसरों के लिए मुश्किल पैदा कर सकता है क्योंकि वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि तुममें क्या घट गया है। एक प्रकार से तुम उनके लिए एक कठिनाई, एक असुविधा होगे, क्योंकि तुम्हारी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। अब तुम्हारे बारे में कुछ भी पता नहीं है। तुम्हारा अगला कृत्य क्या होगा? तुम क्या कहोगे? कोई नहीं जान सकता। तुम्हारे चारों ओर का प्रत्येक व्यक्ति एक खास असुविधा महसूस करता है। वे कभी तुम्हारे साथ विश्रांति में नहीं हो सकते, क्योंकि अब तुम कुछ भी कर सकते हो, तुम मृत नहीं हो।
वे तुम्हारी स्वतंत्रता को अनुभव नहीं कर सकते क्योंकि उन्होंने इस भांति की कोई चीज नहीं जानी है। उन्होंने कभी इसे ढूंढा भी नहीं है, उन्होंने इसे खोजा भी नहीं है। वे इतना अधिक बंधे हुए हैं कि वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि स्वतंत्रता क्या है? वे पिंजड़ों में रहे हैं, उन्होंने खुला आकाश नहीं जाना है, अतः यदि तुम उनसे खुले आकाश के बारे में बात करो तो यह उन को संप्रेषित नहीं हो पाती। पर वे तुम्हारा प्रेम महसूस कर सकते हैं क्योंकि प्रेम की मांग तो वे करते रहे
थे। अपने पिंजड़ों में भी, अपने बंधनों में भी, वे प्रेम को खोजते रहे हैं। उन्होंने सारे बंधन निर्मित किये हैं, लोगों के साथ बंधन, वस्तुओं के साथ बंधन- सिर्फ प्रेम के लिए अपनी खोज के कारण।
अतः जब कभी कोई व्यक्ति स्वतंत्र हो जाता है, उसका प्रेम अनुभव किया जाता है। लेकिन तुम उस प्रेम को करुणा की भांति अनुभव करोगे, प्रेम की भांति नहीं, क्योंकि उसमें कोई उत्तेजना नहीं होगी। यह बहुत बिखरा हुआ होगा- ठंडा, जरा सा भी उत्तप्त नहीं। इसमें कोई उत्तेजना नहीं होती। यह वहां है, बस इतना ही। उत्तेजना आती है और चली जाती है, यह स्थायी नहीं हो सकती, अतः अगर बुद्ध के प्रेम में उत्तेजना हो तो बुद्ध को पुनः घृणा में उतरना पड़ेगा। अतः वहां उत्तेजना कभी न होगी। शिखर वहां नहीं होंगे, और घाटियां भी वहां नहीं होंगी। प्रेम बस वहां होगा। तुम इसे करुणा की भांति महसूस करोगे।
स्वतंत्रता बाहर से महसूस नहीं की जा सकती; केवल प्रेम महसूस किया जा सकता है। और वह भी करुणा के रूप में। यह मनुष्य के इतिहास में एक सर्वाधिक कठिन घटना है। संबुद्ध व्यक्ति की स्वतंत्रता असुविधा निर्मित करती है और उसका प्रेम करुणा होता है। यही कारण है कि समाज सदा इन लोगों के बारे में द्वंद्व महसूस करता है।
वे लोग है जिन्होंने केवल उस असुविधा को महसूस किया जो एक क्राइस्ट निर्मित करता है। ये वे लोग है जो पूर्णतः संस्थापित है। उन्हें करुणा की कोई जरूरत नहीं हैं। वे सोचते हैं कि उनके पास प्रेम, स्वास्थ्य, संपत्ति, सम्मान सब कुछ है। क्राइस्ट आएंगे और ये अपने पास सबकुछ है समझने वाले उनके विरुद्ध होंगे क्योंकि वह उनके लिए असुविधा निर्मित कर रहे हैं, जबकि वे लोग जिनके पास कुछ नहीं है, उनके साथ हो जाएंगे क्योंकि वे उनकी करुणा महसूस करेंगे। उन्हें प्रेम की आवश्यकता है। किसी ने उन्हें प्रेम नहीं दिया है पर यह व्यक्ति उन्हें प्रेम करता है। वे क्राइस्ट के साथ असुविधा महसूस नहीं करेंगे। क्योंकि उनके पास डरने को कुछ नहीं है, खोने को कुछ नहीं है।

जब क्राइस्ट मर जाते हैं तो प्रत्येक उनकी करुणा महसूस करता है, क्योंकि अब वहां कोई असुविधा नहीं है। अच्छी तरह से संस्थापित लोग भी विश्रांति अनुभव करेंगे; वे उनकी पूजा करेंगे। पर जब वह जीवंत हैं, वह एक विद्रोही हैं। और वह विद्रोही हैं क्योंकि वह मुक्त हैं।
वह विद्रोही इसलिए नहीं हैं क्योंकि समाज के साथ कुछ गड़बड़ है। ऐसा विद्रोह केवल राजनैतिक ही होता है। यदि समाज बदल जाए तो वही व्यक्ति जो क्रांतिकारी था रुढिवादी हो जाएगा। यही वास्तव में घटित हुआ। वे परम क्रांतिकारी संसार के सर्वाधिक क्रांति विरोधी दल बन गये। जिस पल स्टालिन या माओ जैसे लोग सत्ता में आते हैं वे सर्वाधिक संभव क्रांतिकारी नेता बन जाते हैं क्योंकि वे वास्तव में विद्रोही होते ही नहीं। वे मात्र एक स्थिति विशेष के प्रति विद्रोही हैं। एक बार स्थिति मिटा दी जाये, वे वैसा ही हो जाते हैं जिनको उखाड़ने के लिए वे लड़े थे।
पर एक क्राइस्ट सदा विद्रोही होता है। कोई परिस्थिति उसकी बगावत को नष्ट न कर सकेगी, क्योंकि उसकी बगावत किसी के विरुद्ध नहीं है। यह इसलिए है कि उसकी चेतना मुक्त है। जहां कहीं भी उसे अवरोध महसूस होना है, वह विद्रोही अनुभव करेगा। यह विद्रोह उसकी आत्मा है। अतः अगर जीसस आज आ जायें; ईसाई उनके साथ विश्रांति में नहीं होंगे। वे अब व्यवस्था का भाग हो गये हैं, वे निश्चिंत हो गये हैं। यदि जीसस पुनः बीच बाजार में आ जायें तो वे वह हर उस चीज नष्ट कर देंगे जो उनके पास है। वैटिकन चर्च का अस्तित्व जीसस के साथ संभव नहीं है, वह बिना जीसस के ही यह संभव है।
प्रत्येक शिक्षक जो बुद्धत्व प्राप्त कर चुका हो विद्रोही है, पर वह परंपरा जो उससे संबद्ध है कभी विद्रोही नहीं होती। यह उसके विद्रोह से, उसकी स्वतंत्रता से, कभी संबद्ध नहीं होती बल्कि मात्र उसका करुणा, उसके प्रेम से संबद्ध होती है। किंतु तब यह नपुंसक हो जाती है। प्रेम बिना स्वतंत्रता के, बिना विद्रोह के अस्तित्त्व में नहीं रह सकता।
तुम बुद्ध की तरह प्रेम पूर्ण तब तक नहीं हो सकते जब तक कि तुम उनकी भांति मुक्त न हो जाओ। एक बौद्ध भिक्षु बस करुणावान होने की कोशिश कर रहा है। यह करुणा नपुंसक है क्योंकि स्वतंत्रता वहां नहीं है। स्वतंत्रता ही स्रोत है। महावीर करुणावान हैं, पर एक जैन मुनि किसी भी तरह करुणावान नहीं है। वह मात्र अहिंसक और करुणावान होने का अभिनय कर रहा है; वास्तव में यह करुणावान नहीं है। वह ढोंगी है। अपनी करुणा में और उसके प्रदर्शन में भी वह ढोंगी है। वहां कोई करुणा नहीं है क्योंकि स्वतंत्रता वहां नहीं है। जब भी स्वतंत्रता मनुष्य की चेतना में घटती है, भीतर से स्वतंत्रता अनुभव होती है और बाहर से प्रेम अनुभव होता है। यह प्रेम, यह करुणा, प्रेम और घृणा दोनो की अनुपस्थिति है। यहां सारा द्वैत अनुपस्थित होता है; वहां न आकर्षण होता है और न विकर्षण।
अतः उस व्यक्ति के साथ जो मुक्त है और प्रेम पूर्ण है, यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम उसका प्रेम ले सकते हो अथवा नहीं। यह मुझ पर निर्भर नहीं है कि मैं तुम्हें कितना प्रेम दे सकता हूं, यह इस पर निर्भर है कि कितना ज्यादा प्रेम तुम ले सकते हो। सामान्यतः प्रेम इस व्यक्ति पर निर्भर करता है जो दे रहा है। वह प्रेम दे सकता है, वह नहीं भी दे सकता है। लेकिन वह प्रेम जिसके बारे में मैं बात कर रहा हूं, देने वाले पर निर्भर नहीं है। वह व्यक्ति तो पूर्णतः खुला है और हर पल दे रहा है। जब कोई मौजूद भी न हो तब भी प्रेम बह रहा है।
यह मरुस्थल में खिले एक फूल की तरह है। कोई चाहे न भी जाने कि वह खिल गया है और अपनी सुगंध बिखेर रहा है, पर यह तो सुगंध लुटाता ही रहेगा। यह सुगंध किसी व्यक्ति-विशेष को नहीं दी जा रही, यह बस दी जा रही है। फूल खिल गया है; अतः सुगंध वहां है। कोई गुजरता है या नहीं यह असंगत है। यदि कोई गुजरता हो और वह संवेदनशील हो तो वह इसे ग्रहण कर सकता है। किंतु यदि वह पूर्णतः मृत है, असंवेदनशील है, वह यह जान भी नहीं सकता कि यहां कोई फूल है।
जब प्रेम वहां होता है, यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम इसे ग्रहण कर पाओ या नहीं। केवल तब जबकि प्रेम न हो, दूसरा तुम्हें यह दे सकता है या तुम्हें इसे देने से रोक सकता है। प्रेम के साथ, करुणा के साथ दिव्यता और

अदिव्यता के मध्य कोई विभाजन नहीं है। प्रेम परमात्मा है। परमात्मा प्रेम है।

प्रवचन-15

तर्क और तर्कातीत का संतुलन

पश्चिम के युवा विद्रोह के लिए आप किन घटकों को उत्तरदायी समझते हैं,
और पश्चिम से इतने अधिक युवा लोग पूर्वीय धर्म और दर्शन में क्यों उत्सुक हो रहे हैं?
मन बहुत विरोधाभासी चीज है। यह ध्रुवीय विपरीतताओं में कार्य करता है। किंतु हमारी सोचने की तर्कयुक्त विधि सदा एक भाग चुन लेती है और दूसरे को इन्कार कर देती है। अतः तर्क तो एक विरोधाभासी तरीके से आगे बढ़ता है; और मन विरोधाभासी तरीके से कार्य करता है। मन विपरीतताओं में कार्य करता है, और तर्क सरल रेखा में।
उदाहरण के लिए मन के पास दो संभावनायें हैंः क्रोधित होना या मौन होना। यदि तुम क्रोधित हो सकते हो, इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरी अति पर तुम मौन नहीं हो सकते। यदि तुम उलझन में हो सकते हो, इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम प्रेमपूर्ण हो सकते हो; तुम घृणा से भी भर सकते हो। कोई दूसरे को इन्कार नहीं करता।
किंतु जब तुम प्रेम कर रहे होते हो; तुम सोचने लगते हो कि तुम घृणा करने में असमर्थ हो। तब घृणा भीतर संचित होती चली जाती है और जब तुम अपने प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुंचते हो, सब कुछ बिखर जाता है। तुम घृणा में डूब जाते हो। और न सिर्फ तर्क पूर्ण मन इस तरह कार्य करता है; समाज भी ऐसे ही कार्य करता है।
पश्चिम तर्कयुक्त चिंतन के शिखर पर पहुंच गया है। अब मन का तर्कातीत हिस्सा बदला लेगा। तर्कातीत को अभिव्यक्ति से रोका गया है और पिछले पचास सालों में यह अनेकों उपायों से बदला ले रहा है, कला, काव्य, नाटक, साहित्य, दर्शनशास्त्र के माध्यम से, और अब जीने के ढंग के माध्यम से भी। अतः युवाओं का विद्रोह वास्तव में मन के तर्कातीत भाग का अत्याधिक तर्कशीलता के विरुद्ध विद्रोह है।
पूर्व पश्चिम के उन लोगों के लिए सहायक हो सकता है क्योंकि पूर्व मन
के दूसरे हिस्से के साथ रहा हैः तर्कातीत के साथ। यह भी शिखर पर पहुंच गया हैः तर्कातीत के शिखर पर। अब पूर्व के युवा लोग धर्म के स्थान पर साम्यवाद में अधिक उत्सुक हैं, तर्कातीत जीवन के स्थान पर तर्कयुक्त चिंतन में ज्यादा उत्सुक है। जैसा कि मैं इसे देखता हूं अब सारा पेन्डुलम पलट जाएगा। पूर्व पश्चिम की तरह हो जाएगा और पश्चिम पूर्व की भांति हो जाएगा। जब मन का एक भाग शिखर पर पहुंच जाता है, तुम विपरीत की ओर चले जाते हो। यही है जो इतिहास में सदा घटित होता है। अतः अब पश्चिम में ध्यान और अधिक अर्थपूर्ण होगा। काव्य एक नया रूप धारण करेगा और विज्ञान नीचे उतरेगा। आधुनिक पश्चिमी युवा विज्ञान-विरोधी होगा। यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, अति का एक स्वचालित संतुलन।
हम अभी तक एक ऐसा व्यक्तित्व विकसित करने में समर्थ नहीं हो पाए हैं जिसमें दोनों ध्रुवीयता समाहीत हों, जो न पूर्वीय हो और न पश्चिमी। हमने सदा मन का एक भाग चुना है और दूसरा दुर्लक्षित रहता है। तब बगावत होगी ही। हर बात जिसे हमने विकसित करने के लिए कार्य किया है, चकनाचूर हो जाएगी, और मन दूसरी ध्रुवीयता की ओर चला जाएगा। यह सारे इतिहास में घटित हुआ है, यही द्वंद्व सदा रहा है।
पश्चिम के लिए अब ध्यान अधिक अर्थपूर्ण होगा बजाय सोच विचार के क्योंकि ध्यान का अर्थ है निर्विचार। उनके लिए झेन अधिक आकर्षक होगा, बौद्ध धर्म अधिक आकर्षक होगा, योग अधिक आकर्षक होगा। ये सभी जीवन के प्रति तर्कातीत दृष्टिकोण हैं। उनका जोर धारणाएं निर्मित करने पर, सिद्धांतों पर, धर्म शास्त्रों पर नहीं है। इनका जोर अस्तित्त्व में गहरे उतर कर स्वाद लेने पर है; विचारणा में नहीं। जैसा कि मैं इसे देखता हूं, मन पर जितनी ज्यादा पकड़ तकनिक की होगी, उतनी ही ज्यादा संभावना है कि दूसरा ध्रुव आ रहा होगा।

पश्चिम के युवाओं का विद्रोह बहुत अर्थपूर्ण, बहुत महत्वपूर्ण है। यह परिवर्तन का, चेतना के संपूर्ण परिवर्तन का, एक ऐतिहासिक बिंदु है। अब पश्चिम जैसा यह अब तक था, वैसा नहीं रह सकता। एक गहन संकट का समय आ गया है। अब पश्चिम को दूसरी दिशा में जाना ही पड़ेगा।
अब पश्चिम में सारा समाज समृद्ध है। व्यक्ति समृद्ध पहले भी रहे हैं
पर सारा समाज समृद्ध कभी न था। जब एक समाज समृद्ध हो जाता है, संपत्ति अपनी अर्थपूर्णता खो देती है। वे सिर्फ गरीब समाजों में अर्थपूर्ण हैं। पर एक गरीब समाज में भी; जब कोई वास्तव में समृद्ध हो जाता है वह ऊब जाता है। व्यक्ति जितना ज्यादा संवेदनशील होता है, उतनी ही जल्दी वह ऊब जाता है। बुद्ध मात्र ऊबे हुए हैं। वे सब कुछ छोड़ देते हैं।
आधुनिक युवा का सारा दृष्टिकोण खालीपन से भरी समृद्धि से पैदा हुइ ऊब
के कारण है। युवा लोग समाज छोड़ रहे, और वे समाज छोड़ते चले जाएंगे जब तक कि सारा समाज निर्धन न हो जाए। तब वे छोड़ने योग्य न रहेंगे। यह छोड़ना, यह त्याग, केवल एक पतन हो जाएगा। तब औद्योगीकरण प्रगति नहीं करेगा और यदि यह जारी रहा तो पश्चिम आज के पूर्व की भांति हो जाएगा।
पूर्व में वे दूसरी अति पर आ रहे हैं। ये पश्चिम की ही तरह का समाज निर्मित करेंगे। पूर्व पश्चिम की ओर मुड़ रहा है और पश्चिम पूर्व की और मुड़ रहा है; परंतु बिमारी वही रहती है। जैसा कि मैं इसे देखता हूं यही रुग्णता असंतुलन है, एक बात का स्वीकार और दूसरी से इन्कार।
हमने कभी मनुष्य के मन को अपनी पूर्णता में नहीं खिलने दिया। हमने सदा एक के विरुद्ध दूसरे को चुना है, एक की कीमत पर दूसरे को चुना है। यही पीड़ा रही है। अतः मैं न तो पूर्वीय ढंग के पक्ष में हूं और न पश्चिमी ढंग के। मैं दोनों के विरोध में हूं, क्योंकि वे आंशिक दृष्टिकोण हैं। व्यक्ति को न तो पूर्व को चुनना चाहिए और न पश्चिम को, वे दोनों असफल हो गए हैं। पूर्व धर्म को चुनकर असफल हो गया है और पश्चिम विज्ञान को चुनकर असफल हो रहा है। जब तक कि दोनों न चुन लिए जाएं इस दुष्चक्र से निकलने का कोई उपाय नहीं।
हम एक अति से दूसरी पर बदल सकते हैं। यदि तुम जापान में बौद्धधर्म के बारे में बात करो; कोई युवा सुनने को राजी नहीं है। वे औद्योगीकरण में उत्सुक हैं और तुम झेन, बौद्धधर्म में उत्सुक हो। भारत में, नयी पीढ़ी धर्म में कतई भी उत्सुक नहीं है। वे अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, अभियांत्रिकी, विज्ञान- धर्म के सिवाय और सभी चीज में उत्सुक हैं। पश्चिम का युवा धर्म में उत्सुक है जबकि पूर्व का युवक विज्ञान में उत्सुक है। यह बस बोझ को एक अति से दूसरी पर बदलने की भांति है। यही भ्रांति अब भी चल रही है।
मैं समग्र मन में उत्सुक हूं, एक ऐसे मन में जो न पूर्वीय हो न पश्चिमी हो, जो बस मानवीय हो- एक सार्वभौमिक मन। मन के एक हिस्से के साथ रहना आसान है, किंतु यदि तुम दोनों भागों के साथ रहना चाहो तो तुम्हें एक बहुत असंगत जीवन जीना पड़ेगा, सतह पर तो निसंदेह ही असंगत। पर एक गहनतर तल पर तुम में एक संगतता, एक आध्यात्मिक लयबद्धता होगी।
मनुष्य आध्यात्मिक रूप से दरिद्र ही रहता है जब तक कि विपरीत ध्रुवीयता भी उसका एक भाग न हो। तब वह समृद्ध हो जाता है। यदि तुम मात्र एक कलाकार हो और तुम्हारे पास वैज्ञानिक मन नहीं है तो तुम्हारी कला दरिद्र होगी ही। समृद्धि केवल तब आती है जबकि विपरीत वहां हो। यदि मात्र पुरुष ही एक कमरे में हों तो कमरे में कुछ कमी है। जिस पल स्त्री भीतर आती है, कमरा आध्यात्मिक दृष्टि से समृद्ध हो जाता है। अब दोनों विपरीत ध्रुव वहां हैं। तब संपूर्णता महत्तर हो जाती है।
मन को निश्चित ढांचे में नहीं होना चाहिए। एक गणितज्ञ और अधिक समृद्ध
हो जाएगा यदि वह कला के संसार में जा सके। यदि उसका मन इतना स्वतंत्र हो कि यह अपने मुख्य ढांचे से दूर जा सके और पुनः उस तक वापस लौट आये; वह एक अधिक समृद्ध गणितज्ञ हो जाएगा। विपरीत के माध्यम से एक संकर घटित होता है। तुम चीजों की ओर एक भिन्न दृष्टि से देखना शुरू कर देते हो। तुम्हारा सारा परिप्रेक्ष्य समृद्ध हो जाएगा।

एक व्यक्ति के पास वैज्ञानिक प्रशिक्षण के साथ एक धार्मिक मन होना चाहिए, धार्मिक अनुशासन के साथ एक वैज्ञानिक मन होना चाहिए। मैं इसमें कोई अंतर्निहित असंभावना नहीं देखता। बल्कि इसके विपरीत, मैं सोचता हूं कि वह मन अधिक जीवंत हो जाएगा, यदि यह एक बिंदु से दूसरे बिंदू पर जा सके। मेरे लिए ध्यान का अभिप्राय सारी दिशाओं में गहनता से जा पाने की, निर्धारित ढांचों से स्वतंत्र हो पाने की सामर्थ्य है।
उदाहरण के लिए यदि मैं अत्याधिक तर्कयुक्त हो जाऊं तो मैं काव्य को समझने में असमर्थ हो जाता हूं। तर्क एक ढांचा बन जाता है। तब जब मैं काव्य सुनता हूं, मेरा ढांचा वहां होता है। काव्य अतर्क्य दीखता है। इसलिए नहीं कि यह अतर्क्य है, बल्कि इसलिए क्योंकि मेरा तर्क के साथ ढांचा बना लूं तो मैं सोचना शुरू कर दूंगा कि तर्क मात्र एक उपयोगी चीज है, जिसमें कोई गहराई नहीं है। मैं इसके प्रति बंद हो जाता हूं।
एक भाग द्वारा दूसरे का इन्कार सारे इतिहास के दौरान होता रहा है। हर काल ने, हर राष्ट्रने विश्व के हर हिस्से ने, हर संस्कृति ने सदा एक भाग चुना और इसके चारों ओर एक व्यक्तित्व निर्मित किया। यह व्यक्तित्व दरिद्र था, जिसमें बहुत कुछ कमी थी। न तो पूर्व आध्यात्मिक रूप से समृद्ध रहा है और न पश्चिम। वे हो नहीं सकतें।
समृद्धि विपरीतताओं के माध्यम से, भीतरी द्वंद्वात्मकता के माध्यम
से आती है। मेरे लिए न तो पूर्व चुनने योग्य है और न ही पश्चिम। एक विभिन्न गुणवत्ता का मन चुना जाना चाहिए। उस गुणवत्ता से मेरा अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने साथ, बिना चुने, विश्रांति में है।
एक वृक्ष उगता है। हम एक शाखा को छोड़कर सारी शाखाएं काट सकते हैं और वृक्ष को एक ही दिशा में बढ़ने दे सकते हैं। यह बहुत दरिद्र वृक्ष होगा, बहुत कुरुप और यह अंत में गहरी कठिनाई में फंस जाएगा, क्योंकि एक अकेली शाखा अपने से नहीं बढ़ सकती; यह केवल शाखाओं के समूह में विकसित हो सकती है। एक पल आएगा ही जब यह शाखा महसूस करेगी कि यह अपने उच्चतम बिंदु पर पहुंच गयी है। अब यह और अधिक विकसित नहीं हो सकती। वृक्ष के लिए वास्तविक रूप से विकसित होने का अर्थ है कि इसे सभी दिशाओं में विकसित होने दिया जाए। सिर्फ तब यह वृक्ष समृद्ध, शक्तिशाली होगा।
मनुष्य की आत्मा एक वृक्ष की भांति विकसित होनी चाहिएः सभी दिशाओं में। यह धारणा कि हम विरोधी दिशाओं में विकसित नहीं हो सकतें, छोड़ देनी चाहिए। वास्तव में हम सिर्फ तभी विकसित हो सकते हैं, जब हम विपरीत दिशाओं में विकसित हों।
अब तक हम कहते रहे हैं कि व्यक्ति को विशेषज्ञ हो जाना चाहिए, व्यक्ति
को सिर्फ एक विशिष्ट दिशा में विकसित होना चाहिए। तब कुछ कुरुप घटता है। व्यक्ति विशिष्ट दिशा में विकसित होता है तो उस में हर चीज का अभाव होता है। वह एक शाखा बन जाता है, वृक्ष नहीं। और यह शाखा भी दरिद्र ही होगी।
न केवल हम मन की शाखाएं काटते रहे हैं बल्कि हम जड़ों को भी काटते रहे हैं। हम सिर्फ एक जड़ और एक शाखा को बढ़ने देते हैं, अतः एक बहुत ही आधा- अधूरा, खालीपन से भरा व्यक्तित्व सारे विश्व मेंः पूर्व में, पश्चिम में, सब कहीं विकसित हुआ है। तब वे लोग जो पूर्व में हैं पश्चिम की ओर आकर्षित होते हैं और वे लोग जो पश्चिम में हैं पूर्व की ओर आकर्षित होते हैं, क्योंकि व्यक्ति में जिस चीज का अभाव होता है वह उसी की ओर आकर्षित होता है।
शरीर की जरूरतों के कारण पूर्व ने पश्चिम की ओर आकर्षित होना शुरू कर दिया है और आत्मा की जरूरतों के कारण पश्चिम ने पूर्व की ओर आकर्षित होना शुरू कर दिया है। लेकिन हम स्थिति बदल भी दें, दृष्टिकोण बदल भी दें, बीमारी तो वही रहती है। यह स्थितियां बदलने का प्रश्न नहीं है, यह सारे परिप्रेक्ष्य को बदलने का सवाल है।
हमने कभी समग्र मनुष्य को स्वीकार नहीं किया। कहीं पर सेक्स; काम स्वीकृत नहीं है। किसी और स्थान पर संसार स्वीकृत नहीं है। किसी और स्थान पर भाव स्वीकार्य नहीं है। हम कभी पर्याप्त समर्थ नहीं हो पाये कि बिना निंदा के जो भी मानवीय है उसे स्वीकार कर लें, और मनुष्यों को हर दिशा में विकसित होने दें।

जितना ज्यादा तुम विपरीत दिशाओं में विकसित होते हो, उतनी ही महत वृद्धि होगी, संमृद्धि होगी, आंतरिक प्रचुरता होगी। हमारे सारे परिप्रेक्ष्य को बदलना पड़ेगा। हमे अतीत से भविष्य की ओर जाना चाहिए- न कि पूर्व से पश्चिम की ओर, न कि एक वर्तमान से दूसरे वर्तमान की ओर।
यह समस्या इतनी जटिल हो गयी है क्योंकि हमारा विभाजन बहुत गहरा चला गया हैः मैं अपना क्रोध स्वीकार नहीं कर सकता, मैं अपना सेक्स स्वीकार नहीं कर सकता; मैं अपना शरीर स्वीकार नहीं कर सकता, मैं अपनी परिपूर्णता को स्वीकार नहीं कर सकता।
किसी न किसी चीज को इन्कार करना है और दूर फेंक देना है। यह पाप है, यह बुरा है, यह अशुभ है। मैं शाखाएं काटता चला जाता हूं। जल्दी ही मैं एक वृक्ष तो रहूंगा ही नहीं, न एक जीवित चीज रहूंगा। और यह भय सदा बना रहता है कि वे शाखाएं जिन्हें मैंने इन्कार कर दिया था, पुनः उग सकती हैं, पुनः विकसित हो सकती हैं। मैं हर चीज के बारे में भय पूर्ण हो जाता हूं। एक बीमारी, एक उदासी, एक मृत्यु; भीतर बैठ जाती है।
हम आंशिक जीवन जीये चले जाते हैं, जो जीवन के स्थान पर मृत्यु के ज्यादा निकट है। व्यक्ति को समग्र मानवीय संभावना को स्वीकार करना चाहिए, हर चीज को अपने भीतर शिखर तक ले जाते हुए, बिना किसी विरोधाभास को, बिना किसी असंगतता को महसूस किये हुए।
यदि तुम प्रमाणिक रूप से क्रोधित नहीं हो सकते, तुम प्रेम पूर्ण भी नहीं हो सकते। पर अब तक यह दृष्टिकोण नहीं रहा है। हम सोचते रहे है कि अगर कोई व्यक्त्ति क्रोधित होने में असमर्थ है तो वह अधिक प्रेमपूर्ण है। पर मान लिया जाए कि वृक्ष एक दीवार के निकट विकसित हो रहा है। इसकी शाखाएं बढ़ नहीं सकती क्योंकि दीवार वहां है। यह दीवार समाज हो सकता है, इसकी वर्तमान परिस्थितियां हो सकती हैं। जब इसके बगल में एक दीवार हो तो, वृक्ष कैसे विकसित हो सकता है? दीवारें तो बहुत सी हैं। लेकिन वे दीवारें वृक्षों ने ही निर्मित की है, किसी अन्य ने नहीं। वृक्ष उन दीवारों को सहारा देते रहे हैं। यह उनका सहयोग ही है जिसके माध्यम से दीवारें अस्तित्त्व में है। जिस पल वृक्ष दीवारों को और अधिक सहारा देने को राजी नहीं रहते, वे गिर जाती हैं, ढह जाती है।
जो दीवारें हमारे चारों ओर हैं वे हमारी ही सृजन हैं। मनुष्य के मन के ढंग के कारण, हमने इन दीवारों को बनाया है। उदाहरण के लिए; तुम अपने बच्चे को क्रोधित न होना यह कह कर सिखाते हो कि यदि वह क्रोधित होता है तो वह एक प्रेम पूर्ण बालक नहीं होगा। तब तुम, उसके चारों ओर दीवारें खड़ी कर देते हो जो उसे बतलाती हैं कि उसे अपने क्रोध का दमन करना चाहिए। तुम यह नहीं जानते कि यदि वह अपने क्रोध का दमन करता है तो उसकी प्रेम कर पाने की सामर्थ्य इसी के साथ नष्ट हो जाएगी। क्रोध और प्रेम असंगत बातें नहीं हैं। वे एक ही चीज की दो शाखाएं हैं।
यदि तुम एक को काटते हो; दूसरा दरिद्र हो जाएगा, क्योंकि वही रस हर शाखा में प्रवाहित होता है।
यदि तुम वास्तव में अपने बच्चे को एक उत्तम जीवन के लिए प्रशिक्षित करना चाहते हो तो तुम उसे प्रामाणिक रूप से क्रोधित होना सिखाओगे। तुम यह नहीं कहोगे, "क्रोध मत करो"। तुम कहोगे, "जब तुम क्रोध महसूस करते हो प्रमाणिक रूप से, पूर्णतः, क्रोधित हो जाओ। क्रोध के विषय में अपराध अनुभव मत करो।" बजाय इसके कि उसे क्रोधित न होना सिखाओ, उसे ठीक तरह से क्रोधित होने के लिए प्रशिक्षित करो। जब सही समय हो तो उसे प्रमाणिक रूप से क्रोधित होना चाहिए, और उसे गलत समय पर क्रोधित नहीं होना चाहिए। यही प्रेम के लिए भी सच है। जब उचित समय हो तो उसे प्रामाणिक रूप से प्रेम पूर्ण होना चाहिए और जब यह उसके लिए गलत समय हो तो उसे प्रेम पूर्ण नहीं होना चाहिए।
यह क्रोध और प्रेम के बीच में चुनने का प्रश्न नहीं है। प्रश्न तो सही
और गलत, प्रमाणिक और अप्रमाणिक के बीच में चुनने का है। क्रोध की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। एक बच्चा जब वह वास्तव में क्रोधित होता है सुंदर होता है, ऊर्जा और जीवन का एक आकस्मिक संयोग। यदि तुम क्रोध को मारते हो,

तो तुम जीवन को मार रहे हो। वह नपुंसक हो जाएगा। अपने सारे जीवन में वह जीवंत होने में समर्थ न रहेगा, वह एक मृत लाश की भांति चलेगा।
हम उन धारणाओं को बनाते चले जाते हैं जो दीवारें निर्मित करती हैं।
हम दृष्टिकोण और विचार धाराएं विकसित करते हैं जो दीवारें निर्मित करती हैं। ये दीवारें हम पर थोपी गई नहीं हैं, ये हमारी सृजन हैं। जिस पल हम बोध से भरते हैं, दीवारें खो जाती हैं। हमारे कारण ही वे अस्तित्त्व में हैं। पर मान लिया जाए कि वृक्ष, व्यक्ति, मूलतः अपंग है, तब वह बदल नहीं सकता, इसलिए नहीं कि वह चाहता नहीं वरन इसलिए कि वह ऐसा कर नहीं सकता। अपंग लोग समस्या नहीं हैं। जब सारा समाज जीवित हो, हम उनका इलाज कर सकते हैं। हम उनका विश्लेषण, उनकी सहायता कर सकते हैं। उनकी सहायता की जानी चाहिए, वे स्वयं कुछ नहीं कर सकते। परंतु समाज उनकी असहायता में भी एक भूमिका अदा करता है।
उदाहरण के लिए एक वेश्या का पुत्र हमारी नैतिक धारणाओं के कारण प्रतिबंधित है। वह उसके लिए, जिसके लिए वह जरा भी उत्तरदायी नहीं है, गहन अपराध बोध अनुभव करता है। यदि उसकी मां एक वेश्या थी तो इसमें वह किस तरह जिम्मेदार हो सकता है? वह इसके बारे में क्या कर सकता है? पर समाज उस बालक के साथ एक भिन्न तरह का व्यवहार किये चला जाता है। जब तक कि हम काम के बारे में एक भिन्न प्रकार का दृष्टिकोण नहीं रखते, वेश्या पुत्र होने का उसका अपराध बोध जारी रहेगा।
क्योंकि हमने विवाह को पवित्र मान लिया है, वेश्यावृत्ति पाप की भांति समझी जाने के लिए बाध्य है। पर वेश्यावृत्ति विवाह के कारण ही अस्तित्त्व में है। यह विवाह की संपूर्ण व्यवस्था का ही भाग है।
जैसा कि मनुष्य का मन है, एक स्थायी संबंध अप्राकृतिक है। व्यक्ति एक
ही व्यक्ति के साथ सिर्फ तभी अनिश्चित काल तक रह सकेगा जबकि कानून द्वारा इसे आवश्यक कर दिया जाए। कानून ऐसा नहीं होना चाहिए। यह मेरे ऊपर बाहर से नहीं थोपा जाना चाहिए कि यदि मैं किसी को आज प्रेम करता हूं तो मुझे कल भी उसी व्यक्ति को प्रेम करना पड़ेगा। यह प्रकृति की मांग नहीं है। यह कोई अंतर्निहित आवश्यकता नहीं है कि कल भी प्रेम वहां हो। यह हो भी सकता है, यह नहीं भी हो सकता है। और जितना उसे तुम होने के लिए बाध्य करोगे उतना ही यह असंभव हो जाता है। तब वेश्यावृत्ति पिछले दरवाजे से आ जाती है। जब तक कि हमारे पास एक ऐसा समाज न हो जो मुक्त संबंध स्वीकृत करता हो, हम वेश्यावृत्ति समाप्त नहीं कर सकते।
यदि एक संबंध जारी रहता है, तो तुम इसके बारे में अच्छा महसूस करते हो, तुम्हारे अहंकार को अच्छा लगता है। अपने अहंकार को परितृप्त करने के लिए-कि तुम एक वफादार पति हो या एक संतोषजनक पत्नी हो- वेश्यावृत्ति की निंदा करनी पड़ती है। तब वेश्या के पुत्र की भी निंदा करनी पड़ेगी, और यह एक रुग्णता बन जाती है। उसमें एक बीमारी निर्मित कर दी जाती है।
किंतु ये अपवाद हैं। यदि कोई शारीरिक तौर से या मनोवैज्ञानिक रूप से रुग्ण है, हमें उसकी सहायता, उसका इलाज करना पड़ेगा। परंतु सारा समाज इस तरह का नहीं है। निन्यानबे प्रतिशत हमारी रचना है; एक प्रतिशत अपवाद है। वह एक प्रतिशत तो जरा भी समस्या नहीं है। यदि समाज का अन्य निन्यानबे प्रतिशत भाग बदलता है, तो वह प्रतिशत भी इससे प्रभावित होगा।
हम अभी तक यह निर्धारित नहीं कर सके हैं कि किस सीमा तक तुम्हारा शरीर तुम्हारे मन से प्रभावित होता है। जितना अधिक हम जानते हैं, उतने ही हम अनिश्चय में पड़ जाते हैं। तुम्हारे शरीर में बहुत सी रुग्णतायें मात्र तुम्हारे मन के कारण हो सकती हैं। जब तक कि व्यक्ति का मन मुक्त न हो, वह निश्चित रूप से नहीं जान सकता कि रोग शरीर से उत्पन्न हो रहा है।
अतः बहुत सी रुग्णताएं मात्र एक मानवीय घटना हैं। वे पशुओं में नहीं घटतीं। पशु अधिक स्वस्थ हैं, कम रुग्ण, कम कुरुप। कोई कारण नहीं है कि मनुष्य क्यों अधिक जीवंत, अधिक सुंदर, अधिक स्वस्थ नहीं हो सकता। वह प्रशिक्षण जिससे होकर हम दस हजार वर्ष से गुजरें हैं, मन का यह लंबा प्रशिक्षण, इसका मूल कारण हो सकता है। परंतु जब तुम स्वयं उसी ढांचे के हिस्से हो तुम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

इस रुग्ण मन के कारण बहुत सी शारीरिक रुग्णतायें अस्तित्त्व में हैं।
और हम हर किसी का मन पंगु बना रहे हैं। बच्चे के जीवन के पहले सात साल बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यदि तुम मन को पंगु बना दो, इसके बाद उसे बदलना अधिक मुश्किल हो जाता है। और हम अच्छी भावना से पंगु बनाते चले जाते हैं। मनोविज्ञान जितने गहरे मन की जड़ों में बैठता है; उतना ही अधिक लगता है कि माता पिता अपराधी हैं पर अनजाने में; उतना ही अधिक शिक्षा व्यवस्था और अध्यापक अपराधी प्रतीत होते हैं, पर अनजाने में। उन्होंने भी पुरानी पीढ़ी से कष्ट सहा है। वे तो सिर्फ रोग का हस्तांतरण कर रहे हैं।
किंतु अब एक नई संभावना खुल गई है। पहली बार, विशेषतः पश्चिम में मनुष्य अपनी दिन प्रति दिन की जरूरतों से मुक्त है। अब हम मन की नई संभावनाओं के साथ प्रयोग कर सकते हैं। अतीत में यह कर पाना असंभव था, क्योंकि शारीरिक आवश्यकतायें, एक बड़ा बोझ थीं, बहुत अतृप्ती थीं। किंतु अब संभावना है। हम एक गहरी क्रांति के द्वार पर हैं, एक ऐसी क्रांति जिसे मनुष्य के इतिहास ने कभी नहीं जाना। अब चेतना में एक क्रांति संभव है। जानने और समझने की अधिक सुविधाओं के साथ, हम बदल सकते हैं। बहुत समय की जरूरत होगी, पर संभावना हमारे लिए खुली है। यदि हम साहस कर सकें, यदि हममें हिम्मत है तो यह एक वास्तविकता बन सकती है।
सारी मनुष्यजाति दांव पर लगी है। या तो हम अतीत की ओर वापस जाएंगे या
एक नये भविष्य में। यह तीसरे विश्वयुद्ध का प्रश्न नहीं है, न ही साम्यवाद या पूंजीवाद का प्रश्न है। ये समस्याएं अब तिथि-बाह्य हैं। अब एक नया संकट निकट है। या तो हमें यह निश्चित करना पडेगा कि हम एक नई चेतना रखना चाहते हैं और इसके लिए कार्य करेंगे; या हमें वापस गिरना होगा, पुरानी व्यवस्था में पुनः प्रविष्ट होना पड़ेगा।
वापस लौटना भी संभव है। जब भी कोई संकट होता है, वापस लौटना मन की प्रवृत्ति है। जब तुम किसी ऐसी चीज के सामने पड़ जाते हो, जिसका तुम सामना नहीं कर पाते, तुम वापस लौट जाते हो। उदाहरण के लिए यदि इस घर में अचानक आग लग जाए; तुम बच्चों की भांति व्यवहार करना शुरू कर दोगे। जब घर में आग लगी हो तो तुम्हें अधिक परिपक्वता, अधिक समझ की जरूरत है, तुम्हें और अधिक होशपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की जरूरत है, पर इसके स्थान पर तुम लगभग पांच वर्ष की आयु में लौट पड़ते हो, और चारों ओर इस तरह से दौड़ना शुरू कर देते हो कि अपने लिए तुम और अधिक खतरा निर्मित कर लेते हो।
एक गंभीर संभावना यह है कि यदि हम एक नये मानवीय अस्तित्त्व को निर्मित करने का प्रयास करें तो हम एक ऐसी स्थिति का सामना करेंगे जो हमारे लिए नितांत अजनबी है, और हम वापस लौट सकते हैं। ऐसे महानुभाव भी हैं जो वापस लौटना सिखाते हैं। वे चाहते हैं कि अतीत वापस आ जाएः "अतीत में स्वर्ण युग था। अतीत में लौटो।" पर मेरे लिए, यह आत्मघाती है। हमें भविष्य में जाना ही होगा, चाहे यह कितना ही जोखिम भरा और कठिन हो।
जीवन को भविष्य की ओर जाना चाहिए। हमें अस्तित्त्व का नया ढंग पा लेना चाहिए। मैं आशावान हूं कि यह घटित हो सकता है। और पश्चिम को इस घटना के लिए भूमि बनना है; क्योंकि पूर्व और कुछ नहीं वरन तीन सौ वर्ष पुराना पश्चिम है। पालन पोषण और जीवन की समस्याओं का पूर्व पर बहुत बड़ा भार है, परंतु पश्चिम इस सब से मुक्त है।
जब पश्चिम से युवा लोग मेरे पास आते हैं मैं सदा जानता हूं कि वे या तो प्रगति करेंगे या वापस लौटेंगे। और एक अर्थ में वे बच्चों की भांति, आदिमों की भांति व्यवहार करके वापस लौट रहे हैं। यह अच्छी बात नहीं है। उनका विद्रोह अच्छा है, परंतु उन्हें मनुष्य की एक नई जाति की तरह व्यवहार करना चाहिए न कि आदिम मनुष्यों की भांति। उन्हें अपने में एक नई चेतना की संभावनायें उत्पन्न करनी चाहिए।
लेकिन इसके बजाय वे अपने को नशे में डुबो रहे हैं। आदिम मन सदा नशों
से वशीभूत, उनके द्वारा सम्मोहित रहा है। अगर पश्चिम में वे लोग जो समाज छोड़कर जा रहे हैं आदिमों की भांति व्यवहार करना शुरू कर देते हैं तो यह विद्रोह नहीं है वरन एक प्रतिक्रिया और वापस लौटना है। उन्हें एक नयी मानवता की भांति व्यवहार करना चाहिए। उन्हें एक नई चेतना की ओर जो समग्र,

सार्वभौमिक और मनुष्य की सभी अतर्क्य संभावनाओं को स्वीकार करती हुई हो, विकसित होना चाहिए।
मनुष्य और पशुओं में अंतर यही है कि पशुओं के पास निर्धारित संभावनायें होती हैं जबकि मनुष्य के पास अनंत संभावनायें हैं। परंतु वे मात्र संभावनायें हैं। मनुष्य विकसित हो सकता है, परंतु इस विकास की सहायता की जानी चाहिए। हमें सारे विश्व में ऐसे केंद्र खोलने चाहिएं जहां यह घटित हो सके।
मन को तर्क के, बुद्धिगत पंथ पर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए परंतु साथ ही साथ इसे तर्कातीत, अतर्क्य ध्यान में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। तर्क का प्रशिक्षण भावनाओं की कीमत पर नहीं होना चाहिए। संदेह होना चाहिए पर श्रद्धा भी होनी चाहिए। बिना किसी संदेह के श्रद्धावान होना आसान है, और बिना किसी श्रद्धा के संदेही होना आसान है। किंतु वे आसान सूत्र अब काम नहीं कर पाएंगे। अब हमें एक स्वस्थ संदेह, एक दृढ़ संदेह, एक शक्की मन, जिसके साथ-साथ एक श्रद्धावान मन का भी अस्तित्त्व हो, निर्मित करना पड़ेगा। और भीतरी अस्तित्त्व को एक से दूसरे में जा सकने में, संदेह से विश्वास में, और पुनः वापस लौटने में समर्थ होना पड़ेगा। वस्तुगत अनुसंधान के साथ व्यक्ति को संदेह वान, शक्की, सावधान रहना चाहिए। परंतु इसके साथ संलग्न एक अन्य आयाम भी है जहां पर श्रद्धा से सूत्र मिलते हैं, संदेह से नहीं। दोनों की जरूरत है।
समस्या यह है किस तरह विपरीत ध्रुवीयतायें साथ-साथ निर्मित की जाएं। यही बात है कि मैं इसमें उत्सुक हूं। मैं संदेह निर्मित किये चला जाऊंगा और श्रद्धा निर्मित किये जाऊंगा। मैं इसमें कोई अंतर्निहित असंगती नहीं देखता, क्योंकि मेरे लिए तो यह गति है जो महत्त्वपूर्ण है; एक ध्रुव से दूसरे की और गति।
हम जितना अधिक एक ध्रुव पर स्थिर हो जाते हैं यह उतना ही कठिन हो जाता है। उदाहरण के लिए पश्चिम में तुमने क्रियाशीलता अर्जित कर ली है। पर तुम ठीक से सो नहीं सकते। जब तुम सोने जाते हो और मन को क्रिया से अक्रिया में जाने की जरूरत होती है, यह नहीं जा पाता। तुम अपने बिस्तर पर करवटें बदलते रहते हो, मन जागता ही चला जाता है। सो पाने के लिए तुम्हें शामक औषिधि लेनी पड़ती है। परंतु एक थोपी गई नींद तुम्हें अधिक आराम नहीं दे सकती है, यह मात्र सतही है। गहरे में, उपद्रव जारी रहता है। नींद एक दुःस्वप्न बन जाती है।
इसका उलटा पूर्व में हो गया है। पूर्व भली भांति सो सकता है पर क्रियाशील नहीं हो सकता। सुबह को भी पूर्वीय मन आलस्य, निद्रित अनुभव करता है। सदीयों से वे भली भांति सो रहे हैं और अन्य कुछ भी नहीं कर रहे हैं। जब कि तुमने बहुत कुछ कर लिया है, पर तुमने अशांति, एक बेचैनी निर्मित कर ली और इस बेचैनी के कारण जो कुछ भी तुमने किया है व्यर्थ है। तुम सो तक नहीं सकते।
इसी लिए मेरा जोर मन को अक्रिया के लिए और सबसे कीमती बात गति के लिए प्रशिक्षित करने पर है- ताकि तुम दोनों के बीच गति कर सको। मन को एक से दूसरे पर गति करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। किसी भी सक्रियता से एकपल में मैं निष्क्रियता में जा सकता हूं। मैं तुमसे घंटों बात कर सकता हूं और एक पल में मैं एक गहरे, भीतरी मौन में जा सकता हूं जहां कोई बातचीत न चल रही हो। और जब तक कि यह संभावना तुममें न निर्मित हो जाए, तुम्हारा विकास अवरूद्ध रहेगा।
भविष्य को अंतरिक ध्रुवीयताओं के मध्य गहन लयबद्धता होने देनी पड़ेगी। जब तक कि विपरीतताओं के मध्य यह गति निर्मित नहीं होती, मनुष्य का विकास अवरुध्द है। तुम आगे नहीं जा सकते। पूर्व थका हुआ है और पश्चिम थका हुआ है। तुम दोनों का परिप्रेक्ष्य बदल सकते हो परंतु तब दो सौ साल में ही यही समस्या पुनः आ जाएगी। यदि तुम एक वर्तुल में घूमने लग जाते हो।

किंतु यदि सभी कुछ को स्वीकार करना है तो कोई यह कैसे जान सकता है कि जीवन में आकांक्षा करने योग्य सही लक्ष्य क्या हैं?

लक्ष्यों की खोज मात्र तार्किक प्रक्रिया का अंग है। भविष्य का अस्तित्त्व तर्क के ही कारण है। यही कारण है कि पशुओं के लिए न तो कोई भविष्य है और न कोई लक्ष्य। वे जीते हैं पर वहां कोई लक्ष्य नहीं है। तर्क आदर्श निर्मित करता है, यह लक्ष्य निर्मित करता है, यह भविष्य निर्मित करता है। असली समस्या यह नहीं है कि सही लक्ष्य क्या है? असली समस्या तो यह है कि लक्ष्य हों या न हों।
नई पीढ़ी पूछ रही है कि लक्ष्य हों कि न हों। जिस पल तुम्हारे पास कोई लक्ष्य होता है, तुम जीवन से पीठ मोड़ना शुरू कर देते हो। तुम जीवन को अपने लक्ष्यों के अनुसार ढालना आरंभ कर देते हो। वर्तमान का मूल्य कम हो जाता है। इसे भविष्य के लिए बदला जाना है, समायोजित किया जाना है। लक्ष्योन्मुख मन है तर्क, और जीवन-उन्मुख मन है तर्कातीत। अतः प्रश्न
यह नहीं है कि सही लक्ष्य कैसे बनाये जाएं। प्रश्न यह है कि इन्हें ऐसा किस तरह बनाया जाए कि मात्र तर्क ही मन की आधारशिला न रह जाए।
तर्क को लक्ष्य चाहिए ही, यह उनके बिना अस्तित्त्व में नहीं रह सकता।
पर इस का अधिपत्य नहीं हो जाना चाहिए, इसे विकसित होती हुई एकमात्र शाखा नहीं रहना चाहिए। तर्क को अस्तित्त्व में होना चाहिए, यह एक आवश्यकता है, पर मनुष्य के मन का एक रिक्त भाग भी है जिसके पास लक्ष्य नहीं हो सकते, जो पशुओं की भांति, बच्चों की भांति रह सकता है। यह सिर्फ यहां और अभी रह सकता है। यह रिक्त भाग, यह तर्कातीत भाग, जीवन के प्रेम के, कला के, गहनतर आयामों को अनुभव करता है। इसे भविष्य में जानें की कोई जरूरत नहीं होती अतः यह यहीं और अभी में गहरा उतर सकता है। तर्क को विकसित किया जाना चाहिए पर साथ ही साथ इस दुसरे हिस्से का भी विकास होना चाहिए।
ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं जो बहुत गहरे में धार्मिक व्यक्तित्व थे। यह
दो प्रकार से हो सकता है। या तो यह एक गहरी लयबद्धता हो सकती है, या यह मात्र एक झरोखे को बंद करके दूसरे को खोलना हो सकता है; बिना किसी लयबद्धता के।
मैं एक वैज्ञानिक हो सकता हूं और फिर मैं प्रार्थना करने हेतु चर्च जाने के लिए अपना वैज्ञानिक संसार छोड़कर जा सकता हूं। तब वैज्ञानिक प्रार्थना नहीं कर रहा है। यह वास्तव में लयबद्धता नहीं है, यह गहरा विभाजन है। पूजा करने वाले और वैज्ञानिक के बीच में कहीं कोई अंतर-संवाद नहीं है। वैज्ञानिक जरा भी चर्च नहीं आया है।
जब यह आदमी अपनी प्रयोगशाला को वापस जाता है, पूजा करने वाला वहां नहीं होता। उन दोनों के मध्य गहरा विभाजन है, वे एक दूसरे पर आरूढ़ नहीं होते। इस तरह के व्यक्ति में तुम द्वैत पाओगे, लयबद्धता नहीं। वह ऐसी बातें कहेगा जिनके बारे में वह स्वयं अपराधी अनुभव करेगा कि उसने ऐसा कहा। वह वैज्ञानिक के रूप में वक्तव्य देगा, जो उसके एक पूजक के मन के खिलाफ होंगे।
अतः बहुत से वैज्ञानिक खंडित जीवन जीये हैं। उनका एक भाग एक चीज है और दूसरा भाग कुछ और है। मेरा लयबद्धता से यह अभिप्राय नहीं है। लयबद्धता से मेरा अभिप्राय यह है कि तुम एक से दूसरे में जाने में समर्थ हो, बिना दूसरे के प्रति बंद हुए। तब वैज्ञानिक प्रार्थना के लिए जाता है, और धार्मिक व्यक्ति प्रयोगशाला में जाता है। वहां कोई विभाजन कोई अंतराल नहीं है। अन्यथा तुम दो व्यक्ति हो जाओगे। समान्यतः हम बहुत से व्यक्ति हैं; हमारे पास बहुत से व्यक्तित्व हैं। हम एक से तादात्म्य कर लेते हैं और तब हम गियर बदलते हैं और कुछ और हो जाते हैं। यह गियर बदलना लयबद्धता नहीं है। यह तुम्हारे अस्तित्त्व में एक बहुत गहरा तनाव पैदा करता है। तुम इतनी अधिक तादात्म्यताओं के साथ विश्रांति में नहीं हो सकते। एक अविभाजित चेतना जो ध्रुवीय विपरीतताओं में जाने में समर्थ हो, केवल तभी संभव है जब कि हमारे पास मनुष्य की धारणा रूप से एक की हो- जब विपरीतताओं से कोई इन्कार न हो।
संदेह वैज्ञानिक के कार्य का एक भाग है। विश्वास भी एक भाग है। वे दो पहलू हैं जो एक ही चीज के विभिन्न आयामों को देखते हैं। अतः एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोग शाला में प्रार्थना कर सकता हैं; इसमें कुछ भी गलत नहीं है। संदेह उसके कार्य का एक भाग, कार्य का एक उपकरण है, और विश्वास भी। इनमें

कोई अंतर्निहित द्वैत नहीं है। जब कोई आसानी से, सरलता से, एक से दूसरे की ओर जा सके, तब वह गति भी अनुभव भी नहीं होती। तुम जाओ पर गति अनुभव न हो। गति तभी अनुभव होती है जब कोई रुकावट हो। जब वहां एक गहन लयबद्धता होती है, कोई गति अनुभव नहीं होती।
एक और बातः जब मैं कहता हूं "पूर्व" और "पश्चिम", मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि पश्चिम में कोई पूर्वीय मन नहीं हुआ और पूर्व में कोई पश्चिमी मन नहीं हुआ। मैं मुख्य धारा के बारे में बात कर रहा हूं। किसी समय हमें विश्व का ऐसा इतिहास लिखना चाहिए जिसमें भौगोलिक आधार पर नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक आधार पर विश्व का विभाजन किया जाए। इसमें पूर्व के पास पश्चिम से बहुत से चेहरे होंगे और पश्चिम के पास पूर्व से बहुत से चेहरे होंगे।
अतः मेरा यह अभिप्राय यह नहीं है कि दोनों अभिरुचियां पश्चिम में नहीं हैं। मेरा अभिप्राय यह है कि पश्चिम की मुख्य धारा तर्किक विकास की ओर रही है धर्म तक में। यही कारण है कि चर्च इतना प्रधान हो गया।
जीसस एक अतर्क्य व्यक्ति थे, पर सेन्ट पाल के पास एक बहुत वैज्ञानिक,
एक बहुत तर्कयुक्त मन था। ईसाइयत सेन्ट पाल से संबद्ध है, जीसस से नहीं। इस तरह के अराजक व्यक्ति के साथ इतने बड़े संगठन की कोई संभावना नहीं है। यह असंभव है। जीसस पूर्वीय थे पर सेन्ट पाल नहीं।
विज्ञान और चर्च में एक संघर्ष रहा है। दोनो तार्किक हैं। दोनों ने धर्म की घटना को तर्क बद्ध करने का प्रयास किया। चर्च को पराजित होना ही था क्योंकि धार्मिक घटनायें स्वयं में अतर्क्य हैं। जहां तक धर्म का संबंध है तर्क असफल हो जाता है। यही कारण है कि चर्च को पराजित होना पड़ा और विज्ञान विजयी रहा।
पूर्व में विज्ञान और धर्म के मध्य कोई संघर्ष नहीं रहा क्योंकि धर्म
ने तर्क के आयाम में कभी कोई दावा नहीं किया। वे दोनों एक श्रेणी के नहीं हैं अतः उनके मध्य कोई संघर्ष नहीं है।

धर्म तर्कबद्ध कैसे बन जाता है?

यह स्वयं धर्म के कारण नहीं होता। लेकिन जब कभी धर्म को व्यवस्थित किया जाता है, यही घटता है। एक बुद्ध या एक जीसस किसी आदर्श के अनुगामी नहीं हैं। वे जंगली वृक्षों की भांति विकसित होते हैं; लेकिन तब यह जंगली वृक्ष उनके अनुयायियों के लिए आदर्श बन जाते हैं। अनुयायियों के पास ढांचे, प्राथमिकतायें, सत्य, निंदायें होने लगती हैं।
धर्म के दो भाग हैं। पहला; एक गहनतर धार्मिक व्यक्तित्व जो पल-पल में जीता है, और दूसरा वे अनुयायी जो, आदर्श के अनुसार मत, अनुशासन, और विश्वास निर्मित करते हैं। तब बौद्धों के जिए एक आदर्श होता है- "व्यक्ति को बुद्ध की तरह होना चाहिए"- और दमन निर्मित किए जाते हैं। तुम्हें अपने को बहुत से ढंगों से नष्ट करना पड़ेगा, क्योंकि केवल तभी तुम आदर्श बन सकते हो। तुम्हें एक नकल बन जाना पड़ेगा।
मेरे लिए, यह अपराध है। एक धार्मिक व्यक्तित्व सौंदर्यवान होता है, परंतु एक धार्मिक मत मात्र एक तर्कयुक्त चीज है। यह एक अतर्क्य घटना के समक्ष खड़ा तर्क मात्र है।

क्या बुद्ध के पास एक तर्कयुक्त मन नहीं था?

वह बहुत तर्कयुक्त थे; पर उनके पास बहुत से अतर्क्य अंतराल भी थे। वे अतर्क्य के साथ भी विश्रांति में थे। हमारे पास बुद्ध की जो धारणा है वह वास्तव में बुद्ध की नहीं है, बल्कि उन परंपराओं की है जिन्होंने उनका अनुगमन किया है। बुद्ध एक सर्वथा भिन्न घटना थे।
लेकिन क्योंकि हमारे पास कोई और उपाय नहीं है, हमें बुद्ध तक पहुंचने
के लिए बौद्धों के माध्यम से गुजरना पड़ता है। उन्होंने दो हजार वर्ष की एक लंबी परंपरा निर्मित की है, और उन्होंने बुद्ध को बहुत तर्कबद्ध बना दिया है। वह ऐसे नहीं थे। यदि तुम अस्तित्त्व में गहरे उतरो तो तुम ऐसे हो नहीं

सकते। तुम्हें अनेकों बार अतर्क्य होना पड़ेगा और बुद्ध अतर्क्य हैं। पर इसे जानने के लिए हमे सारी परंपरा को एक ओर रख कर सीधे ही बुद्ध का सामना करना पड़ेगा। यह बहुत कठिन है, पर ऐसा हो सकता है।
यदि मैं एक तर्कयुक्त व्यक्ति से बात कर रहा हूं तो वह अचेतन रूप से,
जो तर्कयुक्त नहीं उसे छोड़ता जाता है। लेकिन अगर मैं एक कवि से बात कर रहा होऊं तो वही वाक्य और ही शब्द किसी भिन्न बात के प्रतीक बन जाते हैं। एक तर्कयुक्त व्यक्ति शब्दों के काव्य की ओर नहीं देख सकता। वह केवल कारण को, तर्क को देख सकता है। एक कवि शब्दों को एक भिन्न ढंग से देखता है। शब्दों में रंग की एक छाया है, एक काव्य है जो किसी भी तर्क से संबद्ध नहीं है। अतः बुद्ध के चेहरे उस व्यक्ति के अनुसार भिन्न हो जाते हैं जो उन्हें देख रहा है। बुद्ध भारत में उस काल में हुए थे जबकि सारा देश हर तर्कातीत बात के प्रति एक संकट काल से गुजर रहा था- वेद, उपनिषद, समस्त रहस्यवाद। इस सब के विरुद्ध चलाया गया आंदोलन, विशेषतः बिहार में जहां बुद्ध थे, बहुत बड़ा था।
बुद्ध प्रतिभावान, सम्मोहक व्यक्ति थे। लोग उनसे प्रभावित हुए। पर बुद्ध की व्याख्या तर्कबद्ध होगी ही। यदि बुद्ध इतिहास के किसी अन्य काल में होते, संसार के उस भाग में होते जो रहस्यवाद के विरुद्ध नहीं होता, वे एक महान रहस्यदर्शी के रूप में देखें जाते, एक बुद्धिवादी के रूप में नहीं। जो चेहरा जाना गया है, एक विशेष काल के इतिहास से संबद्ध है।
जैसा कि मैं बुद्ध को देखता हूं, वे प्राथमिक रूप से तर्कयुक्त नहीं थे। निर्वाण की सारी धारणा रहस्यपूर्ण है। वे उपनिषद्ों से भी ज्यादा रहस्यपूर्ण थे, क्योंकि उपनिषद्ों के पास, भले ही वे कितने रहस्यपूर्ण लगे, अपनी तर्कयुक्तता है। वे आत्मा के पुनर्जन्म की बात करते हैं। बुद्ध ने पुनर्जन्म की बात की, बिना आत्मा के यह और अधिक रहस्यपूर्ण है। उपनिषद मोक्ष की बात करते हैं, पर "तुम" तो वहां होगे। अन्यथा सारी बात मूर्खतापूर्ण हो जाती है। यह अस्तित्त्व की चरम दशा में मैं ही न हो पाऊं तो सारा प्रयास व्यर्थ है, तर्कहीन है। बुद्ध ने कहा प्रयास करना पड़ेगा... और तुम वहां न होगे। यह बस नाकुछपन होगा। यह धारणा और अधिक रहस्यपूर्ण है।

जब आप लोगों के पीछे लौटने की बात करते हैं, क्या आपका अभिप्राय किसी प्रतिमा की तुलना में, जिसे समाज ने निर्मित किया है और जो सामाजिक रूप से स्वीकृत है, पीछे हटने से है?
प्रतिमा नहीं। कुछ अलग बात। जब मैं कहता हूं वे बच्चों की भांति व्यवहार कर रहे हैं, मेरा अभिप्राय यह है कि वे विकसित नहीं हो रहे हैं। वे पीछे लौट रहे हैं, पीछे की ओर जा रहे हैं। मेरे पास ऐसी कोई प्रतिमा नहीं है कि उन्हें उस जैसा ही करना चाहिए। मेरे पास विकास की एक धारणा है, अनुगमन करने के लिए एक प्रतिमा नहीं। मैं जरा भी नहीं चाहता कि लोग एक विशेष प्रतिमा के साथ समायोजन करें। जो मैं कह रहा हूं मात्र यह है कि वे अतीत की ओर वापस लौट रहे हैं और भविष्य की ओर विकसित नहीं हो रहे हैं। मेरे पास इसकी कोई प्रतिमा नहीं है, कि वृक्ष कैसे विकसित हो। पर इसे विकसित होना चाहिए, इसे वापस नहीं लौटना चाहिए। यह विकास या पीछे लौटने का प्रश्न है, किसी प्रतिमा का नहीं।
दूसरी बात, जब मैं कहता हूं कि वे पीछे लौट रहे हैं, मेरा अभिप्राय यह
है कि वे एक अत्याधिक बुद्धिवादी समाज के विरुद्ध प्रतिक्रिया कर रहें हैं। उनकी प्रतिक्रिया दूसरी अति पर जाती है। इसमें भी वही भ्रम है। तर्क का उपयोग कर लेना चाहिए, उसे त्यागना नहीं है। यदि तुम उसे छोड़ देते हो, तो तुम वही गलती कर रहे हो जो कि तर्कातीत को छोड़े जाने में की गयी थी। विक्टोरियन युग ने एक ऐसा व्यक्ति पैदा किया जो मात्र एक दिखावा था,
एक मुखौटा था। वह अंदर से कोई जीवित अस्तित्त्व नहीं था। वह, व्यवहार का एक नमूना, शिष्टाचारों का एक ढंग था- एक चेहरा अधिक और एक अस्तित्त्व कम। यह संभव हुआ क्योंकि हमने केवल तर्क को हर बात की कसौटी चुना। अतर्क्यता, अराजकता, अव्यवस्था को दूर धकेल दिया गया। या तो यह विध्वंसक हो सकता है या सृजनात्मक।

यदि यह विध्वंसात्मक है तो यह पीछे लौटना होगा। तब यह उसी तरह बदला लेगा- इन्कार करके। यह तर्कयुक्त भाग से इन्कार करेगा। तब तुम मात्र बच्चों जैसे, हो जाते हो अपरिपक्व। तुम पीछे चले जाते हो। यदि अराजक पक्ष रचनात्मक हो तो इसे वही गलती नहीं करना चाहिए। इसे तर्क के साथ अतर्क्य को भी समाविष्ट कर लेना चाहिए। तब सारे अस्तित्त्व का विकास होगा। न तो वह विकसित हो रहा है जिसने अतर्क्य को इन्कार किया है और न ही वह जिसने तर्क को इन्कार किया है जब तक कि तुम समग्रता से विकसित न हो तुम विकसित नहीं हो सकते। मैं विकास के बारे में बात कर रहा हूं। मेरे पास ऐसी कोई प्रतिमा नहीं है, जिसके अनुसार विकसित होना चाहिए।

पश्चिमी मन की बहुत सी समस्यायें क्या ईसाइयत में पाप और अपराध बोध
का परिणाम नहीं है?

हां, यह होना ही है। पाप की अवधारणा अपने चारों ओर एक नितांत भिन्न चेतना निर्मित करती है। पूर्वीय मन में इस धारणा का अभाव है। बल्कि इसके स्थान पर अज्ञान की धारणा है। पूर्वीय चेतना में सारी बुराइयों का मूल अज्ञान है, पाप नहीं। बुराई वहां है क्योंकि तुम अज्ञानी हो। अतः समस्या अपराध बोध की नहीं है वरन अनुशासन की है। तुम्हें अधिक होशपूर्ण, अधिक ज्ञानवान होना पड़ेगा। पूर्व में, ज्ञान रूपांतरण है- और ध्यान इस रूपांतरण के लिए उपाय।
ईसाइयत के साथ पाप केंद्र हो जाता है। और यह मात्र तुम्हारा ही पाप नहीं है। यह मानवता का मूलभूत पाप है। तुम पाप की अवधारणा से बोझिल हो। यह अपराध भाव, तनाव उत्पन्न करता है। यही कारण है कि ईसाईयत वास्तव में ध्यान विधियां विकसित नहीं कर पायी। इसने सिर्फ प्रार्थना विकसित की। तुम पाप से लड़ने के लिए क्या कर सकते हो? तुम नैतिक और प्रार्थनापूर्ण हो सकते हो। पूर्व में दस आज्ञाओं जैसी कोई चीज नहीं है। एक अत्याधिक नैतिक अवधारणा वहां नहीं है। अतः पूर्व में समस्यायें पश्चिम से भिन्न हैं। वे लोग जो पश्चिम से आते हैं, उनके लिए अपराध-भाव समस्या है। कहीं गहरे में वे अपराधी अनुभव करते हैं। वे भी जिन्होंने विद्रोह किया, अपराधी अनुभव करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है, जो मन से ज्यादा संबद्ध है और अस्तित्त्व से कम।
पहले उनकी अपराधीपन की धारणा को निकालना पड़ेगा। इसी लिए पश्चिम को मनोविश्लेषण और आत्मस्वीकृति विकसित करना पड़ी। वे पूर्व में विकसित नहीं हुए क्योंकि उनकी कभी जरूरत नहीं पड़ी। पश्चिम में तुम्हें अपने दोष स्वीकार करने पड़ेंगे। केवल तभी तुम उस अपराध भाव से मुक्त हो सकते हो जो गहरे में भीतर है। या तुम्हें मनोविश्लेषण से होकर गुजरना पड़ेगा ताकि अपराध बोध बाहर फेंका जा सके। पर यह कभी भी पूरी तरह नहीं फेंका जा सकता है क्योंकि पाप की अवधारणा तो रहती है। अपराध बोध पुनः एकत्रित हो जाएगा। अतः मनोविश्लेषण और आत्मस्वीकृति मात्र एक अस्थाई सहायता बन सकते हैं। तुम्हें बार बार आत्मस्वीकृति करनी पड़ेगी। वे एक उस बात के विरुद्ध अस्थाई सहायतायें मात्र हैं, जो स्वीकृति हो रही है। सारी बिमारी की जड़-पाप की धारणा- स्वीकृत हो गयी है।
पूर्व में यह मनोविज्ञान का प्रश्न नहीं है, यह अस्तित्त्व का प्रश्न है। यह मानसिक स्वास्थ्य का प्रश्न नहीं है। बल्कि यह आध्यात्मिक विकास का प्रश्न है। तुम्हें आध्यात्मिक रूप से विकसित होना है, वस्तुओं के प्रति अधिक बोधपूर्ण होना है। तुम्हें अपना व्यवहार नहीं बदलना है, बल्कि अपनी चेतना बदलनी है। तब व्यवहार अनुगमन करता है।
ईसाइयत तुम्हारे व्यवहार से अधिक संबद्ध है। पर व्यवहार तो मात्र परिधिगत घटता है। प्रश्न यह नहीं है कि तुम क्या करते हो? प्रश्न यह है कि तुम क्या हो? यदि तुम जो कर रहे हो उसे बदलने चले जाओ, तुम वास्तव में कुछ भी नहीं बदल रहे हो। तुम वही रहते हो। तुम बाहर से एक संत हो सकते हो और फिर भी भीतर से वही रहते हो।
जो पश्चिम से आ रहे हैं उनकी समस्या अपराध बोध के कारण है जो वे अपने व्यवहार के बारे में रखते हैं। मुझे उन्हें उनकी एक कहीं अधिक गहरी

समस्या के प्रति बोधपूर्ण बनाने के लिए- जो मनस की नहीं अस्तित्त्व की है- संघर्ष करना पड़ता है।
बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने भी अपराध बोध पैदा किया है। उसी तरह का अपराध बोध नहीं, बल्कि एक अन्य प्रकार का अपराध बोध। विशेषतः जैनों ने हीनता की एक बहुत गहरी धारणा निर्मित की है। ईसाई अर्थों में अपराध बोध वहां नहीं है, क्योंकि वहां पाप का कोई प्रश्न नहीं है। पर वहां एक गहरी धारणा है कि जब तक कि कोई व्यक्ति कुछ बातों के पार नहीं जाता, वह हीन है। यह गहन हीन भावना अपराध बोध की भांति ही कार्य करती है।
जैनों ने भी केई ध्यान विधियां विकसित नहीं कीं। उन्होंने बस विभिन्न सूत्र निर्मित कर लिए हैंः "वह करो", "यह मत करो"... । सारी अवधारणा व्यवहार पर केंद्रित हो गई है। जहां तक व्यवहार का संबंध है, जैन साधु आदर्श है; परंतु जहां तक उसके भीतरी अस्तित्त्व का प्रश्न है, वह बहुत निर्धन है। वह एक कठपुतली की भांति व्यवहार किये चला जाता है। यहीं कारण है कि जैन धर्म एक मुर्दा बात बन गया है।
बौद्ध धर्म इसी तरह तो मृत नहीं हुआ क्योंकि यहां पर एक अलग बात पर जोर है। बौद्ध धर्म का आचरण संबधी भाग उसके ध्यान वाले भाग का परिणाम मात्र है। यदि व्यवहार बदला जाना है तो यह मात्र ध्यान के लिए एक सहायता के रूप में है। स्वयं में, यह अर्थहीन है। ईसाइयत और जैन धर्म में यह स्वयं में अर्थपूर्ण है। यदि तुम मजा कर रहे हो, तुम भले हो। बौद्ध धर्म के लिए यह बात नहीं है। तुम्हें भीतर की ओर से रूपांतरित होना पड़ेगा। भलाई करना सहायता कर सकता है, यह एक भाग हो सकता है, पर ध्यान केंद्र में है।
अतः तीनों में से सिर्फ बौद्धों ने गहरे ध्यान विकसित किये। बौद्ध धर्म में अन्य सभी कुछ मात्र एक सहायता है- यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। तुम इसे छोड़ भी सकते हो। तुम अगर किसी और सहायता के बिना ध्यान कर सकते हो तो तुम शेष को नकार सकते हो।
परंतु हिंदू धर्म और भी गहरा है। यही कारण है कि हिंदू धर्म इतनी ज्यादा विभिन्न दिशाओं में विकसित हो सका, जैसे कि तंत्र। वह भी जिसे तुम पाप कहते हो तंत्र द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है। हिंदू धर्म, एक अर्थ में, बहुत स्वस्थ है। लेकिन वह निसंदेह अराजक है। जो चीज भी स्वस्थ होगी अराजक होने के लिए बाध्य है; यह व्यवस्था में नहीं बांधी जा सकती।

प्रवचन-16

समग्रता से और पूरी त्वरा से जीओ
(Translated from The Transmission of the Lamp, Chapter #30, Chapter title: This chair is empty, 10 June 1986 am in Punta Del Este, Uruguay. Part of Question-1)

समग्रता से जीओ, और पूरी त्वरा से जीओ, ताकि प्रत्येक क्षण स्वर्णिम
हो उठे और तुम्हारा पूरा जीवन स्वर्णिम क्षणों की एक माला बन जाये।
ऐसा व्यक्ति कभी नहीं मरता क्योंकि उसके पास मिठास का स्पर्श होता हैः वह जो भी छूता है, स्वर्णिम हो उठता है।
सही अर्थ में एकमात्र जिम्मेदारी तुम्हारी अपनी सम्भावनाओं के प्रति, तुम्हारी अपनी बुद्विमत्ता और सजगता के प्रति है- और फिर उनके अनुसार व्यवहार करने के प्रति है।
तुम जन्म के साथ वृक्ष की भांति पैदा नहीं होते, तुम केवल बीज की भांति पैदा होते हो। तुम्हें उस बिंदु तक विकसित होना है जहां तुममें फूल खिलने लगें, और वही खिलावट तुम्हारी परितृप्ति होगी, कृतार्थता होगी।
इस खिलावट का पद से कोई संबंध नहीं, धन से कोई संबंध नहीं, राजनीति से कोई संबंध नहीं। इसका संबंध केवल और केवल तुमसे है, यह निजी विकास है। तुम्हें अपने आप में एक महोत्सव बन जाना है।
उटोपिया (आदर्श राज्य) की अभीप्सा मूल रूप से व्यक्ति के भीतर और समाज
के भीतर लयबद्वता की अभीप्सा है। लयबद्धता आज तक कभी नहीं रही हैः हमेशा एक अव्यवस्था ही रही है।
समाज विभिन्न संस्कृतियों में, विभिन्न धर्मों में, विभिन्न राष्ट्रों में विभाजित रहा है- और इनका आधार रहे हैं अंधविश्वास, इनमें से कोई भी विभाजन तर्क संगत नहीं है। लेकिन ये विभाजन दर्शाते हैं कि मनुष्य स्वयं के भीतर ही विभाजित है। ये उसके आंतरिक द्वंद्व के ही फैलाव हैं। मनुष्य भीतर एक नहीं है, इसीलिये वह बाहर एक समाज, एक मानवता निर्मित नहीं कर सका है। कारण बाहर नहीं है। बाह्य तो केवल आंतरिक मनुष्य का प्रतिफलन है।
किसी ने आज तक व्यक्ति पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है। और यही समस्त समस्याओं का मूल कारण है। लेकिन चूंकि व्यक्ति इतना छोटा लगता है, और हम और समाज इतने बड़े लगते है, लोग सोचते हैं, कि हम समाज को बदल सकते हैं और तब व्यक्ति बदल जायेंगे।
ऐसा होनेवाला नहीं है- क्योंकि समाज केवल एक शब्द है। केवल व्यक्ति होते हैं, समाज नहीं होते। समाज के कोई प्राण नहीं होते; तुम उसमें कुछ बदल नहीं सकते। तुम केवल व्यक्ति को बदल सकते हो, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न लगता हो। और एक बार तुम व्यक्ति को बदलने का विज्ञान जान लेते हो तो वह सभी व्यक्तियों पर सब कहीं लागू होता है।
मुझे ऐसा लगता है, कि एक दिन हम ऐसे समाज को निर्मित कर लेंगे जो लयबद्ध होगा, जो उन कल्पनाओं से भी कहीं बेहतर होगा जो हजारों वर्षां से आदर्श-राज्यवादी करते आए हैं।
वास्तविकता कहीं अधिक सुन्दर होगी। तुम जो हो उससे, और अस्तित्त्व ने
जो तुम्हें दिया है उससे, तुम कभी पूरी तरह संतुष्ट नहीं होते हो, क्योंकि तुम्हारा ध्यान कहीं और लगा दिया गया है। तुम्हें वहां जाने के निर्देश मिले हैं जहां अस्तित्त्व ने चाहा ही न था कि तुम हो। तुम अपनी ही सम्भावनाओं की ओर नहीं बढ़ रहे हो।
दूसरे जैसा चाहते है तुम हो, तुम वैसा होने की कोशिश कर रहे हो, लेकिन उससे तृप्ति नहीं मिल सकती है। जब तृप्ति नहीं मिलती, तो तर्क कहता है, "शायद यह पर्याप्त नहीं है, और प्रयास करो।" तब फिर तुम और अधिक के पीछे दौड़़ने लगते हो, तब फिर तुम चारों तरफ देखना शुरू कर देते हो।
और हर व्यक्ति मुखौटा लगाकर प्रगट हो रहा है जो कि मुस्कुरा रहा है, प्रसन्न दिख रहा है और इस तरह हर व्यक्ति, हर दूसरे को धोखा दे रहा है। तुम

भी मुखौटा लगाकर सामने आते हो, तो दूसरे सोचते हैं कि तुम ज्यादा आंनदित हो। तुम सोचते हो कि दूसरे ज्यादा आनंदित है।
अहाते के उस पार की घांस हमेंशा ज्यादा हरी दिखती है। वे तुम्हारी घांस को देखते हैं और यह ज्यादा हरी दिखती है। वह सचमुच ही ज्यादा हरी, घनी और सुन्दर मालूम होती है। दूरी इस भ्रम को जन्म देती है। जब तुम पास आते हो, तब तुम्हें दिखना शुरु होता है कि ऐसा नहीं है। लेकिन लोग एक-दूसरे को थोड़े अन्तर पर ही रखते हैं। यहां तक कि मित्र भी, यहां तक कि प्रेमी भी एक-दूसरे को थोड़े अन्तर पर ही रखते हैं। बहुत ज्यादा निकट आना खतरनाक होगा, लोग तुम्हारी असलियत देख सकते हैं।
और प्रारंभ से ही तुम्हें गलत मार्गदर्शन दिया गया है, तो जो भी तुम करोगे दुखी रहोगे। तुम बहुत पैसे वाले को देखते होः तुम्हें लगता है, शायद पैसा आनन्द लाता है। देखो जरा उस व्यक्ति को, कैसा आनन्दित लगता है। तो पैसे के पीछे दौड़ो। कोई व्यक्ति अधिक स्वस्थ है, तो स्वास्थ के पीछे दौड़ो। कोई व्यक्ति कुछ और कर रहा है और बडा तृप्त दिखता है- तो उसका अनुकरण करो। लेकिन है ये सदा दूसरे ही हैं।
समाज ने ऐसी व्यवस्था बना रखी है कि तुम कभी अपनी संभावनाओं के बारे में सोचोगे ही नहीं। और सारा दुख यह है कि तुम, तुम नहीं हो रहे हो। सिर्फ स्वयं जैसे हो जाओ, और फिर कोई दुख नहीं हैं, कोई प्रतिस्पर्धा नहीं हैं, और कोई परेशानी नहीं है कि दूसरे के पास ज्यादा हैं, कि तुम्हारे पास ज्यादा नहीं हैं।
यदि तुम ज्यादा हरी घांस ही पसंद करते हो, तो अहाते के दूसरी और देखने
की जरूरत नहीं हैं, अपनी ओर की घांस को ही ज्यादा हरी बनाओ। इतनी आसान बात है। घांस को हरी बनाना।
मनुष्य की जड़े उसकी अपनी संभावनाओं में रहनी चाहिये, चाहे वे संभावनायें जो भी हों। और तब दुनिया इतनी तृप्त होगी कि तुम भरोसा नहीं कर सकते हो।
जीवित होने का अर्थ है तुम्हारे पास हास्य-बोध का होना, गहरे प्रेमपूर्ण ढंग का होना और हंसते-खेलते जीना।
मैं समस्त जीवन-विरोधी प्रवृतियों के विरोध में हूंं; लेकिन आज तक दिव्य के प्रति आस्था प्रकट करने का ढंग हमेशा जीवन विरोधी ही रहा है। उसे जीवन समर्थक बनाने के लिये हंसते-खेलते रहने की कला को, प्रेम को, सम्मान को एक साथ जोड़ना पड़ेगा।
जीवन का सम्मान ही दिव्य के प्रति एकमात्र श्रद्धा है, क्योंकि जीवन
से ज्यादा दिव्य और कुछ भी नहीं हैं।
मनुष्य बड़े खजानों के साथ पैदा होता हैं, लेकिन वह अपनी पूरी पाशविक विरासत भी साथ लाता है। किसी भी प्रकार हमें इस पाशविक विरासत से स्वयं को मुक्त करना होगा और एक खाली जगह निर्मित करनी होगी ताकि यह खजाना हमारे चेतन तक उभर सके और उसे हम सबके साथ बांट सकें- क्योंकि उस खजाने का एक गुण यह भी हैंः जितना ज्यादा तुम उसे बांटोगे, उतना ज्यादा वह बढ़ेगा।
हमारी कई समस्यायें इसलिये हैं कि हमने कभी उन पर गौर ही नहीं किया हैं, कभी अपनी दृष्टि ही उन पर केन्द्रित नहीं की है यह देखने के लिये, कि वे क्या हैं।
जीवन उन चीजों के हाथों में सौंपो जो सुन्दर हैं। जीवन कुरूप चीजों
के हवाले मत करो। तुम्हारे पास बरबाद करने के लिये ज्यादा समय, ज्यादा ऊर्जा नहीं हैं। इतने छोटे से जीवन के साथ, इतने छोटे से ऊर्जा-त्रोत के साथ उसे क्रोध में, घृणा में, उदासी में, ईर्ष्या में गंवाना मूढ़ता ही है। उसका उपयोग प्रेम के लिए करो, किसी सृजनात्मक कार्य के लिए करो, मित्रता के लिए करो, ध्यान के लिए करो। अपनी ऊर्जा का कुछ ऐसा उपयोग करो कि जो तुम्हें ऊंचाइयों पर ले जाती हो। और जितने ऊंचे तुम जाओगे, उतने ही ज्यादा ऊर्जा के स्त्रोत तुम्हें उपलब्ध होंगे।
सब तुम्हारे हाथ में हैं।
कोई भी मनुष्य अलग द्वीप नहीं हैं। इसे जीवन के एक आधारभूत सत्य की तरह स्मरण रखना है। मैं इस बात पर इसलिये इतना जोर दे रहा हूं क्योंकि हम इसे बार-बार भूलने लगते हैं।

हम सब एक ही जीवन-शक्ति के अंश हैं- एक ही सागर समान अस्तित्त्व के अंश है। मूलतः चूंकि गहरी जड़ों में हम सब एक हैं, इसीलिये प्रेम के उपजने की संभावना भी हैं। यदि हम एक न होते, तो प्रेम की संभावना भी न होती।
मनुष्य अभी भी अपने भीतर अधिकांश पाशविक प्रवृत्तियों को ढोए चला जाता है। उसका क्रोध, उसकी घृणा, उसकी ईर्ष्या, उसकी अधिपत्य की भावना, उसकी धूर्तता, मनुष्य में जिन बातों की निदां की गयी हैं, वे सब उसके गहरे अचेतन से जुड़ी हुअी लगती हैं। और अध्यात्म की कुल कीमियां इतनी है कि कैसे इस पाशविक अतीत से छुटकारा पाया जाए? बिना इस पाशविक अतीत से छुटकारा पाए, मनुष्य हमेशा विभाजित रहेगा। पाशविक अतीत और मनुष्यता एक होकर नहीं रह सकते, क्योंकि मनुष्यता के गुणधर्म बिल्कुल विपरीत हैं। तो मनुष्य क्या करता है कि वह एक ढोंगी बन जाता है।
जहां तक औपचारिक व्यवहार का प्रश्न है, वह मानवता के गुणों का अनुसरण करता है- प्रेम का, सत्य का, स्वतंत्रता का, गैर-मालकियत की भावना का, करुणा का। लेकिन यह सब ऊपरी-ऊपरी और उथला ही रहता है, और किसी भी पल भीतर छिपा पशु उभर सकता है; कोई भी आकस्मिक घटना उसे प्रगट कर देती है; और वह बाहर उभरे न या उभरे, भीतर चेतना तो विभाजित ही रहती है।
यह खंडित चेतना ही इस प्रश्न को, इस अभीप्सा को जन्म देती रही है, कि कैसे व्यक्ति एक हारमोनियस होल; एक लयबद्ध इकाई में बदल जाए और यही पूरे समाज के लिये भी सच हैः कैसे हम समाज को एक लयबद्ध इकाई बना सकें- जहां कोई युद्ध न हो, जहां कोई द्वंद न हो, जहां कोई स्वर्ग न हो; जाति, रंग, धर्म, और राष्ट्र के कोई भेद न हों।
हमें क्रांति और समाज को बदलने की भाषा में सोचने के बजाय ध्यान तथा व्यक्ति को बदलने के बारे में अधिक-अधिक सोचना चाहिये।
यही एकमात्र संभव उपाय है जिसके द्वारा किसी दिन हम समाज के सारे भेद मिटा सकेंगे। लेकिन पहले ये भेद व्यक्ति के चित्त से छूटने चाहिये- और वे छूट सकते हैं।
ऐसी कोई चीज नहीं है जिस पर "सत्य" का लेबिल चिपका हो- कि एक दिन तुम्हें वह डिब्बा मिल जायेगा और तुम उसे खोलोगे, भीतर रखा सामान देखोगे और कहोगे, "अहा! मुझे सत्य मिल गया।"
ऐसा कोई डिब्बा नहीं हैं।
कारण स्पष्ट है कि क्यों लोग सत्य के बारे में बातें करते हैं और झूठ
की दुनिया में जीये चले जाते हैं। उनके हृदय में सत्य के लिये अभीप्सा है; वे स्वयं के प्रति ही शर्मिंदा रहते हैं कि वे सच्चे नहीं हैं, इसलिये वे सत्य की बातें करते हैं। लेकिन ये केवल बातें हैं। उसके अनुसार जीना खतरनाक हैं, उतना खतरा वे नहीं उठा सकते।
और स्वतंत्रता के मामले में भी यही बात है। हर व्यक्ति स्वतंत्रता चाहता हैं-जहां तक बातचीत का सवाल है लेकिन सचमुच में कोई स्वतंत्र नहीं है। और कोई सचमुच स्वतंत्र होना चाहता भी नहीं, क्योंकि स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी आती है, वह अकेली नहीं आती और आश्रित रहना आसान है; जिम्मेदारी तुम पर नहीं होती, जिम्मेदारी उस व्यक्ति पर होती है जिस पर तुम आश्रित हो।
तो लोगों ने जीने का बड़ा खंडितमना ढंग अपना लिया है। वे सत्य की बातें करतें हैं, वे स्वतंत्रता की बातें करते हैं, और जीते वे झूठ में हैं, जीते वे गुलामी में हैं... बहुत तरह की गुलामियों में, क्योंकि प्रत्येक गुलामी तुम्हें किसी जिम्मेदारी से मुक्त करती है।
जो व्यक्ति सचमुच स्वतंत्र होना चाहता है, उसे विशाल जिम्मेदारियां स्वीकार करनी होती हैं। वह अपनी जिम्मेदारियां किसी अन्य पर नहीं थोप सकता। जो भी वह करता हैं, जो भी वह है, वह स्वयं जिम्मेदार है।
सच्चा अहिंसक व्यक्ति वही है जो किसी की हत्या नहीं करता, किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता, क्योंकि वह हत्या करने के या किसी को नुकसान पहुंचाने के खिलाफ है। लेकिन यदि कोई उसे नुकसान पहुंचाने लगे, तब भी वह नुकसान पहुंचाने के खिलाफ है। यदि कोई उसकी हत्या करने लगे, तब भी वह हत्या के खिलाफ है; वह स्वयं की भी हत्या नहीं होने देगा।

वह कभी कोई हिंसा शुरू नहीं करेगा, लेकिन यदि कोई हिंसा उसके खिलाफ शुरू की जाती है, तो वह जी जान से लड़ेगा। केवल तभी अहिंसक व्यक्ति स्वतंत्र रह सकता है; नहीं तो वह हमेशा गुलाम रहेगा, दरिद्र रहेगा, हमेशा उसका शोषण होता रहेगा।
स्वयं हो जाना तुम्हें वह सब दे देता है जो तुम्हें परितृप्त कर दे,
वह सब जो तुम्हारे जीवन को अर्थपूर्ण और महत्त्वपूर्ण बना दे। सिर्फ स्वयं हो जाना और अपने स्वभाव के अनुसार विकास करना तुम्हारी नियति को परितृप्त कर देगा।
हमेशा परिवर्तनशील रहो और ऐसे रहो कि तुम्हारे बारे में पहले से कुछ
न कहा जा सके। कभी बदलाहट को मत रोको और पुरानी आदतों के अनुसार मत जीओ; तभी जीवन एक हर्षोल्लास बन सकेगा।
जैसे ही तुम यूं जीते हो कि तुम्हारे बारे में भविष्यवाणी की जा सके, तुम यंत्रवत हो जाते हो।
यंत्र के व्यवहार तय होते हैं। वे कल भी वैसे ही थे, वे आज भी वैसे ही हैं, वे कल फिर वैसे ही रहोंगे। वे बदलते नहीं। यह केवल मनुष्य की महिमा है कि वह हर पल बदल सकता है।
जिस दिन तुम बदलना छोड देते हो, सूक्ष्म अर्थो में तुम मर चुके।
हर चीज को दांव पर लगा दो। जुआरी हो रहो! सारे खतरे मोल लो, क्योंकि अगला पल पक्का नहीं, तो चिंता क्यों करे? फिकर क्यों करे?
खतरों के साथ जीओ, हर्षोल्लासपूर्वक जीओ। निर्भय होकर जीओ, बिना किसी अपराध-भाव के जीओ। बिना किसी नर्क के भय के और बिना किसी स्वर्ग के लालच के जीओ।
सिर्फ जीओ।
प्रत्येक भूल सीखने का एक मौका है। केवल इतना कि एक ही भूल बार-बार मत करो- वह मूढ़ता है। लेकिन जितनी नयी गलितयां तुम कर सको करो, डरो मत-क्योंकि केवल यही तरीका है, जो प्रकृति तुम्हें सीखने के लिये देती है। धार्मिकता का सरल-सा अर्थ इतना है कि यह तुम्हारे विकास के लिये चुनौती है, यह बीज के लिये चुनौती है कि वह अपनी परम खिलावट को अभिव्यक्ति दे सकें; वह हजारों फूलों में खिल उठे और अपने भीतर छिपी सुगन्ध को बिखेर दे।
उस सुगन्ध को मैं धार्मिकता कहता हूं।
प्रत्येक व्यक्ति इतना दुःखी है कि वह खुद को ही समझाने के लिए कहीं कुछ कारण ढूंढना चाहता है कि वह इसलिए दुःखी है। और समाज ने तुम्हें इसके लिए एक अच्छा व्यूह प्रदान किया हैः राय बनाना।
स्वभावतः पहले तुम प्रत्येक बात में अपनें संबंध में राय बनाते हो। कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है और न कोई व्यक्ति कभी पूर्ण हो सकता है- परिर्पूणता कहीं होती नहीं- तो धारणाएं कायम करना बड़ा आसान है। तुम अधूरे हो, तो कई चीजें ऐसी है जो तुम्हारे अधूरेपन को झलकाती हैं। और फिर तुम नाराज हो, खुद से नाराज और पूरी दूनिया से नाराजः कि मैं पूर्ण क्यों नहीं हूं? और तब फिर तुम केवल एक ही विचार से देखने लगते हो- सब में अपूर्णता खोजना।
और फिर तुम अपने हृदय को खोलना चाहते हो- स्वभावतः क्योंकि जब तक तुम अपने हृदय खोल नहीं देते, तुम्हारे जीवन में कोई उत्सव नहीं, तुम्हारा जीवन लगभग मृत है। लेकिन तुम अपने हृदय को सीधा नहीं खोल सकते। तुम्हें अपनी इस पूरी आरम्भिक शिक्षा को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।
तो पहली बात हैः स्वयं के बारे में राय बनाना छोड़ो।
राय बनाने के बजाय स्वयं को स्वीकार करना शुरू करो, अपनी सारी अर्पूणताओं के सहित, अपनी सारी दुर्बलताओं के सहित, अपनी सारी गलितयों के सहित, अपनी सारी असफलताओं के सहित। स्वयं से पूर्ण होने की मांग मत करो।
यह मांग केवल असंभव की मांग है, और फिर तुम कुंठाग्रस्त होते हो।
आखिर तुम इन्सान ही हो।
जरा पशु-पक्षियों को देखोः कोई भी चिंतित नहीं है, कोई उदास नहीं है, कोई निराश नहीं है, कोई कुंठित नहीं है। तुम किसी भैंस को सनक गयी नहीं देखते हो। वह रोज वही घांस चबाती हुई तृप्त है। वह करीब-करीब बुद्धत्व को

उपलब्ध है! कहीं कोई तनाव नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ, स्वयं के साथ, जो बुद्ध जैसा है वैसे ही उसके साथ एक गहरी लयबद्धता है।
भैंसें कोई पार्टियाँ नहीं बनाती दुनिया में क्रांति लाने के लिये, भैंसों को महा-भैंसों में बदल देने के लिये, भैंसों को धार्मिक पुण्यात्मा बनाने के लिये। किसी पशु को मनुष्य की धारणाओं से जरा भी मतलब नहीं हैं।
और वे सब हंसते होंगेः तुम्हें हो क्या गया है? तुम स्वयं क्यों नहीं
हो सकते, जैसे हो वैसे हो? किसी और जैसे बनने की जरुरत क्या है?
तो पहली बात है- स्वयं का गहरा स्वीकार।
ऐंद्रिकता की निंदा मत करो।
सारी दुनिया द्वारा इस की निंदा की गयी है, और उनकी निन्दा के कारण ऊर्जा जो ऐंद्रिकता में खिल सकती है वह विकृतियों में, ईर्ष्या में, क्रोध में, घृणा में बहने लगती है- ऐसा जीवन जो रुखा-सुखा है, जिसमें कोई रस नहीं। इंद्रियरस मनुष्यता के लिये बड़े से बड़ा वरदान है। यह तुम्हारी संवेदनशीलता है, यह तुम्हारी चेतना है, जो तुम्हारे शरीर तक छन- छन कर आ रही है।
सदियों-सदियों से मां-बाप यह धारणा ढोते रहे हैं कि बच्चे उनके हैं और बच्चों को बस उनकी प्रतिलिपि (कार्बन कॉपी) भर बनना है। प्रतिलिपि कोई सुन्दर बात नहीं है, और अस्तित्त्व प्रतिलिपि में भरोसा नहीं रखता है- मौलिकता में हर्षोल्हासित होता है।
तुम्हें बच्चों की तुम से आगे विकसत हो जाने में मदद करनी है।
तुम्हें उनकी तुम्हारी नकल न करने में मदद करनी है। वास्तव में माता- पिता का यही कर्तव्य है- बच्चों को नकल में न पड़ने देनें में सहायता पहुंचाना। बच्चें नकलची होते हैं, और स्वभावतः, किसकी वे नकल करने वालें हैं? माता-पिता ही सबसे करीब होते हैं।
अब तक मां-बापों ने इस बात का बड़ा आनन्द लिया है कि उनके बच्चे ठीक उनके जैसे हैं। बाप को गर्व महसूस होता है क्योंकि उसका बेटा उस जैसा ही है। तब एक जीवन बरबाद हुआ; तब उसके लड़के की जरुरत ही न थी, वही पर्याप्त थे। बच्चों द्वारा नकल किये जाने में गर्व महसूस करने की गलत अवधारणा के कारण, हमनें नकलचियों का समाज खड़ा कर दिया है।
आज्ञाकारिता में बुद्धिमत्ता की जरुरत नहीं है। सभी यंत्र आज्ञाकारी हैं। किसी ने कभी नहीं सुना कि कोई यंत्र अवज्ञाकारी है।
आज्ञाकारिता सरल भी है। यह तुम पर से सारे दायित्व का बोझ हटा देता है। इसमें प्रतिक्रिया की कोई जरुरत नहीं हैं, तुम्हें तो सिर्फ वही करना है जो तुमसे कहा जा रहा है। दायित्व उस स्रोत पर है जहां से आज्ञा आ रही है। एक प्रकार से तुम बहुत स्वतंत्र होः तुम्हारे कृत्य के लिये तुम्हारी निंदा नहीं की जा सकती।
धार्मिकता कोई ऐसी बात नहीं है जिसमें विश्वास किया जाना है, बल्कि कुछ ऐसी बात है जिसे जीया जाना है, जिसे अनुभव किया जाना है... तुम्हारे मन का एक विश्वास नहीं बल्कि तुम्हारे पूरे प्राणों की सुगंध।
मन राय न बनाने वाला, सही-गलत, अच्छे-बुरे की धारणा न बनाने वाला नहीं
रह सकता। यदि तुम मन को राय न बनाने के लिए विवश करो तो तुम्हारी बुद्धिमत्ता में अवरोध खड़ा हो जाएगा। फिर मन ठीक से काम नहीं कर सकता। राय बनाने वाला न होना कोइ ऐसी बात नहीं है जो मन के कार्यक्षेत्र में आती हो। केवल वही व्यक्ति राय न बनानेवाला हो सकता जो मन के पार चला गया हो; अन्यथा जो तुम्हें तथ्यात्मक लगता है, एक तर्कसंगत वक्तव्य की तरह, वह केवल तथ्य का आभास मात्र है।
मन जो भी तय करता है, या कहता है, वह उसके संस्कारों द्वारा, उसके पूर्वाग्रहों द्वारा, प्रदूषित रहता है- ये ही वे बातें हैं जो उसे राय बनाने वाला बनाती हैं।
उदाहरण के लिये, तुम किसी चोर को देखते हो। यह एक तथ्य है कि वह चोरी करता रहा है, उसके बारे में सवाल ही नहीं- और तुम चोर के संबंध में एक वक्तव्य देते हो। और निश्चित ही चोरी अच्छी बात तो नहीं है; तो जब तुम किसी

व्यक्ति को चोर कहते हो, तुम्हारा मन कहता है, तुम बिल्कुल ठीक बात कह रहे हो, तुम्हारा वक्तव्य बिल्कुल ठीक है।
लेकिन चोर बुरा क्यों है- और बुराई क्या है? वह चोरी करने पर मजबूर क्यों हो गया है? और चोरी का कृत्य अकेला एक कृत्य है; इस एक कृत्य के आधार पर तुम पूरे व्यक्ति के संबंध में निर्णय ले रहे हो। तुम उसे चोर कह रहे हो। वह केवल चोरी ही नहीं करता है, अन्य बहुत से काम भी करता है।
हो सकता है वह एक अच्छा चित्रकार हो, हो सकता है वह एक अच्छा बढ़ई हो, हो सकता है वह एक अच्छा गायक हो, एक अच्छा नर्तक हो, हजारों गुण उस व्यक्ति में हो सकते हैं। पूरा मनुष्य बड़ी चीज है, चोरी करना अकेला एक कृत्य है। एक कृत्य के आधार पर तुम पूरे व्यक्ति के संबंध में वक्तव्य नहीं दे सकते। तुम उस व्यक्ति को जरा भी जानते नहीं हो, और तुम उस कृत्य तक के बारे में नहीं जानते हो कि किन परिस्थितियों में यह कृत्य हुआ है। शायद उन परिस्थितियों में तुमने भी चोरी ही की होती। शायद उन परिस्थितियों में चोरी करना बुरी बात न थी... । क्योंकि हर कृत्य परिस्थितियों पर निर्भर है। यदि तुम पूरी दुनियां में चारों और देखो और तुम अलग-अलग लोगों के संस्कार देखो, और उनकी अच्छे और बुरे, सही और गलत की धारणाएं देखो, तो पहली बार तुम्हें पता चलेगा कि शायद तुम्हारा मन भी मनुष्यता के एक किसी स्वर्ग विशेष का हिस्सा भर है। वह सत्य के संबंध में कोई खबर नहीं देता, वह केवल उस वर्ग विशेष के संबंध में खबर देता है।
और इस मन के माध्यम से जो कुछ भी तुम देखते हो, वह केवल तुम्हारी धारणा मात्र है।
अस्तित्त्व एक है। उसकी अभिव्यक्तियां लाखों हैं, लेकिन उनमें जो भाव अभिव्यक्त हो रहा है वह एक है। यह एक भगवत्ता है, सृजन की अनंत विविधताओं सहित।
पैसा बड़ी अजीब चीज है। यदि तुम्हारे पास पैसा है ही नहीं, तो यह आसान बात है, तुम्हारे पास है ही नहीं तो कोई जटिलता नहीं है। लेकिन यदि तुम्हारे पास पैसा है, तो वह निश्चित ही जटिलताएं पैदा करता है।
सबसे बड़ी समस्या जो पैसा पैदा करता है, वह यह है कि तुम्हें यह पता नहीं चलता कि लोग तुम्हें चाहते हैं या तुम्हारे पैसे को चाहते हैं। और इसे तय करना इतना मुश्किल होता है कि लगता है, पैसे पास न होना ही बेहतर होता। कम से कम जीवन आसान तो होता।
अब पैसा, जो इतना बड़ा आनन्द हो सकता था, गहन संताप का कारण बन गया है।
लेकिन संताप का कारण पैसा नहीं है, तुम्हारा मन है।
पैसा उपयोगी है; पैसा पास होने में कोई पाप नहीं हैं, इसमें कोई अपराध भाव महसूस करने की कोई जरुरत नहीं हैं।
अब, मन ऐसी समस्याएँ खड़ी करता है।
तुम्हारे पास पैसा है, उसका आनन्द लो। और यदि कोई तुम्हें प्रेम करता है, तो ऐसे प्रश्न मत उठाओ, क्योंकि तुम उस व्यक्ति को बड़ी उलझन में डाल रहे हो। यदि वह कहता है कि वह तुम्हें प्रेम करता है, तो तुम विश्वास नहीं करने वाले। यदि वह कहता है कि वह तुम्हारे पैसे को प्रेम करता है, तो तुम विश्वास लेने वाले हो। लेकिन यदि वह तुम्हारे पैसे को प्रेम करता है, तो सारा प्रेम-संबंध ही खत्म हुआ। गहरे में तुम्हें संदेह बना ही रहेगा कि वह तुम्हें नहीं, तुम्हारे पैसे को प्रेम करता है।
लेकिन इसमें कोई बुराई नहीं हैः पैसा भी तुम्हारा है, ठीक जैसे कि तुम्हारी नाक तुम्हारी है, तुम्हारी आंखे तुम्हारी हैं, तुम्हारे बाल तुम्हारे हैं। और वह व्यक्ति तुम्हें, तुम्हारी समग्रता में प्रेम करता है। पैसा भी तुम्हारा अंग है। उसे अलग मत करो, फिर कोई समस्या नहीं है।
जीवन को यथासंभव कम से कम जटिलताओं और न्यूनतम समस्याओं के साथ जीने
की कोशिश करो- और यह तुम्हारे हाथ में है।
अपने जीवन के अंतरतम रहस्यों को जानना कुछ भी नहीं हैं।
तुलना की पूरी धारणा ही मिथ्या है।
प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है, क्योंकि कोई उसके जैसा नहीं है। तुलना ठीक होती यदि सभी व्यक्ति एक समान होते- लेकिन वे एक समान नहीं। जुड़वां बच्चे भी एकदम एक जैसे नहीं होते। एक भी व्यक्ति खोज पाना असंभव है जो ठीक

तुम जैसा हो। तो हम अनूठे व्यक्तियों की आपस में तुलना कर रहे हैं, उसी से सारी मुसीबत पैदा होती है।
जीवन की सबसे कठिन, लेकिन सबसे सारभूत बात यह है कि जीवन को सुन्दर बातों में और मूढतापूर्ण बातों में विभाजित न किया जाये, जीवन को विभाजित ही न किया जाये। वे सारी बातें एक ही पूर्ण के अंश हैं।
बस जरा से हास्य-बोध की जरुरत है। और मेरे अनुसार व्यक्ति को पूरा होने के लिये हास्य-बोध का होना एकदम जरुरी है।
छोटी-छोटी मूढ़तापूर्ण बातों में गलत क्या है? तुम उन पर हंसकर उनका आनन्द क्यों नहीं ले सकते? सारे समय तुम तय करते रहते हो, कि क्या सही है, क्या गलत है। सारे समय तुम न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठे हो- और वह तुम्हें गंभीर बना देता है।
फिर, फूल सुन्दर हैं, लेकिन कांटों का क्या हों? वे भी फूलों के ही अस्तित्त्व के हिस्से हैं। फूल कांटों के बिना नहीं हो सकेंगे; कांटे रक्षक हैं। उनका भी कुछ काम है, कुछ उद्देश्य, कुछ अर्थ।
लेकिन तुम विभाजित करते हो- तब फूल सुंदर हैं और कांटे कुरुप हो जाते हैं। लेकिन स्वयं वृक्ष के भीतर वही रस जो फूलों में जा रहा है, वही कांटों में भी जा रहा है। वृक्ष तो कोई भेद नहीं करता, कोई राय नहीं बनाता। फूलों का पक्ष नहीं लिया जाता और कांटों को केवल बर्दाश्त भर नहीं किया जाता, दोनों का पूरा स्वीकार है। और हमारे जीवन में हमारा भी यही झुकाव होना चाहिए।
जीवन में चीजें हैं, छोटी चीजें, जिनके बारे में यदि तुम राय बनाते हो
तो वे मूढ़तापूर्ण दिखेंगी, बेवकूफी भरी लगेंगी। लेकिन वह तुम्हारी धारणा बनाने की दृष्टि के कारण है; अन्यथा वे भी कुछ आवश्यक कार्य संपादित करने के लिए हैं।
मन का पूरा कार्य है तोड़ते जाना। हृदय का काम है जोड़नेवाली कड़ी को देखना, जिसके प्रति मन बिल्कुल अंधा है।
मन उसको समझ नहीं सकता जो शब्दों के पार है; वह केवल उसी को समझ सकता
है जो भाषा से और तर्क से समझ में आता हो। उसका अस्तित्त्व से, जीवन से, और सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। मन स्वयं एक कल्पना है।
तुम मन के बिना नहीं जी सकते। तुम हृदय के बिना नहीं जी सकते। और जितनी ज्यादा गहराई से तुम जीते हो, उतना ही ज्यादा तुम्हारे हृदय का उसमें हाथ है।
जीवन बहाव है, जीवन एक नदी है, एक सतत प्रवाह!
लोग स्वयं को ठहरा हुआ सोचते हैं। केवल वस्तुएं ठहरी हुई होती हैं, केवल मृत्यु मैं बदलाहट नहीं होती- जीवन लगातार बदल रहा है। जितना ज्यादा जीवन होगा- उतनी ज्यादा बदलाहट होगी। भरपूर जीवन, और हर पल एक तीव्र बदलाहट।
कोई श्रेष्ठ नहीं है, कोई हीन नहीं है और कोई समान भी नहीं है। हर व्यक्ति अनूठा है।
समानता मनोवैज्ञानिक रूप से गलत है। प्रत्येक व्यक्ति अलबर्ट आइन्स्टीन नहीं हो सकता और प्रत्येक व्यक्ति रवींन्द्रनाथ टैगोर भी नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि रवींन्द्रनाथ टैगोर श्रेष्ठ हैं, क्योंकि तुम रवीन्द्रनाथ टैगोर नहीं हो सकते। रवीन्द्रनाथ के लिए भी "तुम" बनना संभव नहीं है।
मेरे कहने का पूरा अभिप्राय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठी अभिव्यक्ति है। हमें श्रेष्ठता की, हीनता की, समानता की, असमानता की पूरी विचारधारा को ही समाप्त कर देना चाहिये, और उसके स्थान पर नई अवधारणा अनूठेपन की रखनी चाहिये।
और प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है।
प्रेम से देखो और तुम पाओगे कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ है, जो किसी
और में नहीं है।
जो कुछ भी मनपसंद हो बस वही करो- मनपसंद तुम्हारे लिए और मनपसंद तुम्हारे आसपास के वातावरण के लिए; बस कुछ ऐसा करो जो तुम्हें गीतों से

भरे और तुम्हारे आसपास उत्सव का एक संगीत पैदा करे। ऐसे जीवन को मैं धार्मिक जीवन कहता हूं।
इसमें कोई सिद्धांत नहीं होते, इसमें कोई अनुशासन नहीं होता। उसका अकेला एक ही रुख होता है- और वह है, बुद्धिमत्ता से जीना।
आज्ञाकारिता में एक सरलता है; अनाज्ञाकारिता के लिये थोड़े ऊंचे स्तर
की बुद्धिमत्ता की जरुरत होती है। कोई भी मूढ़ आज्ञाकारी हो सकता है- सच तो यह है कि केवल मूढ़ ही आज्ञाकारी हो सकते हैं।
बुद्धिमत्तापूर्ण व्यक्ति निश्चित ही पूछनेवाला है, क्यों? क्यों मुझे ऐसा करना है? और जब तक मुझे इसके कारणों और परिणामों का पता नहीं, मैं इसमें सम्मिलित नहीं होने वाला। तब वह जिम्मेदार बन रहा है।
संत के लिये दुष्ट होना सर्वथा असंभव है, लेकिन एक दुष्ट व्यक्ति संत
हो सकता है।
मनुष्य ने अभी तक अकेलेपन के सौंदर्यबोध को पहचानना नहीं सीखा है।
वह हमेशा किसी से संबंध बनाने के लिए तड़प रहा है, किसी के साथ होने के लिए; मित्र के साथ, पिता के साथ, पत्नी के साथ, पति के साथ, बच्चे के साथ... किसी न किसी के साथ।
उसने समाज बनाये हैं, क्लब बनाये हैं; लायंस क्लब, रोटरी क्लब। उसने पार्टियाँ बनायी हैं; राजनैतिक, आदर्शवादी। धर्म बनाये हैं; चर्च, मंदिर। लेकिन इन सबके पीछे मूल जरुरत यह है कि तुम किसी तरह यह भूलना चाहते हो कि तुम अकेले हो। इतनी सारी भीडों के साथ जुड़कर तुम कोई बात भुलाने का प्रयास कर रहे हो जो अंधेरे में तुम्हें एकाएक याद आ जाती है कि तुम अकेले पैदा हुए थे, तुम अकेले मरोगे, चाहे तुम कुछ भी करो, तुम अकेले जीते हो। अकेलापन तुम्हारे अस्तित्त्व का इतना आवश्यक अंग है, कि उसे टालने का कोई उपाय नहीं है।
अकेलेपन; अलोननेस को टालने के लिये, किया गया हर प्रयत्न असफल हुआ है,
और वह असफल होगा क्योंकि वह जीवन के मूलभूत नियमों के विपरीत है। जरुरत उस बात की नहीं है जिसमें तुम अपने अकेलेपन को भूल सको, जरुरत यह है कि तुम अपने अकेलेपन के प्रति- जो कि एक वास्तविकता है सजग हो सको।
और इसे महसूस करना, इसे अनुभव करना इतना सुन्दर है, क्योंकि यह भीड़ से, दूसरों से तुम्हारी मुक्ति है। यह एकाकी होने के भय से हमारा मुक्त होना है। "एकाकी" शब्द मात्र तुम्हें तत्क्षण याद दिलाता है कि यह एक घाव की तरह हैः उसे भरने के लिये किसी चीज की जरुरत है। यह एक खाली जगह है, और यह चोट पहुंचाता है। इसमें कुछ भरा जाना जरुरी है।
"अकेलेपन"- इस शब्द में किसी खालीपन का, किसी घाव का बोध नहीं है जिसे भरा जाना है। अकेलापन" का सीधा सा अर्थ होता है- परिपूर्णता। तुम सपूर्ण हो; तुम्हें पूर्ण करने के लिये किसी अन्य की जरुरत नहीं है।
तो अपने उस अंतरतम केंद्र को पाने की कोशिश करो, जहां तुम सदा अकेले हो, सदा से अकेले रहे हो। जीवन में, मृत्यु में, जहां-कहीं भी तुम हो तुम अकेले रहोगे। लेकिन यह इतना भरा-पूरा है, यह खाली नहीं है- यह इतना भरा- पूरा, इतना परिपूर्ण, इतना लबालब, जीवन के सभी रसों से, अस्तित्त्व के समस्त सौंदर्य से, स्व वरदानों से कि एक बार तुमने अपने अकेलेपन का स्वाद लिया कि हृदय के सारे दर्द विदा को जायेंगे। उसके बजाय असीम माधुर्य की, शांति की, उल्लास की, स्व-आनंद की एक नई लय होगी वहां।
इसका अर्थ यह नहीं है कि जो व्यक्ति अपने अकेलेपन में केन्द्रित है, अपने-आप में पूर्ण है, वह मित्र नहीं बना सकता। सच तो यह है, केवल वही मित्र बना सकता है। क्योंकि अब यह उसकी जरुरत नहीं है, अब यह एक बांटना है। उसके पास इतना अधिक है कि वह बांट सकता है।
हम एक ही अस्तित्त्व के हिस्से है। किसी को भी चोट पहुंचाने में तुम स्वयं को ही चोट पहुंचा रहे हो। आज चाहे तुम इसे महसूस न करो, लेकिन एक दिन जब तुम ज्यादा सचेत हो ओगे, तुम कहोगे, हे भगवान! यह घाव मैंने ही किया था स्वयं पर। तुमने किसी दूसरे को चोट दी थी यह सोचकर कि लोग अलग-अलग हैं। कोई अलग-अलग नहीं है। पूरा अस्तित्त्व एक है, एक सुव्यवस्थित इकाई! इसी समझ से अहिंसा का जन्म होता है।

जब तुम क्रोध में होते हो, तुम अपने आपको सजा दे रहे हो। तुम जल रहे होते हो, तुम अपने हृदय को और उसके श्रेष्ठ गुणों को नष्ट कर रहे होते हो- और तुम घृणा से भरे होते हो।
मनुष्य तभी पूर्ण होता है, जब वह अस्तित्त्व से लयबद्ध हो। यदि वह अस्तित्त्व से लयबद्ध नहीं है, तो वह खाली है, पूरी तरह से खाली; और उस खालीपन से, उस रिक्तता से पैदा होता है लोभ।
लोभ इस खालीपन को भरने के लिये है- पैसे से, मकानों से, फर्नीचर से, मित्रों से, प्रेमियों से, किसी भी चीज से- क्योकि तुम खालीपन की तरह नहीं जी सकते। यह भयंकर लगता है। जीवन भूत जैसा लगने लगता है। यदि तुम खाली हो और तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं है, तो जीना असभंव है। अपने भीतर भराव को महसूस करने के दो ही उपाय हैं। या तो तुम अस्तित्त्व के साथ समवर हो जाओ... तब तुम पूर्ण से भर उठते हो, सारे समस्त फूलों से और समस्त सितारों से। यह वास्तविक भराव है, वास्तविक परितृप्ति।
लेकिन यदि तुम वैसा न करो- और लाखों लोग वैसा नहीं कर रहे हैं- तो फिर दूसरा उपाय है, अपने को बस किसी भी तरह के कूड़ा-कचरे से भर लो।
लोभ का ही अर्थ है कि तुम भीतर बहुत खाली महसूस कर रहे हो और तुम इसे
जो भी संभव हो उसी चीज से भरना चाहते हो; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह चीज क्या है?
एक बार यह तुम्हारे समझ में आ जाए तो फिर लोभ के साथ तुम्हें कुछ नहीं करना है। तुम्हें पूर्ण के साथ परिसंवाद में होने के लिए कुछ करना पड़ता है। ताकि तुम्हारा भीतरी खालीपन विदा हो जाए।
मनुष्य का पूरा अतीत दरिद्रता की प्रशंसा करता रहा है और उसे अध्यात्म के बराबर स्थान देता रहा है, जो कि बिल्कुल बकवास है।
अध्यात्म मनुष्य को घटनेवाली महानतम समृद्धि है। शेष सारी समृद्धियां उसमें समाहित है, यह किसी अन्य समृद्धि के विरोध में नहीं है, यह तो बस सभी प्रकार की दरिद्रता के विरोध में है।
एक तरफ तो लोग गरीबी को सम्मान देंगे, और दूसरी तरफ कहते हैं, गरीबों
की सेवा करो। अजीब है! यदि गरीबी इतनी आध्यात्मिक बात है तो हर अमीर आदमी को गरीब बना देना सर्वाधिक आध्यात्मिक कृत्य होगा। अमीर व्यक्ति की सहायता करो गरीब होने में, ताकि वह आध्यात्मिक हो सके। तब गरीबों की मदद क्यों करते हो? क्या तुम उसकी आध्यात्मिकता को नष्ट करना चाहते हो? प्रचुरता में जीना ही जगत में एकमात्र आध्यात्मिक बात है।
पैसा बहुत बोझिल विषय है, सिर्फ इस कारण से हम आज तक कोई स्वस्थ व्यवस्था नहीं दे पाये जिसमें पैसा पूरी मनुष्यता का सेवक हो, कुछ लालची लोगों का मालिक भर नहीं।
पैसा बोझिल विषय है क्योंकि मनुष्य की पूरी मानसिकता लालच से भरी हुई है। वरना पैसा वस्तुओं के आदान-प्रदान का एक सीधा-सादा माध्यम है, उत्तम माध्यम; उसमें कुछ गलत नहीं है। लेकिन जिस ढंग से हमने पैसे की व्यवस्था बनायी है, सब कुछ उसमें गलत प्रतीत होता है।
यदि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, तो तुम निन्दित किये जाते हो, तुम्हारा पूरा जीवन अभिशाप बन जाता है। और पूरे जीवन भर तुम किसी भी तरीके से पैसा पाने की कोशिश में लगे रहते हो।
यदि तुम्हारे पास पैसा है, तो वह मूल बात को तो बदलता नहीं- तुम और अधिक चाहते हो, और अधिक चाहने का कोई अंत नहीं है। और अंततः जब तुम्हारे पास बहुत पैसा हो जाता है- यद्यपि वह पर्याप्त नहीं होता, वह पर्याप्त होता ही नहीं; वह उससे ज्यादा है जितना किसी दूसरे के पास हो- तब तुम अपराध भाव महसूस करने लगते हो, क्योंकि तरीके जो तुमने पैसा जमा करने के लिये अपनाये थे वे गंदे थे, अमानवीय थे, हिंसक थे। तुम शोषण कर रहे थे, तुम लोगों का खून चूस रहे थे, तुम परजीवी थे। तो अब पैसा तो तुम्हारे पास हो गया है, लेकिन वह तुम्हें उन सब अपराधों की याद दिलाता है जो तुमने उसे हासिल करने में किए हैं।
उससे दो तरह के लोग पैदा होते हैः एक जो अपराधभाव से छुटकारा पाने के लिये धर्मार्थ संस्थाओं को दान करने लगते हैं; और दूसरे जो इतना अपराधभाव महसूस करता है कि या तो वह पागल हो जाता है या आत्महत्या कर लेता है। उसका

स्वयं का अस्तित्त्व एक संताप बन जाता है। हर सांस बोझिल हो जाती है। और अजीब बात यह है कि उसने अपने पूरे जीवन इस सारे पैसे को पाने के लिए ही काम किया क्योंकि समाज अमीर होने की, शक्तिशाली होने की इच्छा को, महत्त्वकांक्षा को उकसाता है।
और पैसा शक्ति लाता है; वह सबकुछ खरीद सकता है, केवल उन कुछ चीजों को छोड़कर जो पैसे से नहीं खरीदी जा सकती हैं। लेकिन उन चीजों की कोई फिक्र नहीं करता।
ध्यान नहीं खरीदा जा सकता, प्रेम नहीं खरीदा जा सकता, मित्रता नहीं खरीदी जा सकती, अहोभाव नहीं खरीदा जा सकता- लेकिन इन सब बातों में किसी का कोई रस नहीं हैं।
जरा अस्तित्त्व को और उसकी प्रचुरता को देखो इतने सारे फूलों की क्या जरुरत है दुनिया में? बस गुलाब पर्याप्त होते। लेकिन अस्तित्व प्रचुर है; लाखों-करोड़ों फूल, लाखों-करोडों पक्षी, करोडों जानवर, हर चीज प्रचुरता में।
प्रकृति कोई त्यागी- तपस्वी नहीं है, वह हर ओर नृत्य में लीन है- सागर में, वृक्षों में। वह हर ओर गीत गा रहा है- देवदार के वृक्षों से गुजरती हवा में, पक्षियों में... ।
क्या जरुरत है लाखों-लाखों सौर-मन्डलों की? हर सौर-मन्डल में लाखों- लाखों तारों की कोई आवश्यकता तो प्रतीत नहीं होती बजाय इसके कि अस्तित्त्व का स्वभाव ही प्रचुरता है; कि समृद्धि ही उसके प्राण हैं; कि अस्तित्त्व दरिद्रता में यकीन नहीं करता।
मैं लोभ को इच्छा के रूप में नहीं देखता। वह कोई अस्तित्त्वगत बीमारी है। तुम पूर्ण (होल) के साथ लयबद्ध नहीं हो; और पूर्ण के साथ वही लयबद्धता ही तुम्हें पवित्र (होली) बना सकती है।
मेरे देखे, लोभ वासना कतई नहीं है, तो तुम्हें लोभ के बारे में कुछ करना नहीं है। तुम्हें उस खालीपन को समझने की कोशिश करनी है, जिसे तुम करने की कोशिश कर रहे हो, और प्रश्न पूछो, मैं रिक्त क्यों हूं? पूरा अस्तित्त्व इतना भरा है, मैं क्यों रिक्त हूं? शायद मैं मार्ग से भटक गया हूं। मैं ठीक दिशा मैं यात्रा नहीं कर रहा हूं। मैं अस्तित्त्वगत नहीं रह गया हूं, यही मेरे खालीपन कारण है।"
तो अस्तित्त्वगत हो, अपने को छोड़ दो, और मौन में, शांति में, ध्यान में अस्तित्त्व के करीब आओ। और एक दिन तुम देखोगे कि तुम इतने भर गये हो, लबालब भर गये हो कि उल्लास, आनन्दमयता, आशीष तुमसे छलक कर बह रहे हैं। तुम्हारे पास ये सब इतने ज्यादा हो गये हैं कि तुम इन्हें पूरी दुनियां को दे सकते हो और फिर भी ये चुकेंगे नहीं।
उस दिन, पहली बार, तुम कोई लोभ नहीं महसूस करोगे-पैसे के लिए, भोजन के लिए, वस्तुओं के लिए, किसी भी चीज के लिए। तुम जीआगे बिना किसी लोभ के जो पूरा नहीं होता, बिना किसी घाव के जो भरता नहीं, तुम जीओगे स्वाभाविक होकर और जिस चीज की जरुरत होगी, वह तुम्हें मिलेगी।
हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में हीन महसूस करता है। और कारण यह है कि
हम स्वीकार नहीं करते कि हर व्यक्ति अनूठा है। श्रेष्ठता और हीनता का कोई सवाल नहीं है। हर व्यक्ति अपने जैसा आप ही है। तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता।
हमनें लोगों को जैसे वे हैं वैसे ही स्वयं को स्वीकार करने नहीं दिया है। जिस पल तुम स्वयं को जैसे तुम हो वैसे ही स्वीकार करते हो, बिना किसी तुलना के, सारी श्रेष्ठता और सारी हीनता विदा हो जाती है। स्वयं के समग्र स्वीकार में तुम हीनता, श्रेष्ठता की इन ग्रंथियों से मुक्त हो जाते हो।
अन्यथा तुम पूरी जिन्दगी उनसे पीड़ित रहोगे।
और मैं उस व्यक्ति की कल्पना नहीं कर सकता, जिसके पास इस जगत में सब कुछ हो। लोगों ने कोशिश की है और बुरी तरह असफल हुए हैं।
बस स्वयं हो जाओ, और वही पर्याप्त है।
सूरज ने तुम्हें स्वीकार किया है, चांद ने तुम्हें स्वीकार किया है, वृक्षों ने तुम्हें स्वीकार किया है, सागर ने तुम्हें स्वीकार किया है, पृथ्वी ने तुम्हें स्वीकार किया है। और अधिक तुम क्या चाहते हो?

तुम इस पूरे अस्तित्त्व द्वारा स्वीकार किये गये हो।
इस बात का आनन्द मनाओ!
समर्थन मिलना और मान्य किया जाना हर व्यक्ति की जरुरत है।
हमारे पूरे जीवन का ढांचा ऐसा है कि हमें सिखाया जाता है कि जब तक मान्यता न हो, हम कुछ नहीं हैं, हमारी कोई कीमत नहीं है। हमारा काम महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि मान्यता। और वह चीजों को उलटा कर देना है। हमारा काम में महत्त्वपूर्ण होना चाहिये कि वह अपनेआप में एक आनन्द हों। तुम्हें इसलिये काम नहीं करना चाहिए कि मान्यता मिले, बल्कि इसलिये कि सृजनात्मक होना तुम्हारा आनन्द है। तुम काम को काम के लिये ही प्रेम करते हो। तुम काम करो यदि तुम्हें उसे प्रेम हो।
मान्यता की मांग मत करो। यदि वह मिलती है, उसे सहजता से स्वीकार करो। यदि वह नहीं मिलती, उसके बारे में सोच-विचार मत करो। तुम्हारी परितृप्ति तो स्वयं काम में ही होनी चाहिए।
और यदि सभी लोग यह सरल सी कला सीख लें- अपने काम को प्रेम करने की, वह चाहे जो भी काम हो, बिना किसी मान्यता की मांग किये उसका आनन्द लेना- तो यह दुनिया ज्यादा सौंदर्यपूर्ण और उत्सवपूर्ण होगी; अन्यथा इस दुनिया ने तुम्हें एक दुर्भाग्यपूर्ण ढांचे में फंसा रखा है। जो तुम करते हो वह इसलिए नहीं अच्छा है कि तुम उसे प्रेम करते हो, कि तुम उसे ठीक से करते हो, बल्कि इसलिए कि दुनिया उसे मान्यता देती है, उसके लिये पुरस्कार देती है, तुम्हें स्वर्ण-पदक देती है, नोबल प्राइज देती है।
उन्होंने सृजनात्मकता के समूचे अंतस्थ मूल्य को खत्म कर दिया है- क्योंकि तुम लाखों लोगों को तो नोबल प्राइज नहीं दे सकते। और तुमने हर व्यक्ति में मान्यता प्राप्त करने की आकांक्षा जगा दी है, तो कोई व्यक्ति अपने काम का ही आनन्द लेते हुये, शांति से, मौन से काम ही नहीं कर सकता। और जीवन छोटी-छोटी बातों से बना है। उन छोटी बातों के लिये कोई इनाम, कोई पदवी सरकार द्वारा नहीं दी जाती, न हीं विश्वविद्यालयों द्वारा कोई मानद उपाधि दी जाती है।
जिस व्यक्ति को अपनी निजता का कोई भी अहसास है, वह अपने ही प्रेम के साथ, अपने ही काम के साथ जीता है, बिना इसकी जरा भी चिंता किए कि लोग उस काम के बारे में क्या सोचते हैं।
आनन्द किसी चीज को पूरा करने में नहीं है; आंनद इस बात में है कि तुमने उसकी आकांक्षा की, कि तुमने अपनी पूरी त्वरा से उसकी आकांक्षा की, कि जब तुम काम कर रहे थे तुम सब कुछ भूल गये थे, पूरी दुनिया को; केवल वही काम ही तुम्हारे प्राणों का एक मात्र केन्द्र हो गया था। और उसी में तुम्हारा आनन्द और तुम्हारा पुरस्कार है- पूरा करने में नहीं, किसी बात के स्थायी होने में नहीं।
इस अस्तित्त्व की तेज बहती धार में, हमें हर क्षण में ही छिपा उसका पुरस्कार खोज लेना होगा। जो कुछ भी हम कर रहे थे, हमनें अपनी तरफ से सर्वोतम रूप से किया, हमने आधे-आधे मन से नहीं किया। हम कुछ पीछे बचा कर नहीं रख रहे थे, हम उस कृत्य में अपने पूरे प्राण उंडे़ल रहे थे।
वहीं हमारा आनन्द है।
यह बस एक तथ्य है कि हर व्यक्ति अनूठा है, और हर व्यक्ति की एक खास निजता है। हमें बस इस धारणा को छोड़ना पड़ेगा कि लोगों को कैसा होना चाहिये, और इसके स्थान पर इस दर्शन को स्थापित करना होगा कि लोग जैसे भी हैं, सुन्दर हैं। ऐसा होना चाहिये कि कोई सवाल ही नहीं हैं, क्योंकि हम कौन हैं किसी पर कोई "चाहिये" थोपने वाले? यदि अस्तित्त्व तुम्हें वैसे ही स्वीकार करता है जैसे तुम हो, तो हम कौन होते हैं अस्वीकार करने वाले।
तो बस जरा सा रूख में बदलाहट- और यह एक बहुत आसान बात है एक बार तुम्हारे ख्याल में आ जाए तोः हर व्यक्ति अनूठा है, हर व्यक्ति जैसा है वैसा है, और उसे वैसा ही होना चाहिये जैसा वह है। स्वीकृत होने के लिए उसे कोई अन्य होने की जरुरत नहीं हैं। वह पहले ही स्वीकृत है। इसी को मैं कहता हूं निजता का सम्मान, लोगों का सम्मान- जैसे वे हैं।
पूरी दुनिया इतना प्रेमपूर्ण आनंदमय स्थान हो सकती है यदि हम लोगों
को वैसा ही स्वीकार कर सकें जैसे वे हैं।

साम्यवाद जो प्रेम से, समझ से, उदारता से आता हैं, सच्चा होगा।
साम्यवाद जो जबरदस्ती के माध्यम से आये, वह झूठा होगा।
और इस दुनिया में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, चाहे वह कैसा भी गरीब क्यों न हो, जिसके पास योगदान करने के लिए कुछ न हो।
क्यों न ऐसे जीवन का निर्माण करो जहां पैसा या पद का अनुगमन न पैदा करता हो, बल्कि बस हर व्यक्ति को और-और अवसर प्रदान करता हो।
सत्तात्मक लोग ही वे लोग हैं जो हीनता की ग्रंथि से ग्रसित हैं।
अपनी हीनता को छिपाने के लिये वे अपनी श्रेष्ठता को थोपते हैं। वे सिद्ध करना चाहतें हैं, कि वे कुछ हैं, कि उनका शब्द ही सत्य है, कि उनका शब्द ही नियम है। लेकिन गहरे में वे बड़े हीन प्राणी हैं।
प्रकृति में निश्चित ही कोई पदानुगमन नहीं है। पदानुगमन मनुष्य के मन
का खेल है, क्योंकि बिना पदानुगमन के अहंकार को पोषण नहीं मिलता; वह मर जाता है।
प्रकृति में, हर चीज को अवसर है, स्थान है, और वहां कोई भी मालिक नहीं
बन रहा होता है। कोई भी मालिक नहीं है और कोई भी गुलाम नहीं हैं। प्रकृति करीब-करीब एक सजीव इकाई की तरह काम करती है जिसमें निजता तो नष्ट नहीं होती, लेकिन जिसमें अहंकार को भी पनपने का मौका नहीं है। इसलिये वृक्षों में अहंकार नहीं है, पक्षियों में अहंकार नहीं है। किसी भी पशु में अहंकार नहीं है। यह समस्या केवल मनुष्य के साथ ही पैदा होती है।
यह मनुष्य का सौभाग्य है- केवल मनुष्य का सौभाग्य है- अकेला होना, पूरी दुनिया के खिलाफ अकेला खड़ा होना यदि उसे लगता है कि वह सत्य के साथ है।
यदि तुम्हें लगता है कि यही है वह रास्ता जो स्वतंत्रता की ओर ले जाता है, तो किसी भी तरह की जिम्मेदारी स्वीकार लो। तब वे जिम्मेदारियाँ तुम पर बोझ नहीं बनने वाली हैं। वे सब तुम्हें ज्यादा परिपक्व, ज्यादा केंद्रित, ज्यादा सदृढ़, ज्यादा सुन्दर व्यक्ति बना देने वाली हैं।
तुम्हारे हाथ में केवल एक ही क्षण होता है-वास्तविक क्षण! और यह क्षण तुम्हें दोबारा नहीं मिलेगा। या तो तुम इसे जीओ या तुम इसे अनजीया छोड़ दो। हर बच्चा इसे समझता है कि वह दुनिया को अपने मां-बाप से भिन्न दृष्टि
से देखता है। जहां तक देखने का सवाल है, यह नितांत सुनिश्चत बात है।
उसके मूल्य भिन्न हैं। वह समुद्र-तट सीपें इकट्ठी कर सकता है और मां- बाप कहेंगे, फेंको इन्हें। क्यों तुम अपना समय नष्ट कर रहे हो? और उसके लिए वे इतनी सुन्दर थीं।
वह इस भेद को देख सकता हैं। वह देख सकता है कि उनके मूल्य भिन्न हैं। मां-बाप पैसों के पीछे भाग रहे हैं; वह तितलियां जमा करना चाहता है। वह समझ नहीं पाता कि उनका पैसों में इतना रस क्यों है? क्या करोगे तुम पैसों का? और उसके मां-बाप की समझ में नहीं आता कि वह तितलियों का अथवा इन फूलों का क्या करेगा?
हर बच्चे को पता चल जाता है कि भेद तो है। समस्या केवल यह है कि वह यह प्रगट करने में डरता है कि वह सही है।
जहां तक उसकी बात है, उसे अकेला छोड़ दिया जाना चाहिये। यह बस थोड़े से साहस की बात है- और साहस की बच्चों में कमी है ऐसा भी नहीं, बात केवल इतनी है कि सारे समाज की व्यवस्था ऐसी है कि बच्चे में साहस जैसा सुन्दर गुण भी निन्दित किया जाएगा।
यदि मां-बाप सचमुच ही बच्चों को प्रेम करते हैं तो वे उन्हें साहसी होने में मदद करेंगे, उनके विपरीत जाने में भी साहसी।
वे उन्हें शिक्षकों के विपरीत, समाज के विपरीत, किसी भी उस व्यक्ति के विपरीत जाने के लिए साहसी होने में मदद करेंगे, जो उनकी निजता को नष्ट करने वाला हो।
याद रहे, समझौता कभी मत करना। समझौता मेरी जीवन दृष्टि के सर्वथा खिलाफ है।
तुम लोगों को देखो, वे दुःखी हैं क्योकि उन्होंने हर बात में समझौता किया है, और वे स्वयं को माफ नहीं कर सकते क्योंकि उन्होंने समझौता किया है। वे जानते हैं कि वे दुःसाहस कर सकते थे, लेकिन वे कायर सिद्ध हुये। वे

अपनी ही नजरों में गिर गये हैं, उन्होंने आत्म-सम्मान खो दिया है। समझौते का यही परिणाम होता है।
समझौता क्यों करना? हमारे पास खोने को क्या है? इस छोटे से जीवन में उतनी समग्रता से जीओ जितना संभव हो। अति तक जाने से भी मत डरो। तुम समग्र से ज्यादा कुछ हो ही नहीं सकते, वह अंतिम रेखा है। और समझौता मत करो। तुम्हारा पूरा मन समझौते के पक्ष में बोलेगा, क्योंकि वही ढंग है जिस प्रकार हमारा लालन-पालन हुआ है, जिस प्रकार हम संस्कारित किये गये हैं। "समझौता" हमारी भाषा के सर्वाधिक कुरुप शब्दों में से है। इसका अर्थ होता है, आधा मैं छोड़ता हूं, आधा तुम छोड़ो; आधे पर मैं राजी होता हूं, आधे पर तुम राजी होओ। लेकिन क्यों? जब तुम्हें पूरा ही मिल सकता है, जब तुम केक खा भी सकते हो और रख भी सकते हो, तो समझौता क्यों? बस जरा सी निर्भिकता, बस जरा सा दुःसाहस; और वह भी केवल शुरू में। एक बार तुमने समझौता न करने के सौंदर्य को और उससे आनेवाली गरिमा को, अखंडता और निजता को तुमने अनुभव कर लिया तो पहली बार तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारी जड़े हैं, कि तुम उस केन्द्र से जीते हो जो तुम्हारा अपना है।
दुःखी व्यक्ति को आसानी से गुलाम बनाया जा सकता है। आनन्दित व्यक्ति, हंसता-खेलता व्यक्ति गुलाम नहीं बनाया जा सकता।
काम (सेक्स) जीवन का प्रारंभ है और मृत्यु उसी जीवन का अंत है; तो वे एक
ही ऊर्जा के दो छोर हैं, एक ही ऊर्जा के दो ध्रुव हैं। उन्हें तोड़ा नहीं जा सकता।
शायद काम (सेक्स) मृत्यु है किश्तों में।
और मृत्यु काम (सेक्स) है थोक में।
लेकिन निश्चित ही दोनों किनारों पर एक ही ऊर्जा कार्यरत है।
क्यों न ऐसे जीवन का निर्माण करें जहां काम (सेक्स) कड़वे अनुभव पैदा न करे, ईर्ष्या, असफलताएं; जहां काम (सेक्स) बस एक मौज-मजा भर रहे- किसी अन्य खेल से ज्यादा नहीं, बस एक जैविक खेल। तुम टेनिस खेलते हो; उसका यह अर्थ तो नहीं कि अपने पूरे जीवन तुम्हें एक ही साथी के संग टेनिस खेलना है।
जीवन ज्यादा समृद्ध हाना चाहिये। केवल थोड़ी समझ की जरुरत है, और प्रेम समस्या नहीं रह जाएगा, काम (सेक्स) वर्जना नहीं रह जाएगा।
मन बस अतीत की स्मृतियों का एक संग्रह भर है, और उन्हीं स्मृतियों के कारण भविष्य के संबंध में कल्पनाओं का संग्रह है।
जीवन में प्रत्येक अवसर का उपयोग अपनी बुद्धिमत्ता को, अपनी चेतना को विकसित करने के लिये करो।
साधारणतः हम क्या करते हैं कि प्रत्येक अवसर का उपयोग अपने लिये नर्क निर्मित करने में करते है। केवल तुम ही दुखी होते हो, और फिर अपने दुःख के कारण तुम औरों को दुःखी करते हो।
और जब इतने सारे लोग साथ-साथ रहते हों, और वे सब एक-दूसरे के लिये दुःख निर्मित करें, तो वे गुणा होते जाते हैं। इसी तरह पूरी दुनिया एक नर्क बन गई है।
यह तत्क्षण बदला जा सकता है, बस केवल मूलभूत बात को समझने की जरूरत हैः बुद्धिमत्ता के बिना कोई स्वर्ग नहीं है।
मेरे अनुसार मां-बाप का काम बच्चों को विकसित होने में मदद करना नहीं है; वे तुम्हारे बिना भी विकसित हो जाएंगे।
तुम्हारा काम है उसे सहारा देना, पोषण देना, मदद करना जो अपने आप ही विकसित हो रहा है, निर्देश मत दो और आदर्श मत दो। उन्हें यह न कहो कि क्या सही है और क्या गलत है- उन्हें अपने अनुभव द्वारा ही उसका पता करने दो।
यह पूरी धारणा ही कि बच्चे तुम्हारे मिल्कियत हैं, गलत है। वे तुमसे पैदा होते है, लेकिन वे तुम्हारे नहीं हैं। तुम्हारे पास एक अतीत है, उनके पास केवल एक भविष्य है।
वे तुम्हारे अनुसार नहीं जीने वाले हैं। तुम्हारे अनुसार जीना प्रायः न जीने के बराबर होगा। उन्हें अपने स्वयं के अनुसार जीना है- स्वतंत्रता में, दायित्व मैं, खतरे में, चुनौती में।
एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाए, कि बच्चे तुम्हारे नहीं हैं, कि वे अस्तित्त्व के हैं और तुम केवल एक मार्ग रहे हो, तो तुम्हें अस्तित्त्व के

प्रति धन्यवाद से भर उठने के अलावा कोई उपाय न होगा कि उसने तुम्हें कुछ सुन्दर बच्चों के आने के लिए मार्ग के रूप में चुना है। लेकिन तुम्हें उनकी संभावनाओं में, विकास में दखल नहीं देना है। तुम्हें अपने आपको उन पर थोपना नहीं है।
वे उस समय में नहीं जीने वाले हैं जिस में तुम जीये हो, वे उन्हीं समस्याओं का सामना नहीं करने वाले हैं जिनका सामना तुमने किया है। वे किसी दूसरी दुनिया के हिस्से होंगे। उन्हें इस दुनिया, इस समाज, इस समय के लिये तैयार मत करो, क्योंकि तब तुम उनके लिये मुसीबत खड़ी कर रहे होगे। वे स्वयं को अनुपयुक्त, अयोग्य पाएंगे।
क्रूरता एक गलतफहमी है। यह मृत्यु के भय से हमारे भीतर पैदा होती है।
हम मरना नहीं चाहते, इसलिये इसके पहले कि कोई तुम्हें मार दे तुम उसे मार देना चाहोगे- क्योंकि बचाव का सर्वश्रेष्ठ तरीका है आक्रमण। और नहीं जानते कि कौन तुम पर हमला कर देनेवाला है।
पशुओं के राज्य में, मनुष्य के जगत में बड़ी प्रतिस्पर्धा है, तो लोग
बस हमला किए ही चले जाते है बिना फिकर किए कि किस पर वे हमला कर रहे हैं, अथवा कि क्या वह सचमुच में हम पर हमला करने वाला था। लेकिन इसे जानने का कोई उपाय भी नहीं है- तो मौका न लेना ही बेहतर है।
और जब तुम किसी पर हमला करते हो, धीरे-धीरे तुम्हारा हृदय कठोर से कठोर होता जाता है, और तुम हमला करने में रस लेने लगते हो। यह घटना पशु-जगत में देखी जा सकती है, क्योंकि भोजन के लिये, सत्ता के लिये, वही प्रतिस्पर्धा... ।
क्रूरता और कुछ नहीं, प्रथम होने की प्रतिस्पर्धात्मक भावना है। यदि उसका मतलब हिंसा हो तो हिंसा सही; लेकिन प्रथम तो होना ही है। यही पशुओं में है, यही मनुष्य में है। लेकिन प्रथम होने की यह दौड़ क्यों?
उसका अस्तित्त्वगत कारण मृत्यु है।
क्रूरता तभी खत्म हाती है- और इसी में से मुझे सूत्र मिला कि क्रूरता
है क्यों- जब तुम जानते हो कि मृत्यु नहीं है।
जब तुम अपने भीतर किसी अमृत तत्त्व का अनुभव करते हो, तभी क्रूरता विदा हो जाती है। तब फिर कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम्हें दौड़ने की जरूरत नहीं है, तुम दूसरे को अपने से आगे निकल जाने दे सकते हो क्योंकि उस बेचारे को पता नहीं है कि जगत अनंत है, जीवन अनंत है।
किसी चीज को चूकने का कोई उपाय नहीं; यदि वह आज नहीं होती, तो कल होगी। लेकिन तुम किसी भी चीज से चूक नहीं सकते यदि तुम समझते हो।
दरअसल लड़ने में और एक-दूसरे के प्रति क्रूर होने में तुम बहुत कुछ खो सकते हो, क्योंकि यह प्रक्रिया ही तुम्हें कठोर बना देगी, तुम्हारे हृदय को एक पत्थर में बदल देगी। और हृदय यदि पत्थर बन गया हो तो वह उस सबसे चूकने वाला है जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी आनंदपूर्ण है। पशुओं को समझाना कठिन है। लेकिन असली समस्या तो यह है कि मनुष्य को समझाना कठिन है कि प्रतिस्पर्धा के जरिए, हिंसक महत्त्वकांक्षा के जरिए, सब कहीं प्रथम पहुंचने के जरिए तुम एक विक्षिप्त दुनिया पैदा कर रहे हो जहां कोई किसी चीज का आनन्द नहीं लेता और हर व्यक्ति दीन रह जाता है। लोगों को समझाने का एक ही तरीका है, उन्हें अपने अमृतत्त्व को महसूस करने में मदद पहुंचाना, और तुरंत सारी क्रूरता विदा हो जायेगी। यह जीवन का छोटा होना है जो मुसीबत पैदा कर रहा है। यदि तुम्हारे दोनों छोरों पर अनंत हो- अतीत और भविष्य- तो जल्दी में होने की कोई जरूरत नहीं है। प्रतिस्पर्धा तक की कोई जरूरत नहीं है। जीवन इतना अधिक और इतना लबालब है, तुम उसे चुका नहीं सकते।
जो जीवन के संबंध में, जीने के संबंध में, प्रेम के संबंध में केवल सोचना चाहते हैं- उनके लिये अतीत और भविष्य बिल्कुल ठीक है, क्योंकि वे उनको सोचने के लिए अपार विस्तार देते हैं।
वे अपने अतीत को सजा सकते हैं, उसे जितना सुन्दर बनाना चाहें बना सकते हैं- यद्यपि उन्होंने उसे जीया नहीं; जब वह मौजूद था तब वे वहां न थे। तो ये सब केवल छायाएं हैं, प्रतिबिम्ब है। वे लगातार दौड़ रहे थे, और दौड़ते-दौड़ते

ही उन्होंने कुछ चीजें देखी हैं जिन्हें वे सोचते हैं कि उन्होंने जीया है।
अतीत में मृत्यु ही वास्तविकता है, जीवन नहीं।
भविष्य में भी, केवल मृत्यु ही वास्तविकता है, जीवन नहीं।
जो जीने से अतीत में चूक गये हैं, वे उस अन्तराल को भरने के लिये अपने-
आप ही भविष्य के सपने देखने लगते हैं। उनका भविष्य उनके अतीत का प्रक्षेपण मात्र है। जो कुछ भी वे अतीत तें चूक गये हैं, उसी की आशा वे भविष्य में कर रहे हैं; और दो ऐसे समय के बीच, जिनका अस्तित्त्व ही नहीं है, एक छोटे से क्षण का अस्तित्त्व है, जो कि जीवन है।
समय के तीन काल माने गये हैं- भूत, वर्तमान, भविष्य, जो कि गलत है।
समय केवल भूत और भविष्य है।
यह जीवन है जिसका हिस्सा वर्तमान है।
तो जो जीना चाहते हैं, उनके लिये इस क्षण को जीने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं हैं।
केवल वर्तमान ही अस्तित्त्वगत है।
अतीत केवल स्मृतियों का संग्रह है, और भविष्य केवल तुम्हारी कल्पना; तुम्हारे सपनों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
वास्तविकता अभी, यहीं है।
वर्तमान का समय से कोई संबंध नहीं है। यदि तुम केवल यहां इस क्षण में
हो, तो समय है ही नहीं, परम मौन है, परम शांति है, कोई हलन-चलन नहीं; कुछ भी चल नहीं रहा, सब कुछ अचानक ठहर गया है।
वर्तमान तुम्हें जीवन के जल में गहरा गोता लगाने का अथवा जीवन के आकाश में ऊंची उड़ान भरने का अवसर देता है।
लेकिन दोंनों ओर खतरे हैं- "अतीत और भविष्य" मनुष्य की भाषा के दो सर्वाधिक खतरनाक शब्द हैं। अतीत और भविष्य के बीच, वर्तमान में जीना तनी हुई रस्सी पर चलने जैसा है; दोनों तरफ खतरें हैं।
लेकिन एक बार तुमने वर्तमान के रस का स्वाद ले लिया, तो तुम खतरों की परवाह नहीं करते। एक बार तुम जीवन के साथ लयबद्धता में हो गये कि फिर किसी बात से फर्क नहीं पड़ता।
और मेरे देखे, जीवन ही सब कुछ है।
जो जीना चाहते हैं- उसके बारे में सोचना नहीं, प्रेम करना चाहते हैं; उसके बारे में सोचना नहीं, बल्कि होना चाहते हैं; उसके बारे सिद्धांत नहीं- उनके लिए दूसरा कोई विकल्प नहीं है बजाय वर्तमान के क्षण का रसास्वादन करने के। उसे पूरी तरह निचोड़ लो, क्योंकि वह फिर वापस नहीं आनेवाला है। एक बार गया कि वह सदा-सदा के लिये गया।
जीवन उसी विशेष के विस्तार में फैला है; मृत्यु एक क्षण में घटती है।
वह इतनी घनीभूत है कि यदि तुमने अपने जीवन को ठीक से जीया है, तो तुम मृत्यु के रहस्य में प्रवेश करने में समर्थ होओगे और मृत्यु का रहस्य यह है कि वह केवल आवरण है। भीतर तुम्हारा अमृतत्त्व है, तुम्हारा शाश्वत जीवन।
मैं भविष्य की ज्यादा नहीं सोचता क्योंकि भविष्य वर्तमान से पैदा होता है। यदि हम वर्तमान को संभाल सकें तो भविष्य अपनेआप संभल गया। भविष्य कहीं शून्य से नहीं आनेवाला, वह इसी क्षण में से पैदा होने वाला है। अगला क्षण इसी क्षण में से पैदा होगा।
यदि यह क्षण सुन्दर है, शान्त है, आनन्दपूर्ण है, अगला क्षण और ज्यादा शान्त, और ज्यादा आनन्दमय होने को बाध्य है।
मेरे अनुसार गंभीरता एक रोग है; और विनोदप्रियता तुम्हें ज्यादा मानवीय बनाती है, ज्यादा विनम्र बनाती है। मेरे अनुसार विनोदप्रियता धार्मिकता का एक अत्यावश्यक अंग है।
मनुष्य को प्रकृति के पार जाने की जरूरत नहीं है। मैं तुमसे कहता हूं, मनुष्य को प्रकृति को परिपूर्ण करना है- जो कोई पशु नहीं कर सकता है और वही फर्क है।
तुम प्राकृतिक प्राणी के रूप में पैदा हुए हो, तुम स्वयं से ऊंचे नहीं
उठ सकते। यह अपने ही पैर पकड़कर अपने को ऊपर खींचने जैसा है। तुम थोड़ा-बहुत

उचक सकते हो, लेकिन देर-अबेर तुम जमीन पर गिरने वाले हो और हो सकता है कुछ हड्डियां तोड़ लो। तुम उड़ नहीं सकते।
और यही किया जाता रहा है। लोग स्वयं को प्रकृति से ऊपर उठाने का प्रयास करते रहे हैं। जिसका मतलब स्वयं से ऊपर उठने का प्रयास करते रहे हैं। लेकिन वे प्रकृति से भिन्न नहीं हैं।
मनुष्य के पास क्षमता है, बुद्धिमत्ता है, स्वतंत्रता है, अन्वेषण करने की- और यदि तुमने प्रकृति का अन्वेषण पूरी तरह कर लिया, तो तुम घर आ गये।
प्रकृति तुम्हारा घर है।
यह जीवन के सारभूत नियमों में से एक है कि जो भी श्रेष्ठतर है वह बहुत कोमल है। वृक्ष की जड़ें बहुत मजबूत होती हैं, लेकिन फूल नहीं। फूल बहुत कोमल हैं- मात्र तेज हवा का एक झोंका और फूल नष्ट हो सकता है।
यही मनुष्य की चेतना के बारे में सच है। घृणा बहुत मजबूत है, लेकिन प्रेम नहीं। प्रेम बस फूल जैसा है- जो किसी भी पत्थर द्वारा आसानी से कुचल जाता है, किसी भी पशु द्वारा नष्ट हो जाता है।
जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा करनी होती है।
निम्नतर मूल्यों की अपने आप में ही एक प्रकार की सुरक्षा है।
एक पत्थर की रक्षा करने की जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन उसी के बगल की झाड़ी में गुलाब की सुरक्षा करनी ही पड़ेगी। पत्थर मृत है, वह और अधिक मृत नहीं हो सकता। उसे सुरक्षा की जरूरत नहीं है।
लेकिन गुलाब इतना जीवंत है, इतना सुंदर, इतना रंगीन, इतना आकर्षक। वही खतरा है- वही उसकी शक्ति है। लेकिन वही खतरों को आमंत्रण भी है। कोई भी उसे तोड़ सकता है। पत्थर को तो कोई नहीं उठायेगा, लेकिन फूल तोड़ा जा सकता है। संभोग उच्चतम शिखर पर ही किया जाना चाहिये- और उसके लिये एक खास अनुशासन की जरूरत है। लोगों ने अनुशासन का उपयोग संभोग न करने के लिए किया है। मैं तुम्हें ठीक प्रेम करने के लिए अनुशासन सिखाता हूं, ताकि तुम्हारा प्रेम मात्र एक जैविक कृत्य न हो, जो कभी भी तुम्हारे मनोवैज्ञानिक जगत तक नहीं पहुंचता।
प्रेम की तो तुम्हारे आध्यात्मिक जगत तक भी पहुंचने की क्षमता है और अपने उच्चतम शिखर पर वह तुम्हारे आध्यात्मिक जगत तक पहुंचेगा।
आर्गाज्म; (शिखरोन्माद) बच्चे पैदा करने के लिये जरूरी हो एैसी कोई बात नहीं है। यह चेतना के उच उच्चतर विकास के लिये झरोखा खोलने के लिए है।
आर्गाज्म (शिखरोन्माद) का अनुभव हमेशा गैर कामुक है।
यदि तुम काम द्वारा भी उसे उपलब्ध हो तो भी स्वयं उसमें कामुकता नहीं है।
इससे यह अंतदृष्टि मिलती है कि उस तक पहुंचने की संभावनाएं काम के अतिरीक्त और मार्गों से भी होंगी, क्योंकि वह स्वयं गैर-कामुक है, इसलिए आवश्यक नहीं कि कामुकता ही एकमात्र उपाय हो।
जिसने भी पहली बार यह अनुभव किया, उसने यह निष्कर्श निकाला होगा कि आर्गाज्म तक पहुंचने के अन्य उपाय भी हो सकते हैं। क्योंकि काम उसका आवश्यक अंग नहीं है। उस में काम का कोई प्रभाव, कोई रंग नहीं छूटता।
फिर उसने गौर किया होगा कि यह कैसे घटता है, और फिर चीजें बड़ी साफ हैंः जिस क्षण आर्गाज्म (शिखरोन्माद) घटता है, समय ठहर जाता है, तुम समय के बारे में भूल जाते हो। तुम्हारा मन ठहर जाता है, विचार रुक जाते हैं। एक गहन शांति और एक गहन होश होता है।
इस अनुभव से गुजरता हुआ कोई भी निरिक्षण करनेवाला स्वाभाविक रूप से सोचेगा, यदि ये सारी बातें बिना काम में गये पायी जा सकें- होश, निर्विचार और समयरहितता- तो तुम कामुकता से बचकर भी आर्गाज्मवाली स्थिति में पहुंच सकते हो। और मेरी समझ है कि इसी तरह मनुष्य ने पहली बार ध्यान खोजा होगा। स्वतंत्रता तो बस तुम्हें हर उस बात के लिये नितांत रूप से जिम्मेदार बनाती है जो तुम हो अथवा जो तुम होने वाले हो।
लोग हैं जो क्रोधित हो जाते हैं। ये ही वे लोग हैं जो क्रांतियां करते हैं, समाज में, राज्य में बदलाहट करते हैं। लेकिन उनकी सारी क्रांतियां

असफल रही हैं, क्योंकि क्रोध से पैदा हुई कोई भी बात अज्ञान से आ रही है।
उससे कोई भी असली बदलाहट नहीं होने वाली है।
क्रोध द्वारा कोई भी बदलाहट भले के लिये नहीं हो सकती।
मैं चाहता हूं कि तुम एक बात हमेशा याद रखो- कि दुःख और कुछ नहीं बल्कि शीर्षासन करता हुआ क्रोध है। वह भिन्न नहीं है, वह दमित क्रोध ही है। यदि तुम इस का विश्लेषण करो तो तुम इस तथ्य को देख सकोगे। दुःख आसानी से क्रोध में बदल सकता है; इसी तरह क्रोध दुख में बदल सकता है। ये दो भिन्न बातें नहीं हैं... संभवतः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
दुनिया दुखी है, पीड़ा में है। लोगों के हृदयों में गहन पीड़ा है। लेकिन तुम्हें इस बात के लिए दुःखी होने की जरूरत नहीं है; इस सीधे से कारणवश कि दुःखी होकर तुम भी उन्हीं में शामिल हो जाते हो; तुम दुख को और ज्यादा कर देते हो। यह कोई मदद न हुई।
यह ऐसे ही है जैसे कि लोग रुग्ण हैं, और तुम उनकी रुग्णता देखते हो और तुम भी रुग्ण बन जाते हो। तुम्हारी रुग्णता उन्हें स्वस्थ नहीं बनाने वाली; यह तो बस और रुग्णता पैदा करना है। उनके दुःख को महसूस करने का अर्थ होता है कारणों की खोज कि क्या है जो दुःख और पीड़ा पैदा कर रहा है? और फिर उन कारणों को मिटाने के लिए उनकी मदद करना।
और साथ ही साथ तुम्हें जितना संभव हो उतना आनंदित रहना है, क्योंकि तुम्हारा आनंद ही उन्हें मदद करनेवाला है- तुम्हारा विषाद नहीं। तुम्हें प्रसन्नचित्त रहना ही है। उन्हें पता चलना चाहिये कि इस दुःखी दुनिया में भी प्रसन्नचित्त होना संभव है... ।
क्रोध हमेशा कमजोरी का लक्षण है।
संकट के क्षण तुम्हें वास्तविकता का पता देते हैं जैसी वह है। वह हमेशा ही कोमल है, प्रत्येक व्यक्ति हमेशा ही खतरे में है। बात इतनी ही है कि सामान्य समय में तुम गहरी नींद में सोए होते हो, तो तुम इसे देख नहीं पाते। तुम सपने देखे चले जाते हो, आनेवाले दिनों के लिए भविष्य के लिए सुन्दर-सुन्दर बातों की कल्पनाएं किये चले जाते हो।
और उन क्षणों में जब खतरा करीब होता है, तब अचानक तुम्हें बोध होता है
कि हो सकता भविष्य न भी हो, कल न भी आये, कि केवल यही क्षण तुम्हारे पास है। संकट के क्षण बड़े उद्घाटक होते हैं। वे कोई नई बात दुनिया में नहीं लाते; वे तुम्हें केवल दुनिया जैसी है उसके बारे में सचेत करते हैं। यदि तुम इसे नहीं समझते, तो तुम पागल हो सकते हो; यदि तुम इसे समझते हो, तो तुम संबुद्ध हो सकते हो।
चिंता करना किसी काम का नहीं है क्योंकि उससे तुम केवल इस क्षण को चूक रहे होगे, और तुम किसी को मदद न कर पाओगे। तो यही वह राज है कि कैसे खतरे के पार जाना।
राज यह हैः और-और भरपूर जीना शरू करो, और-और ज्यादा समग्रता से, होशपूर्वक ताकि तुम अपने भीतर कुछ ऐसा पा लो जिसे मृत्यु नहीं छू पाती।
यही एक मात्र आश्रय है, एक मात्र सुरक्षा, एक मात्र बचाव।
तो यह सिर्फ हर बात का ठीक से उपयोग करने का सवाल है। वह जो कुछ भी है, उसका ठीक उपयोग करो।
संकट बड़ा है, खतरा बड़ा है, लेकिन अवसर भी उतना ही महान है।
वास्तविकता के विरोध में कोई भ्रम टिक नहीं सकता। वास्तविकता देर-सबेर उसे कुचल ही देने वाली है।
एक माता अथवा पिता का काम बड़ा महान है, क्योंकि वे दुनिया में एक नये मेहमान को ला रहें हैं- जिसे कुछ पता नहीं है, लेकिन जो अपने साथ कुछ संभावनायें ला रहा है। जब तक उसकी संभावनायें विकसित नहीं होती, वह दुःखी रहेगा; और कोई मां-बाप सोच भी नहीं सकते कि उनके बच्चे दुःखी रहें।
वे चाहते हैं कि सुखी हों। बात इतनी ही है कि उनकी सोच गलत है। वे सोचते हैं कि यदि उनके बच्चे डाक्टर बन जायें, प्रोफेसर बन जायें, इंजीनियर या वैज्ञानिक बन जायें, तो वे सुखी होंगे। वे जानते नहीं।
उनके बच्चे केवल तभी सुखी होंगे यदि वे वह बन जाएं जो बनने के लिये वे आये हैं। वे केवल वही बन सकते हैं जिनके बीज वे अपने भीतर लेकर आए हैं।

किसी के बारे में (अच्छे-बुरे का) निर्णय लेना कुरूप है इससे लोगों को चोट पहुंचती है। एक ओर तो तुम उन को चोट पहुंचाते जाते हो, उन्हें घाव देते जाते हो, और दूसरी ओर तुम उनका प्रेम, उनका सम्मान चाहते हो। यह असंभव है। उन्हें प्रेम करो, उन्हें सम्मान दो, और शायद तुम्हारा प्रेम और सम्मान उन्हें अपनी बहुत सारी कमजोरियों को, बहुत सारी असफलताओं को बदलने में मदद कर सके क्योंकि प्रेम उन्हें नई ऊर्जा, नये अर्थ, नयी शक्ति प्रदान करेगा। प्रेम उन्हें तेज हवाओं में, उत्तप्त धूप में, घनघोर वर्षा में भी खड़े रहने के लिये नई जड़ें प्रदान करेगा।
जब भी चुनाव का सवाल हो, तो हृदय के खिलाफ बुद्धि को नहीं चुना जा सकता। हृदय से अस्तित्व के साथ तुम्हारा संबध है और मन से समाज के साथ तुम्हारा सबंध है।
यदि तुम दुःखी हो तो तुम गलत हो; यदि तुम आनन्दित हो तो तुम ठीक हो।
जब मैं कहता हूं कि प्रसन्नचित्त रहो, आनंदित रहो, इसका आनन्द मनाओ कि तुम दुःखी और पीड़ित होने की स्थिति में नहीं हो, तो इसके पीछे मेरा एक खास अभिप्राय है।
अभिप्राय यह है कि तुम्हें उन लोगों के लिये एक उदाहरण बन जाना है जो पूरी तरह भूल ही चुके हैं कि जीवन एक आनन्द भी हो सकता है। सारे अंधेरों के बावजूद तुम अभी भी अंधेरो से निर्भार रह सकते हो, तुम अभी भी नृत्य कर सकते हो। अंधेरा तुम्हारे नृत्य को नहीं रोक सकता; उसके पास रोकने की शक्ति नहीं है। मेरे अनुसार यही सच्ची सेवा है।
मन को हृदय का सेवक होने के लिए प्रशिक्षण देना चाहिये।
तर्क को प्रेम की सेवा करनी चाहिये।
और तब जीवन प्रकाश का एक उत्सव बन सकता है।
पुरानी कहावत, "जैसा ऊपर वैसा नीचे" या इसका उलटा! इसमें रहस्यवाद का सारभूत सत्य समाया है। इसका अर्थ है कि न ऊपर न नीचे है, अस्तित्त्व एक है।
मन विभाजन खड़े करता है।
अस्तित्त्व अखंड है।
विभाजन हमारे प्रक्षेपण हैं, और हम इन विभाजनों से तादात्म्य जोड़ा लेते हैं कि हमारा पूर्ण से संबध छूट जाता है।
हमारा मन इस विराट अस्तित्त्व की ओर खुलने वाली एक छोटी-सी खिड़की है, लेकिन जब तुम हमेशा खिड़की में से ही देखते हो, तो खिड़की की चौखट बन जाती है। यद्यपि आकाश पर कोई चौखट नहीं है- वह असीम है- लेकिन हमारी आंखें खिड़की की चौखट को आकाश की चौखट मान लेती हैं। यह कुछ इस जैसा है जो लोग चश्मे का उपयोग करते हैं, कभी-कभार उनके साथ ऐसा होता है कि उनका चश्मा उनकी नाक पर चढ़ा और वे उसे ही ढूंढ़ रहे हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि चश्मे के बिना वे देख नहीं सकते, तो यदि वे ढूंढ़ रहे हैं और देख रहे हैं तो यह पक्का है कि चश्मा अपनी जगह पर है।
लेकिन यदि तुम वर्षों से चश्मे का उपयोग करते रहे हो धीरे-धीरे वे तुम्हारा अंग हो जाते हैं; वे तुम्हारी आंखें हो जाते हैं। तुम उन्हें अपने से अलग नहीं समझते। लेकिन चश्मे का हर जोड़ा देखी जाने वाली चींजों को अपना ही रंग दे सकता है। चश्मे के पीछे से देखने वाले तुम हो, चश्मे स्वयं से नहीं देख सकते। और बाहर की वस्तुओं का वह रंग नहीं है जो चश्मा उन पर थोप रहा है, लेकिन चश्मे से तुम्हारा ऐसा तादाम्य हो गया है... ।
मनुष्य का मन भी केवल एक उपकरण है। चश्मा तो खोपड़ी के बाहर है, मन खोपड़ी के भीतर है, इसलिये तुम उसे रोज निकालकर नहीं रख सकते। और भीतर तुम उसके इतने निकट हो कि वह निकटता ही तादाम्य बन गयी है।
तो जो भी मन देखता है लगता है कि वही वास्तविकता है और मन वास्तविकता
को देख नहीं सकता; मन केवल अपने पूर्वाग्रहों को ही देख सकता है। वह दुनिया के पर्दे पर अपने ही प्रक्षेपण को देख सकता है।
दुनिया में सत्य का सबसे बड़ा दुश्मन पंडित है, जानकार व्यक्ति- और सबसे बड़ा मित्र है वह जो जानता है कि वह नहीं जानता।
हमें कुछ इस तरह बताया, सिखाया, संस्कारित किया गया है कि प्रेम जैसी चीज को भी बुद्धि की बात बन जाना पड़ता है।

प्रेम मूलतः हृदय की बात है, लेकिन हमारे पूरे समाज ने हृदय से बचकर निकलने की कोशिश की है, क्योंकि हृदय तर्कसंगत नहीं है, युक्तिसंगत नहीं है और हमारे मन इस तरह की शिक्षा में प्रशिक्षित किये गये हैं कि कोई भी बात जो तर्कसंगत नहीं है वह गलत है, कोई भी अयुक्ति संगत बात गलत है, केवल तर्कपूर्ण बात सही है।
और हमारी शिक्षा के संस्कार में हृदय के लिये कोई स्थान नहीं है, वह केवल बुद्धि की है। हृदय को हमारे अस्तित्त्व से लगभग हटा ही दिया गया है, उसे मौन कर दिया गया है। उसे विकसित होने का कभी मौका ही नहीं दिया गया है, उसे अपनी संभावनाओं को वास्तविकता में बदलने का अवसर ही नहीं दिया गया है। तो बुद्धि हावी है।
जहां तक पैसों का संबंध है, जहां तक युद्ध का संबंध है, जहां तक महत्त्वकांक्षाओं का सम्बंध है, बुद्धि ठीक है, लेकिन प्रेमसंबंध में बुद्धि सर्वथा व्यर्थ है।
पैसा, युद्ध, आकांक्षा, महत्त्वकांक्षा, प्रेम को तुम इस कोटि में नहीं रख सकते।
प्रेम का तुम्हारे अस्तित्त्व में अलग ही स्रोत्र है जहां कोई विरोधाभास नहीं है।
वास्तविक शिक्षा केवल तुम्हारी बुद्धि को ही प्रशिक्षित नहीं करेगी, क्योंकि बुद्धि तुम्हें एक अच्छी आजीविका तो दे सकती है, लेकिन अच्छा जीवन नहीं। हृदय तुम्हें अच्छी आजीविका नहीं दे सकता, लेकिन एक अच्छा जीवन दे सकता है। और दोनों में से एक को चुनने का कोई कारण नहीं हैः बुद्धि का उपयोग उसके लिए करो जिसके लिए वह बनी है, और हृदय का उपयोग उसके लिए करो जिसके लिए वह बना है।
धर्म, राजनीतिज्ञ, व्यापारी, योद्धा सब चाहते हैं कि बुद्धि प्रशिक्षित की जाये। और हृदय तो एक बाधा हो सकता है, वह बाधा होने वाला है। यदि तुम एक सैनिक हो और यदि तुम्हारे पास हृदय है, तो तुम शत्रु की हत्या नहीं कर सकते। जिस क्षण तुम किसी की हत्या के लिये बंदुक उठाओगे, तुम्हारा हृदय कहेगा, जैसे तुम्हारी पत्नी है तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई- तुम्हारे बच्चे, तुम्हारी बूढ़ी मां और बूढे पिता- इस गरीब की पत्नी भी प्रतीक्षा कर रही होगी, इसके बच्चे, इसके बूढ़े मां-बाप अपने बेटे के घर लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।
इसने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा है और तुम इसकी हत्या करने जा रहे हो। किसलिये? काम में तरक्की पाने के लिये?
जब तुम समाज के, एक आदर्श समाज बनने के, एक स्वर्ग बनने के बारे में सोचते हो, यह बात असंभव प्रतीत होती हैः इतने सारे द्वंद्व हैं, और उन्हें लयपूर्ण करने का कोई उपाय नहीं दिखता।
एक लयबद्ध मानव समाज संभव है, संभव होना चाहिये, क्योंकि वह प्रत्येक
के विकसित होने के लिए सर्वश्रेष्ठ अवसर होगा, प्रत्येक के स्वयं होने के लिए श्रेष्ठतम अवसर होगा। प्रत्येक के लिए समृद्धतम संभावनाएं उपलब्ध होंगी।
जिस ढंग से समाज की व्यवस्था आज है, वह बड़ी ही मूढ़तापूर्ण है।
आदर्श राज्य की कल्पना करने वाले लोग (उटोपियन्स) स्वप्न द्रष्टा नहीं हैं, लेकिन तुम्हारे तथाकथित यथार्थवादी मूढ़ हैं जो उनकी निंदा करते हैं। लेकिन एक बात पर दोनों सहमत हैं कि बदलाहट समाज में जरूरी है।
वे सब के सब समाज की फिक्र में हैं और वहीं उनकी असफलता का राज है।
जहां तक मैं देखता हूं, आदर्श समाज की कल्पना कोई न हो सकने वाली बात नहीं है- यह कुछ ऐसी बात है जो असम्भव है, लेकिन हमें कारणों की ओर जाना चाहिए, लक्षणों की ओर नहीं।
और कारण व्यक्ति में हैं, समाज में नहीं।
मनुष्य भूल ही गया है कि सच में वह कौन है?
वह अपने बारे में किसी धारणा से आत्म-सम्मोहित हो गया है, और उस धारणा
को वह अपने पूरे जीवन ढोता है, बिना यह जाने कि यह धारणा वह नहीं है, बल्कि केवल छाया है। और तुम अपनी छाया को संतृप्त नहीं कर सकते।

किसी युद्ध की कोई जरूरत नहीं है, किसी झगड़े की कोई जरूरत नहीं, ईर्ष्या की जरूरत नहीं, घृणा की जरूरत नहीं। जीवन इतना छोटा है और प्रेम इतना बहुमूल्य है। और जब तुम अपने जीवन को प्रेम से, समस्वरता से, आनंद से भर सकते हो, जब तुम अपने जीवन को अपने आप में एक गीत बना सकते हो- तब यदि तुम चूकते हो, तो उसके लिए केवल तुम जिम्मेदार हो, अन्य कोई नहीं।
यह केवल समझने का सवाल है; निषेधात्मक, विनाशकारी और अंधेरों की शक्तियों द्वारा नीचे न खींच लिए जाने के लिये केवल जरा सी अंतदृर्ष्टि की जरूरत है।
जरा सी सजगता की जरूरत है अपने को सृजनात्मकता के, प्रेम के और संवेदनशीलता के प्रति समर्पित करने के लिये और इस छोटे से जीवन को गीतों की एक लड़ी बना देने के लिये- ताकि तुम अपने जीवन में नाचो और तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे नृत्य का शिखर होगी; ताकि तुम समग्रता से जीओ और समग्रता से मरो, शिकायत के साथ नहीं, बल्कि अहोभावपूर्वक, अस्तित्त्व के प्रति धन्यवादपूर्वक। हर व्यक्ति चाहता है कि प्रेम मिले। और यह एक गलत शरूआत है। और यह इसलिये शुरू होती है क्योंकि छोटा बच्चा प्रेम नहीं कर सकता, कुछ कह नहीं सकता, कुछ कर नहीं सकता, कुछ दे नहीं सकता, वह केवल ले सकता है। छोटे बच्चे का प्रेम का अनुभव केवल पाने का है- मां से पाने का, पिता
से पाने का, भाइयों से, बहनों से, अतिथियों से पाने का, अजनबी लोगों से पाने का लेकिन हमेशा पाने का ही। तो पहला अनुभव उसके गहरे अचेतन में घर कर जाता है- कि प्रेम उसे पाना है।
लेकिन समस्या खड़ी होती है क्योंकि हर कोई बच्चा रह चुका है, और सभी की वही चाह है, प्रेम पाने की कोई भी किसी और तरह से पैदा नहीं हुआ है। तो सब मांगते रहे हैं, हमें प्रेम दो और कोई देने वाला है नहीं, क्योंकि दूसरे व्यक्ति का पालन पोषण भी इसी ढंग से हुआ है।
तो थोड़े होशपूर्ण और सचेत होने की जरूरत है कि जन्म के समय की एक दुर्घटना तुम्हारे मन की सतत भावदशा नहीं बनी रह जानी चाहिए। "मुझे प्रेम दो," ऐसे मांगने के बजाय प्रेम देना शुरू करो। पाने की बात भूल जाओ, केवल दो; और मैं तुम्हें वचन देता हूं, बहुत मिलेगा तुम्हें।
विकास की प्रक्रिया दो ध्रुव के जरिए चलती काम करती है। जैसे तुम एक पैर से चल नहीं सकते, चलने के लिये तुम्हें दो पैर चाहिये, अस्तित्त्व को भी विपरीत ध्रुवों की जरूरत होती है- पुरुष और स्त्री, जीवन और मृत्यु, प्रेम और घृणा- गति पैदा करने के लिये; अन्यथा केवल मौन होगा।
एक ओर तो विपरीत तुम्हें आकर्षित करता है और दूसरी ओर तुम्हें लगता
है कि तुम आश्रित हो रहे हो। और कोई भी आश्रित होना नहीं चाहता; इसीलिए प्रेमियों के बीच एक सतत संघर्ष है। वे एक-दूसरे पर हावी होने की कोशिश कर रहे हैं।
नाम प्रेम है, लेकिन खेल राजनीति का है।
पुरुष की सारी कोशिश स्त्री पर हावी होने की है, उसे हीन बनाने की रहती है, उसे विकसित न होने देने की रहती है ताकि वह मानसिक रूप से सदा अविकसित बनी रहे।
पुरुष की गुलामी से स्त्री की स्वतंत्रता, पुरुष के लिये भी स्वतंत्रता का अनुभव रहेगा।
तो मैं कहता हूं कि नारी-स्वतंत्रता आंदोलन (वूमेन्स लिबरेशन मूवमेंट) में केवल स्त्रियों की ही स्वतंत्रता नहीं है, यह पुरुष-स्वतंत्रता आंदोलन भी है; दोनों स्वतंत्र होंगे।
यह गुलामी दोनों को बांध रही है, और लगातार संघर्ष है। स्त्री ने पतियों को सताने की, तंग करने की, नीचा दिखाने की अपनी चालें खोज ली हैं; पुरुष की अपनी चालें हैं। और इन दो लड़ने वाले गुटों के बीच हम आशा करते रहे हैं कि प्रेम घट रहा है। सदियां बीत गईं, प्रेम पैदा नहीं हुआ, या कभी-कभार हो जाता है।
यह है हालत साधारण प्रेम की, जो बस नाम का प्रेम है, वास्तविकता नहीं।
यदि तुम प्रेम के बारे में मेरी दृष्टि पूछते हो... तो यह द्वंद्ववाद का, विरोध का प्रश्न ही नहीं है। स्त्री और पुरुष भिन्न और परिपूरक हैं।

अकेला पुरुष आधा है, और वैसे ही स्त्री भी। केवल साथ-साथ, गहरी एकता की भावदशा में ही पहली बार वे समग्रता को, पूर्णता को अनुभव करते हैं। हजारों सालों से पुरुष ने जो स्त्री के साथ किया है, वह बस दानवतापूर्ण है। वह स्वयं को पुरुष के बराबर की सोच ही नहीं सकती। और वह इतने गहरे संस्कारों से कि यदि तुम उसे कहो भी कि वह समान है, तो वह विश्वास नहीं करने वाली। यह बात करीब-करीब उसके मन में बैठ गयी है, यह संस्कार कि वह हर बात में कम है- शारीरिक शक्ति में, बौद्धिक गुणों में। और पुरुष ने जिसने स्त्री को इस हालत तक नीचे गिराया है, वह भी उसे प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम केवल समानता में, मित्रता में ही हो सकता है। यदि तुम बिना ईर्ष्या के प्रेम कर सको, यदि तुम बिना मोह के प्रेम कर सको, यदि तुम किसी व्यक्ति को इतना प्रेम कर सको कि उसकी खुशी ही तुम्हारी खुशी हो, अगर वह किसी दूसरी स्त्री के साथ भी हो और खुश हो तो यह भी तुम्हें खुश करता हो क्योंकि तुम उसे इतना प्रेम करती होः उसकी खुशी तुम्हारी खुशी है। तुम खुश होगे क्योंकि वह खुश है, और उस स्त्री के प्रति अनुगृहित होगी जिसने उस व्यक्ति को आनंदित किया जिसे तुम प्रेम करती हो- तुम ईर्ष्यालु नहीं होगी। तब प्रेम शुद्धता तक पहुंचा।

प्रवचन -17

जीवन के विभिन्न आयामों पर ओशो का नजरिया

(Quotations on different aspects of life, translated from misc. english discourses)

प्रेमः

यह प्रेम कोई बंधन नहीं निर्मित कर सकता। और यह प्रेम ही हृदय को सम्पूर्ण आकाश के प्रति, सारी हवाओं के प्रति खोल देना है।

ईर्ष्या बहुत जटिल है। उसमें कई उपादान सम्मिलित हैं। कायरता उनमें से एक है; अहंकारी ढंग दूसरा है; एकाधिकारत्व की आकांक्षा - प्रेम की अनुभूति नहीं बल्कि पकड़ की; प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति; हीन होने का एक गहरे में बैठा भय।

बहुत सारी बातें ईर्ष्या में सम्मिलित हैं।

खतरे मोल लेना असली मनुष्य के मूल आधारों में से एक होना चाहिये।

जिस पल तुम देखो कि चीजें स्थिर होने लगीं, उन्हें बिखरा दो।

प्रेम की जड़ें

हमने कभी प्रेम की जड़ों की फिक्र नहीं की, और हमने फूलों के संबंध में ही बातें की हैं। हम लोगों को अहिंसक होने के लिए, करुणावान होने के लिए, प्रेमपूर्ण होने के लिए कहते हैं - इतने ज्यादा कि तुम अपने शत्रु को प्रेम कर सको, इतने ज्यादा कि तुम अपने पड़ोसियों को भी प्रेम कर सको।

हम फूलों के बारे में बातें करते हैं, लेकिन जड़ों में किसी का रस नहीं है।

सवाल यह है कि हम प्रेमपूर्ण प्राणी क्यों नहीं हैं? यह इस व्यक्ति को, उस व्यक्ति को, मित्र को, शत्रु को प्रेम करने का सवाल नहीं है; सवाल यह है कि तुम प्रेमपूर्ण हो या नहीं?

क्या तुम अपने ही शरीर को प्रेम करते हो? क्या तुमने अपने ही शरीर को कभी प्रेमपूर्ण दुलार से छूने की फिक्र की है? क्या तुम स्वयं को प्रेम करते हो?

तुम गलत हो, और तुम्हें स्वयं को ठीक करना है! तुम पापी हो, और तुम्हें पुण्यात्मा होना है! तुम स्वयं को प्रेम कैसे कर सकते हो?- तुम स्वयं को स्वीकार तक नहीं कर सकते। और ये जड़ें हैं।

प्लास्टिक के फूल स्थार्यी होते हैं - प्लास्टिक (नकली)-प्रेम स्थार्यी होगा। असली फूल स्थायी नहीं है; वह क्षण-क्षण बदल रहा है। आज वह है, हवाओं में और धूप में, और वर्षा में नाचता हुआ। कल वह तुम्हें खोजे न मिलेगा। वह उतने ही रहस्यमय ढंग से विदा हो गया है जितने रहस्यमय ढंग से प्रगट हुआ था।

असली प्रेम असली फूल जैसा है।

प्रेम है स्वतंत्रता

वास्तविकता यह है कि हम अकेले हैं, हम अजनबी हैं - और दुनिया कहीं ज्यादा सुंदर होगी यदि हम इसे स्वीकार करें, इस मूलभूत सत्य को कि हम अजनबी हैं।

और एक अजनबी के साथ प्रेम में पड़ने में बुराई क्या है? इस बात की जरूरत क्या है कि किसी अजनबी के प्रेम में पड़ने से पहले अजनबीपन खत्म होना चाहिये?

यह जीवन के सौंदयों में से एक है कि हम सब के सब अजनबी हैं और इस असलियत को बदलने का कोई उपाय नहीं है। यह सुंदर है कि अजनबी तुम्हें प्रेम कर रहे हों, अजनबी तुम्हारे मित्र हों, सारी दुनिया अजनबियों से भरी हो। तब पूरी दुनिया एक रहस्य बन जाती है - और रहस्य वह है।

यह एक जाना-माना तथ्य है। तुम किसी पुरुष के प्रेम में पड़ती हो; तुम वास्तविक व्यक्ति के प्रेम में नहीं पड़ती हो, तुम अपनी कल्पनाओं के पुरुष

के प्रेम में पड़ती हो। जब तुम साथ-साथ नहीं हो, और तुम उस व्यक्ति को अपनी बाल्कनी से देखती हो, या उसे समुद्र तट पर कुछ मिनटों के लिये मिलती हो, या सिनेमागृह में एक दूसरे का हाथ थामे हुए हो, तो तुम्हें लगने लगता है, "हम एक-दूसरे के लिये ही बने हैं।"
लेकिन कोई एक-दूसरे के लिये नहीं बना है। अचेतन रूप से, तुम उस व्यक्ति पर और-और अधिक कल्पनाओं को प्रक्षेपित करती चली जाती हो। तुम उस व्यक्ति के आसपास एक प्रकार का आभामंडल खड़ा कर लेती हो, वह तुम्हारे आसपास एक आभामंडल खड़ा कर लेता है। प्रतीत होता है, क्योंकि तुम उसे सुंदर बना रही हो, तुम सपना खड़ा कर रही हो और यथार्थ को टाल रही हो। तुम दोनों ही हर संभव ढंग से कोशिश करते हो कि दूसरे की कल्पनाओं को बाधा न पहुंचे।
तो स्त्री वैसा व्यवहार कर रही है, जैसा पुरुष चाहता है कि वह करे; पुरुष वैसा व्यवहार कर रहा है, जैसा स्त्री चाहती है कि वह करे। लेकिन ऐसा तुम कुछ मिनटों के लिये या कुछ घंटों के लिये ही कर सकते हो। एक बार तुम विवाह कर लो और तुम्हें चौबीस घंटे साथ-साथ रहना पड़े, तो जो तुम नहीं हो वह होने का नाटक करना भारी बोझ बन जाता है।
केवल पुरुष की या स्त्री की कल्पना पूरा करने के लिये कब तक तुम अभिनय
कर सकते हो? देर-अबेर यह बोझ बन जाता है और तुम बदला लेना शुरू करते हो। तुम उन सारी कल्पनाओं को तोड़ने लगती हो जो पुरुष ने तुम्हारे चारों और निर्मित कर ली थीं क्योंकि तुम उनमें कैद नहीं होना चाहती; तुम स्वतंत्र होना चाहती हो और जैसी हो वैसी होना चाहती हो।
और यही स्थिति पुरुष की हैः वह स्वतंत्र होना चाहता है और केवल स्वयं जैसा होना चाहता है और यही सारे प्रमियों सारे संबंधों के बीच की सतत कलह है।
प्रेम स्वतंत्रता देता है। प्रेम उसकी स्वतंत्रता देता है जो दूसरे
को करने जैसा लगता है। जो भी उसे करने जैसा लगता है- यदि वह उसे आनंदित करता है, तो यह उसका चुनाव है।
यदि तुम उस व्यक्ति को प्रेम करते हो, तुम उसकी निजता में हस्तक्षेप नहीं करोगे। तुम उस व्यक्ति को अबाधित रहने दोगे। तुम उसके आंतरिक अस्तित्त्व में अतिक्रमण नहीं करोगे।

बेशर्त प्रेम
प्रेम की यह मूलभूत जरूरत है कि, "मैं दूसरे व्यक्ति को जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करता हूं।" और प्रेम कभी भी व्यक्ति को अपने ख्यालों के अनुरूप ढालने की कोशिश नहीं करता। तुम व्यक्ति को नाप-तौल का बनाने के लिये काटते-छांटते नहीं- जो कि सारी दुनियां में सब और किया जा रहा है... । यदि तुम प्रेम करते हो, तो कोई शर्त नहीं लगायी जानी हैं।
यदि तुम प्रेम नहीं करते हो, तो तुम शर्त लगाने वाले होते कौन हो?
दोनों ढंग से बात स्पष्ट है। यदि तुम प्रेम करते हो तो शर्तों का कोई सवाल ही नहीं है। तुम उसे जैसा वह है वैसा ही प्रेम करते हो। यदि तुम प्रेम नहीं करते हो, तब भी कोई समस्या नहीं। वह तुम्हारा कोई नहीं; शर्त रखने का कोई प्रश्न ही नहीं। वह जो कुछ भी करना चाहता है, कर सकता है।
यदि ईर्ष्या खतम हो जाये और फिर भी प्रेम बचे, तभी तुम्हारे जीवन में कुछ अर्थपूर्ण है जो बचाने योग्य है।
जीयो और प्रेम करो, और पूर्णता से, पूरी त्वरा से प्रेम करो लेकिन कभी
भी स्वतंत्रता के खिलाफ नहीं।
स्वतंत्रता आत्यांतिक मूल्य रहना चाहिए।
हमें लगातार सिखाया गया है कि प्रेम एक संबंध है, तो वही धारणा हमारी आदत बन गई है। लेकिन यह सच नहीं है। वह निम्नतम प्रकार का है- बड़ा प्रदूषित।
प्रेम तो हमारे होने का ढंग है।

प्रेम और आसक्ति
इस धारणा को छोड़ दो कि आसक्ति और प्रेम एक बात है। वे एक-दूसरे के शत्रु हैं। यह आसक्ति है जो समस्त प्रेम को नष्ट करती है।

यदि तुम आसक्ति को बढ़ावा दो, पोषण दो, तो प्रेम नष्ट हो जायेगा; यदि तुम प्रेम को बढ़ावा दो, पोषण दो तो आसक्ति अपने-आप गिर जायेगी।
प्रेम और आसक्ति एक नहीं हैं; वे दो अलग-अलग सत्ताएं हैं, और एक-दूसरे
की विरोधी।

प्रेम मांगो मत- दो
प्रेम देना सुंदर और वास्तविक अनुभव है, क्योंकि तब तुम एक सम्राट हो। प्रेम पाना एक बहुत छोटा अनुभव है, और वह भिखारी का अनुभव है।
भिखारी मत बनो। कम से कम जहां तक प्रेम का सवाल है, सम्राट बनो, क्योंकि प्रेम तुम्हारे भीतर का कभी न चुकने वाला गुण है; तुम जितना चाहो, देते जा सकते हो। चिंता मत करो कि वह खतम हो जायेगा, कि एक दिन अचानक तुम पाओगे, "हे ईश्वर! अब मेरे पास देने के लिये जरा भी प्रेम न बचा।"
प्रेम मात्रा (क्वांटिटी) नहीं है, वह गुण (क्वालिटी) है, और गुण भी ऐसी कोटि का जो देने से बढ़ता है, और यदि तुम पकड़कर रखो तो मर जाता है। यदि तुम देने में कंजूस रहे, तो वह मर जाता है। तो सचमुच खुले हाथों लुटाओ! इसकी चिंता मत करो कि किसे। वह सही अर्थों में कंजूस मन का ख्याल है- कि "मैं अपना प्रेम निश्चित गुणों वाले निश्चित व्यक्तियों को ही दूंगा।" तुम समझते नहीं कि तुम्हारे पास इतना अधिक है- तुम वर्षा के बादल हो। वर्षा के बादलों को चिंता नहीं होती कि वे कहां बरस रहे हैं- चट्टानों पर, बगीचों में, सागरों में- उससे फर्क नहीं पड़ता। वह भारहीन होना चाहता है, और भारहीन होना बड़ी राहत है।
तो पहला रहस्य हैः कि प्रेम मांगो मत। प्रतीक्षा मत करो, यह सोचते हुये कि जब कोई मांगेगा तभी उसे दूंगा- दो!

प्रेमः एक लयपूर्ण संवाद
प्रेम को समझने के लिये पहले तुम्हें प्रेमपूर्ण होना चाहिए, केवल तभी तुम प्रेम को समझ सकते हो। लाखों लोग पीड़ित हैंः वे प्रेम किया जाना चाहते हैं लेकिन वे प्र्रेम करना नहीं जानते। और प्रेम एकालाप के रूप में नहीं रह सकता; यह संवाद है, बड़ा ही लयपूर्ण संवाद।
लोग तुम्हें जो देते हैं, वह तुम्हें तृप्त नहीं करता, तुम जो लोगों
को देते हो वह तुम्हें तृप्त करता है। भिखारी होकर तुम संतुष्ट नहीं हो सकते सम्राट होकर तुम संतुष्ट होगे और प्रेम, जब तुम देते हो, तुम्हें सम्राट बनाता है।
तुम इतना अधिक दे सकते हो, अक्षय रूप से, कि जितना ज्यादा तुम देते हो उतना ही शुद्ध, उतना ही झंकृत, उतना ही सुगंधित तुम्हारा प्रेम होता जाता है।
जिस पल तुम समझते हो कि प्रेम क्या है- तुम अनुभव करते हो कि प्रेम क्या है- तुम प्रेम हो जाते हो। तब तुममें प्रेम पाने की जरूरत नहीं रह जाती, और तुममें यह जरूरत भी नहीं रह जाती कि तुम्हें प्रेमपूर्ण होना चाहिए, प्रेमपूर्ण होना तुम्हारा सहज, स्फूर्त अस्तित्त्व होगा, तुम्हारी श्वास-प्रश्वास।
तुम और कुछ कर ही नहीं सकते, तुम केवल प्रेमपूर्ण होगे।
अब यदि बदले में तुम तक प्रेम नहीं लौटता, तुम चोट नहीं महसूस करोगे,
इस सरल से कारण से कि केवल वही व्यक्ति प्रेम कर सकता है जो स्वयं प्रेम हो गया हो। तुम केवल वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है।
लोगों से मांग करना कि वे तुम्हें प्रेम करें- लोग जिनके जीवन में प्रेम है ही नहीं, जो अपने अस्तित्त्व के उन स्रोतों तक पहुंचे ही नहीं है जहां प्रेम का मंदिर है... कैसे वे तुम्हें प्रेम कर सकते हैं? वे दिखावा कर सकते हैं। वे कह सकते हैं कि वे प्रेम करते हैं। वे इस ख्याल में भी हो सकते हैं कि वे प्रेम करते हैं। लेकिन देर-अबेर यह प्रगट होने वाला है कि यह केवल दिखावा है, कि यह केवल अभिनय है, कि यह केवल पाखंड है।
हो सकता है कि तुम्हें धोखा देने का इरादा भी न हो, लेकिन व्यक्ति कर
ही क्या सकता है? तुम प्रेम मांगते हो और वह व्यक्ति भी प्र्रेम चाहता है। दोनों इसे समझते हैं- कि उनसे अपेक्षा है प्रेम अपेक्षा करने की, तो ही

उन्हें प्रेम मिलेगा- तो दोनों ही प्रेम करने की हर कोशिश करते हैं। यह भावभंगिमा है- लेकिन कोरी भावभंगिमा। दोनों को इस बात का पता चल जाने वाला है और दोनों ही एक दूसरे के खिलाफ शिकायत करने वाले हैं, कि यह ठीक नहीं है।
शुरू से ही दो भिखमंगे एक-दूसरे से भीख मांग रहे थे, और दोनों के पास केवल खाली भिक्षापात्र हैं।
अहंकार सबसे बड़ा बंधन है, एकमात्र नर्क जो मुझे पता है।
जिन लोगों ने प्रेम का स्रोत स्वयं के भीतर पा लिया है, उनको यह जरूरत नहीं रह जाती कि कोई उन्हें प्रेम करे- और उन्हें प्रेम किया जाएगा।
वे प्रेम किसी और कारण से नहीं करते बल्कि सिर्फ इसलिये कि उनके पास
वह बहुत ज्यादा है- जैसे जल से भरा बादल बरसना चाहता है, जैसे फूल अपनी सुगंध लुटाना चाहता है, बिना कुछ मिलने की आकांक्षा के। प्रेम का पुरस्कार प्रेम करने में है, प्रेम पाने में नहीं।
और ये जीवन के रहस्य हैं कि यदि व्यक्ति प्रेम करने में ही प्रेम का पुरस्कार अनुभव करने लगे, तो बहुत लोग उसे प्रेम करेंगे, क्योंकि उसके संपर्क में आने से ही उन्हें धीरे-धीरे अपने स्वयं के भीतर के स्रोत का पता चलने लगता है। अब वे कम से कम एक व्यक्ति को जानते हैं जो प्रेम बरसाता है, और जिसका प्रेम किसी जरूरत से नहीं निकल रहा है। और जितना ज्यादा वह प्रेम बांटता और बरसाता है, उतना ही प्रेम बढ़ता है।

प्रेम और घृणा
जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं है, कुछ भी स्थायी हो नहीं सकता। किसी भी चीज को स्थायी बनाना तुम्हारे हाथ में नहीं है। केवल मृत चीजें स्थायी हो सकती हैं। कोई भी चीज जितनी ज्यादा जीवंत है, उतनी ही ज्यादा क्षणभंगुर होगी।
आज प्रेम है कल की किसे खबरः रह भी सकता है, नहीं भी रह सकता। उसका नियंत्रण करना तुम्हारे हाथ में नहीं है। वह एक घटना है तुम कुछ भी कर नहीं सकते; तुम उसे पैदा नहीं कर सकते यदि वह न हो। या तो वह होता है अथवा वह नहीं होता है- तुम बस असहाय हो। पत्थर स्थायी हो सकते हैं, फूल नहीं हो सकते। और प्रेम पत्थर नहीं है। वह एक फूल है, और अनूठी गुणवत्ता वाला। हृदय द्वंद्व का अतिक्रमण है। हृदय चीजों को स्पष्टता से देखता है और प्रेम उसका स्वाभाविक गुण है- ऐसी चीज नहीं जिसमें प्रशिक्षण लेना हो और इस प्रेम में घृणा उसके प्रतिपक्ष के रूप में उपस्थित नहीं रहती।
तुम प्रेम-घृणा रूपी द्वंद्व के पार जाने में समर्थ हो।
अभी वे तुम्हारे जीवन में साथ-साथ चलते हैं। तुम उसी व्यक्ति से प्रेम करते हो जिससे तुम घृणा करते हो। तो सुबह घृणा है, शाम को प्रेम है- और यह बड़ी चकराने वाली बात है। तुम जान ही नहीं पाते कि तुम इस व्यक्ति से प्रेम करते हो या घृणा करते हो, क्योंकि अलग-अलग समयों पर तुम दोनों ही करते हो।
लेकिन यही मन के काम करने का ढंग है; वह विरोधाभासों के जरिए काम करता है। विकास भी विपरीत के माध्यम से काम करता है; लेकिन वे विपरीतताएं अस्तित्त्व के लिए विरोधाभास नहीं हैं, वे परिपूरक हैं।
घृणा भी एक तरह का प्रेम है- शीर्षासन करता हुआ।
जो प्रेम मन से आता है वह हमेशा प्रेमघृणा होता है। ये दो शब्द नहीं हैं, यह एक शब्द हैः "प्रेमघृणा"- उनके बीच संयोजक चिन्ह भी नहीं है। और प्रेम, जो तुम्हारे हृदय से आता है, वह सभी द्वंद्वों के पार है... ।
हर व्यक्ति उसी प्रेम की खोज में है जो प्रेम और घृणा के पार जाता है- लेकिन मन के द्वारा, खोज रहे हैं, इसीलिये दुखी हैं। प्रत्येक प्रेमी असफलता महसूस करता है, धोखा हुआ, विश्वासघात हुआ महसूस करता है लेकिन इसमें किसी का दोष नहीं है। असलियत यह है कि तुम गलत उपकरण का उपयोग कर रहे हो। यह ऐसे ही है जैसे कोई व्यक्ति आंखों का उपयोग संगीत सुनने के लिये कर रहा हो, और फिर विक्षिप्तता प्रगट करता है कि कहीं कोई संगीत नहीं है लेकिन आंखों का काम सुनना और कानों का काम देखना नहीं है। मन अति व्यापारी किस्म का, हिसाबी-किताबी यंत्र है; उसका प्रेम से कोई लेना-देना नहीं।

प्रेम एक अराजकता होगी। वह मनका सब कुछ अस्त-व्यस्त कर देगा। हृदय का व्यापार से कोई लेना-देना नहीं- वह सदा ही छुट्टी पर है। वह प्रेम कर सकता है और ऐसा प्रेम कर सकता है जो घृणा में कभी नहीं बदलता; उस के पास घृणा के जहर नहीं हैं।
हर व्यक्ति इसी की खोज कर रहा है, लेकिन बस गलत उपकरण से; इसीलिये जगत में असफलता है। और धीरे-धीरे लोग, यह देखकर कि प्रेम केवल दुख लाता है, बंद हो गये हैं "प्रेम बकवास है।" वे प्रेम के विरोध में बड़ी दीवारें खड़ी कर लेते हैं। लेकिन वे जीवन के समस्त आनंदों को चूकेंगे, वे जो भी जीवन में मूल्यवान है उस सबको चूकेंगे।

व्यक्तित्व
तुम एक भीड़ हो, बड़ी भीड़। तुम्हें जरा नजदीक से, जरा गहराई से देखना पड़ेगा और तुम स्वयं के भीतर बहुत से लोगों को पाओगे। और वे सारे लोग समय-समय पर नाटक करते हैं तुम होने का। जब तुम क्रोधित होते हो, एक तरह का व्यक्तित्व तुम पर हावी हो जाता है और नाटक करता है कि यह तुम हो। जब तुम प्रेमपूर्ण होते हो, तब एक दूसरा व्यक्तित्व तुम पर हावी होता है और नाटक करता है कि यह तुम हो।
यह बात न केवल तुम्हें विभ्रम में डालने वाली है बल्कि जो भी तुम्हारे संपर्क में आता है उन सबको विभ्रम में डालने वाली है, क्योंकि वे कुछ तय नहीं कर पाते। वे स्वयं ही एक भीड़ हैं।
और हर संबंध में केवल दो व्यक्ति ही विवाहित नहीं हो रहे हैं, बल्कि
दो भीड़़ें विवाहित हो रही हैं। अब लगातार घमासान युद्ध होने जा रहा है, क्योंकि मुश्किल से ही ऐसे क्षण आयेंगे- बस भूल चूक से- जब तुम्हारा प्रेमपूर्ण व्यक्ति और दूसरे का प्रेमपूर्ण व्यक्ति प्रभाव में रहेंगे। अन्यथा तो तुम चूकते ही जाते हो। तुम प्रेमपूर्ण हो, लेकिन दूसरा दुःखी, क्रोधित और चिन्तित है। और जब वह प्रेमपूर्ण दशा में है, तब तुम प्रेमपूर्ण नहीं हो। और इन व्यक्तित्वों को अपनी ओर से लाने का कोई उपाय नहीं है; वे अपनी ही मर्जी से चलते हैं।

द्रष्टा
तुम्हारे भीतर एक चक्राकार गति है, और यदि तुम केवल देखते रहो- इन व्यक्तित्वों के साथ छेड़-छाड़ मत करो क्योंकि उससे तो ज्यादा गड़बड़ पैदा होगी, ज्यादा विभ्रम पैदा होंगे। सिर्फ देखो, क्योंकि इन व्यक्तित्वों को देखते हुए तुम्हें बोध होनेवाला है कि एक देखनेवाला भी है, जो कि कोई व्यक्तित्व नहीं है, जिसके समक्ष ये सारे व्यक्तित्व आते और जाते हैं। और यह कोई दूसरा व्यक्तित्व नहीं है, क्योंकि एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व को नहीं देख सकता। यह बड़ी ही सारभूत और रोचक बात है- कि एक व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व को देख नहीं सकता, क्योंकि इन व्यक्तित्वों में कोई आत्मा नहीं होती।
ये तुम्हारे वस्त्रों जैसे हैं। तुम अपने वस्त्र बदलते जा सकते हो, लेकिन तुम्हारे वस्त्र यह नहीं जान सकते कि वे बदल दिये गये हैं, कि अब एक दूसरे वस्त्र का उपयोग किया जा रहा है। तुम वस्त्र नहीं हो, इसलिये तुम उन्हें बदल सकते हो। तुम व्यक्तित्व नहीं हो- इसलिए तुम इन असंख्य व्यक्तित्वों के प्रति सजग हो सकते हो।
लेकिन इससे एक बात और बहुत साफ हो जाती है कि कुछ है जो तुम्हारे आसपास चलने वाले व्यक्तित्वों के इस सारे खेल को देखता रहता है।
और यही तुम हो।
तो इन व्यक्तित्वों को देखो, लेकिन याद रहे कि तुम्हारा देखना ही, तुम्हारी वास्तविकता है। यदि तुम इन व्यक्तित्वों को देखते रह सको- तो ये व्यक्तित्व विदा होने लगेंगे; वे जीवित नहीं रह सकते। जीवित रहने के लिये उनको तादात्म्य की जरूरत है। यदि तुम क्रोध में हो तो उसकी जरूरत है कि तुम देखना भूलो और क्रोध के साथ तादात्म्य में होओ अन्यथा क्रोध का कोई जीवन नहीं है; वह पहले से ही मृत है, मर रहा है, विलीन हो रहा है।

तो अपने द्रष्टा में ज्यादा से ज्यादा एकाग्र रहो, और ये सारे व्यक्तित्व खो जायेंगे। और जब कोई व्यक्तित्व नहीं बचता, तब तुम्हारी वास्तविकता- मालिक- घर आ गया है।
तब तुम ईमानदारी से, प्रामाणिकता से व्यवहार करते हो। तब जो कुछ भी तुम करते हो, समग्रता से, पूर्णता से करते हो- कभी पछताते नहीं हो। तुम हमेशा आनंदित भावदशा में होते हो।
हमारी बहुत-सी समस्याएँ- शायद अधिकांश समस्याएँ- इसलिये हैं क्योंकि हमने उन्हें आमने-सामने करके नहीं देखा है, उनका सामना नहीं किया है। और उनकी ओर न देखना उन्हें ऊर्जा दे रहा है। उनसे भयभीत रहना उन्हें ऊर्जा दे रहा है, हमेशा उनसे बचने की कोशिश उन्हें ऊर्जा दे रही है- क्योंकि तुम उन्हें स्वीकार कर रहे हो। तुम्हारा स्वीकार ही उनका अस्तित्त्व है। तुम्हारे स्वीकार के अतिरिक्त उनका कोई अस्तित्त्व नहीं है।
ऊर्जा का स्रोत तुम्हारे पास है। जो कुछ भी तुम्हारे जीवन में घटता
है उसको तुम्हारी ऊर्जा की जरूरत होती है। यदि तुम ऊर्जा के स्रोत को काट दो और- दूसरे शब्दों में उसे ही मैं तादात्म्य कहता हूं- यदि तुम किसी भी चीज से तादात्म्य न जोड़ो, तो वह तत्क्षण मृत हो जाती है, उसके पास अपनी कोई ऊर्जा नहीं है
और अ-तादात्म्य द्रष्टा होने का ही दूसरा पहलू है।
आदतें आसान है, होश कठिन है- लेकिन केवल शुरु में ही।

वर्तमान क्षण
हृदय को अतीत का कुछ पता नहीं, भविष्य का कुछ पता नहीं; उसे केवल वर्तमान का पता है। हृदय को समय की कोई धारणा नहीं है।
बिना भविष्य के जीना सबसे बड़ा साहस है। केवल कायर भविष्य में जीते हैं। मनुष्य का अतीत बड़ा ही कायरतापूर्ण रहा है। वह वर्तमान में नहीं, भविष्य में जीता रहा हैः "जो भी होना है, सब कल होना है।" और उसी आशा में लोग जीये और मर गये। जिसकी वे प्रतीक्षा कर रहे थे, वह कभी उपस्थित ही न हुआ। वह सिर्फ गोडोट की प्रतीक्षा सिद्ध हुई।
वर्तमान अनजीया और अनखोजा ही रहा- और वही एकमात्र वास्तविकता है जिसका अस्तित्त्व है।
इस बात को समझो कि अतीत और भविष्य का कोई अस्तित्त्व नहीं है। सब जो तुम्हारे हाथ में है, वह केवल एक छोटा-सा क्षण हैः यही क्षण। तुम्हें दूसरा क्षण भी नहीं मिलता। तुम्हारे हाथ में, केवल एक क्षण होता है; और वह इतना छोटा और इतनी तेजी से भागता हुआ है कि यदि तुम अतीत और भविष्य के बारे में सोच रहे हो, तो तुम उससे चूक जाओगे। और वही क्षण एकमात्र जीवन है और वही क्षण एकमात्र वास्तविकता है।

राजनीति
राजनीति एक रोग है, और उसका ठीक उसी प्रकार उपचार किया जाना चाहिये।
और यह केंसर से भी ज्यादा खतरनाक है; यदि शल्यचिकित्सा की जरूरत हो तो वह भी करनी चाहिये। लेकिन राजनीति मूलरूप से गंदी है। वह होगी ही, क्योंकि एक पद के पीछे हजारों लोग भूखे हैं, लालायित हैं। तो स्वभावतः वे लड़ेंगे, वे हत्या करेंगे; वे कुछ भी कर डालेंगे।
हमारे मन का पूरा संस्कार इतना गलत है इस अर्थ में कि हम महत्त्वाकांक्षी होने के लिए संस्कारित किये गये हैं- और वही वह जगह है जहां राजनीति है। वह केवल राजनीति के सामान्य जगत में ही नहीं है, उसने तुम्हारे सामान्य जीवन को भी विषाक्त किया हुआ है।
छोटा बच्चा भी मां को देखकर, पिता को देखकर मुस्कुराने लगता है, एक नकली मुस्कान। उसमें कोई गहराई नहीं होती, लेकिन वह जानता है कि जब भी वह मुस्कुराता है, उसे उसका पुरस्कार मिलता है। उसने राजनीतिज्ञ होने का पहला नियम सीख लिया है। वह अभी भी पालने में है, और तुमने उसे राजनीति सिखा दी है। और फिर हर कहीं मनुष्य के संबंधों में राजनीति है।

पुरुष ने स्त्री को पंगु कर दिया है। यह राजनीति है। स्त्रियां आधी आबादी हैं मानवजाति की और पुरुष को कोई अधिकार नहीं है उसे इस बुरी तरह पंगु बनाने का; लेकिन सदियों से वह स्त्री को पंगु बनाता रहा है।
उसने स्त्री को शिक्षित नहीं होने दिया है, उसने उसे पवित्र धर्मग्रंथ सुनने तक की अनुमति नहीं दी है। बहुत धर्मों में तो स्त्री को मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति भी नहीं है; अथवा, यदि उसने अनुमति दी भी है, तो उसके लिए अलग जगह रहती है। परमात्मा के सामने भी वह पुरुष के साथ समान होकर नहीं खड़ी हो सकती।
पुरुष ने स्त्री की स्वतंत्रता को हर ढंग से काट देने की कोशिश की है।
यह राजनीति है; यह प्रेम नहीं है। तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो, लेकिन तुम उसे स्वतंत्रता नहीं देते। यह किस तरह का प्रेम है, जो स्वतंत्रता देने में भी भयभीत है? तुम उसे तोते की तरह पिंजड़े में डाल देते हो। तुम कह सकते हो कि तुम तोते को प्रेम करते हो, लेकिन तुम समझते नहींः तुम उस तोते की हत्या कर रहे हो।
तुमने तोते से उसका पूरा आकाश छीन लिया है और उसे पिंजरा दे दिया है। पिंजरा सोने का बना हो सकता है, लेकिन सोने का पिंजरा भी कुछ नहीं है तोतों की आकाश की स्वतंत्रता के सामने। इस पेड़ से, उस पेड़ पर उड़ते हुये, अपने गीत गाते हुए- वह नहीं जो तुमने उन्हें विवश किया हुआ है गाने के लिए बल्कि अपनी सहजता और ईमानदारी से निकले गीतों को गाते हुए।
प्रत्येक देश में, प्रत्येक सभ्यता में आधी मनुष्यता पारिवारिक राजनीति द्वारा नष्ट कर दी गयी है, लेकिन है वह राजनीति ही। जहां कहीं भी दूसरे व्यक्ति के ऊपर अधिकार जमाने की इच्छा है, वह राजनीति है।
अधिकार जमाने की कोशिश हमेशा राजनीति है, छोटे बच्चों तक पर। मां-बाप सोचते हैं कि वे प्रेम करते हैं, लेकिन यह केवल उनके मन का भ्रम है, चाहते तो वे यही हैं कि बच्चे आज्ञाकारी हों। और आज्ञाकारिता का अर्थ क्या है? उसका अर्थ है सारी शक्ति मां-बाप के हाथों में।
यदि आज्ञाकारिता इतना महान गुण है, तो मां-बाप ही क्यों न बच्चों के प्रति आज्ञाकारी हों! यदि यह इतनी धार्मिक बात है, तो मां-बाप को बच्चों के प्रति आज्ञाकारी होना चाहिए।
शक्ति और सत्ता का धर्म से कोई संबंध नहीं है। शक्ति और सत्ता का धर्म
से इतना ही संबंध है कि राजनीति को सुंदर शब्दों की आड़ में छिपाना। जहां-जहां राजनीति ने प्रवेश किया हुआ है, उन सब जगहों पर मनुष्य को उघाड़ दिये जाने की जरूरत है और राजनीति सब जगह प्रवेश कर गई है। सारे संबंधों में। उसने पूरे जीवन को दूषित कर दिया है और लगातार दूषित करती जा रही है।
महत्त्वाकांक्षा जो पैदा की जाती है वह यह कि तुम्हें दुनियां में कुछ होना है, कि तुम्हें सिद्ध करना है, कि तुम कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हो, तुम विशिष्ट हो। लेकिन किसलिए? यह कौन-सा अभिप्राय हल करता है? यह एक ही अभिप्राय हल करता हैः तुम शक्तिशाली बन जाते हो, दूसरे सब तुम्हारे दास बन जाते हैं।
तुमने अलग-अलग तरीकों से पूरी मानवता को पंगु कर दिया है- और यह पंगु करना बड़ी राजनीति चाल है।

निजता
लोगों को स्वतंत्रता प्रिय है- लेकिन उत्तरदायीत्व कोई नहीं चाहता
और वे साथ-साथ आती हैं, वे अविभाजनीय हैं।
तुम्हें मान्यता की फिक्र क्यों हो? मान्यता की फिक्र तभी अर्थपूर्ण
है जब तुम अपने कार्य को प्रेम न करते होओ; तब यह अर्थपूर्ण है, तब वह उसका स्थान भरता प्रतीत होता है।
तुम अपने काम से घृणा करते हो, तुम्हें वह अच्छा नहीं लगता, लेकिन तुम उसे कर रहे हो, क्योंकि उससे मान्यता मिलेगी; तुम्हारी प्रशंसा होगी, तुम्हारा स्वीकार होगा।

मान्यता के बारे में सोचने की जगह अपने काम के विषय में पुनर्विचार करो। क्या तुम उसे प्रेम करते हो? तब बात खतम हो गई। यदि तुम उसे प्रेम नहीं करते, तो उसे बदलो।
माता-पिता, शिक्षक सब हमेशा इस बात पर जोर देते हैं कि तुम्हें मान्यता मिलनी चाहिए, तुम्हारा स्वीकार होना चाहिए। लोगों को नियंत्रण में रखने के लिए यह बड़ी चालाक नीति है।
एक आधारभूत बात सीखो। वही करो जो तुम्हें करना है, जो करना तुम्हें प्रिय है, और मान्यता की मांग मत करो। वह भिखमंगापन है। मान्यता की मांग ही कोई क्यों करे? दूसरों की स्वीकृति के लिए कोई लालायित ही क्यों हो? अपने भीतर ही गहरे झांको! शायद तुम जो कर रहे हो, वह तुम्हें पसंद नहीं है। शायद तुम भयभीत हो कि तुम गलत राह पर हो। स्वीकृति से तुम्हें लगेगा कि तुम ठीक हो। मान्यता से तुम्हें लगेगा कि तुम सही मंजिल की तरफ जा रहे हो।
सवाल तुम्हारी अपनी ही आंतरिक भावदशाओं का है; उसका बाहर की दुनियां
से कुछ लेना-देना नहीं है। दूसरों पर निर्भर ही क्यों करो? और ये सारी बातें दूसरों पर निर्भर करती हैं; तुम अपने से ही निर्भर हो रहो।
जब तुम इस परतंत्रता से बचते हो तभी तुम निजतापूर्ण बनते हो- और निजता
को पाना, अपने पैरों पर पूर्ण स्वतंत्रता में खड़ा होना, अपने स्रोतों से पीना ही वे बातें हैं जो सचमुच व्यक्ति को केंद्रित करती हैं, जड़ें प्रदान करती हैं। और वही उसकी परम खिलावट का प्रारंभ है।

सरलता
यदि बुद्धिमत्ता सरल, निर्दोष बनी रहे, तो वह दुनिया में संभवतः सुंदरतम बात है। लेकिन यदि बुद्धिमत्ता सरलता के विरोध में हो, तो वह चालाकी के सिवा और कुछ नहीं; तब वह बुद्धिमत्ता नहीं है।
जिस क्षण सरलता विदा हो जाती है, बुद्धिमत्ता की आत्मा चली जाती है,
तब वह केवल लाश है। उसे केवल पांडित्य कहना बेहतर है। वह तुम्हें बड़ा बौद्धिक बना सकती है, लेकिन वह तुम्हारे जीवन को रूपांतरित नहीं करेगी और वह तुम्हें अस्तित्त्व के रहस्यों के प्रति खोलेगी भी नहीं।
ये रहस्य केवल बुद्धिमान बालक के लिए ही खुलते हैं। और वास्तविक बुद्धिमान व्यक्ति अपनी अंतिम सांस तक अपने बचपन को जिंदा रखता है। वह उसे कभी खोता नहीं- उस विमोहक-विमुग्ध भाव को जो बच्चा महसूस करता है पक्षियों को देखते हुए, फूलों को देखते हुए, आकाश को देखते हुए... बुद्धिमत्ता को भी ऐसे ही होना है, बच्चे के समान।

सत्य
यह अजीब बात है कि सत्य लोकतांत्रिक नहीं है। सत्य क्या है यह मतों द्वारा नहीं तय किया जाना है; अन्यथा हम कभी किसी सत्य तक आ ही न सकें। लोग तो उसी के लिए मत देंगे जो सुविधाजनक है- और झूठ बड़े सुविधाजनक होते हैं क्योंकि उनके बारे में तुम्हें कुछ करना नहीं है, तुम्हें केवल विश्वास भर करना है उनमें।
सत्य के लिये तो महान श्रम, खोज और खतरों से गुजरना होता है, और उसके लिये तुम्हें अकेले उस रास्ते पर चलना होता है जिस पर पहले कोई नहीं चला है।
सत्य हमेशा शुद्ध, नग्न और अकेला है। सत्य में बड़ा सौंदर्य है, क्योंकि सत्य ही जीवन का, प्रकृति का, अस्तित्त्व का सार तत्व है।
मनुष्य को छोड़कर कोई और झूठ नहीं बोलता। गुलाब की झाड़ी झूठ नहीं बोल सकती। उसे गुलाब ही पैदा करने हैं; वह गेंदे नहीं पैदा कर सकती- वह छल नहीं कर सकती। जो वह है उससे अन्यथा होना उसके लिये संभव नहीं है। मनुष्य को छोड़कर सारा अस्तित्त्व सत्य में जीता है।
सत्य पूरे अस्तित्त्व का धर्म है- मनुष्य को छोड़कर। और जिस पल कोई मनुष्य भी अस्तित्त्व का हिस्सा होने का निर्णय लेता है, सत्य उसका धर्म हो जाता है।

और यह सबसे बड़ी क्रांति है जो किसी को घट सकती है। यह महिमावान क्षण है।
सत्य को वस्तु की तरह मत सोचो- वह वस्तु नहीं है। वह वहां नहीं है- वह यहां है।
जब तक तुम अपने प्राणों के सत्य को नहीं जानते, तुम जीवन के महामांगलिक रूप को नहीं महसूस कर पाओगे। अस्तित्त्व के होने मात्र से तुम आनंदातिरेक से नहीं छलक पाओगे।
यदि तुम सत्य का अनुभव नहीं कर सकते, तो तुम स्वयं को इस विराट सुव्यवस्था से; अस्तित्त्व से नहीं जोड़ पाओगे- जो कि तुम्हारा घर है। उसने तुम्हें जन्म दिया है, और उसे तुमसे विशाल आशायें हैं कि तुम चेतना के उच्चतम शिखर तक उठोगे, क्योंकि तुम्हारे माध्यम से अस्तित्त्व चैतन्य हो सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

परिपक्वता
परिपक्व व्यक्ति के गुण बड़े अजीब हैं। पहली तो बात कि वह व्यक्ति नहीं है, वह मैं के रूप में बचा ही नहीं।
उसके पास एक उपस्थिति होती है, लेकिन वह व्यक्ति नहीं है।
दूसरी बातः वह बच्चों की भांति होता है- सरल और निर्दोष। इसीलिये मैंने कहा कि परिपक्व व्यक्ति के गुण बड़े अजीब हैं, क्योंकि परिपक्वता से ऐसा बोध होता है, जैसे कि वह काफी अनुभवी है, बड़ा-बूढ़ा है।
शारीरिक रूप से वह बूढ़ा हो सकता है, लेकिन आध्यात्मिक रूप से एक भोला बच्चा है। उसकी परिपक्वता केवल जीवन से प्राप्त अनुभव ही नहीं है- तब वह बच्चा नहीं होगा, तब वह एक उपस्थिति नहीं होगा। वह एक अनुभवी व्यक्ति होगा- जानकार लेकिन परिपक्व नहीं।
परिपक्वता का जीवन के अनुभवों से कोई संबंध नहीं। इसका संबंध तुम्हारी आंतरिक यात्रा से, तुम्हारे अंतर के अनुभवों से है।
जितना व्यक्ति स्वयं में गहरा जाता है, उतना ही ज्यादा परिपक्व वह होता है। जब वह अपने अस्तित्त्व के केंद्र तक ही पहुंच जाता है, तब वह पूर्णतः परिपक्व है। लेकिन तब व्यक्ति खो जाता है, केवल एक उपस्थिति बचती है; मैं खो जाता है, मौन बचता है। ज्ञान खो जाता है, भोलापन बचता है।
मेरे लिये, परिपक्वता आत्म-साक्षात्कार का ही दूसरा नाम है। तुमने अपनी संभावनाओं को पूरा कर दिया है। वह एक वास्तविकता बन गयी है। बीज अपनी लंबी यात्रा तय करके खिल गया है।
परिपक्वता में एक सुगंध है। वह व्यक्ति को एक महान सौंदर्य प्रदान करती है। वह बुद्धिमत्ता देती है, सबसे तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता। वह व्यक्ति को केवल प्रेम बना देती है। उसका कृत्य प्रेम है, उसका अ-कृत्य प्रेम है। उसका जीवन प्रेम है, उसकी मृत्यु प्रेम है।
वह बस प्रेम का एक फूल है।

आधुनिक संगीत
आधुनिक संगीत ने अपनी गरिमा खो दी है क्योंकि वह अपने मूल अभिप्राय
को भूल गया है। वह अपने स्रोत को भूल गया है। वह यह जानता ही नहीं है कि उसका ध्यान से कोई संबंध है। और यही दूसरी कलाओं के सबंध में भी सच है। वे सब की सब अ-ध्यानी बन गई हैं, और वे सब की सब लोगों को पागलपन में ले जा रही हैं।
कलाकार स्वयं के लिये खतरा पैदा कर रहा है और वह अपने श्रोताओं के लिये भी खतरा पैदा कर रहा है। वह एक चित्रकार हो सकता है, लेकिन उसकी चित्रकला भी विक्षिप्त है; वह ध्यानपूर्ण दशा से नहीं निकली है।

मन की समस्या
मन का सारा काम ही विभाजित करते जाने का है। हृदय का काम उस जोड़ने वाली कड़ी को देखने का है जिसके बारे में मन पूरी तरह अंधा है।
सामान्य श्रेणी का मन पागल नहीं हो सकता। शांति और मौन की बात किसी को आकर्षक नहीं लगती। यह तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या नहीं है; यह मानव मन की

ही समस्या है, क्योंकि शांत और स्थिर होने और मौन होने का अर्थ हैः अ-मन की दशा में होना।
मन शांत नहीं हो सकता। उसे सतत विचार, सतत चिंता चाहिये। मन बाइसाइकिल के समान काम करता हैः यदि तुम पैडल मारते जाओ, वह चलती जाती है। जैसे ही तुम पैडल मारना बंद करो, तुम गिरने वाले हो। मन दो चक्के का वाहन है, बाइसिकल के जैसा; और तुम्हारे विचारों का चलना सतत पैडल मारने जैसा है।
यदि कभी तुम थोड़े-बहुत मौन भी हो, तुम तुरंत चिंता करने लगते हो, "मैं मौन क्यों हूं?" चिंता पैदा करने के लिये, विचार पैदा करने के लिये कोई भी चीज काम दे जाएगी, क्योंकि मन केवल एक ही तरह से टिक सकता है- भागते हुये, सदा ही किसी बात के पीछे अथवा किसी बात से भागते हुये, लेकिन सदा भागते हुए। भागने में ही मन है।
जिस पल तुम रुक जाते हो, मन विदा हो जाता है।
समय सदा अनिश्चित है। यही मन की कठिनाई हैः मन निश्चितता चाहता है- और समय सदा अनिश्चित है।
तो जब कभी संयोग से मन को निश्चितता का थोड़ा भी अवकाश मिलता है, वह स्थिरता महसूस करता है; एक तरह का काल्पनिक स्थायित्व उसे घेर लेता है। वह अस्तित्त्व और जीवन के वास्तविक स्वभाव को भूलने सा लगता है। वह एक प्रकार के स्वप्नलोक में जीना शुरू कर देता है, जो वास्तविकता जैसा लगने लगता है।
मन को यह सब बड़ा अच्छा लगता है। क्योंकि मन बदलाहट से सदा डरता है। उसके डरने का कारण बड़ा सरल है, किसे पता बदलाहट क्या सामने लाये?- अच्छा या बुरा। एक बात तय है कि बदलाहट तुम्हारी कल्पनाओं, अपेक्षाओं, सपनों की दुनिया को अव्यवस्थित कर देगी।
मन समुद्र के किनारे खेलते हुए उस बच्चे के समान है, जो रेत के महल बना रहा है। एक पल के लिये लगता है कि महल तैयार हो गया है- लेकिन वह खिसकती हुई रेत से बना है। किसी भी पल हवा का एक छोटा-सा झोंका और वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। लेकिन हम स्वयं उस स्वप्न महल में रहना शुरू कर देते हैं। हम महसूस करने लगते हैं कि हमें कुछ ऐसा मिल गया है जो हमारे साथ सदा रहने वाला है।
लेकिन समय मन को सतत बाधा पहुंचाए जाता है। यह कठोर लगता है, लेकिन यह सचमुच अस्तित्व की करुणा है कि वह हमेशा तुम्हारे साथ लगा रहता है। वह तुम्हें आभासों में से वास्तविकताएं नहीं बनने देता। वह मुखौटों को तुम्हारा मौलिक वास्तविक चेहरा समझ लेने का तुम्हें मौका नहीं देता।

विवाह
हम हर तरह से उपाय करते हैं अपने अजनबी होने के एहसास को भूलना चाहते हैं इसलिए हमने सभी तरह के क्रिया-कांड निर्मित किये हैं। एक पुरुष किसी स्त्री से विवाह करता है; और विवाह क्या है? बस एक क्रिया-कांड। लेकिन क्यों? क्योंकि वे अपने अजनबीपन को भुलाकर किसी तरह एक सेतु निर्मित करना चाहते हैं।
वह सेतु कभी निर्मित नहीं होता; वे केवल कल्पना करते हैं कि अब उनमें
से एक पति है, एक पत्नी है, लेकिन रहते वे अजनबी ही हैं। अपने पूरे जीवन वे साथ-साथ रहेंगे, लेकिन वे अजनबी के अलावा अन्य कुछ नहीं होंगे, क्योंकि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के अकेलेपन में प्रवेश नहीं कर सकता।
तुम केवल उसी दशा में अजनबी नहीं रहोगे यदि तुम मेरे अकेलेपन में प्रवेश कर सको, या मैं तुम्हारे अकेलेपन में प्रवेश कर सकूं... जोकि संभव नहीं है, अस्तित्त्वगत रूप से संभव नहीं है। हम उतने निकट आ सकते हैं जितना संभव हो;
लेकिन जितने निकटतर हम होते जाते हैं उतना ही ज्यादा हमें अपने अजनबीपन का बोध बढ़ता जाएगा, क्योंकि उतना ही ज्यादा ठीक से हम देख पाएंगे दूसरा मुझसे अज्ञात है, और शायद अज्ञेय।

भयः मानसिक कवच

सभी के पास एक प्रकार का कवच है।
उसके कारण हैं। पहली बात, बच्चा इतना असहाय जन्म लेता है दुनिया में जिसके बारे में वह कुछ नहीं जानता। स्वभावतः वह उस अज्ञात से भयभीत है जो उसके सामने हैं।
वह अभी भी परिपूर्ण सुरक्षा और बचाव के उन नौ महीनों को नहीं भूला है, जहां कोई समस्या न थी, कोई जिम्मेदारी न थी, कल की कोई चिंता न थी। हमारे लिये ये नौ महीने हैं, लेकिन बच्चे के लिए यह शाश्वत समय है। वह कैलेन्डर के बारे में कुछ नहीं जानता। उसे घंटे, मिनट, दिनों और महीनों के बारे में कोई खबर नहीं। उसने बिना किसी जिम्मेदारी के सुरक्षा और निश्चिंतता के एक शाश्वत समय को जीया है।
और फिर अचानक वह इस अनजान जगत में फेंक दिया गया है, जहां वह हर बात में दूसरों पर आश्रित है। स्वाभाविक है कि वह भयभीत महसूस करेगा। हर व्यक्ति उससे बड़ा और शक्तिशाली है, और वह दूसरों की मदद के बिना जी नहीं सकता। वह जानता है कि वह आश्रित है; उसने अपनी स्वाधीनता, स्वतंत्रता खो दी है।
एक बिंदु पर कवच जरूरी हो सकता है; शायद जरूरी है। लेकिन जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो, यदि तुम केवल उम्र में ही नहीं बढ़ रहे हो, बल्कि समझ में भी बढ़ रहे हो- परिपक्वता में बढ़ रहे हो- तब तुम्हें दिखायी पड़ने लगेगा कि क्या तुम अपने साथ लिए हुए हो।
गौर से देखो और तुम भय को इस सबके पीछे पाओगे। कोई भी चीज जो भय से जुड़ी हुई है, समझदार और परिपक्व व्यक्ति उस सबसे अपना नाता तोड़ लेता है। ऐसे ही परिपक्वता पैदा होती है। अपने सारे कृत्यों को देखो, अपने सारे विश्वासों को देखो और खोजो कि क्या वे सत्य में, अनुभव में आधारित हैं अथवा भय में आधारित हैं। और कोई चीज जो भय में आधारित है, उसे तत्क्षण बिना दूसरी बार उसके बारे में सोचे, छोड़ देना है। वह तुम्हारा कवच है। तुम्हारा मानसिक कवच तुमसे छीना नहीं जा सकता- तुम उसके लिये लड़ोगे। उसे छोड़ने के लिये केवल तुम ही कुछ कर सकते हो; और वह यह कि उसके हर हिस्से पर नजर डालना। यदि वह भय में आधारित है तो उसे छोड़ दो। यदि वह तर्क में, अनुभव में- समझ में आधारित है, तो वह छोड़ने की चीज नहीं है बल्कि अपने प्राणों का हिस्सा बना लेने की चीज है।
लेकिन तुम्हें अपने कवच में एक भी चीज ऐसी नहीं मिलेगी जो अनुभव पर आधारित हो। वे केवल भय ही भय हैं, आदि से अंत तक। और हम भयभीत ही जीते जाते हैं; वही कारण है कि हम अपने सारे अन्य अनुभवों में जहर घोलते जाते हैं। हम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हैं, लेकिन भय के कारण। वह नष्ट करता है, जहर घोलता है। हम सत्य को खोजते हैं, लेकिन यदि यह भय के कारण है तो वह तुम्हें मिलने वाला नहीं है।
जो कुछ भी तुम करो, एक बात याद रखोः भय से तुम्हारा विकास नहीं होने वाला, तुम केवल सिकुड़ोगे और मरोगे। भय मृत्यु की सेवा में रत है।
निर्भय व्यक्ति के पास वह सब कुछ होता है, जो जीवन तुम्हें उपहार के रूप में देना चाहता है। अब कोई बाधा न रहीः तुम पर उपहार बरसा दिये जाएंगे, और जो कुछ भी तुम कर रहे होओगे, तुममें एक बल होगा, एक शक्ति, एक सुनिश्चितता, एक गहन साधिकार भाव।

तादात्म्य
तुम्हें जो समझना है वह है तादात्म्य की प्रक्रिया कि किस प्रकार कोई
उस चीज से तादात्म्य जोड़ लेता है जो वह है ही नहीं। अभी तुम मन से तादात्म्य किये हुए हो। तुम सोचते हो तुम मन हो। वहीं से भय पैदा होता है। यदि तुम मन से तादात्म्य किये हुए हो तो स्वभावतः यदि मन रुकता है, तो तुम समाप्त, तुम बचते ही नहीं। और मन के पार का तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। असलियत यह है कि तुम मन नहीं हो, तुम मन के पार कुछ हो; इसलिये मन का रुकना नितांत आवश्यक है ताकि पहली बार तुम जान सको कि तुम मन नहीं हो- क्योंकि तुम फिर भी हो।
मन तो गया, लेकिन तुम अभी भी हो; और पहले से ज्यादा आनंदित, ज्यादा महिमापूर्ण, ज्यादा तेजस्वी, ज्यादा चैतन्य, ज्यादा आत्मवान।

अपरिग्रह
जब तुम अपने आनंद में किसी को सहभागी बनाते हो, तब तुम किसी के लिये कैद नहीं निर्मित करतेः तुम सिर्फ देते हो। तुम धन्यवाद या आभार भी नहीं चाहते, क्योंकि तुम दे रहे हो- कुछ पाने के लिये नहीं, धन्यवाद पाने के लिए भी नहीं। तुम दे रहे हो क्योंकि तुम इतने भरे हो, तुम्हें देना ही है।
तो यदि कोई धन्यवादपूर्ण है, तो तुम उस व्यक्ति के प्रति धन्यवादपूर्ण हो जिसने तुम्हारे प्रेम को स्वीकार किया, जिसने तुम्हारे उपहार को स्वीकार किया। उसने तुम्हारा बोझ हलका किया, उसने तुम्हें अपने पर बरसने का अवसर दिया।
और जितना ज्यादा तुम बांटते हो, जितना ज्यादा तुम देते हो, उतना ही ज्यादा तुम्हारे पास बढ़ता है। तो यह तुम्हें कंजूस नहीं बनाता, यह तुममें भय नहीं पैदा करता कि "हो सकता है मेरे पास न रह जाये।" सच तो यह है कि जितना ज्यादा तुम इसे देते हो उतना ही ज्यादा ताजा स्वच्छ जल उन झरनों से भीतर एकत्र होने लगता है जिनके बारे में तुम्हें पहले खबर ही न थी।
यदि पूरा अस्तित्त्व एक है, और यदि अस्तित्त्व वृक्षों की, पशुओं की, पहाड़ों की, महासागरों की- घास के छोटे से छोटे तिनके से लकर बड़े से बड़े महासूर्यों तक- की फिकर करता जाता है, तो यह तुम्हारी भी फिकर करेगा।
तो परिग्रही क्यों बनो? परिग्रह केवल एक ही बात दर्शाता है- कि तुम अस्तित्त्व पर भरोसा नहीं कर सकते। तुम्हें अपने लिये अलग से सुरक्षा की, भलाई की व्यवस्था करनी पड़ती है; तुम अस्तित्त्व पर भरोसा नहीं कर सकते। अपरिग्रह मूलरूप से अस्तित्त्व पर भरोसा है।
परिग्रह की कोई जरूरत ही नहीं है, क्योंकि सर्व पहले से ही तुम्हारा है।

केवल अपने हृदय की सुनो
और जीवन के आधारभूत नियम को हमेशा याद रखोः यदि तुम किसी की पूजा करते हो, तो एक न एक दिन तुम बदला लेने वाले हो।
तुम्हें सजग रहना है किसी द्वारा संचालित न किये जाने के लिये, चाहे उनके इरादे कितने ही नेक हों।
तुम्हें अपने आपको इतने सारे भला चाहने वालों से, भला करने वालों से बचना है, जो तुम्हें लगातार ऐसे होने की, वैसे होने की सलाह दे रहे हैं।
उनको सुनो और उन्हें धन्यवाद दो। उनका आशय कोई नुकसान पहुंचाना नहीं है- लेकिन पहुंचता नुकसान ही है।
केवल अपने हृदय की सुनो।
वही तुम्हारा एकमात्र शिक्षक है।
हर बार जब किसी को कुछ सत्य का पता चलता है, तो हृदय में नृत्य फूट पड़ता है। हृदय की एकमात्र गवाह है। सत्य का।
और वह शब्दों से गवाही नहीं दे सकता। हृदय अपने ही ढंग से गवाही दे सकता है; प्रेम द्वारा, नृत्य द्वारा, संगीत से- शब्दरहित। वह बोलता है, लेकिन वह भाषा और तर्क में नहीं बोलता।

स्वयं का स्वीकार
लोगों ने तुम्हारे बारे में मत बनाये हैं, और तुमने बिना किसी छानबीन
के उनकी धारणाओं को स्वीकार कर लिया है। तुम सब तरह के लोगों द्वारा तुम्हारे बारे में बनाये गये मतों से पीड़ित हो, और तुम इन मतों को दूसरे व्यक्तियों पर फेंक रहे हो। यह खेल सारी सीमाओं को पार कर गया है, और पूरी मनुष्यता इससे पीड़ित है।
यदि तुम इसके बाहर आना चाहो, तो पहली बात हैः अपने बारे में राय मत बनाओ। अपनी अपूर्णता को, अपनी असफलताओं को, अपनी गल्तियों को, अपनी कमजोरियों को विनम्रतापूर्वक स्वीकार करो। उससे विपरीत का दिखावा करने की कोई जरूरत नहीं है। बस स्वयं हो जाओ, कि "ऐसा मैं हूं- भयग्रस्त। मैं अंधेरी रात में नहीं जा सकता। मैं घने जंगल में नहीं जा सकता।" इसमें बुरा क्या है? यह तो बस मानवीय है।

एक बार तुम स्वयं को स्वीकार कर लो, तो तुम दूसरों को भी स्वीकार कर सकोगे, क्योंकि तब तुम्हारे पास एक स्पष्ट अंतर्दृष्टि होगी कि वे भी उन्हीं बीमरियों से ग्रसित हैं। और तुम्हारा उन्हें स्वीकार करना उन्हें स्वयं को स्वीकार करने में मदद करेगा।
हम पूरी प्रक्रिया को उलटा कर सकते हैंः तुम स्वयं को स्वीकार करते हो, वह तुम्हें दूसरों को स्वीकार करने में सक्षम बनाता है। और क्योंकि कोई उन्हें स्वीकार करता है, उन्हें स्वीकार करने का सौंदर्य पहली बार पता चलता है- कितना शांतिदायी अनुभव है यह- और वे दूसरों को स्वीकार करना शुरू कर देते हैं।
यदि पूरी मानवता इस बिंदु पर पहुंच जाये, जहां प्रत्येक व्यक्ति जैसा
वह है वैसा ही स्वीकारा जाता है, तो करीब-करीब नब्बे प्रतिशत दुख तो खुद ही विदा हो जायेंगे- उनका कोई आधार नहीं है- और तुम्हारे हृदय अपने आप खुल जायेंगे, तुम्हारा प्रेम बहने लगेगा।

संस्कार, एक रंगीन चश्मा
तुम दुनिया को वैसी ही नहीं देखते जैसी वह है। तुम उसे वैसी देखते हो जैसी तुम्हारा मन तुम्हें विवश करता है उसे देखने के लिये। पूरी दुनिया में यही हो रहा है।
भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न तरह से संस्कारित हैं; और मन संस्कारों
के अलावा अन्य कुछ भी नहीं है। वे चीजों को अपने-अपने संस्कारों के अनुसार देखते हैं- वह संस्कार एक प्रकार का रंगीन चश्मा है।
हम भेद खड़े करते हैं; हम किसी को श्रेष्ठ बनाते हैं; किसी को हीन पुरुष ज्यादा शक्तिशाली है, स्त्रियां कम शक्तिशाली हैं; कोई ज्यादा बुद्धिमान है, कोई कम। जातियां दावा करती रही हैं कि वे ईश्वर के चुने हुये लोग हैं। हर धर्म दावा कर रहा है कि उनका ग्रंथ स्वयं ईश्वर द्वारा लिखा गया है। ये सब बातें, पर्त-दर पर्त, तुम्हारे मन को निर्मित करती हैं।
जब तक तुम पूरे मन को ही उठाकर किनारे न रख दो और दुनिया को सीधे ही, अपने चैतन्य से तुरंत, उसी क्षण न देखने लगो, तुम किसी सत्य को कभी देख न पाओगे।
इस दुनिया में सबसे बड़ा साहस है मन को हटाकर किनारे रख देना। सबसे ज्यादा साहसी व्यक्ति वही है जो दुनिया को मन की आड़ के बिना वह जैसी है वैसी ही देख सकता है। यह आत्यंतिक रूप से भिन्न है, नितांत सुंदर है। न कोई है जो श्रेष्ठ है, न कोई है जो हीन है- भेद है ही नहीं।

बुद्धिमत्ता
सामान्यतः हम सोचते हैं कि बौद्धिक लोग बुद्धिमान होते हैं। वह सच नहीं है। बौद्धिक लोग केवल मुर्दा शब्दों पर जीते हैं। बुद्धिमत्ता ऐसा नहीं कर सकती। बुद्धिमत्ता शब्दों को छोड़ देती है- वही तो लाश है- और उनकी जीवंत तरंग को ले लेती है।
बुद्धिमान व्यक्ति का मार्ग हृदय का मार्ग है, क्योंकि हृदय को शब्दों में रस नहीं है, उसकी उत्सुकता उस रस में है जो शब्दों के पात्रों में आता है। वह पात्रों को इकट्ठा नहीं करता, वह तो बस रस को पी लेता है और पात्रों को फेंक देता है।

धार्मिक व्यक्ति
मेरे लिए, धार्मिक व्यक्ति वह नहीं है जो प्रकृति के ऊपर है, बल्कि वह
है जो पूरी तरह प्राकृतिक है, पूर्णरूप से प्राकृतिक है, जिसने प्रकृति की उसके सभी आयामों में खोज कर ली है, जिसने कुछ भी अनखोजा नहीं छोड़ा है।

स्वाभाविक मृत्यु
नैसर्गिक मृत्यु को उपलब्ध होने के लिये व्यक्ति को नैसर्गिक जीवन जीना पड़ता है।
नैसर्गिक मृत्यु चरमोत्कर्ष है। नैसर्गिक रूप से जिए गये जीवन का, बिना किसी अंतर्बाधा के, बिना किसी अवसाद-निराशा के- वैसे ही जैसे पशु

जीते हैं, पक्षी जीते हैं, वृक्ष जीते हैं, बिना बंटे हुए- एक समर्पण का जीवन, प्रकृति को तुम्हारे भीतर से बहने देते हुए तुम्हारी और से बिना कोई बाधा डाले, जैसे कि तुम हो ही नहीं और जीवन अपने आप से बह रहा है।
तुम जीवन को नहीं जीते, बल्कि जीवन तुम्हें जीता है; तुम गौण हो। तब इसका चरमोत्कर्ष होगी सहज- स्वाभाविक मृत्यु।
मृत्यु तुम्हारे समूचे जीवन के आत्यंतिक चरमोत्कर्ष को, परम उंचाई को प्रतिबिंबित करेगी। वह उस सबका संघनित रूप होगी जो तुमने जीया है।
तो दुनिया में केवल बहुत थोड़े से लोग सहजता से भरे हैं, क्योंकि बहुत थोड़े से लोग सहजता से जीये हैं।
हम मृत्यु से भयभीत हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि हम मर जाने वाले हैं,
और मरना हम चाहते नहीं। हम अपनी आंखें बंद रखना चाहते हैं। हम एक ऐसी भावदशा में जीना चाहते हैं, जैसे कि, हर व्यक्ति मर जाने वाला है, लेकिन मैं नहीं। यही हर व्यक्ति का सामान्य मनोविज्ञान हैः "मैं नहीं मरने वाला।"
मृत्यु की बात उठाना ही बहिष्कृत है। लोग डर जाते हैं, क्योंकि इससे उन्हें अपनी मौत याद आ जाती है। वे छोटी-मोटी बातों में इतने उलझे हैं, और मृत्यु आ रही है; वे चाहते हैं कि छोटी-मोटी बातें उन्हें व्यस्त रखें। यह एक पर्दे का काम करता हैः वे नहीं मरने वाले, कम से कम अभी तो नहीं, बाद में "जब मृत्यु आयेगी तब देखा जायेगा।"
जीवन को उसकी पूर्णता में स्वीकार करने में तुमने मृत्यु को भी स्वीकार कर लिया; वह केवल एक विश्राम है। पूरे दिनभर तुम काम करते रहे हो, और रात में तुम आराम करना चाहोगे या नहीं? रोज नींद तुम्हें ताजगी से भर देती है, नवजीवन दे देती है, तुम्हें फिर से ज्यादा बेहतर ढंग से, ज्यादा निपुणता से कार्य करने लायक बना देती है। सारी थकान मिट जाती है, तुम फिर युवा हो जाते हो।
मृत्यु यही काम थोड़े और गहरे तल पर करती है। वह शरीर को बदल देती है, क्योंकि अब शरीर को केवल साधारण नींद द्वारा नवजीवन नहीं दिया जा सकता; वह बहुत पुराना हो चुका है। उसे अब ज्यादा प्रबल बदलाहट की जरूरत है, उसे नये शरीर की जरूरत है। तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को नये आकार की जरूरत है। मृत्यु बस एक नींद है ताकि तुम आसानी से नये आकार में जा सको। तुम अपनी मृत्यु को जैसा चाहते हो, पहले अपने जीवन को भी वैसा ही होने दो- क्योंकि मृत्यु जीवन से अलग नहीं है।
मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, केवल एक बदलाहट है।
जीवन चलता जाता है, चलता रहा है, चलता रहेगा। लेकिन रूप नष्ट हो जाते हैं, बूढ़े एक आनंद न रहकर, बोझ बन जाते हैं, तब बेहतर है कि जीवन को नया, ताजा रूप मिले।
मृत्यु वरदान है, वह अभिशाप नहीं है।

भय
भय के आधार पर जीने वाला व्यक्ति भीतर हमेशा कंपता रहता है। वह सतत पागल होने के करीब रहता है, क्योंकि जीवन बड़ा है, और यदि तुम सतत डरे-डरे हो- तो फिर सब तरह के भय हैं।
तुम एक लंबी सूची बना सकते हो और तुम्हें आश्चर्य होगा कि इतने सारे
भय हैं, और फिर भी तुम जीवित हो! चारों और कितने संक्रमण हैं, बीमारियां, खतरे, आंतकवादी, अपहरणकर्त्ता- और इतना छोटा-सा जीवन। और अंत में मृत्यु है, जिसे तुम टाल नहीं सकते। तुम्हारा पूरा जीवन अंधकारमय हो जायेगा।
भय को छोड़ो। भय तुम्हारे द्वारा बचपन में अचेतन रूप से पकड़ी गयी चीज है। अब चेतन रूप से उसे छोड़ो और परिपक्व बनो। और तब जीवन एक प्रकाश हो सकता है जो तुम्हारे विकसित होने के साथ-साथ गहराता जाता है।

जिम्मेदारी
जिम्मेदारी खेल नहीं है। यह जीने का सर्वाधिक सच्चा ढंग है- और खतरनाक भी।

मेरे लिए, आज्ञाकारी न होना बड़ी क्रांति है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर स्थिति में एकदम नहीं कहना है। इसका इतना ही अर्थ है कि तय करना कि इसे करना है या नहीं, इसे करना कल्याणकारी होगा या नहीं। यह है जिम्मेदारी स्वयं पर लेना।

असली ज्ञान

बुद्धि है सोच-विचार करना - और चेतना की खोज निर्विचार की स्थिति में होती है, इतने निपट मौन में कि एक विचार भी बाधा देने नहीं आता। उस मौन में तुम अपनी अंतरात्मा को ही खोज लेते हो - वह आकाश जैसी विराट है। और उसे जानना ही वास्तव में कुछ अर्थपूर्ण जानना है; अन्यथा तुम्हारा सारा ज्ञान कचरा है।

तुम्हारा ज्ञान काम का हो सकता है, उपयोगी, लेकिन वह तुम्हें तुम्हारे अंतस के रूपांतरण में मदद करनेवाला नहीं। वह तुम्हें परितृप्ति तक, संतुष्टि तक, बुद्धत्व तक नहीं ला सकता, उस बिंदु तक जहां तुम कह सको, "मैं घर आ गया।"

कहीं कोई घर नहीं है, जब तक उसे हम अपने भीतर ही न खोज लें।

चुनाव रहित बनो

सर्वाधिक मूलभूत बात याद रखने की यह है कि जब तुम अच्छा महसूस कर रहे हो, आनंद की मनोदशा में हो, तो यह सोचने लगो कि यह तुम्हारी स्थायी दशा रहने वाली है।

उस क्षण को आनंद से जीओ, जितनी प्रफुल्लता से हो सके उतनी प्रफुल्लता से, यह भलीभांति जानते हुए कि यह आया है और यह जायेगा - ठीक जैसे हवा का एक झोंका अपनी सारी सुगंधों और ताजगियों के साथ तुम्हारे घर में आता है और दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाता है।

यदि तुम अपने उन आनंदोल्लास के क्षणों को स्थायी बनाये रखने की भाषा में सोचने लगो, तो तुमने उन्हें नष्ट करना शुरू ही कर दिया। जब वे आते हैं, अनुगृहीत होओ; जब वे जाते हैं, अस्तित्त्व के प्रति धन्यवादपूर्ण होओ। खुले रहो। ऐसा बहुत बार होगा। निर्णयात्मक बनो, चुनावकर्त्ता मत बनो, चुनाव रहित बने रहो।

हां, ऐसे क्षण होंगे जब तुम दुखी होगे। तो क्या? ऐसे लोग हैं जो दुखी हैं और जिन्होंने आनंद का एक क्षण भी नहीं जाना है। तुम सौभाग्यशाली हो।

अपने दुख में भी याद रखो कि वह स्थायी नहीं रहने वाला; वह भी बीत जायेगा। तो उससे भी बहुत ज्यादा परेशान मत होओ। निश्चिंत रहो। दिन और रात की भांति सुख के क्षण होते हैं और दुख के क्षण होते हैं। उन्हें प्रकृति के द्वैत के अंग के रूप में स्वीकार करो, चीजों के होने का ढंग ऐसा है इस रूप में स्वीकार करो।

और तुम केवल द्रष्टा हो; न तो तुम सुख बन जाते हो, न तुम दुख बन जाते हो। सुख आता है और जाता है, दुख आता है और जाता है। एक चीज हमेशा बनी रहती है, हमेशा-हमेशा - और वह है द्रष्टा, वह जो साक्षी है।

ध्यान

ध्यान का संबंध तुम्हारे अंतरतम के सारभूत केंद्र से है, जिसे पुरुष या स्त्री में विभाजित नहीं किया जा सकता।

चेतना सिर्फ चेतना है।

दर्पण दर्पण है - न वह पुरुष है, न वह स्त्री है - वह सिर्फ प्रतिबिंबित करता है। चेतना ठीक दर्पण के समान है, जो सिर्फ प्रतिबिंबित करती है।

तुम्हारे दर्पण को प्रतिबिंबित करने देना, ध्यान है - मन की क्रियाओं को प्रतिबिंबित करने देना, शरीर की क्रियाओं को प्रतिबिंबित करने देना। इससे फर्क नहीं पड़ता कि शरीर पुरुष का है या स्त्री का; इससे फर्क नहीं पड़ता कि मन किस तरह से काम कर रहा है - भावात्मक ढंग से या तर्कपूर्ण ढंग से। जो भी स्थिति है, चेतना को सिर्फ उसके प्रति सजग रहना है।

यह सजगता, यह होश ध्यान है।

धीरे-धीरे द्रष्टा में ज्यादा से ज्यादा स्थिर होते जाओ। दिन आयेंगे, रातें आयेंगी, जीवन आयेंगे, मृत्यु आयेगी, सफलता आयेगी, असफलता आयेगी। लेकिन यदि तुम द्रष्टा में स्थिर हो- क्योंकि वही एकमात्र वास्तविकता है तुम में, शेष सब गुजरती हुई घटनायें हैं।
एक क्षण के लिये जो मैं कह रहा हूं, उसे महसूस करने की कोशिश करो; सिर्फ द्रष्टा हो जाओ। किसी क्षण को पकड़ो मत क्योंकि वह सुंदर है, और किसी क्षण को दूर मत धकेलो क्योंकि वह दुखद है। ऐसा करना बंद करो। वैसा तुम जन्मों से करते आये हो, और अभी तक तुम सफल नहीं हुये हो, और ऐसे तुम कभी भी सफल नहीं होओगे।
पार जाने का एक मात्र उपाय है पार बने रहना; वह जगह खोज लेना जहां से तुम इन सारी बदलती हुई घटनाओं को बिना तादात्म्य स्थापित किये हुए देख सको।
अनुभव आता है और जाता है- उस पर भरोसा मत करना, जब तक कि तुम अनुभव करने वाले को ही न जान लो। कौन प्रसन्नता अनुभव कर रहा है? कौन दर्द अनुभव कर रहा है? कौन अच्छा अनुभव कर रहा है? कौन दुखी अनुभव कर रहा है? कौन है यह चेतना?
इस चक्रवात के अंतरतम केंद्र तक पहुंचने के लिये हर प्रयास किये जाने चाहिए। तुम्हारा पूरा जीवन बदलाहट का, बदलते दृश्यों का, बदलते रंगों का एक चक्रवात है; लेकिन चक्रवात के ठीक भीतर तुम्हारा शांत केंद्र है। वह तुम हो। ध्यान की सरलतम विधि बस साक्षीभाव का एक ढंग है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं, लेकिन साक्षीभाव इन सारी एक सौ बारह विधियों का सार तत्त्व है। तो जहां तक मेरा संबंध है, साक्षीभाव ही एकमात्र विधि है। वे एक सौ बारह विधियां साक्षीभाव के ही विभिन्न प्रयोग हैं।
ध्यान का सार तत्त्व, उसकी आत्मा है साक्षी होना सीखना।
तुम एक वृक्ष को देख रहे हो; तुम हो, वृक्ष है, लेकिन क्या तुम एक और बात को नहीं खोज सकते?- कि तुम वृक्ष को देख रहे हो, कि तुम्हारे भीतर एक साक्षी है जो तुम्हें वृक्ष को देखते हुए देख रहा है।
जगत केवल विषय और कर्त्ता में ही विभाजित नहीं है। इन दोनों के पार भी कुछ है- और वह पार ही ध्यान है।
ध्यान की सरलतम विधि बस साक्षीभाव का एक ढंग है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं, लेकिन साक्षीभाव इन सारी एक सौ बारह विधियों का सार तत्त्व है। तो जहां तक मेरा संबंध है, साक्षीभाव ही एकमात्र विधि है। वे एक सौ बारह विधियां साक्षीभाव के ही विभिन्न प्रयोग हैं।

तादात्म्यः मानसिक बीमारी
एक बार तुमने किसी धारणा से तादात्म्य बनाया कि तुम बीमार हो।
समस्त तादात्म्य मानसिक बीमारी है। दरअसल मन तुम्हारी बीमारी है।
मन को एक किनारे रख देना और सिर्फ मौन होकर वास्तविकता को देखना- बिना किसी विचार के, बिना किसी पूर्वधारणा के वास्तविकता से परिचित होने का स्वस्थ ढंग है। और तुम वास्तविकता को सर्वथा भिन्न पाओगे।
वास्तविकता को पा लेना तुम्हें बहुत-सी मूढ़ताओं से, बहुत से अंधविश्वासों से मुक्त करेगा। यह तुम्हारे हृदय को सब प्रकार के कचरे से साफ करेगा जो पीढ़ियों दर पीढ़ियों ने तुम में डाला है। बीमारियां एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी चलती जाती हैं; पूरा अतीत उसकी सारी मूढ़ धारणाओं सहित तुम्हें वसीयत में मिलता है। अन्यथा, कहीं कोई भेद नहीं है, कहीं कोई तुलना नहीं है।
और एक बार तुम तुलना करने की और भेदभाव की आदत से मुक्त हो जाओ, तो तुम हलके हो जाते हो, तुम्हारा पूरा अस्तित्त्व हलका हो जाता है। तुम सारा भारीपन खो देते हो। तुम इतने हलके हो जाते हो कि तुम अपने पंखों को खोल सकते हो और उड़ सकते हो।

द्रष्टाः एकमात्र वास्तविकता
सब चीजें आती-जाती हैं, लेकिन तुम रहते हो- तुम वास्तविकता हो। हर चीज केवल सपना है- सुंदर सपने हैं, दुःस्वप्न हैं। लेकिन यह महत्त्वपूर्ण

नहीं है कि सपना सुंदर है या वह एक दुःस्वप्न है, महत्त्वपूर्ण सपना देखने वाला है।
वह द्रष्टा ही एकमात्र वास्तविकता है। द्रष्टा परम शाश्वत है।
उसकी थोड़ी-सी झलक और तुम्हारी सारी समस्याएँ विदा होने लगेंगी क्योंकि एक पूर्णतया नया परिप्रेक्ष्य, एक नयी दृष्टि एक जीवन का नया ढंग, चीजों को और लोगों को देखने का एक नया ढंग, स्थितियों का सामना करने का एक नया ढंग पैदा होने लगता है।
और द्रष्टा सदा मौजूद है, चौबीसों घंटेः जो कुछ भी तुम कर रहे हो या नहीं कर रहे हो, वह मौजूद है। वह सदियों से मौजूद है, शाश्वत काल से मौजूद है, प्रतीक्षारत कि तुम उसपर ध्यान दो। शायद क्योंकि वह सदा-सदा से मौजूद रहा है, यही कारण है कि तुम उसे भूल गये हो। प्रगट सदा भूला रहता है- इसे याद रखना।
जब तुम्हें अच्छा लग रहा हो, मस्ती छा रही हो, इसे याद करो।
जब तुम दुख में हो, विषाद में, इसे याद करो।
सभी हवाओं में, सभी मनोदशाओं में इसे याद किये चले जाओ। जल्दी ही तुम उसमें केंद्रित बने रहने में समर्थ होने लगोगे, उसे याद करने की जरूरत न पड़ेगी। और वह व्यक्ति के जीवन में महानतम दिन है।

जाग्रत व्यक्ति
मैं तुमसे कहता हूं कि जगत में न कहीं बुरा है, न कहीं बुरी शक्तियां हैं। केवल जागरण से भरे हुए लोग हैं और गहरी नींद में सोये हुए लोग हैं- और नींद में कोई शक्ति नहीं होती।
सारी ऊर्जा जाग्रत लोगों के पास होती है। और एक जाग्रत व्यक्ति सारी दुनिया को जगा सकता है। एक जला हुआ दीया बिना अपना प्रकाश खोये लाखों दीयों को जला सकता है। दुख तुम्हारे अहंकार को पोषण देता है- यही कारण है कि तुम दुनिया में इतने ज्यादा दुखी लोग देखते हो। मूल केंद्रीय बिंदु अहंकार है।

हृदय शुद्ध अस्तित्त्व है
मन यह या वह की भाषा में काम करता हैः या तो यह ठीक हो सकता है, या इसका विपरीत ठीक हो सकता है। जहां तक मन का, मन के तर्क का, मन की बुद्धि का संबंध है, दोनों साथ-साथ सही नहीं हो सकते।
यदि मन यह या वह है, तो हृदय दोनों-ओर है।
हृदय के पास तर्क नहीं है, लेकिन एक संवेदनशीलता, एक अंर्तज्ञान। वह देख सकता है कि न केवल दोनों साथ-साथ हो सकते हैं, सच तो यह है कि वे दो नहीं हैं। वह बस एक ही घटना है दो अलग-अलग पहलुओं से देखी गयी।
और यदि मन और हृदय के बीच एक को चुनने का प्रश्न खड़ा हो, तो हृदय सदा सही है, क्योंकि मन समाज का निर्मित किया हुआ है। उसे प्रशिक्षित किया गया है। वह तुम्हें समाज द्वारा मिला है, अतित्त्व द्वारा नहीं।
हृदय अप्रदूषित है।
हृदय शुद्ध अस्तित्त्व है; इसीलिये उसके पास संवेदनशीलता है।
हृदय की आंख से देखो और सारे विरोधाभास बर्फ की तरह पिघलने लगते हैं।

तुम अस्तित्त्व हो।
मैं तुमसे कहता हूंः अस्तित्त्व के साथ एक होने के लिए तुम्हें विदा होना होता है और अस्तित्त्व को रहने देना होता है। तुम्हें बस अनुपस्थित होना पड़ता है, ताकि अस्तित्त्व अपनी पूर्णता में प्रकट हो सके। लेकिन जिस व्यक्ति को मैं कह रहा हूं विदा होना है वह तुम्हारी वास्तविकता नहीं है, वह केवल तुम्हारा व्यक्तित्व है; वह केवल तुम्हारा ख्याल है। वास्तविकता में तो तुम अस्तित्त्व के साथ एक ही हो। तुम्हारे होने का और कोई ढंग हो ही नहीं सकता- तुम अस्तित्त्व हो।
लेकिन व्यक्तित्व एक प्रवंचना निर्मित करता है और तुम्हें लगता है कि तुम अलग हो। तुम अपने आपको अलग मान सकते हो- अस्तित्त्व तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देता है, इतनी कि उसके खिलाफ होने की भी। तुम अपने आपको अलग

सत्ता मान सकते हो, एक अहंकार। और वही है बाधा जो तुम्हें इस विराट में पिघलने से रोके हुए है। जो तुम्हें हर पल घेरे हुए है।
सूर्यास्त को देखते हुए, एक क्षण के लिये तुम अपना अलगाव भूल जाते होः तुम सूर्यस्त हो जाते हो। यही वह पल है, जब तुम उसका सौंदर्य महसूस करते हो। लेकिन जैसे ही तुम कहते हो कि सुंदर सूर्यस्त है, तुम अब उसे महसूस नहीं कर रहे हो; तुम अपनी अलग, बंद अहंकारमयी सत्ता में लौट आये हो। अब मन बोल रहा है।
और यह रहस्यों में से एक है कि मन बोल सकता है और जानता कुछ नहीं; और हृदय जानता सब कुछ है लेकिन बोल नहीं सकता। शायद बहुत ज्यादा जानना, बोलना कठिन कर देता है। मन इतना कम जानता है, उसके लिए बोलना संभव है। उसके लिये भाषा पर्याप्त है, लेकिन हृदय के लिये भाषा पर्याप्त नहीं है।
लेकिन कभी-कभी किसी क्षण के प्रभाव में- कोई तारों भरी रात, कोई सूर्योदय, कोई सुंदर फूल- क्षण भर के लिये तुम भूल जाते हो कि तुम अलग हो। और यह भूलना तक महत आनंद और सौंदर्य को प्रगट करता है।

मित्रता
मित्रता शुद्धतम प्रेम है। यह प्रेम का सबसे ऊंचा रूप है- जहां किसी चीज की मांग नहीं, कोई शर्त नहीं, जहां व्यक्ति बस देने का आनंद लेता है। व्यक्ति को मिलता बहुत है, लेकिन वह गौण है, और वह अपने आप घटता है।

परिवारः एक मानसिक घर
बेघरबार हो जाना स्वतंत्र हो जाना है, यह स्वतंत्रता है। इसका अर्थ
है बाहरी किसी चीज से कोई आसक्ति नहीं, कोई ग्रस्तता नहीं; कि तुम्हें बाहरी किसी चीज से उत्साह पाने की कोई जरूरत नहीं बल्कि तुम्हारा उत्साह तुम्हारे भीतर है। तुम्हारे उत्साह का स्रोत तुम्हारे पास है; तुम्हें और ज्यादा की जरूरत नहीं। तो जहां कहीं भी तुम बेघरबार हो, अजीब रूप से तुम घर में हो।
जो लोग घर की तलाश कर रहे हैं वे हमेशा निराशा में पड़ते हैं, और अंततः
वे यह कहने वाले हैंः "हमारे साथ धोखा हुआ है, जीवन ने हमारे साथ धोखा किया है। किसी तरह इसने हमें घर खोजने की वासना पकड़ा दी है- और घर कहीं है नहीं, घर कहीं होता ही नहीं।"
हम हर संभव उपाय से घर बनाने की कोशिश करते हैंः कोई पति खोज लेता है, कोई पत्नी खोज लेता है, कोई बच्चे ले आता है दुनिया में...
व्यक्ति परिवार बनाने की कोशिश करता है- वह एक मानसिक घर है।
व्यक्ति केवल मकान ही नहीं बनाता, बल्कि उसे करीब-करीब एक जीवंत सत्ता, बना देने की कोशिश करता है।
व्यक्ति अपने सपनों के अनुरूप घर बनाने की कोशिश करता है, कि यह ऊष्मा
की परिपूर्णता करने वाला है कि इस ठंडक में...
और यह विराट है, अस्तित्त्व का ठंडापन। समूचा अस्तित्त्व इतना ठंडा है, इतना तटस्थ है कि तुम अपने लिये एक छोटी-सी सुरक्षा तैयार करना चाहते हो, जहां तुम्हें लगे कि तुम्हारा ख्याल रखा जा रहा है कि कोई चीज तुम्हारी सुरक्षा कर रही है, कि यह कुछ ऐसा है जो तुम्हारा है, कि तुम मालिक हो, कि तुम बेघरबार बंजारे नहीं हो।
लेकिन वास्तविकता यह है कि इस तरह की धारणा तुम्हारे लिये दुख खड़ा करने वाली है, क्योंकि एक दिन तुम पाओगे कि पति जिसके साथ तुम रहे, पत्नी जिसके साथ तुम रहे- दोनों अजनबी ही हो। पचास साल साथ में रहने के बाद भी अजनबीपन विदा नहीं हो गया है; उलटे वह और गहरा हो गया है। तुम कम अजनबी थे उस प्रथम दिन जब तुम मिले थे।
जैसे-जैसे समय बीतता गया है और तुम साथ-साथ रहे हो, तुम और-और अजनबी होते गये हो, क्योंकि तुम एक-दूसरे को और-और जानने लगे हो- और अब तुम्हें तनिक भी समझ में नहीं आता कि दूसरा व्यक्ति कौन है? जितना ज्यादा तुमने जाना है, उतना कम तुम जानते हो। ऐसा लगता है कि जितना ज्यादा तुम व्यक्ति से परिचित हुए हो, उतने ही ज्यादा तुम इस बात के प्रति सजग हुए हो कि उसके बारे में तुम्हारा अज्ञान अपार है; इसे नष्ट करने का उपाय नहीं है।

तुम्हारे बच्चे- तुमने सोचा था कि वे तुम्हारे बच्चे हैं, और एक दिन तुम्हें पता चलता है कि वे तुम्हारे बच्चे नहीं है। तुम केवल एक मार्ग थे- जिससे होकर वे आये हैं। उनका अपना जीवन है- वे पूरी तरह अजनबी हैं। वे तुम्हारे नहीं है। वे अपना जीवन और अपने ढंग खोजेंगे।
कौन है तुम्हारे साथ?
कोई किसी के साथ नहीं है।
तुम सदा भीड़ में हो, लेकिन अकेले। अकेले अथवा भीड़ में, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता; घर में अथवा बंजारे- उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
अकेलापन अहंकार के लिये कभी भी आनंद नहीं है। अहंकार को तभी आनंद आता है, जब वह किसी पर अपना अधिकार जमाये, जब वह कह सके, "मैं तुमसे ऊपर हूं, श्रेष्ठ हूं।"
अहंकार अकेलेपन का कभी भी आनंद नहीं ले सकता; अकेलेपन में अहंकार पालने का क्या अर्थ है।

बिना सिद्धांतों कें जीओ
लोग सोचते हैं कि अपने सिद्धांतों में अटल रहना उन्हें एक प्रकार की दृढ़ता देता है। वे गलत हैं। यह बस उनकी सारी शक्ति को चूस लेता है। इस पृथ्वी पर वे सब कमजोर लोग हैं।
वे उस छोटे बच्चे की भांति हैं जो बडा़ तो हो गया है लेकिन अभी भी उन्हीं पाजामों का उपयोग किये जा रहा है जो बचपन में उसके लिए बनाए गये थे। अब वे उन पाजामों में बड़े अजीब दिख रहे हैं, वे तकलीफ भी महसूस कर रहे हैं। वे लगातार अपने पाजामों को ऊपर की और पकड़े हुए हैं क्योंकि वे बार-बार खिसके जा रहे हैं और लोग हंस रहे हैं।
नहीं, जैसे-जैसे तुम बड़े होते हो, तुम्हारे पाजामें भी बड़े होते जाने चाहिये। लेकिन, क्योंकि पाजामे बढ़ते नहीं, तुम्हें उन्हें बदलना होगा। तो मुझे इसमें कोई समस्या नहीं दिखती। लेकिन मैं देख सकता हूं कि किसी एक व्यक्ति की हालत नहीं है, लाखों लोग इसी तरह जी रहे हैं। वे बड़े कठिन अनुशासन खड़े कर लेते हैं और फिर मुसीबत में पड़ते हैं। कोई दूसरा उन पर यह मुसीबत नहीं डाल रहा है- ये उनके अपने ही सिद्धांत। यदि वे उन्हें छोड़ते हैं, उन्हें बड़ा बुरा लगता है; यदि वे उन पर चलते हैं, वे दुखी होते हैं।
मैं तुम्हें स्पष्टतः बिना सिद्धांतों का जीवन सिखाता हूं, बुद्धिमत्ता का जीवन जो तुम्हारे आसपास की हर बदलाहट के साथ बदलता है, ताकि तुम्हारे पास कोई ऐसे सिद्धांत न हों जो बदलाहट में कठिनाई खड़ी करता है। पूरी तरह से सिद्धांतों से रहित हो जाओ और सिर्फ जीवन का अनुसरण करो, और तुम्हारे जीवन में कोई दुख न होगा।
हमें अतीत से नाता तोड़ लेना चाहिए- वह पूरी तरह से रुग्ण था। मनुष्य
ने बड़ा ही रुग्ण जीवन जीया है। क्योंकि उसने एक बड़ा रुग्ण दर्शन निर्मित कर लिया था, और बड़ी गंभीरता से उसने उसका पालन किया।
हमें उस रुग्णता से नाता तोड़ लेना चाहिये- चाहे वह कितनी ही सन्मानीत हो, चाहे वह कितनी ही प्राचीन हो- और मनुष्य की समग्रता की पुर्नखोज करनी चाहिए।
और यह केवल तभी किया जा सकता है जब हम हलके-फुलकेपन को समादर के साथ जोड़ देंगे; जब हंसी-खेल, हल्का-फुल्कापन ही गहरा समादर हो; जब समादर तुम्हें मौत में, त्याग में न ले जाता हो, बल्कि हर्षोल्लास मनाने में नृत्य करने में, उत्सवपूर्ण होने में ले जाता हो।
योद्धा की भांति जीयो; इस पार या उस पार, लेकिन समझौते कभी नहीं।

प्रवचन-18

परिवार नियोजन पूर्णतः अनिवार्य हो।
(ओशो एक महान चुनौतीः मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य (संस्करण: 1988))

परिवार नियोजन पूर्णतः अनिवार्य हो और मेडिकल बोर्ड (चिकित्सा समिति) यह तय करे कि प्रतिवर्ष हमें कितने नए लोग चाहिए। तो सिर्फ थोड़े से लोग बच्चे पैदा करें, और वह भी कृत्रिम बीजारोपण से, ताकि सर्वश्रेष्ठ अंडाणु के साथ मेल हो।
अब तक स्त्रियां जो गोली लेती रही हैं वह शत प्रतिशत सुरक्षित नहीं है। उसे वह हर रोज लेनी पड़ती है। अगर वह एक दिन भी चूकती है तो संभावना यही है कि उसका असर नहीं होगा। फिर अचानक पति आ जाता है या पति चला जाता है- यह दोनों तरह से काम करता है। प्रेम का अवसर प्रकट होता है और मन जोखिम उठाना चाहता है। मन सोचता है, हर बार संभोग करने से तो गर्भ नहीं रहता।
मनुष्य उसके साधारण यौन जीवन में कम से कम चार हजार बार संभोग करता है- यह सामान्य है। मैं काम उन्मत्त लोगों की बात नहीं कर रहा हूं, यह बहुत सामान्य दुकानदार की बात है। चार हजार बार का मतलब हुआ, करोड़ों लोगों की संभावना। अस्तित्त्व सचमुच विपुल है। इन करोड़ों में से, एक आदमी सिर्फ दो या तीन बच्चे पैदा करेगा। वे करोड़ पूरी पृथ्वी को भर सकते हैं।
अब उन्होंने और दो गोलियां विकसित की हैं। पहली गोली जो विकसित हुई
थी वह एक क्रांति थी क्योंकि उसने स्त्रियों को गर्भवती होने से बचा लिया। अतीत में स्त्री का जीवन बच्चे पैदा करने के कारखाने के अलावा कुछ नहीं था। वह सतत गर्भवती रहती थी। उसका जीवन एक गाय से अधिक कुछ न था। तो पहली गोली ने उसे गर्भवती होने से बचा लिया लेकिन वह शत प्रतिशत सुरक्षित नहीं थी।
दूसरी गोली उससे बड़ी क्रांति है क्योंकि उसे तुम संभोग के बाद ले सकते हो। पहली रोज-रोज लेनी पड़ती थी, दूसरी उससे बड़ी प्रगति है। क्योंकि अब तुम्हें चिंतित होने की जरूरत नहीं है। तुम किसी के भी साथ संभोग कर सकते हो, जब भी उसकी संभावना बनती है, और बाद में गोली ले सकते हो।
तीसरी गोली, जो विकसित की जा रही है वह उससे भी अधिक अर्थपूर्ण है।
उसे स्त्री को लेने की जरूरत नहीं है, पुरुष उसे ले सकता है।
इन तीन गोलियों के उपयोग से सभी सांयोगिक जन्मों से बचा जा सकता है।
सेक्स सिर्फ एक क्रीड़ा हो जाती है, और अतीत में उसके साथ जो गंभीरता जुड़ी रही है वह सब तिरोहित हो जाती है।
यदि मनुष्य को बचना है, उसकी गरिमा, सम्मान, उसका जीने का अधिकार प्राप्त करना है तो जनसंख्या घटनी ही चाहिए।
अब तक मानवता सांयोगिक रूप से बच्चे पैदा करती रही है। अब विज्ञान के कारण हम इससे हमारी रक्षा कर सकते हैं। और आनुवंशिक यांत्रिकी भविष्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विज्ञान होगा।
जैसे रक्त के बैंक होते हैं वैसे ही प्रत्येक अस्पताल में शुक्राणु बैंक होने चाहिए। और शुक्राणु बैंक की तरह अंडाणु बैंक होने भी मुश्किल नहीं हैं।
जिनको भी बच्चे पैदा करने हों, वे जाकर इस वैज्ञानिक प्रयोगशाला में अपने शुक्राणु का योगदान दे सकता है। और प्रयोगशाला तय करे कि तुम्हारे बच्चे की मां कौन होगी। जरूरी नहीं है कि वह तुम्हारी पत्नी हो। उससे कोई संबंध नहीं है। तुम तुम्हारी पत्नी से प्रेम करते हो, तुम्हारी पत्नी तुमसे प्रेम करती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस धरती पर अपाहिज, अंधे बच्चे का बोझ डाला जाए। अस्तित्त्व वैसी अनुमति नहीं देगा। तुम स्वयं पर और मानवता पर एक गैरजिम्मेदार बोझ क्यों डाल रहे हो? यदि तुम किसी अपाहिज, मंदमति, पागल या विक्षिप्त बच्चे को जन्म देते हो तो वह फिर अन्य एैसे ही बच्चों को जन्म देगा। इसी भांति संसार में मूढ़ों की संख्या हमेशा ज्यादा होती है।
सभी धर्म मेरा विरोध करेंगे, कोई हर्ज नहीं। जिंदगी भर मेरा विरोध ही होता रहा है। लेकिन मेरा सुझाव यह है कि हर पुरुष, जो बच्चा पैदा करना

चाहता है, अपने शुक्राणु किसी अस्पताल को दे, और एक चिकित्सा विज्ञान समिति इस पर विचार-विमर्श करे कि इन शुक्राणुओं और फलां स्त्री के अंडाणुओं की संभावना क्या है?
हो सकता है उन एक लाख शुक्राणुओं में अलबर्ट आइंस्टीन जैसे महान वैज्ञानिक हों, येहुदी मेनुहिन जैसे महान संगीतज्ञ हों, निजिन्की जैसे महान नर्तक हों, फ्रेडरिक नीत्शे जैसे महान दार्शनिक हों, दोतोवस्की जैसे महान उपन्यासकार हों। उनको चुना जा सकता है। और पिता और माता मनपसंद चुनाव कर सकते हैं। जब तुम बहुमूल्य हीरे चुन सकते हो तो रंगीन पत्थरों से क्यों संतुष्ट होते हो? और जब तुम चुनाव कर सकते हो तो संयोग के भरोसे क्यों रहना?
अगर उनका मन हो तो वे हेनरी फोर्ड को चुन सकते हैं जो बेशुमार धन पैदा
कर सकता है। धन कमाना एक कला है- जैसी कि और सब कलाएं हैं। उसकी अपनी मेधा होती है। हर कोई तो हेनरी फोर्ड नहीं हो सकता।
यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा गौतम बुद्ध बने तो तुम्हें आनुवंशिक विश्लेषण के आधार पर देखना होगा कि किस शुक्राणु में रहस्यदर्शी होने की क्षमता है। उस शुक्राणु का इंजेक्शन देना होगा ताकि भीड़ में और सब लोगों के साथ उसकी प्रतिद्वंद्विता न हो।
और चूंकि संभोग से बच्चे का जन्म नहीं होना है, माता-पिता के लिए संभोग विशुद्ध क्रीड़ा हो जाती है। उसमें कोई जिम्मेदारी नहीं होती, कोई खतरा नहीं होता।
बीजारोपण सर्वश्रेष्ठ बच्चा खोजने का एकमात्र वैज्ञानिक उपाय है। हमें यह पुरानी धारणा छोड़ देनी चाहिए कि मैं पिता हूं। हमें यह धारणा पैदा करनी चाहिएः मैंने सर्वश्रेष्ठ बच्चे का चुनाव किया है। इसमें पुरुष को गर्व होना चाहिए। इस ढंग से मूल्यों को बदलना चाहिए।
तुम्हें पता नहीं है तुम्हारे जीन्स में क्या छिपा है? तुम नहीं जानते तुम्हारी क्षमता क्या है? तुम किस प्रकार के बच्चे को पैदा करने जा रहे हो? तुम किसी स्त्री से प्रेम करते हो, उसमें कोई हर्ज नहीं है। तुम्हें प्रेम पूरी तरह से उपलब्ध होना चाहिए, वह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तुम एक स्त्री से प्रेम करते हो, लेकिन जरूरी नहीं है कि हर स्त्री मां बने। यह जरूरी नहीं कि हर पुरुष पिता बने।
तुम बच्चा चाहते हो, और यदि तुम सच में ही बच्चे को चाहते हो तो तुम चाहोगे कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बच्चा पैदा हो। तो इसमें किसके शुक्राणु हैं और वह किस मां के गर्भ में पला है, इसकी तुम्हें फिक्र नहीं करनी चाहिए। तुम्हारी फिक्र इतनी ही हो कि तुम्हें अधिक से अधिक श्रेष्ठ बच्चा मिले।
जब बच्चा पैदा होगा तो उसकी पहचान होनी चाहिएः मनुष्य। और उस पर भी मेरी कुछ शर्ते हैं। यदि कोई बच्चा अंधा या अपाहिज पैदा होता है, बहरा या गूंगा पैदा होता है और हम कुछ नहीं कर सकते... केवल इसलिए कि जीवन को नष्ट नहीं करना है, इस बच्चे को तुम्हारी मूढ़तापूर्ण धारणाओं के कारण अधिकतर-अस्सी- साल तक कष्ट झेलना पड़ेगा। यह व्यर्थ का दुख क्यों पैदा करना? यदि बच्चे के मां-बाप राजी हों तो इस बच्चे को शाश्वत नींद सुला देनी चाहिए। और उसमें कोई कठिनाई नहीं है। सिर्फ शरीर ही अपने मूल तत्त्वों में विलीन हो जाता है, आत्मा दूसरे गर्भ में उड़ जाएगी। कुछ नष्ट नहीं होता।
यदि तुम वास्तव में बच्चे से प्रेम करते हो, तुम नहीं चाहोगे कि वह सत्तर साल की लंबी जिंदगी दुख में, पीड़ा में, बीमारी में, बुढ़ापे में जीए।
तो अगर बच्चा पैदा भी होता है, यदि वह जीवन को सभी इंद्रियों के द्वारा, स्वस्थ होकर भोग नहीं सकता, तो बेहतर होगा कि वह चिरनिद्रा में लीन हो जाए और अन्यत्र बेहतर शरीर में पैदा हो जाए।
धीरे-धीरे विज्ञान को शुक्राणु और अंडाणु का कार्यक्रम समझ आ रहा है।
यह विकसित हो रहा है लेकिन यह हमारा सर्वाधिक जोरदार प्रयास होना चाहिए। यदि हम शुक्राणु और अंडाणु के संबंध में सब जानकारी हासिल कर लें तो न केवल जनसंख्या घटेगी बल्कि लोगों की गुणवत्ता सौ गुना बढ़ सकती है। हमें पता नहीं है कितने प्रतिभाशाली लोग व्यर्थ हुए जा रहे हैं। यह संसार सब तरह के प्रतिभाशालियों से भरापूरा हो सकता है। वह हमारा चुनाव हो सकता

है। अतीत में वे सिर्फ आकस्मिक या सांयोगिक हुआ करते थे, लेकिन भविष्य में हम उसे सुनिश्चित बना सकते हैं।
हम इस धरती को प्रतिभासंपन्न, मेधावी और स्वस्थ लोगों से आपूरित कर सकते हैं।
मेरा सुझाव है कि आनुवंशिक कार्यक्रम को समझने के लिए विश्वव्यापी समूह तैयार किए जाएं। आदमी चांद पर पहुंच गया है लेकिन आनुवंशिक कार्यक्रम को समझने के लिए उसने कोई खास प्रयास नहीं किए हैं। कारण सरल हैं, क्योंकि सभी न्यस्त स्वार्थ, सभी धर्म खतरे में हैं। वे जानते हैं कि एक बार जीन्स का कार्यक्रम समझ में आ गया तो फिर पुराना बच नहीं सकता। इससे भी अधिक जोर इस बात पर होना चाहिए कि हम इस कार्यक्रम को कैसे बदलें। हम स्वाथ्य, रोग, आयु, रंग, इन सबके बारे में जान रहे हैं। पहले हमें सीखना चाहिए कि इस कार्यक्रम को कैसे बदला जाए। उदाहरण के लिए, एक आदमी का मस्तिष्क नोबल पुरकार विजेता का हो लेकिन शरीर रुग्ण हो। यदि उसका शरीर सहयोग नहीं करता तो वह अपने मस्तिष्क का उपयोग नहीं कर सकता- जब तक कि हम उसका कार्यक्रम न बदल दें। एक दफा हम कार्यक्रम बदलने की कला जान लें तो हजारों संभावनाएं खुलती हैं। हम हर पुरुष और स्त्री को सर्वश्रेष्ठ चीजें दे सकते हैं। किसी को नाहक पीड़ा झेलने की जरूरत नहीं है। मतिमंद होना, अपाहिज, अंधा या कुरूप होना- इन सबको बदलना संभव होगा।
अपराधियों से बचा जा सकता है, राजनीतिज्ञों से बचा जा सकता है, पुरोहितों से बचा जा सकता है, हत्यारों और बलात्कारियों से बचा जा सकता है, हिंसक लोगों से बचा जा सकता है। या यदि उनमें कोई विशिष्ट गुण हो तो उनका आनुवंशिक कार्यक्रम बदला जा सकता है। बजाय इसके कि हम लोगों को सिखाएं हिंसा मत करो, चोरी मत करो, अपराध मत करो, हम उनके भीतर की हिंसा ही निकाल ले सकते हैं। भविष्य में बुढ़ापे को हटाना पूरी तरह से संभव होगा। मृत्यु के आखिरी क्षण तक आदमी यौवन से भरपूर जिंदगी जी सकता है। वैज्ञानिक हिसाब के अनुसार मनुष्य का वर्तमान शरीर कम से कम तीन सौ साल तक जी सकता है। सिर्फ सही भोजन, सही चिकित्सा, संतुलित वातावरण- और लोग तीन सौ साल जी सकते हैं।
मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि यदि गौतम बुद्ध तीन सौ साल जीएं, अलबर्ट आइंस्टीन तीन सौ साल जी सके, बट्रेन्ड रसेल तीन सौ साल जी सके तो कौन से खजाने उदघाटित होंगे। अब तक हम जिस ढंग से जीए हैं वह इतना अपव्यय रहा है। जो लोग प्रशिक्षित होते हैं, शिक्षित होते हैं, सुसंस्कृत होते हैं, वे बूढ़े होते हैं और सत्तर साल की उम्र में मर जाते हैं। और नए मेहमान, सर्वथा अशिक्षित, जंगली, गर्भों में से चले आते हैं।
यह संसार को व्यवस्थित करने का कोई बहुत वैज्ञानिक तरीका नहीं है। अब
हम लोगों को जबरदस्ती सेवा-मुक्त कर रहे हैं और ये ही वे लोग हैं जो जानते हैं और फिर तुम्हें ऐसे लोगों को नियुक्त करना पड़ता है जो कुछ नहीं जानते। मनुष्य के जीवन को और लंबाना चाहिए और संतति-निरोध को और कड़ा बनाना चाहिए। एक बच्चा तभी पैदा हो जब हम बट्रेन्ड रसेल को इस दुनिया से विदा होने
की अनुमति दें। और इसकी पूरी संभावना है कि उसके जैसा दूसरा आदमी खोजा जा सकता है क्योंकि जीन्स में हम उसका पूरा कार्यक्रम पढ़ सकते हैं, सारी संभावनाएं- क्या वह पिकासो की गुणवत्ता का चित्रकार हो सकता है या रवींद्रनाथ टैगोर के तरह का कवि हो सकता है, वह कितने साल जीएगा, स्वस्थ होगा या अस्वस्थ होगा।
तो मैं संतति निरोधक उपायों तथा आनुवंशिक यांत्रिकी के पूर्णतः पक्ष में हूं- बशर्त कि विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय एकैडमी उसका उपयोग करे। लेकिन मुझे पता है कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति आनुवंशिक यांत्रिकी का विरोध करने वाला है। मैं तुम्हें स्मरण दिलाना चाहूंगा कि हर विकास का, मनुष्य जाति के जीवन में उठाए गए हर विकासोन्मुख चरण का शुरू में विरोध हुआ है, उसे प्रकृति के खिलाफ कहा गया है।
हर नई चीज का विरोध होता है। उदाहरण के लिए, भारत में सभी धर्मनेता संतति निरोध का विरोध करते हैं। उनका तर्क यह है कि वह प्रकृति के खिलाफ है।

आनुवंशिकी के अप्राकृतिक होने का कोई सवाल ही नहीं है। इस भय को मैं समझ सकता हूं लेकिन हर नई बात भय उत्पन्न करती है। और एक बार तुम उसके आदी हो गए तो तुम भूल ही जाते हो कि किसी दिन यह बात नई थी। तुम्हें पता है, जब विद्युत का आविष्कार हुआ था तो कोई बिजली के बल्ब इस्तेमाल करने को तैयार नहीं था। कौन जाने वह फट पड़े और पूरे मकान में आग लग जाए। लेकिन अब तुम्हें भय नहीं होता।
और मैं जानता हूं, आनुवंशिकी के बारे में एक और भय है, और वह है, उसका नियंत्रण कौन करेगा? तुम्हें चिकित्सा शास्त्र के बारे में यह आशंका नहीं होती कि उसे कौन नियंत्रित करेगा। तुम चिकित्सक पर भरोसा करते हो- एक ऐसा चिकित्सक जिसके बारे में तुम्हें कुछ भी पता नहीं है कि वह तुम्हारी जान नहीं लेगा, कि वह तुम्हें धोखा नहीं देगा, कि वह तुम्हें यथासंभव समय तक बीमार नहीं रखेगा।
मेरी धारणा बहुत सरल हैः वैज्ञानिकों की एक विश्व एकैडमी हो, उसमें भिन्न-भिन्न विभाग हों, जिनमें आनुवंशिकी सबसे महत्त्वपूर्ण विभाग होगा। और वैज्ञानिकों पर भरोसा करना होगा; और कोई उपाय नहीं है। या तो जैविकी की अंधी शक्ति पर भरोसा करो, या एक मानव पर भरोसा करो जो कम से कम थोड़ा सजग है, जो अपनी जिम्मेदारी समझता है।
जब तुम बच्चे पैदा करते हो, तो तुम यह नहीं पूछते कि तुम किस पर भरोसा
कर रहे हो? इन बच्चों को कौन भेज रहा है? वह एक अंधी जैविक शक्ति है; निश्चित ही प्राकृतिक है, लेकिन वैज्ञानिक भी प्राकृतिक है। और वह जो है निर्मित कर रहा है, वह कहीं अधिक कीमती है क्योंकि वह चेतना से आ रहा है। और मैं समस्त विद्यार्थियों के लिए ध्यान अनिवार्य बनाना चाहता हूं- फिर वे किसी भी विषय का अध्ययन क्यों न कर रहे हों- ताकि उनकी सजगता निर्मल और स्पष्ट होती रहेगी। और उस स्पष्टता से हम एक सुंदर जगत का निर्माण कर सकते हैं।
ये वैज्ञानिक अगर ध्यानी भी हों तो विनाशकारी अणुबम नहीं बनाएंगे। हो सकता है वे आणविक ऊर्जा से रेलगाड़ियां चलाएं ताकि हवा का प्रदूषण न हो; कारखानों में आणविक ऊर्जा का उपयोग करें ताकि हवा प्रदूषित न हो। बजाय इसके कि मनुष्य का संहार करे, वही आणविक ऊर्जा मानव और उसके भविष्य को बचाने में असीम सहायता कर सकती है।
यह सवाल बार-बार उठाया गया है कि यदि आनुवंशिकी का नियंत्रण रोनाल्ड रीगन जैसे आदमियों के हाथों में गया और उसने तय किया कि किस तरह के आदमी पैदा हों तो निश्चित ही खतरा है। लेकिन जब रोनाल्ड रीगन तय करता है कि विश्वविद्यालयों में चार्ल्स डार्विन और उसके सिद्धांत नहीं सिखाए जाने चाहिए तो तुम्हें उसमें खतरा नहीं दिखाई देता। जब राष्ट्रपति ट्रुमेन हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराने का निर्णय लेते हैं तब तुम्हें दिखाई नहीं देता कि राजनीतिज्ञों का अस्तित्त्व ही नहीं होना चाहिए, कि वे खतरनाक हैं।
तुम्हें मेरे प्रस्ताव के पूरे निहितार्थ ख्याल में लेने चाहिए। ज्ञान की हर शाखा के लिए ध्यान केंद्रीय विषय होना चाहिए। विशेषतः आनुवंशिकी जैसी शाखाएं जो कि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं, जो नई पीढ़ी को, नए मनुष्यों को, नए विश्व को जन्म देंगी, वे अत्यंत सुस्पष्ट, शांत और प्रेमपूर्ण लोगों के हाथों में होनी चाहिए। तो सिर्फ आनुवंशिकी के संबंध में मत सोचो, साथ ही साथ यह भी सोचो कि हम ध्यान को शिक्षा के एक महत्त्वपूर्ण अंश की तरह जोड़ सकते हैं।
अन्यथा मैं इस कठिनाई को समझ सकता हूं। कोई भी बुद्धिमान आदमी सोच सकता है कि आनुवंशिकी यदि जोसेफ टालिन, अडोल्फ हिटलर, बेनिटो मुसोलिनी के हाथों में पड़े तो दुनिया का क्या होगा? वे गुलाम और मूढ़ पैदा करेंगे। लेकिन अब सारे अस्त्र-शस्त्र इन लोगों के हाथों में हैं। परमाणु हथियार उनके हाथों में हैं और तुम्हें कोई चिंता नहीं महसूस होती और तुम अपनी ओर से कोई कदम नहीं उठाते। वे पूरे संसार को बिना किसी कठिनाई के खतम कर सकते हैं। तो इससे अधिक वे क्या कर सकते हैं?
लेकिन आनुवंशिकी को मुक्त किया जा सकता है, वस्तुतः समूचा विज्ञान उनके हाथों से मुक्त किया जा सकता है।

एक विश्व शासन के जरिए, एक विश्व शैक्षिक पद्धति के जरिए, हम विज्ञान
और उसके आविष्कारों का गलत उपयोग होने में सब तरह के अवरोध पैदा कर सकते हैं।
संभावनाएं इतनी विराट हैं कि हमें अपना भय ताक पर रख देना चाहिए और हमें सावधानी पूर्वक कदम उठाने चाहिए ताकि आनुवंशिकी का उपयोग मानवता के खिलाफ नहीं बल्कि मानवता के हित में हो। और वैसे भी यदि तुमने कुछ नहीं किया, तो तुम्हें जिस बात का भय है वह होने ही वाला है। आनुवंशिकी को विकसित होने से नहीं रोका जा सकता। प्रत्येक शासन, जिसके हाथों में पर्याप्त ताकत है, उसमें उत्सुक है। तो भय और दुराशंका से कुछ हासिल नहीं होगा। यदि सतर्क प्रयास किए गए, और विश्वव्यापी विरोध प्रदर्शन और आंदोलन किए गए कि कम से कम आनुवंशिकी जैसा विज्ञान तो राष्ट्रों के हाथों में न होकर विश्व समुदाय के वैज्ञानिकों के हाथों में हों, तो पृथ्वी पर स्वर्णिम भविष्य का निर्माण करने के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है।

प्रवचन-19

मौन का नाद, कमल में मणि
(Translated from Om Mani Padme Hum #1, Question 1. Translation published in booklet ओम मणि पद्मे हुम् (1988))

प्यारे ओशो,
क्या आप तिब्बती मंत्र ओम मणि पद्मे हुम पर कुछ कहने की कृपा करेंगे?

ओम मणि पद्मे हुम परम अनुभव की सुंदरतम अभिव्यक्तियों में से एक है। इसका अर्थ हैः मौन का नाद, कमल में मणि।
मौन का भी अपना नाद है, अपना संगीत है; यद्यपि बाहरी कान इसे सुन नहीं सकते। वैसे ही जैसे बाहरी आंखें इसे देख नहीं सकतीं।
हमें छह बाह्य ज्ञानेंद्रियां हैं। अतीत में मनुष्य जानता था कि उसे मात्र पांच बाह्य ज्ञानेंद्रियां हैं। छठी नई खोज है। यह तुम्हारे कान के भीतर है; इसीलिए लोग इसे पहचानने में चूक गए। यह संतुलन की ज्ञानेंद्रिय है। तुम जब उनींदे होते हो, या जब तुम किसी शराबी को चलते हुए देखते हो तो यह संतुलन की ही इंद्रिय है जो प्रभावित हुई होती है।
जैसे बाह्य की अनुभूति के लिए ये छह ज्ञानेंद्रियां हैं, ठीक वैसे ही आंतरिक को देखने के लिए, सुनने के लिए, स्पर्श करने के लिए और उसके परम संतुलन तथा सौंदर्यानुभूति के लिए भी छह आंतरिक ज्ञानेंद्रियां हैं। वह बाहरी आंखों के लिए अदृश्य है, किंतु आंतरिक आंखों के लिए नहीं। उसे तुम बाहरी ज्ञानेंद्रियों से स्पर्श नहीं कर सकते, परंतु भीतरी ज्ञानेंद्रियां उसमें पूरी तरह डूबी हुई हैं।
ओम वह नाद है जब उसके सिवा सब कुछ तुम्हारी चेतना से खो जाता है- कोई विचार नहीं, कोई स्वप्न नहीं, कोई प्रक्षेपण नहीं, कोई अपेक्षाएं नहीं, यहां तक कि कोई एक तरंग भी नहीं, तुम्हारी चेतना की झील बस निस्तरंग है, बिल्कुल दर्पण की भांति हो गई है, उस विरल क्षण में तुम मौन का नाद सुनते हो। यह सर्वाधिक मूल्यवान अनुभूति है, क्योंकि यह न केवल आंतरिक संगीत की द्योतक है, इसकी भी द्योतक है कि भीतर का जगत समस्वरता, आल्हाद और परमानंद से परिपूर्ण है। यह सब कुछ ओम के संगीत में शामिल है।
तुम्हें उसे कहना नहीं है। अगर, तुम उसे कहते हो तो असली बात से चूक जाओगे। तुम्हें उसे सुनना होगा। तुम्हें पूरी तरह शांत होना पड़ेगा, और अचानक यह तुम्हें चारों ओर से घेर लेगा, नृत्य के रूप में। जिस क्षण तुम इसे सुनने में समर्थ हो जाओगे, उसी क्षण अस्तित्त्व के रहस्य में प्रवेश कर जाओगे। तुम इतने सूक्ष्म बन चुके होओगे कि अब पात्र हो कि सारे रहस्य तुम पर खोल दिए जाएं। जब तक तुम तैयार न हो जाओ, अस्तित्त्व प्रतीक्षा करता है।
पूरब के सभी धर्म इस बात पर सहमत हैं कि मौन की अंतिम उच्चतम दशा में
जो नाद सुनाई पड़ता है वह ओम के ही समान है।
पूरब की किसी भाषा में ओम को वर्णमाला में नहीं लिखा जाता है, क्योंकि
यह भाषा का अंग नहीं है। यह एक प्रतीक के रूप में लिखा जाता है। इसलिए जो प्रतीक संस्कृत में प्रयोग किया जाता है, वही प्राकृत में, पालि में और तिब्बती में- सब जगह एक ही प्रतीक- क्योंकि सभी कालों के सभी रहस्यदर्शी एक ही अनुभव पर पहुंचे हैं कि यह लौकिक जगत का हिस्सा नहीं है; इसलिए इसे स्वर्णाक्षरों में नहीं लिखा जाना चाहिए। इसका अपना ही प्रतीक होना चाहिए, जो भाषा के पार का हो।
सभी संगीत- खासकर शास्त्रीय संगीत- मौन के नाद को पकड़ने का प्रयास करते रहे हैं, ताकि वे लोग भी कुछ वैसा ही अनुभव कर सकें जिन्होंने अपनी अंतरात्मा में प्रवेश नहीं किया है। किंतु वह संगीत वैसा नहीं होता। यह बहुत दूर की प्रतिध्वनि है। यहां तक कि महान संगीतज्ञों को भी ध्वनि का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन वह उसे कितने ही सुंदर ढंग से क्यों न व्यवस्थित करे, वह संगीत पूर्णतः मौन नहीं हो सकता। संगीतज्ञ ध्वनियों के

बीच मौन का अंतराल पैदा करता है, उसका सारा खेल ध्वनि और मौन का है। जो नहीं समझते हैं, वे ध्वनि को सुनते हैं। जो समझते हैं, वे मौन को सुनते हैं, दो ध्वनियों के बीच के अंतराल को सुनते हैं।
वास्तविक संगीत इन अंतरालों में है। इसे संगीतज्ञ पैदा नहीं करते। संगीतज्ञ तो ध्वनियां पैदा करता है, अंतरालों को छोड़ता जाता है, ताकि तुम उसका कुछ अनुभव कर सको जो रहस्य दर्शियों को उनके अंतःलोक में घटित होता है।
ओम सत्य के खोजियों की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जो पूरी तरह अविश्वसनीय हैं, किंतु वे ऐतिहासिक हैं।
मारपा- एक तिब्बती रहस्यदर्शी- जब मरा, उसके निकटतम शिष्य उसके चारों
ओर बैठे हुए थे... क्योंकि एक रहस्यदर्शी की मृत्यु उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है जितना उसका जीवन, या शायद कुछ अधिक ही। यदि तुम किसी रहस्यदर्शी की मृत्यु के समय उसके निकट हो सको तो उस समय तुम बहुत कुछ अनुभव कर सकते हो; क्योंकि उसकी संपूर्ण चेतना शरीर का त्याग कर रही है और यदि तुम सावधान और जागरूक हो तो तुम एक नई सुगंध का अनुभव कर सकते हो, एक नया प्रकाश देख सकते हो, एक नया संगीत सुन सकते हो।
मारपा जब मरा, वह एक मंदिर में रहता था। और अचानक शिष्य आश्चर्यचकित
हो गए, वे अपने चारों ओर देखने लगे कि ओम का यह नाद कहां से आ रहा है। अंततः उन्होंने पाया कि यह नाद कहीं दूसरी जगह से नहीं बल्कि मारपा की देह से आ रहा है। उन लोगों ने अपने कान उसके हाथों से, पैरों से लगाकर सुना, वे भरोसा न कर सके- उसके संपूर्ण शरीर के भीतर कुछ तरंगायित था जो ओम का नाद पैदा कर रहा था। संबोधि के बाद मारपा जीवन भर इस नाद को सुनता रहा था। इस नाद को निरंतर भीतर सुनते रहने के कारण यह उसके भौतिक शरीर की कोशिकाओं तक में प्रवेश कर गया था। उसके शरीर का रेशा-रेशा एक विशिष्ट समस्वरता सीख गया था।
लेकिन ऐसा दूसरे रहस्यदर्शियों द्वारा भी अनुभव किया गया है। खासकर मृत्यु के क्षण में, जब सब कुछ अपने चरम बिंदु पर होता है, अंतर उस नाद की तरंगों को विकर्ण करने लगता है। लेकिन मनुष्य इतना अंधा और इतना अविवेकी है कि यह जानकर कि रहस्यदर्शी अपने भीतर मौन के संगीत को अनुभव करते हैं और वे इसे ओम कहते हैं, लोग ओम को मंत्र की तरह जपने लगे; यह सोच कर कि ओम के जाप से वे भी उसे सुनने में सक्षम हो जाएंगे।
इसको जपने से उस नाद को तुम कभी नहीं सुन सकोगे। जप करते समय तुम्हारा
मन ही काम कर रहा है।
लेकिन इस बात को तुमसे कहने वाला संभवतः मैं पहला व्यक्ति हूं। अन्यथा सदियों से लोग ओम का जाप सिखा रहे हैं। वह एक मिथ्यानुभव पैदा करता है। और तुम मिथ्या में खो जा सकते हो और असली को कभी अनुभव नहीं कर सकोगे। मैं तुमसे इसे जपने को नहीं कहता, बस शांत हो जाओ और इसे सुनो। जैसे तुम्हारा मन शांत और स्थिर होता है, अचानक तुम पाओगे कि एक फुसफुसाहट की तरह तुम्हारी अंतरात्मा में ओम उठ रहा है। जब यह स्वयं से पैदा होता है तो इसका गुणधर्म बिल्कुल अलग होता है। यह तुम्हें रूपांतरित कर देता है। आधुनिक भौतिक विज्ञान कहता है कि संसार में सब कुछ विद्युत-ऊर्जा से बना है; और ध्वनि भी अन्य कुछ नहीं, विद्युत-तरंगें हैं। वैज्ञानिक बाहर से काम करते रहे हैं।
रहस्यदर्शी ठीक इसके विपरीत कहते हैं। लेकिन मैं उनमें विरोध नहीं देखता। रहस्यदर्शियों के अनुसार यह संपूर्ण अस्तित्त्व ध्वनिरहित ध्वनि- ओम- से बना है। यह विद्युत और अग्नि भी अन्य कुछ नहीं, ध्वनि का ही सघन रूप हैं।
पूरब में यह बात ज्ञात थी। ऐसे संगीतज्ञ हुए हैं जो अपने संगीत से दीपक को जला सकते थे। जैसे ही संगीत बुझे हुए दीपक के संपर्क में आता है, एकाएक लौ जल उठती है। अतीत में यह एक परीक्षण था कि कोई संगीतज्ञ जब तक अपने संगीत से प्रकाश, अग्नि, लौ नहीं उत्पन्न कर देता, वह अपरिपक्व समझा जाता था। वह सिद्ध आचार्य नहीं समझा जाता था।
भौतिकशास्त्र और रहस्यदर्शी की व्याख्याएं परस्पर विरोधी दिखाई पड़ती हैं, किंतु गहरे में संभवतः कोई स्रोत है जो विरोधाभासों और

प्रतिरोधों को समाप्त कर सकता है। संभवतः ये मात्र भिन्न ढंग से व्याख्या करने का मामला है, क्योंकि रहस्यदर्शी भीतर से देख रहा है और भौतिकशास्त्री बाहर को। भौतिकशास्त्री जिसे विद्युत की तरह महसूस करता है, रहस्यदर्शी उसे संपूर्ण अस्तित्त्व के संगीत की तरह अनुभव करता है। वे दोनों भिन्न-भिन्न भाषाओं में कह रहे हैं। और अगर दोनों के बीच चुनाव करना पड़े तो मैं रहस्यदर्शी को चुनूंगा, क्योंकि वह उसे अपने केंद्र पर अनुभव कर रहा है। उसका अनुभव वस्तुओं पर किए गए प्रयोग का नहीं है। उसकी अनुभूति अपनी चेतना पर किए गए प्रयोग की है और चेतना अस्तित्त्व का नवनीत है।
इस मंत्र में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। प्रथम शब्दहीन शब्द ओम है और अंतिम है हुम्। पहला शब्द खिलावट है और अंतिम शब्द बीज।
सूफी लोग अल्लाह के पूरे नाम का उपयोग नहीं करते। अल्लाह परमात्मा के लिए मुसलमानों का नाम है। वे अल्लाहू का उपयोग करते हैं और धीरे-धीरे वे अल्लाहू को भी हू-हू में बदल देते हैं। उन लोगों ने पाया है कि हू की ध्वनि नाभि के ठीक नीचे जीवनस्रोत पर सीधे चोट करती है। क्योंकि तुम अपने जीवन से, अपनी मां से नाभि द्वारा ही जुड़े थे। नाभि के ठीक नीचे तुम्हारा अपना जीवनस्रोत है।
कभी प्रयोग करो- जब तुम हू कहते हो तो नाभि के नीचे चोट पड़ती है। इसका
हम अपने सक्रिय ध्यान में उपयोग करते हैं।
यह एक सूफी खोज है, लेकिन इसका प्रयोग तिब्बती ढंग से भी किया जा सकता है।
हू के बजाय- हू कुछ कठोर मालूम पड़ता है, हुम थोड़ा अधिक कोमल लगता है। किंतु कोमल तुम्हारी ऊर्जाओं को जगाने में अधिक समय लेगा। तिब्बत की विशिष्ट जलवायु में संभवतः कोमलतर ही उपयुक्त था। जीवनस्रोत पर चोट करने के लिए उन्हें अधिक चोट की जरूरत नहीं थी। किंतु अरब के तपते रेगिस्तान में सूफी रहस्यदर्शियों ने हू का प्रयोग करना शुरू किया।
जब मैं सक्रिय ध्यान पर काम कर रहा था तो मेरे सामने विकल्प था कि हुम
को चुनना या हू को। मैंने दोनों पर प्रयोग किए और मैंने पाया कि भारत में हू अधिक उपयुक्त है, बजाय तिब्बत के ठंडे ऊंचे प्रदेश के जहां सब कुछ भिन्न होना ही है। हुम उनके लिए बिल्कुल ठीक है।
हुम तुम्हारे भीतर ओम पैदा करने के लिए आघात है। यदि तुम जीवन के बीज
पर चोट करते हो तो यह मिट्टी में खोने लगता है, हरी पत्तियां, अंकुर निकलने लगते हैं।
ओम और हुम्- इन दोनों के बीच में मणि पद्मे है। मैं नहीं सोचता कि कोई
भी परम अनुभव को, परम सौंदर्य को मणि पद्मे से बेहतर रूप में व्यक्त करने में समर्थ हुआ हो। तुम तनिक कल्पना करो। कमल का फूल पूरब में सबसे सुंदर और सबसे बड़ा फूल है। और अगर तुम कमल के फूल पर प्रातःकालीन सूरज की धूप में मणि रख दो, तुम एक अपरिसीम सुंदर अनुभव के समक्ष हो... कमल पुष्प में मणि! परम अनुभव के बारे में कुछ भी कहना बहुत कठिन है, लेकिन तिब्बती रहस्यदर्शियों ने सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया है। उसके बारे में बहुत कुछ कहा गया है, लेकिन कमल पर मणि सर्वाधिक उत्कृष्ट अभिव्यक्ति लगती है- क्योंकि यह महानतम और सर्वाधिक सुंदर अनुभूति है और उन्होंने सामान्य जगत की दो सुंदरतम वस्तुओं- कमल और मणि- को चुना है। यह उस सौंदर्य की मात्र अभिव्यक्ति है जिसे तुम अपने भीतर देखते हो।
इस ओम मणि पद्मे हुम मंत्र में एक पूरा दर्शन समाया हुआ है। अंतिम शब्द हुम से आरंभ करो और प्रथम शब्द स्वतः उध्रूत होगा। और जब तुम्हारा आंतरिक अस्तित्त्व मौन के नाद से भर जाएगा तब तुम प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश में कमल पर मणि के सुंदर अनुभव को भी देखोगे। प्रकाशित मणि! और कमल इतना कोमल, इतना त्रैण, इतना सुकुमार! किसी दूसरे फूल से इसकी तुलना नहीं हो सकती।

[illegible]-20

[illegible]

(Translated from The Hidden Splendor, Chapter #6, Chapter title: Only fools choose to be somebody, 15 March 1987 am in Chuang Tzu Auditorium, Part of Question 1)

[illegible]

अपराधी हैं। सत्ता में होने के बजाय इन्हें सींखचों के पीछे होना चाहिए; ये अमानवीय हैं।
और वे आध्यात्मिक रूप से बीमार लोग हैं। शक्ति और आधिपत्य की महत्त्वाकांक्षा बीमार मनों में ही उपजती है। यह हीनता की ग्रंथि से उपजती है। जो लोग हीनता-ग्रंथि से ग्रसित नहीं हैं वे शक्ति की फिक्र नहीं करते; उनका सारा प्रयास शांति के लिए होता है, क्योंकि जीवन का अर्थ केवल शांति में ही जाना जा सकता है- शक्ति मार्ग नहीं है। शांति, मौन, अनुग्रह, ध्यान- ये धर्म के मूलभूत अंग हैं।
मूढ़ राजनीतिज्ञों द्वारा धर्म को नियंत्रित करने की अनुमति नहीं दी
जा सकती। स्थिति ऐसी है जैसे कि बीमार लोग चिकित्सकों को नियंत्रित करने का प्रयास कर रहे हों, यह बताते हुए कि उन्हें क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए। सुन लो उनसे, क्योंकि बीमारों का बहुमत है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि चिकित्सक बीमारों द्वारा नियंत्रित हो। चिकित्सक मनुष्यता के घावों को भर सकता है, बीमारियों से छुटकारा दिला सकता है। धर्म चिकित्सक है।
राजनीतिज्ञ लोग पर्याप्त नुकसान पहुंचा चुके हैं, और समूची मानवता को
एक सार्वभौम आत्मघात की तरफ ले जा रहे हैं। और इस पर भी राजनेता हिम्मत रखते हैं कहने की कि धर्म को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए- जब कि इस ग्रह पर समस्त जीवन खतरे में है! केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि निर्दोष पक्षी और उनके गीत, मौन वृक्ष और उनके पुष्प- वह सब कुछ जो जीवित है।
पृथ्वी से जीवन को विदा कर देने के लिए राजनीतिज्ञ लोग पर्याप्त विध्वंसक शक्ति निर्मित करने में सफल हो गए हैं; और वे लगातार और-और पारमाणु हथियारों का ढेर लगाए जा रहे हैं। वास्तव में, आज से तीन वर्ष पहले इतने पारमाणु हथियार थे कि प्रत्येक मनुष्य सात बार नष्ट किया जा सके, यह समूची पृथ्वी सात बार नष्ट की जा सके, अथवा ऐसी सात पृथ्वियां नष्ट की जा सकें। एक मनुष्य एक ही बार मरता है; इतनी सारी विध्वंसक शक्ति इकट्ठा करने की कोई जरूरत नहीं है।
सारी राजनीति झूठों पर टिकी है।
अभी हाल ही में- मुझे यकीन नहीं आया कि कोई ऐसा व्यक्ति जो पागल नहीं है, ऐसे वक्तव्य दे सकता है- रोनाल्ड रेगन ने एक वक्तव्य दिया। वे सीनेट के समक्ष इन्कार कर रहे थे- लगातार- कि वे कुछ एक देशों को कोई भी हथियार दिए जा रहे थे। और अब छानबीन से पता चला है कि वे झूठ बोल रहे थे- दो वर्षों से लगातार झूठ बोल रहे थे। गरीब देशों को विध्वंसक हथियार दिए गए हैं, और थोड़ी मात्रा में नहीं- बहुत बड़ा ढेर। अब तथ्य प्रकाश में आ गए हैं और रोनाल्ड रेगन को एक वक्तव्य देना पड़ा, और वक्तव्य जो उन्होंने दिया है, उस पर मुझे हंसी आयी- इतना बेतुका।
उन्होंने कहा, "अपने हृदय में, मैं अभी भी जानता हूं कि जो कुछ मैंने कहा वह सत्य था।" किंतु तथ्य जो प्रकाश में आए हैं, वे बताते हैं कि वह झूठ था। मुझे अभी भी अपने हृदय में विश्वास है कि मैं सच ही बोलता आ रहा था। वे तथ्यों को स्वीकार कर रहे हैं, और फिर भी, साथ-साथ कह रहे हैं, मुझे अभी भी अपने हृदय में विश्वास है कि मैं जो कुछ भी कह रहा था, सच था, यद्यपि तथ्य उसे गलत साबित कर रहे हैं।
राजनीतिज्ञ झूठों पर जीते हैं; राजनीतिज्ञ वायदों पर पलते हैं- किंतु
वे वायदे कभी पूरे नहीं किए जाते। वे विश्व में सर्वाधिक अयोग्य लोग हैं। उनकी एकमात्र योग्यता है कि वे निरीह जनता को मूर्ख बना सकते हैं; अथवा गरीब देशों में, उनके मत खरीद सकते हैं। और एक बार वे सत्ता में आ गए तो पूरी तरह भूल जाते हैं कि वे जनता के सेवक हैं; वे ऐसा व्यवहार करने लगते हैं जैसे कि वे जनता के स्वामी हैं।
वे मनुष्य के अंतर्जगत के विषय में क्या जानते हैं? वे आनंदमग्नता के विषय में, भगवत्ता के विषय में क्या जानते हैं? तथापि, वे चाहते हैं कि धर्म को राजनीति में हस्तक्षेप न करने दिया जाए लेकिन उनके संबंध में क्या? क्या उन्हें धर्म के साथ हस्तक्षेप करने दिया जाए? क्या निम्नतर उच्चतर को अधिशासित करने जा रहा है? क्या लौकिक पवित्र को अधिशासित करने जा रहा है? वह मानवता का परम दुर्भाग्य होगा।

जहां तक मेरा ख्याल है, सारे राजनीतिज्ञों को ध्यानी होना चाहिए, अंतर्जगत के संबंध में कुछ पता होना चाहिए; ज्यादा चैतन्य होना चाहिए, ज्यादा करुणापूर्ण, प्रेम के स्वाद से परिचित; अस्तित्त्व के मौन का अनुभव उनके पास हो और इस ग्रह के सौंदर्य का, और अस्तित्त्व के उपहारों का। और उन्हें विनम्र और अनुग्रहपूर्ण होने की कला सीखनी चाहिए।
धर्म को सारे राजनीतिज्ञों का शिक्षक होना चाहिए। यदि राजनीतिज्ञों
के पास धार्मिकता की कोई सुगंध नहीं आ जाती, तो मानवता का कोई भविष्य नहीं है। धर्म को राजनीतिज्ञों के साथ हस्तक्षेप करना ही होगा। राजनीतिज्ञों के साथ धर्म के हस्तक्षेप बिना... राजनीतिज्ञ अंधे हैं, उनके पास आंखें नहीं हैं; वे बहरे हैं, सत्य को सुन पाने के लिए उनके पास शांत चित्त नहीं है।
लेकिन राजीव गांधी चिंतित क्यों हैं कि धर्म और राजनीति को अलग किया जाना चाहिए? राजनीति छोटी बात है। धर्म मनुष्य का समग्र विकास है। राजनीति को धर्म की विशाल अनुभूति का अंशमात्र होना चाहिए। किसी विभाजन की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन राजनीतिज्ञ, क्योंकि वह सत्ता में है, इतना अहंकारी हो जाता है कि वह सोच नहीं सकता उन विनम्र, सरल किंतु बुद्धिमान लोगों के पास जाने के बाबत।
समस्याएँ बढ़ती जाती हैं; राजनीतिज्ञ उन्हें हल करने में नपुंसक सिद्ध हुए हैं। किंतु वे उन लोगों के पास नहीं जाएंगे जो उन्हें दिशा प्रदान कर सकते हैं, जो उन्हें सलाह दे सकते हैं क्योंकि उनके पास स्पष्टता है।
मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं। मैंने अपने जीवन में कभी मतदान नहीं किया
है और न करनेवाला हूं- कभी; क्योंकि दो बंदरों के बीच चुनाव करने का अर्थ भी क्या है? क्या सिर्फ इसलिए कि वे दो अलग ढंग के झंडे पकड़े हुए हैं? क्या सिर्फ इसलिए कि उनके चिन्ह भिन्न हैं? आखिर त बंदर तो बंदर ही हैं।
उनमें धर्म के प्रति, धार्मिक लोगों के प्रति एक गहन सम्मान की जरूरत है, क्योंकि एक बात निश्चित हैः धार्मिक लोग चुनाव लड़ने नहीं जा रहे हैं- कोई धार्मिक व्यक्ति मतों की भीख नहीं मांगनेवाला। मूलतः उसके पास अपने अहंकार के पोषण की कोई आकांक्षा नहीं है क्योंकि छिपाने के लिए कोई हीनता- ग्रंथि नहीं है। अपने मौन में, अपनी शांति में, अपनी आनंदमग्नता में वह परम श्रेष्ठता को जान चुका है। अब उससे आगे और कुछ नहीं है, उसके ऊपर और कुछ नहीं है।
अब वह एक मंदिर बन चुका है; उसका परमात्मा उसके स्वयं के भीतर है। राजनीतिज्ञ का अस्तित्त्व युद्धों पर आधारित है, दंगे पैदा करवाने पर आधारित है, अशांति पर आधारित है- ये सब उसके पोषण हैं। एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः जब तक तुम्हारे दुश्मन न हों तुम एक महान नेता नहीं बन सकते। यदि तुम्हारे दुश्मन न भी हों, तो यह झूठ निर्मित करो कि तुम्हारा देश खतरे में है, क्योंकि लोग जब भयभीत हों तो वे गुलाम बनने को तैयार हैं। जब लोग भयभीत होते हैं, वे राजनीतिज्ञ का अनुसरण करने को राजी हैं।
यद्यपि वह एक विक्षिप्त व्यक्ति था, कभी-कभार उसने ऐसे वक्तव्य दिए
जो बहुत अर्थपूर्ण हैं। उसने कहा है, "मनुष्य जाति के महानतम नेता युद्धों के दिनों में पैदा होते हैं। तो जब तक एक महान युद्ध न हो, तुम एक महान नेता नहीं बन सकते; एक महान नेता होने की आकांक्षा पूरी करने मात्र के लिए तुम्हें करोड़ों लोगों की हत्या करनी होगी।"
और वह सही हैः शांति के दिनों में, लोगों को किसी का अनुसरण करने की जरूरत नहीं; उन दिनों में लोग किसी नेता को करीब-करीब देवता नहीं बना देते जिससे उसके वचन ही कानून बन जाते हों।
राजनीतिज्ञ हर तरह से उपाय करते हैं अपने देश को भयभीत रखने के लिए। चीन भारत की सीमा पर परमाणु-अस्त्र जमा कर रहा है; पाकिस्तान भारत की सीमा पर फौजें जमा कर रहा है- भारतीय राजनेता जिद किए जाते हैं कि यह सच है। पाकिस्तान में, वे जिदपूर्वक कहे चले जाते हैं कि भारत उनकी सीमा पर फौजें जमा कर रहा है; चीन में, वे जिद किए जाते हैं कि भारत परमाणु-अस्त्र तैयार कर रहा है। पार्लियामेंटों में वे कहे चले जाते हैं, हम कुछ भी ऐसा निर्मित नहीं कर रहे हैं- किंतु वह एक सफेद झूठ है।

चीनी नेता को चीन के लोगों को भयभीत रखना पड़ता है। भारतीय नेता को भारत के लोगों को भयभीत रखना पड़ता है। पाकिस्तानी नेताओं को पाकिस्तान के लोगों को भयभीत रखना पड़ता है।
तुम्हारे भय में उनकी शक्ति है।
जितना ज्यादा वे तुम्हें भयभीत रख पाते हैं, उतने ही ज्यादा वे शक्तिशाली होते हैं। देश के बाहर वे इन कल्पनाओं को गढ़ते चले जाते हैं, और देश के भीतर वे जारी रखते हैः हिंदू-मुस्लिम दंगे, हिंदी- भाषा और गैर-हिंदी-भाषा लोगों के बीच दंगे। वे चाहते हैं कि तुम किसी भी बात के लिये, मगर लड़ते रहो- कोई भी तुच्छ बात के लिये।
यदि तुम लड़ने में संलग्न हो, वे शक्ति और सत्ता में हैं। यदि तुम लड़ना बंद कर दो, उनकी शक्ति विदा हो जाती है। यह एक भद्दा खेल है।
यह धार्मिक लोगों के कर्तव्यों में से एक है कि वे स्वयं को राजनीति
से ऊपर रखें और लोगों को सृजनात्मक मूल्यों की और, अधिक-अधिक मानवता की ओर ले चलें। दरअसल, अगर धर्मों की समझ में एक बात आ जाये, कि सारी मनुष्यता एक है और किसी राष्ट्र की कोई आवश्यकता नहीं है, ये सारे बौने राजनीतिज्ञ विदा हो जायेंगे।
किंतु सबसे अनोखी बात यह है कि राजनीतिज्ञ लोग कहे चले जाते हैं कि धर्म और राजनीति को पृथक रहना चाहिये। क्यों? क्यों सत्य को राजनीति से पृथक रहना चाहिये? और क्यों प्रेम को राजनीति से पृथक रहना चाहिये? क्यों ध्यानपूर्ण चेतना को राजनीति से पृथक रहना चाहिये? क्यों एक प्रार्थनापूर्ण हृदय को राजनीति से पृथक रहना चाहिये?
हां, मैं समझता हूं कि इस अर्थ में उसे पृथक रहना चाहिये कि वह उच्चतर है। राजनीतिज्ञ को मनोवैज्ञानिक-उपचार और आध्यात्मिक-उपचार की आवश्यकता है और उसे धार्मिक लोगों के पास सलाह के लिये जाना चाहिये। प्राचीन भारत में ऐसी स्थिति थी। हमने वे दिन देखे है; भिखारियों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये जिनके पास कुछ भी न था- और उनकी सलाह लेने के लिए।
सम्राट उनके चरण छुआ करते जिन्होंने आत्मज्ञान उपलब्ध कर लिया था, क्योंकि उनका आशीर्वाद मात्र तुम्हें रूपांतरित कर सकता है। राजनीति कार्यमूलक है; वह उपयोगितावादी है- परंतु उसके पास मनुष्य को उच्चतर चेतना में ले चलने का कोई उपाय नहीं है। और विशेषतः भारत के संदर्भ में, यह एक ऐसी भद्दी स्थिति बनी हुई है कि देखकर पीड़ा होती है।
महात्मा गांधी कहा करते थे, स्वतंत्रता से पूर्व कि भारत का प्रथम राष्ट्रपति किसी महिला को बनाया जायेगा। और न केवल यह महिला होगी वरन शूद्र भी होगी- निम्नतम अस्पृश्य वर्ग से।
लेकिन जैसे ही आजादी आई, वे सारे वायदे जिनकी वे बातें किया करते थे भूल गये और वही पुराने सत्ता के खेल शुरू हो गयेः पंडित जवाहरलाल नेहरू एक ब्राह्मण है; वे महिला नहीं हैं और वे शूद्र नहीं हैं। पुनः ब्राह्मण की ही सत्ता कायम होती है। और चालीस वर्षों से, ब्राह्मणों का एक परिवार भारत पर आधिपत्य जमाये हुए है। उन्होंने करीब-करीब अपना व्यक्तिगत राजवंश बना रखा है। यह प्रजातंत्र नहीं रह गया है।
थोड़ा तथ्यों पर गौर करोः भारतीय जनता पर महात्मा गांधी की पकड़ क्या थी? वे धार्मिक होने का स्वांग कर रहे थे- वे एक धार्मिक व्यक्ति नहीं थे- एक हिंदू संत होने का स्वांग कर रहे थे, क्योंकि हिंदु बहुत हैं, वे ही देश का शासन करने वाले थे। यही कारण था कि वे भारत के अविभाजन की जिद पकड़े हुए थे, क्योंकि एक अविभाजित भारत में, हिंदू सत्ता में होंगे; हिंदुओं के हाथों से कोई सत्ता छीन नहीं सकता क्योंकि बाकी सब लोग अल्पमत में हैं। इस राजनीति पर कोई ध्यान नहीं देता- कि वे धर्म तक का उपयोग भद्दे मंतव्यों के लिये कर रहे थे।
डा. अंबेदकर अस्पृश्यों के लिये अलग मत की मांग कर रहे थे और मैं उस व्यक्ति से पूर्णतः सहमत हूं, इस सीधे से कारण से कि पांच हजार वर्षों से ये लोग दमित किये गये हैं, शोषित किये गये हैं; मनुष्य के रूप में उनकी सारी गरिमा नष्ट कर दी गयी है- और वे हिंदू-जनसंख्या का चौथाई भाग है। और वे गंदा काम करते हैं; उनका सम्मान होना चाहिये, उस के लिये उनकी इज्जत की जानी चाहिए। लेकिन इससे विपरीत, उनकी छाया तक अस्पृश्य है। यदि एक

अस्पृश्य की छाया पर पड़ जाता है, आपको स्वयं को शुद्ध करने के लिए तुरंत स्नान करना होगा।
अंबेदकर एकदम सही थे अस्पृश्यों के लिये अलग मत मांगने में, ताकि उन्हें पक्का हो सके कि पार्लियामेंट में एक चौथाई सदस्य उनके होंगे। अन्यथा वे पार्लियामेंट में पहुंचने में कभी सफल न होंगे; वे मन द्वारा निर्मित पांच हजार वर्ष पुराने, भद्दे जाति-व्यवस्था-नियमों को बदलने में कभी सफल न होंगे।
बड़े-बड़े अपराधी हैं, किंतु लगता है मनु उन में सर्वप्रिय हैं। एडोल्फ हिटलर के मन में मनु के प्रति बड़ा सम्मान था, फ्रेडरिक नीत्शे के मन में मनु के प्रति बड़ा सम्मान था- गौतम बुद्ध के प्रति नहीं- और मनु इस देश के लिये एक अभिशाप सिद्ध हुए हैं। उन्होंने करोड़ों लोगों से उनकी सारी मानवी गरिमा छीन ली; वे पशुओं की तरह जी रहे हैं।
अंबेदकर यह कहने में पूर्णतः तर्कसंगत थे, वे सही थे कि इन लोगों को अलग मत का अधिकार मिलना चाहिये, किंतु गांधी ने आमरण अनशन शुरू कर दिया इस बात के लिए कि अंबेदकर अपना आंदोलन बंद कर दें; अन्यथा, वे कुछ खाएंगे- पीएंगे नहीं जब तक कि मृत्यु ही नहीं आ जाती। अब यह सर्वथा अतर्कपूर्ण है। क्योंकि तुम लोगों को उपवास करके राजी कर लेते हो, इसका अर्थ यह नहीं कि तुम सही हो। यह ब्लैकमेल है; यह धमकाना हैः मैं आत्महत्या कर लूंगा यदि तुम मुझसे राजी नहीं होते।
स्वभावतः सारा देश अंबेदकर पर दबाव डाल रहा था, अपना आंदोलन बंद करो; अन्यथा गांधी की मृत्यु तुम्हारे लिये और अस्पृश्यो के लिए बहुत खतरनाक सिद्ध होगा। वे जिंदा जला दिये जाएंगे। उनके गांव जला दिये जाएंगे क्योंकि हिंदू लोग बदला लेंगे कि अस्पृश्यों ने गांधी को मार दिया है। जितनी देर संभव हुआ अंबेदकर ने खींचा, किंतु अंततः समर्पण कर दिया- यह देखते हुए कि शायद यदि गांधी की मृत्यु हो ही जाती है... ! यद्यपि यह कोई तर्क नहीं है।
यदि मैं अंबेदकर की जगह होता तो मैंने गांधी को कहा होता, तुम मर सकते
हो क्योंकि तुम्हारी मृत्यु कोई तर्क नहीं है। यह उतनी ही मूर्खतापूर्ण कहानी है जैसी कि एक मैंने सुना है।
एक बहुत बदसूरत आदमी एक सुंदर लड़की से विवाह करना चाहता था- और उसकी उम्र लड़की के पिता के जितनी थी। और उसने गांधीवादी तरीका अपनाया; उसने अपना बिस्तर लिया, लड़की के घर के सामने पडा़ रहा और आमरण अनशन घोषित कर दिया, जब तक कि लड़की का पिता लड़की का विवाह उससे कर देने के लिये राजी नहीं हो जाता। अब हर आदमी उस बेचारे के प्रति सहानुभूति अनुभव कर रहा थाः वह मर रहा है। क्या महान प्रेमी है। हमने ऐसे प्रेमियों के बारे सिर्फ कहानियों में सुना है, और वह वास्तव में एक मजनू, एक फरहाद, एक महिवाल है।
पिता भारी कठिनाई में था; लड़की अत्यंत भय में थी। सारे दिन घर पर भीड़ जमा रहती और लोग चिल्लातेः उसकी मृत्यु तुम्हारे लिये खतरनाक होगी। यह व्यक्ति कोई हिंसात्मक व्यवहार नहीं कर रहाः यह तो अहिंसात्मक व्यवहार ही कर रहा है, एक धार्मिक व्यक्ति, उपवासरत।
किसी आदमी ने लड़की के पिता को सलाह दी, तुम किसी पुराने गांधीवादी के पास जाओ यह पता करने के लिये कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये। गांधीवादी ने कहा, "इसमें कोई समस्या नहीं। एक बहुत बदसूरत वेश्या है, बहुत बूढ़ी... तुम बस इसे एक सौ रुपये दे दो और वह भी उस आदमी के बगल में अपना बिस्तर लगाकर पड़ी रहे, यह कहते हुए कि यदि तुम मुझसे विवाह नहीं करते तो मैं आमरण अनशन करूंगी। रात में उस आदमी ने अपना बिस्तर समेटा और भाग निकला।
ये तर्क नहीं है।
और अंबेदकर अपना आंदोलन खत्म करने के लिये विवश कर दिये गये और संतरे
के रस की गिलास लेकर वे गांधी के पास गये कि वे अपना अनशन समाप्त करें। यह राजनीति की सेवा में धर्म को लगाना है। कोई धार्मिक व्यक्ति वैसा नहीं कर सकता।
भारत के अखंड और एक बने रहने की अवधारणा भी कुछ और नहीं बल्कि राजनीति
थी जो हिंदुओं की सेवा में उपयोग की जा रही थी, ताकि मुसलमान अथवा ईसाई

अथवा जैन अथवा सिख कभी सत्ता में न आ सकें इसलिये की जा रही थी, इससे हिंदु सत्ता में बने रहेंगे- क्योंकि वे बहुमत में हैं।
जिन्ना, जिसने पाकिस्तान बनाया, जरा भी धार्मिक व्यक्ति न था; किंतु उसने भी धर्म का उपयोग किया। उन्होंने अलग देश बनाने के लिये मुसलमानों का आंदोलन खड़ा किया; अन्यथा वे सत्ता में न आ सकेंगे- कभी। अचानक वह एक महान मुसलमान बन गये, एक महान धार्मिक व्यक्ति और धर्म के नाम पर... वह सब राजनीति थी- ने महात्मा गांधी धार्मिक थे और न मुहम्मद अली जिन्ना धार्मिक थे। लेकिन दोनों सत्ता चाहते थे।
तब से, चालीस वर्ष बीत चुके हैं- राजनीतिज्ञों ने इस देश के लिये किया क्या है? जब यह देश आजाद हुआ, इसकी आबादी केवल चालीस करोड़ थी। वे जनसंख्या- विस्फोट को रोकने में भी सफल नहीं हुए, जो कि बिना किसी पारमाणु हथियारों के इस देश को नष्ट कर देनेवाला है। अब जनसंख्या दुगुने से भी अधिक है; नब्बे करोड़ लोग! और इस सदी के अंत तक, भारत दुनिया का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश होगा। अब तक, चीन था, किंतु चीन अधिक वैज्ञानिक व्यवहार कर रहा है और अपनी जनसंख्या कम करने के प्रयास कर रहा है। इस सदी के अंत तक, दुनिया का हर चौथा आदमी भारतीय होगा।
और राजनीतिज्ञ क्या करते हैं? वे संतति-नियमन के पक्ष में, गर्भपात के पक्ष में लोगों से कुछ भी कहने में भयभीत है, क्योंकि उनका रस इस बात में जरा भी नहीं है कि यह देश बचता है या नष्ट हो जाता है; उनका सारा रस इस बात में है कि वे किसी को नाराज नहीं करना चाहते। लोगों के पास अपने पूर्वाग्रह हैं- राजनीतिज्ञ उनके पूर्वाग्रहों को छूना नहीं चाहते क्योंकि उन्हें उनके मतों की आवश्यकता है। यदि वे उनके पूर्वाग्रहों को चोट पहुंचाते हैं, तो ये लोग उन्हें अपना मत प्रदान करनेवाले नहीं।
केवल एक धार्मिक व्यक्ति ही, जिसके पास स्पष्ट देखने की क्षमता है और जिसे लोगों के मतों की आवश्यकता नहीं है, सत्य को कह सकता है, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति को आपसे कुछ भी अपेक्षा नहीं है- राजनीतिज्ञ केवल प्रीतिकर झूठ बोल सकते हैं, दिलासापूर्ण झूठ बोल सकते हैं, ताकि उनके मत प्राप्त कर सकें- उल्टे, सत्य बोलना उसके जीवन के लिये खतरनाक हो सकता है; यह सदा से ऐसा ही रहा है। जब भी सत्य बोला गया है, बोलनेवाले को सूली लगा दी गयी है। राजनीतिज्ञ लोग सता की तलाश में हैं, सूली की नहीं।
दुनिया को अधिक से अधिक ऐसे धार्मिकों की जरूरत है जो सूली लगने की कीमत पर भी सत्य बोलने को तैयार हों। धार्मिक व्यक्ति सूली लगने से नहीं डरता, जिसका सरल सा कारण यह है कि उसे पता है कि मृत्यु एक झूठ है। अधिक से अधिक, वे उसका शरीर नष्ट कर सकते है; लेकिन उसका चैतन्य, उसकी आत्मा, उसके भीतर का परमात्मा तो जिये ही चला जायेगा।
धर्म की प्रतिष्ठा ऊपर रहनी चाहिये, और धार्मिक लोग सुने जाने चाहिये। संसद को सतत धार्मिक लोगों को आमंत्रित करते रहना चाहिये कि वे उन्हें कुछ उपाय सुझा सकें कि कैसे देश की समस्याएं हल की जाएं, क्योंकि वे स्वयं तो कुछ भी हल करने में सर्वथा नपुंसक हैं। समस्याएं बढ़ती जाती हैं, किंतु राजनीतिज्ञ का अहंकार यह नहीं स्वीकार करना चाहता कि कोई उनसे भी ऊपर है। लेकिन चाहो अथवा न चाहो, धार्मिक व्यक्ति तुमसे ऊपर है। तुम लोगों की चेतना में रूपांतरण नहीं ला सकते- वह ला सकता है।
निश्चित ही, धर्म को अपनी पवित्रता से नीचे उतरकर राजनीति के तुच्छ मसलों में नहीं आना चाहिए। वास्तव में मैं इस बात से सहमत हूं कि धर्म और राजनीति को अलग रहना चाहिए। उनमें दूरी विशाल है। धर्म आसमान का एक सितारा है, राजनीतिज्ञ जमीन पर रेंग रहे जंतु हैं।
वे अलग हैं। लेकिन यह सवाल नहीं है कि उन्हें अलग होना चाहिए। राजनीतिज्ञों को यह स्मरण रखना चाहिए कि वे सांसारिक मसलों पर काम कर रहे हैं। और वह मानवता का असली गंतव्य नहीं है।
धार्मिक लोग हर संभव प्रयत्न कर रहे हैं मानवता को उस बिंदु तक ऊपर उठाने का- उसकी चेतना को, उसके प्रेम को, उसकी करुणा को- जहां युद्ध असंभव हो जाते हैं, जहां राजनीतिज्ञ धोखा नहीं दे सकते लोगों को, जहां उनके झूठों और वायदों का भंडाफोड़ किया जा सके। यह राजनीति में हस्तक्षेप नहीं हैः यह मात्र लोगों की सुरक्षा करना है राजनीतिज्ञों के शोषण से। अलग वे

पहले से ही हैं। राजीव गांधी को यह धारणा किसने दी कि धर्म और राजनीति अलग-अलग नहीं हैं?
राजनीति कुछ ऐसी बात है जिसका स्थान गंदी नालियों में हैं। धर्म का स्थान उन्मुक्त, स्वच्छ आकाश में है- जैसे कोई उड़ता हुआ पक्षी, जो अस्तित्त्व के केंद्र पर ही पहुंच जाने के लिए सूर्य के आरपार उड़ा जा रहा हो।
निश्चित ही धार्मिक लोग राजनीति में भागीदार नहीं हो सकते; लेकिन राजनीतिज्ञों को विनम्रता सीखनी चाहिए- उनकी शक्ति को उन्हें अंधा नहीं बनाने देना चाहिए। शक्ति भ्रष्ट करती है और आत्यंतिक शक्ति आत्यंतिक रूप से भ्रष्ट करती है; और सारे राजनीतिज्ञ अपनी शक्ति द्वारा भ्रष्ट हैं। और उनके पास शक्ति क्या है? क्योंकि वे तुम्हारी हत्या कर सकते हैं- उनकी शक्ति एक कसाई की है, जिसमें कुछ भी महिमाशाली नहीं, सम्माननीय नहीं। धार्मिक व्यक्ति के पास एक बिल्कुल अलग किस्म की शक्ति होती हैः यह उसकी उपस्थिति में है, यह उसके महत प्रेम और जीवन के प्रति सम्मान में है; यह अस्तित्त्व के प्रति उसके अनुग्रह भाव में है।
हमें नहीं भूलना चाहिए कि निम्नतर को अपनी सीमाओं के भीतर ही रहना चाहिए; और जितना संभव हो देश के बुद्धिमान लोगों को संसद को उन समस्याओं पर संबोधित करने के लिए बुलाते रहना चाहिए जिनको हल करने में राजनीतिज्ञ समर्थ नहीं हैं- जिन्हें हल करने की समझ ही नहीं है उनके पास।
लेकिन राजीव गांधी के इरादे सर्वथा दूसरे हैं। वे चाहते हैं कि राजनीतिज्ञ धर्म सहित सब पर आधिपत्य जमानेवाली एकमात्र शक्ति हों; और धर्म भी राजनीतिज्ञों के इशारे पर चले।
मैं इस इरादे की समग्रस्तः भर्त्सना करता हूं। धर्म राजनीतिज्ञों के निर्देशों पर नहीं चल सकता। राजनीतिज्ञों को धार्मिकों की सलाह मानने की कला सीखना चाहिए। समस्याएं इतनी छुद्र हैं कि कोई भी समझदार और हितैषी व्यक्ति सरलता से उनका हल कर सकता है। लेकिन राजनीतिज्ञ उन्हें हल करना नहीं चाहता; वह उन्हें हल करने की केवल बात करता है क्योंकि उसकी शक्ति इस बात पर निर्भर है कि आपके पास कितनी ज्यादा समस्याएं हैं। जितनी अधिक समस्याएं होंगी। तुम्हारी, उतने ही दयनीय होगे तुम, उतना ही शक्तिशाली होगा वह।
धार्मिक चेतना के लिए, जितने अधिक आनंदित तुम हो, जितने अधिक प्रेमपूर्ण, जितने अधिक उत्सवपूर्ण... वह चाहता है कि तुम्हारा जीवन एक गीत हो, एक नृत्य। क्योंकि वही एकमात्र वह ढंग है जिस प्रकार हमें जीवन के स्रोत की उपासना करनी चाहिए- अपने आनंद द्वारा, अपने गीतों द्वारा और अपने नृत्यों द्वारा।

प्रवचन-21

जीवन का अंतिम उपहार
(Translated from The Book of Wisdom, Chapter #14, Chapter title: Other Gurus and Etceteranandas, 24 February 1979 am in Buddha Hall, Question 1. अनुवादः स्वामी चैतन्य कीर्ति)

प्यारे ओशो,
क्या आप मृत्यु तथा मृत्यु की कला के संबंध में कुछ कहेंगे?
देव वंदना, मृत्यु के संबंध में सबसे पहली बात समझने जैसी है कि मृत्यु एक झूठ है। मृत्यु होती ही नहीं; यह सर्वाधिक भ्रामक बातों में से एक है। मृत्यु एक और झूठ की छाया है- उस दूसरे झूठ का नाम है अहंकार। मृत्यु अहंकार की छाया है। क्योंकि अहंकार है, इसलिए मृत्यु भी प्रतीत होती है।
मृत्यु को जानने, मृत्यु को समझने का रहस्य स्वयं मृत्यु में नहीं है। तुम्हें अहंकार के अस्तित्त्व की गहराई में जाना होगा। तुम्हें देखना और निरीक्षण करना और ध्यान देना होगा कि यह अहंकार क्या है? और जिस दिन तुम यह पा लोगे कि अहंकार है ही नहीं, कि यह कभी था ही नहीं- यह केवल प्रतीत होता था क्योंकि तुम सजग नहीं थे, यह प्रतीत होता था क्योंकि तुमने अपने अस्तित्त्व को अंधकार में रखा हुआ था- जिस दिन यह समझ में आ जाता है कि अहंकार अचेतन मन की रचना है, अहंकार विलीन हो जाता है और उसके साथ ही मृत्यु तिरोहित हो जाती है।
तुम्हारा वास्तविक स्वरूप शाश्वत है। जीवन न पैदा होता है न मरता है। लहरें आती हैं और जाती हैं, सागर बना रहता है- लेकिन लहरें हैं क्या? केवल आकृतियां, सागर के साथ हवा का खेल। लहरों का कोई ठोस अस्तित्त्व नहीं है। ऐसे ही हम हैं- लहरें, खिलौने।
लेकिन अगर हम लहरों की गहराई में झांकें तो वहां एक सागर है और इसकी शाश्वत गहराई है और इसका अथाह रहस्य है। अपनी सत्ता की गहराई में झांको और तुम सागर को पाओगे। और उस सागर का अस्तित्त्व है; सागर सदा है। तुम यह नहीं कह सकते यह था और तुम यह भी नहीं कह सकते यह होगा, तुम इसके लिए केवल एक काल का उपयोग कर सकते हो, वर्तमान कालः यह है।
धर्म की पूरी खोज यही है। खोज केवल यही हैः जो वास्तव में है उसको पा लेना। हमने उन चीजों को स्वीकार कर लिया है जो वास्तव में हैं ही नहीं- और उनमें सबसे बड़ी और सबसे केंद्रीय चीज है अहंकार। और निःसंदेह, इसकी सबसे बड़ी छाया बनती है- और वह छाया मृत्यु है।
जो लोग मृत्यु को सीधे समझने जाएंगे, वे कभी भी इसके रहस्य में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। वे अंधकार के साथ लड़ रहे होंगे। अंधकार का अस्तित्त्व नहीं है, तुम उसके साथ नहीं लड़ सकते। प्रकाश लाओ, और फिर अंधकार है ही नहीं।
हम अहंकार को कैसे जान सकते हैं? अपने जीवन में थोड़ी और सजगता लाओ। प्रत्येक कृत्य को पहले से कम यांत्रिक ढंग से करो, और तुम्हें कुंजी हाथ लग गयी। अगर तुम चल रहे हो, तो रोबोट की भांति मत चलो। इस भांति मत चलते रहो जैसे तुम सदा चलते रहे हो, इसे यांत्रिक ढंग से मत करो। इसमें थोड़ी सजगता लाओः धीमे हो जाओ, प्रत्येक कदम पूरी सजगता के साथ उठाओ।
छोटे-छोटे कार्यों में इस तरह का प्रयास करो। तुम्हें कोई बहुत बड़ी चीजें नहीं करनी हैं। खाना खाते हुए, स्नान करते हुए, तैरते हुए, चलते हुए, बात करते, सुनते, अपना भोजन पकाते, अपने कपड़े धोते हुए- प्रक्रिया को अ-यांत्रिक कर दो। अ-यांत्रिक इस शब्द को याद रखो; जागरूक होने का इसमें पूर्ण रहस्य है।
मन एक रोबोट है। रोबोट की अपनी एक उपयोगिता है; इसी ढंग से मन कार्य करता है। तुम कुछ सीखते होः जब तुम इसे सीखते हो, प्रारंभ में इसके प्रति सजग रहो। उदाहरण के लिए, अगर तुम तैरना सीखते हो, तो तुम बहुत सजग होते हो, क्योंकि तब जीवन खतरे में है। अथवा अगर तुम कार चलाना सीखते हो, तब तुम

बहुत सजग होते हो। तुम्हें सजग होना पड़ता है, तुम्हें बहुत चीजों के प्रति सजग होना पड़ता है। स्टीयरिंग, व्हील, सड़क, गुजरते हुए लोग, एक्सीलरेटर, ब्रेक, क्लच- तुम्हें सब कुछ के प्रति सजग होना पड़ता है।
बहुत सी चीजें हैं जिन्हें तुम्हें याद रखना है, और तुम कांप रहे हो,
और अब कोई गलती करना खतरनाक है। यह बहुत खतरनाक है, इसलिए तुम्हें सजगता रखनी पड़ती है। लेकिन जिस क्षण तुमने ड्राइविंग सीख ली, उतनी सजगता की जरूरत नहीं रहेगी। तब तुम्हारे मन का रोबोट इसे सम्हाल लेगा।
यही है हम जिसे सीखना कहते हैं। कुछ सीखने का अभिप्राय है कि अब यह चेतना से रोबोट में स्थानांतरित कर दी गयी है। सीखने का कुल इतना ही मतलब है। एक बार कोई चीज तुमने सीख ली, अब यह तुम्हारे चेतन मन का हिस्सा न रही, यह अचेतन मन को सौंप दी गयी। अब अचेतन इसे कर सकता है; अब तुम्हारी चेतना कुछ और सीखने के लिए स्वतंत्र है।
यह अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है। अन्यथा, तुम एक ही चीज को पूरा जीवन सीखते रहोगे। मन एक बहुत अच्छा सेवक है, एक बहुत अच्छा कंप्यूटर है। तुम्हें सजग रहने के लिए सदा सक्षम रहना है, कि यह तुम पर पूर्ण रूप से अधिकार न जमा ले, कि यह पूरी तरह सर्वेसर्वा न बन जाए, कि एक द्वार सदा खुला रहना चाहिए जहां से तुम रोबोट के बाहर आ सको।
इस द्वार के खोलने को ध्यान कहते हैं। लेकिन स्मरण रहे, रोबोट इतना कुशल है कि यह ध्यान को भी अपने नियंत्रण में ले सकता है। एक बार तुम्हारे सीख लेने के बाद, मन कहता हैः अब तुम्हें इसकी चिंता की कोई जरूरत नहीं, मैं इसे कर सकता हूं। मैं इसे करूंगा, तुम इसे मुझ पर छोड़ दो।
और मस्तिष्क कुशल है; यह एक बहुत सुंदर मशीन है, कुशलता से कार्य करती है। वास्तव में, हमारा सब विज्ञान, ज्ञान में हमारी संपूर्ण तथाकथित प्रगति के साथ, मानवीय मस्तिष्क जैसी परिष्कृत चीज पैदा नहीं कर पाया। दुनिया में बड़े से बड़े कंप्यूटर भी मस्तिष्क की तुलना में प्राथमिक कक्षा के हैं।
मस्तिष्क तो एक चमत्कार है।
लेकिन जब कोई चीज इतनी ताकतवर होती है, तो उसमें खतरा होता है। तुम इससे और इसकी ताकत से इतने अधिक सम्मोहित हो सकते हो कि तुम अपनी आत्मा खो सकते हो। अगर तुम सजग होना पूर्णतः भूल चुके हो, तब अहंकार निर्मित होता है।
अहंकार आत्यंतिक असजगता की अवस्था है। तुम्हारे पूरे अस्तित्त्व पर
मन ने अधिकार जमा लिया है; यह कैंसर की भांति तुम्हारे ऊपर फैल गया है, पीछे कुछ भी नहीं छूटा है। अहंकार कैंसर है भीतर का- आत्मा का कैंसर है। और एकमात्र इलाज है, एकमात्र इलाज मैं कहता हूं- ध्यान। तब तुम अपने
मन से कुछ क्षेत्र वापस लेना शुरू कर देते हो। और यह प्रक्रिया कठिन है, पर आनंददायी भी है। प्रक्रिया कठिन है लेकिन जादू भरी है। प्रक्रिया कठिन है परंतु चुनौतीपूर्ण है, रोमांचक है। यह तुम्हारे जीवन में एक नया आनंद लाएगी। जब तुम रोबोट से अपना अधिकार-क्षेत्र वापस पा लोगे तो तुम हैरान होकर देखोगे कि तुम एक सर्वथा नए व्यक्ति बन रहे हो, कि तुम्हारा अस्तित्त्व फिर से नया हो गया है, कि यह तो एक नया जन्म है।
और तुम चकित होओगे कि तुम्हारी आंखें पहले से अधिक देखती हैं, तुम्हारे कान पहले से अधिक सुनते हैं, तुम्हारे हाथ पहले से अधिक स्पर्श करते हैं, तुम्हारी देह पहले से अधिक अनुभव करती है, तुम्हारा हृदय अधिक प्रेम करता है- हर चीज पहले से अधिक हो जाती है। और अधिक केवल परिमाण में ही नहीं, गुणात्मक रूप में भी। तुम न केवल अधिक वृक्ष देखते हो, बल्कि वृक्षों में और गहरा देखते हो। वह जो वृक्षों में हरा है वह और हरा हो जाता है- इतना ही नहीं, बल्कि यह प्रदीप्त हो उठता है। इतना ही नहीं, बल्कि वृक्ष अपना एक व्यक्तित्व पाने लगता है। इतना ही नहीं, बल्कि अब तुम अस्तित्त्व के साथ सहभागिता की अनुभूति कर सकते हो।
और जितने अधिक अधिकार-क्षेत्र तुम पा लोगे, उतना ही तुम्हारा जीवन अधिकाधिक जगमग और रंगीन हो जाएगा। तब तुम एक इंद्रधनुष बन गए- सभी रंगोंवाले, संगीत के सभी स्वर- पूरी अष्टपदी। तुम्हारा जीवन और समृद्ध हो

गया, बहु-आयामी, जिसमें गहराई है, ऊंचाई है, अतिसुंदर वादियां हैं और अति सुंदर सूर्योज्ज्वल शिखर हैं।
तुम फैलना शुरू हो जाते हो। तुम जैसे ही रोबोट से अपने अधिकार वापस ले लेते हो, तुम जीवंत होना शुरू हो जाते हो।
यह ध्यान का चमत्कार है; यह कुछ ऐसी चीज है जिसे चूकना नहीं चाहिए। जो लोग इसे चूक गए हैं, वे जीए ही नहीं हैं। और जीवन को ऐसी सघनता में, ऐसी मस्ती में जानना, यह जानना है कि मृत्यु नहीं है। जीवन को न जानना मृत्यु को पैदा करता है; जीवन का अज्ञान मृत्यु को पैदा करता है।
जीवन को जानना यह जानना है कि मृत्यु नहीं है, कभी थी ही नहीं। मैं घोषणा करता हूंः कोई कभी नहीं मरा, और कोई कभी नहीं मरेगा। चीजों का स्वरूप ऐसा है कि मृत्यु असंभव है- केवल जीवन है। हां, जीवन अपने रूप बदलता रहता हैः एक दिन तुम यह हो, और दूसरे दिन तुम कुछ और ही हो। वह बच्चा कहां गया जो तुम कभी थे? क्या वह बच्चा मर गया? क्या तुम कह सकते हो कि वह बच्चा मर गया? बच्चा मर नहीं गया है, फिर तब बच्चा है कहां? रूप बदल गया है। बच्चा अपने सारतत्त्व में अभी भी मौजूद है, लेकिन अब तुम जवान पुरुष अथवा जवान स्त्री बन गए हो। बच्चा अपने पूरे सौंदर्य के साथ विद्यमान है; उसके ऊपर नई समृद्धियां आच्छादित कर दी गयी हैं। और फिर एक दिन तुम बूढ़े हो जाओगे। तब तुम्हारी जवानी कहां गयी? मर गयी? नहीं, फिर कुछ और अधिक घटित हुआ है। बुढ़ापा अपनी फसल ले आया है, बुढ़ापा अपनी बुद्धिमत्ता ले आया है, बुढ़ापा अपनी सुंदरताएं ले आया है।
बच्चा निर्दोष है, वह उसका सारतत्त्व है। जवानी ऊर्जा से लबालब है, वह उसका सारतत्त्व है। और बूढ़े व्यक्ति ने सब देख लिया है, सब जी लिया है, सब जान लिया हैः बुद्धिमत्ता घटित हुई है, वह उसका सारतत्त्व है। परंतु उसकी बुद्धिमत्ता में उसकी जवानी का कुछ अंश मौजूद है; यह भी लबालब है, प्रदीप्त है, तरंगायित है, धड़कती है, जीवंत है। और इसमें बच्चे का भी कुछ अंश है; यह निर्दोष है।
अगर बूढ़ा आदमी जवान भी नहीं है, तब केवल उसकी उम्र बढ़ी है, वह बूढ़ा नहीं हुआ है। वह समय और आयु में बढ़ा है, परंतु परिपक्व (विकसित) नहीं हुआ है। वह चूक गया है। अगर बूढ़ा आदमी बच्चे की भांति निर्दोष नहीं है, अगर उसकी आंखों से बच्चे की भांति स्फटिक स्पष्टता नहीं झलकती, तब उसने अभी तक जीया ही नहीं है।
अगर तुम समग्रता से जीयो तो होशियारी और कुटिलता गायब हो जाएगी और श्रद्धा पैदा होगी। ये सब कसौटियां हैं जिनसे पता चलता है कि तुम जीए कि नहीं। बच्चा कभी मरता नहीं है, उसका केवल रूपांतरण होता है। जवान कभी मरता नहीं है, बस फिर एक नया रूपांतरण होता है। और क्या तुम सोचते हो कि बूढ़ा आदमी मर जाता है? हां, देह गायब हो जाती है, क्योंकि इसका काम पूरा हो गया। किंतु चैतन्य की यात्रा जारी रहती है।
अगर मृत्यु एक सत्य होती, तो अस्तित्त्व बिल्कुल व्यर्थ होता, अस्तित्त्व पागल होता। अगर एक बुद्ध की मृत्यु होती है, उसका अभिप्राय है कि एक ऐसा अपूर्व सुंदर संगीत, ऐसी गरिमा, ऐसी महिमा, ऐसी सुंदरता, ऐसा काव्य अस्तित्त्व से अदृश्य हो गया। तब तो अस्तित्त्व बहुत मूढ़ है। तब प्रयोजन ही क्या हुआ? तब विकास कैसे संभव है? तब क्रमिक विकास कैसे संभव है?
बुद्ध तो एक दुर्लभ हीरे हैं। यह घटना कभी-कभार घटित होती है। लाखो- करोड़ों लोग कोशिश करते हैं, तब कहीं कोई एक व्यक्ति बुद्ध बनता है। और फिर उसकी मृत्यु होती है, और सब समाप्त हो जाता है। फिर क्या प्रयोजन हुआ? नहीं, बुद्ध मर नहीं सकते। वे विलीन हो जाते हैं, अस्तित्त्व उनको अपने में समा लेता है। बुद्ध बने रहते हैं। अब यह सातत्य देह मुक्त है; क्योंकि अब वे इतने वितीर्ण हो गए हैं कि कोई देह उनको अपने में समाहित नहीं कर सकती सिवाय स्वयं समष्टि के। वे इतने सागर जैसे हो गए हैं कि अब उनके छोटे-छोटे रूप संभव नहीं हैं। अब उनका केवल सारभूत अस्तित्व होता है। अब फूल की भांति नहीं, केवल सुगंध की भांति ही उनका अस्तित्त्व होता है। अब वे आकार नहीं ले सकते, अब वे केवल अस्तित्त्व की एक निराकार प्रज्ञा की भांति रह सकते हैं।

विश्व अधिकाधिक प्रज्ञावान हुआ है। बुद्ध के पहले यह इतना बुद्धिमान नहीं था, कुछ अभाव था। जीसस के पहले यह इतना बुद्धिमान नहीं था, मोहम्मद के पहले यह इतना बुद्धिमान नहीं था। इन सबका योगदान है। अगर तुम ठीक समझो, परमात्मा कुछ ऐसी घटना नहीं है जो घटित हो चुकी, बल्कि जो घटित हो रही है। परमात्मा प्रतिदिन घटित हो रहा है। बुद्ध ने कुछ सृजन किया है, महावीर ने कुछ सृजन किया है, पतंजली ने कुछ सृजन किया है, लाओत्सु, जरथुत्र, अतीशा, तिलोपा- इन सबका योगदान है।
परमात्मा का सृजन हो रहा है। तुम्हारे हृदयों को पुलकित हो जाने दो
कि तुम भी परमात्मा का सृजन कर सकते हो। तुम्हें बार-बार यह बताया गया है कि परमात्मा ने दुनिया को बनाया। मैं तुम्हें बताना चाहूंगाः हम प्रतिदिन परमात्मा का सृजन कर रहे हैं।
और तुम परिवर्तन देख सकते हो। अगर तुम ओल्ड टेस्टामेंट में देखो, तो ओल्ड टेस्टामेंट का ईश्वर जो शब्द बोलता है वे बहुत मूढ़तापूर्ण हैं। ओल्ड टेस्टामेंट का ईश्वर कहता हैः मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं। क्या तुम ईश्वर को ईर्ष्यालु सोच सकते हो? जो मेरा अनुकरण नहीं करेंगे उन्हें कुचलकर नरक की अग्नि में फेंक दिया जाए। वे लोग जो मेरी आज्ञा नहीं मानते, उनसे बदला लिया जाएगा।
क्या तुम बुद्ध के मुंह से निकलते ऐसे शब्द सोच सकते हो? नहीं, परमात्मा की धारणा का प्रतिदिन परिष्कार हो रहा है। मोज़ेज़ का परमात्मा आदिम है, प्रारंभिक है, अल्पविकसित है; जीसस का परमात्मा कहीं अधिक परिष्कृत, कहीं अधिक सुसंस्कृत है। जितना अधिक मनुष्य सुसंस्कृत होता है, उतना अधिक उसका परमात्मा सुशिक्षित होता है। जितनी अधिक मनुष्य में समझ बढ़ती है, उतना अधिक उसका परमात्मा समझदार होता है, क्योंकि तुम्हारा परमात्मा तुम्हारा प्रतिनिधित्व करता है।
मोज़ेज़ का परमात्मा नियम है, जीसस का परमात्मा प्रेम है। बुद्ध का परमात्मा करुणा है, अतीशा का परमात्मा एकदम शून्य और मौन है।
हम परमात्मा के नए आयामों की खोज कर रहे हैं, हम परमात्मा में नए आयाम जोड़ रहे हैं, परमात्मा का सृजन किया जा रहा है। तुम केवल खोजी ही नहीं हो, तुम सर्जक भी हो। और भविष्य परमात्मा के और बेहतर दर्शन करेगा।
बुद्ध कभी मरते नहीं, वे हमारी परमात्मा की धारणा में विलीन हो जाते हैं। जीसस हमारे परमात्मा के सागर में समाहित हो जाते हैं। और वे लोग जो अभी जागृत नहीं हुए हैं, वे भी मरते नहीं हैं। उन्हें किसी न किसी रूप में पुनः-पुनः आना पड़ता है, क्योंकि जाग्रत होने की संभावना रूपों के माध्यम से ही केवल होती है।
विश्व एक संदर्भ है जाग्रत होने के लिए- एक अवसर है।
अतीशा को याद करो। वह कहता है- अवसर की प्रतीक्षा मत करो- क्योंकि विश्व ही एक अवसर है; हम पहले से ही इसमें हैं। विश्व एक अवसर है सीखने के लिए। यह विरोधाभासी प्रतीत होता हैः समय एक अवसर है समयातीत को सीखने का, देह एक अवसर है देहातीत को जानने का, पदार्थ एक अवसर है चैतन्य को सीखने का, सेक्स एक अवसर है समाधि को सीखने का। यह पूरा अस्तित्त्व एक अवसर है। क्रोध एक अवसर है करुणा को सीखने का। लोभ एक अवसर है बांटना सीखने के लिए। और मृत्यु एक अवसर है अहंकार में जाने और देखने के लिए कि मैं हूं कि मैं नहीं हूं। अगर मैं हूं, तब शायद मृत्यु संभव है। अगर तुम यह जान लो कि तुम नहीं हो, केवल शुद्ध शून्य है भीतर, कि भीतर कोई नहीं है- अगर तुम अपने भीतर कोई नहीं अनुभव कर सको, तब मृत्यु कहां है? मृत्यु क्या है? कौन मर सकता है?
वंदना, तुम्हारा प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। तुम पूछती होः क्या आप मृत्यु के संबंध में कुछ कहेंगे?
केवल एक ही बात कि मृत्यु नहीं होती।
और तुम पूछती हो... और मृत्यु की कला क्या है?
जब मृत्यु है ही नहीं, तुम मृत्यु की कला कैसे सीखोगी? तुम्हें जीने
की कला सीखनी होगी। अगर तुम जीवन जीना जानती हो, तो तुम जीवन और मृत्यु के संबंध में सब कुछ जान जाओगी। लेकिन तुम्हें विधायक की ओर जाना होगा।

कभी भी नकार को अपने अध्ययन का विषय मत बनाओ, क्योंकि नकार है ही नहीं। तुम कितना ही उस पर काम करते रहो, तुम कहीं नहीं पहुंचोगे। प्रकाश को समझने की कोशिश करो, अंधकार को नहीं। जीवन को समझने की कोशिश करो, मृत्यु को नहीं। प्रेम को समझने की कोशिश करो, घृणा को नहीं।
अगर तुम घृणा में जाओ, तुम कभी इसे समझ नहीं पाओगे, क्योंकि घृणा प्रेम की अनुपस्थिति है। ऐसे ही अधंकार प्रकाश की अनुपस्थिति है। तुम अनुपस्थिति को कैसे समझ सकते हो?
अगर तुम मुझे समझना चाहते हो, तब तुम मुझे समझो, मेरी अनुपस्थिति को नहीं। अगर तुम इस कुर्सी का अध्ययन करना चाहते हो, तो इस कुर्सी का ही अध्ययन करना होगा- न कि जब आशीष इसे उठाकर लेकर चला गया है, तब तुम अनुपस्थिति का अध्ययन करने लगोगे। तुम किस बात का अध्ययन करोगे?
सदा सजग रहो। कभी किसी नकार में मत फंसो। अनेक लोक नकारात्मक चीजों
का अध्ययन करते रहते हैं; व्यर्थ उनकी ऊर्जा नष्ट हो जाती है।
मृत्यु की कोई कला नहीं है। अथवा जीने की कला ही मरने की कला है। जीयो! परंतु तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग तुम्हें सिखाते रहे हैं कि जीयो मत। वे मृत्यु के निर्माता हैं। बहुत परोक्ष ढंग से उन्होंने मृत्यु की रचना की है, क्योंकि उन्होंने तुम्हें जीने के प्रति बहुत भयभीत कर दिया है। सब कुछ गलत हैः जीवन गलत है, संसार गलत है, शरीर गलत है, प्रेम गलत है, संबंध गलत है, किसी चीज का मजा लेना गलत है। उन्होंने तुम्हारे भीतर प्रत्येक चीज के प्रति इतना अपराध-भाव भर दिया है, हर चीज की इतनी निंदा कर दी है कि तुम जी नहीं सकते।
और जब तुम जी ही नहीं सकते, तो फिर क्या रह गया? अनुपस्थिति, जीवन की अनुपस्थिति- और वही मृत्यु है। और तब तुम कांप रहे हो, उस चीज के सामने कांप रहे हो, जो है ही नहीं, जो तुम्हारी अपनी ही रचना है। और चूंकि तुम मृत्यु के महान भय में कांपने लगते हो, पुरोहित बहुत शक्तिशाली बन जाता है। वह कहता है, मत चिंता करो, मैं हूं तुम्हारी मदद करने को। मेरा अनुकरण करो। मैं तुम्हें नरक से बचाऊंगा और मैं तुम्हें स्वर्ग में ले जाऊंगा। और जो लोग मेरे साथ हो गए हैं बच जाएंगे, और कोई भी नहीं बचेगा।
ईसाई ऐसी ही बातें लोगों को कहते रहते हैं, जब तक तुम ईसाई नहीं बनते, तुम बच नहीं सकते। केवल जीसस ही तुम्हारी रक्षा करेगा। निर्णय का दिन निकट आ रहा है, और निर्णय के दिन, जो लोग जीसस के साथ होंगे, वह उन्हें पहचान लेगा। वह उनको चुन लेगा। और दूसरे लोग, लाखों-करोड़ों लोग, सदा-सदा के लिए केवल नरक में फेंक दिए जाएंगे। स्मरण रहे, भागने का कोई उपाय नहीं है, वे सनातन काल तक नरक में फेंक दिए जाएंगे।
और ऐसा ही दूसरे धर्मों का रवैया है। लेकिन लोग भय के कारण किसी भी चीज से चिपकने लगते हैं- जो भी उनके एकदम निकट उपलब्ध हो। अगर तुम संयोग से हिंदू, जैन या यहूदी घर में पैदा हो गए हो, तो तुम यहूदी, जैन या हिंदू बन जाते हो, जैसा भी संयोग हो। जो भी निकट में उपलब्ध है, बच्चा उसी से चिपकने लगता है।
मेरा दृष्टिकोण एकदम भिन्न है। मैं नहीं कहता कि भयभीत होओ- वह तो पुरोहित की चाल है, वह तो उसका व्यावसायिक रहस्य है। मैं कहता हूं कि डर की कोई बात नहीं है, क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर है। डरने की कोई बात नहीं है। जीवन को भयमुक्त होकर जीयो। प्रत्येक क्षण को जितनी सघनता से जी सकते हो जीयो। सघनता का स्मरण रखो। और अगर तुम किसी क्षण को सघनता से नहीं जीते हो, तब क्या होता है? तुम्हारा मन दोहराने को लालायित रहता है।
तुम एक स्त्री को प्रेम करते हो, तुम्हारा मन उसे दोहराने को लालायित रहता है। क्यों? तुम एक ही अनुभव को फिर-फिर दोहराने के लिए क्यों लालायित रहते हो? तुम एक प्रकार का खाना खाते हो, तुम इसका आनंद लेते हो, अब तुम उसी भोजन के लिए ललचाते हो। क्यों? कारण यह है कि तुम जो भी करते हो, तुम कभी उसे समग्रतापूर्वक नहीं करते। इसलिए तुम्हारे भीतर कुछ अतृप्ति बनी रहती है। अगर तुम इसे समग्रतापूर्वक करो, तो तुम उसकी पुनरावृत्ति के लिए लालायित नहीं होओगे और तुम कुछ नए की खोज करोगे, अज्ञात का अन्वेषण करोगे। तुम एक दुष्चक्र में ही नहीं घूमते रहोगे, तुम्हारा जीवन एक विकास हो

जाएगा। आमतौर पर लोग वर्तुल में घूमते रहते हैं। वे आगे बढ़ते दिखाई पड़ते हैं, किंतु वे केवल दिखाई भर पड़ते हैं।
विकास का अभिप्राय है कि तुम वर्तुल में नहीं घूम रहे हो, प्रतिदिन कुछ नया घटित हो रहा है, वास्तव में प्रत्येक क्षण कुछ नया हो रहा है। और यह कब संभव होता है? जब तुम सघनतापूर्वक जीना शुरू कर देते हो।
मैं तुम्हें सिखाना चाहूंगा कि कैसे तल्लीनता और समग्रतापूर्वक खाएं, कैसे सघनता और समग्रतापूर्वक प्रेम करें, कैसे छोटी-छोटी चीजें इतनी मस्ती से करें कि कुछ पीछे न छूट जाए। अगर तुम हंसो, तो वह हंसी तुम्हारी जड़ों को हिला दे। अगर तुम रोओ, तो आंसू हो जाओ; आंसुओं के माध्यम से तुम्हारा हृदय उंडेल दिया जाए। अगर तुम किसी का आलिंगन करो, तो आलिंगन ही हो जाओ। अगर तुम किसी का चुंबन लो, तो ओंठ ही हो जाओ, केवल चुंबन ही हो जाओ। और तुम चकित हो जाओगे कि अब तक तुम कितना चूकते रहे हो, कितना तुम चूक गए हो, कैसे तुम अब तक कुनकुने ढंग से जीते रहे हो।
मैं तुम्हें जीने की कला सिखा सकता हूं। उसी में मरने की कला निहित है; तुम्हें इसे अलग से नहीं सीखना है। जो व्यक्ति जीना जानता है, वह मरना भी जानता है। जो व्यक्ति प्रेम में उतरना जानता है, वह यह भी जानता है कि किस क्षण प्रेम के बाहर आ जाना। वह शालीनता से, अहोभावपूर्वक अलविदा कहते हुए प्रेम के बाहर आ जाता है- किंतु केवल वही व्यक्ति जो प्रेम करना जानता है।
लोग नहीं जानते कि कैसे प्रेम करें? और कैसे अलविदा कहें? जब यह कहने
का क्षण आता है। अगर तुम प्रेम करते हो तो तुम यह भी जानोगे कि प्रत्येक चीज का प्रारंभ है और प्रत्येक चीज का अंत भी, यह कि शुरू होने का समय होता है और समाप्त होने का भी समय होता है, और इसमें कोई घाव नहीं है। व्यक्ति को घाव नहीं लगता, व्यक्ति जान लेता है कि मौसम चला गया। व्यक्ति निराश नहीं होता है, व्यक्ति इसे बस समझ लेता है।
और व्यक्ति दूसरे को धन्यवाद देता हैः तुमने मुझे कितने सुंदर उपहार दिए! तुमने मुझे जीवन के नए दृष्टिकोण दिए, तुमने कुछ झरोखे खोले जिन्हें मैं अपने आप शायद कभी न खोल पाता। अब समय आ गया है कि हम अलग हो जाएं और अपने रास्ते अलग कर लें। किसी क्रोध में नहीं, किसी आक्रोश में नहीं, किसी शिकवे-शिकायत में नहीं, बल्कि गहन अहोभाव और बहुत प्रेम के साथ, धन्यवाद से भरे हृदय के साथ।
अगर तुम प्रेम करना जानते हो, तो तुम अलग होना भी जानोगे। तुम्हारे अलग होने में एक सौंदर्य और एक गरिमा होगी। और जीवन के साथ भी ठीक ऐसा ही हैः अगर तुम जानते हो कैसे जीएं, तो तुम मृत्यु की कला भी जानोगे। तुम्हारी मृत्यु अत्यंत सुंदर होगी।
सुकरात की मृत्यु बहुत सुंदर होती है, बुद्ध की मृत्यु बहुत सुंदर होती है। जिस दिन बुद्ध की मृत्यु हुई, उस सुबह उन्होंने अपनी सभी शिष्यों को, सभी भिक्षुओं को एकत्रित किया और उन्हें बताया, अब अंतिम दिन आ गया है, मेरी नौका आ गयी है और मुझे जाना है। यह एक सुंदर यात्रा थी, एक सुंदर संग-साथ था। अगर तुम्हें कोई प्रश्न पूछने हों, तो तुम पूछ सकते हो, क्योंकि आज के बाद मैं तुम्हें भौतिक रूप से उपलब्ध नहीं रहूंगा।
शिष्यों पर एक गहन मौन, एक गहन उदासी उतर आई। बुद्ध हंसे और बोले, उदास
मत होओ, क्योंकि यही तो मैं तुम्हें बार-बार सिखाता रहा हूंः जिसका प्रारंभ है उसका अंत है। अब मुझे मेरी मृत्यु के माध्यम से भी तुम्हें सिखा देने दो। जैसे मैं तुम्हें अपने जीवन के द्वारा सिखाता रहा हूं, अब मुझे मेरी मृत्यु के द्वारा भी तुम्हें सिखा देने दो।
किसी को कोई प्रश्न पूछने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने पूरा जीवन हज़ारों प्रश्न पूछे थे, और यह कोई प्रश्न पूछने का क्षण न था, उनकी ऐसी मनोदशा न थी, वे तो रो रहे थे।
तो बुद्ध ने कहा, "अलविदा।" अगर तुम्हारे कोई प्रश्न नहीं हैं तो मैं विदा होता हूं। वे आंख बंद करके वृक्ष के नीचे बैठ गए और देह से अदृश्य हो गए। बौद्ध परंपरा में, ऐसे देह से अदृश्य हो जाने को प्रथम ध्यान कहा जाता है। इसका अभिप्राय है अपने शरीर से अपना तादात्म्य तोड़ लेना और समग्रतः, पूर्णतः जान लेना कि मैं शरीर नहीं हूं।

तुम्हारे मन में प्रश्न अवश्य पैदा होगाः क्या यह बुद्ध पहले से नहीं जानते थे? वे इसे पहले से जानते थे, लेकिन बुद्ध जैसे व्यक्ति को तब कोई ऐसी युक्ति निर्मित करनी पड़ती है जिसके द्वारा उनका थोड़ा सा संबंध देह से बना रह सके। अन्यथा वे बहुत पहले ही देह छोड़ देते- बयालीस साल पहले ही वे देह छोड़ दिए होते। जिस दिन उनको संबोधि घटित हुई, उसी दिन। करुणा के कारण उन्होंने एक वासना निर्मित की- दूसरों की मदद करने की वासना। यह भी एक वासना ही है, और यही वासना व्यक्ति को देह के साथ जोड़े रखती है।
उन्होंने लोगों की मदद करने की वासना निर्मित की। मैंने जो कुछ भी जाना है, उसे मुझे बांटना है। अगर तुम बांटना चाहते हो, तो तुम्हें अपने मन और शरीर का उपयोग करना पड़ेगा। वह छोटा सा अंश जुड़ा रहा।
अब वे देह में इस छोटी सी जड़ को भी काट देते हैं; अब उनका देह से तादात्म्य टूट जाता है। प्रथम ध्यान पूरा हुआ, देह छूट गई।
तब दूसरा ध्यानः मन छोड़ दिया गया। उन्होंने बहुत पहले मन को छोड़ दिया थाः एक मालिक की भांति इसे छोड़ दिया था, लेकिन एक दास की भांति इसका अभी भी उपयोग किया जा रहा था। अब तो इसकी एक दास की भांति भी जरूरत न रही, इसे पूरी तरह छोड़ दिया गया है, समग्रतः छोड़ दिया गया है।
और तब तीसरा ध्यानः उन्होंने अपना हृदय छोड़ दिया। अब तक इसकी जरूरत थी, वे अपने हृदय के माध्यम से संचालित हो रहे थे, अन्यथा करुणा संभव न होती। वे हृदय ही थे; अब उन्होंने हृदय से भी अपना संबंध तोड़ दिया।
जब ये तीन ध्यान पूरे होते हैं, तब चौथा घटित होता है। अब वे एक व्यक्ति न रहे, एक आकार न रहे, एक लहर न रहे। वे सागर में विलीन हो गए। वे वही हो गए जो वे सदा से थे। वे वही हो गए जिसे उन्होंने बयालीस वर्ष पूर्व जान लिया था, लेकिन किसी प्रकार से विलंब करने का प्रयास कर रहे थे, ताकि लोगों की मदद कर सकें।
उनकी मृत्यु ध्यान का एक अत्यंत प्रभावकारी प्रयोग है। और कहा जाता
है कि अनेक जो वहां उपस्थित थे, केवल उन्हें धीरे-धीरे जाते देखकर... पहले उन्होंने देखा कि देह पहले जैसी नहीं रही, देह से जीवंतता अदृश्य हो गयी। देह वहीं थी, लेकिन एक बुत की भांति। जो लोग और गहरा देख सकते थे, अधिक ध्यानपूर्ण थे, उन्होंने तुरंत देख लिया कि अब मन को भी छोड़ दिया गया था और भीतर मन नहीं बचा था। जो लोग और भी अधिक गहरा देख सकते थे, वे देख सके कि हृदय भी समाप्त हो गया था। और जो लोग वास्तव में बुद्धत्व के कगार पर खड़े थे, बुद्ध को अदृश्य होते देखकर वे भी अदृश्य हो गए।
जिस दिन बुद्ध की मृत्यु हुई उस दिन उनके अनेक शिष्य संबोधि को उपलब्ध हुए- अनेक, केवल उन्हें मरते देखकर। उन्होंने उन्हें जीते देखा था, उन्होंने उनका जीवन देखा था, लेकिन अब चरमोत्कर्ष आ गया था। उन्होंने उनको मरते देखा, ऐसी सुंदर मृत्यु, ऐसी गरिमा, ऐसी ध्यानमयता। यह देखते हुए अनेक जाग्रस्त हो गए।
एक बुद्ध के साथ होना, एक बुद्ध के साथ जीना, उसके प्रेम की बौछारें प्राप्त करना- एक वरदान है। लेकिन सबसे बड़ा वरदान है तब उपस्थित होना जब एक बुद्ध की मृत्यु होती है। तब तो तुम उस ऊर्जा पर सवार हो सकते हो, तुम उस ऊर्जा के साथ एक महान छलांग ले सकते हो- क्योंकि बुद्ध अदृश्य हो रहे हैं, और अगर तुम्हारा प्रेम महान है और तुम्हारा संबंध गहरा है, तो यह घटना अवश्य घटती है।
ऐसी ही मेरे अनेक संन्यासियों के साथ घटना घटेगी। जिस दिन मैं अदृश्य होऊंगा, तुममें से अनेक मेरे साथ अदृश्य हो जाएंगे।
विवेक मुझे बार-बार कहती है, आपके जाने के बाद मैं एक क्षण भी नहीं जीना चाहती। मैंने उसे कहा, "फिक्र मत कर। तुम अगर जीना भी चाहो, तो भी तुम जी न सकोगी।" अभी कुछ दिन पहले दीक्षा विवेक से कह रही थी, "जिस क्षण भगवान गए, मैं भी गई।"
यह सच है। लेकिन यह केवल विवेक और दीक्षा के बारे में ही सच नहीं है,
यह तुममें से बहुतों के बारे में सच है। और यह कुछ ऐसा नहीं है कि तुम्हें इसे करना पड़ेगा, यह घटना तो अपने आप घटित होगी। यह तो एक घटना होगी। लेकिन यह केवल तभी संभव है अगर तुम अपने भीतर पूरी श्रद्धा को घटित होने दो।

मेरे जीवित होते हुए, अगर तुम पूरी श्रद्धा को घटित होने दो, तब तुम मेरी मृत्यु में भी मेरे साथ हो सकते हो। लेकिन अगर थोड़ा सा भी संदेह है, तो तुम सोचोगे, लेकिन मैंने अभी तक बहुत सी चीजें नहीं की हैं और मुझे अपना जीवन भी जीना है। मैं जानता हूं कि यह दुखद है कि सदगुरु का जाना हो रहा है, लेकिन मुझे बहुत सी चीजें करनी हैं, मुझे अपना जीवन जीना है... और हजारों वासनाएं। अगर थोड़ा सा भी संदेह है, इसमें हजारों वासनाओं का जन्म होगा। लेकिन अगर संदेह नहीं है, तब सदगुरु की मृत्यु इस पृथ्वी पर कभी भी घटित होने वाली सर्वाधिक मुक्तिदायी अनुभूति है।
बुद्ध बहुत सौभाग्यशाली थे कि उनके महान शिष्य थे। जीसस इतने सौभाग्यशाली नहीं थे, उनके शिष्य कायर थे। उनकी जब मृत्यु हो रही थी, वे सब पलायन कर गए। जब वे सूली पर चढ़े थे, वे शिष्य मीलों दूर भाग गए थे- भय से कि कहीं पकड़े न जाएं। तीन दिनों के बाद जहां उनकी देह रखी गयी थी, वहां से जब पत्थर हटाया गया था उस समय, उनके पटशिष्यों में से कोई एक भी वहां मौजूद न था। केवल मैरी मगदलीन, वेश्या और एक दूसरी मैरी- दो स्त्रियों- ने साहस जुटाया।
शिष्यों को यह भय था कि अगर वे देखने गए कि उनके सदगुरु की देह का क्या हुआ है, अथवा वे देह को नीचे उतारने गए, वे पकड़े जा सकते हैं। केवल दो स्त्रियों में पर्याप्त प्रेम था। जब जीसस के शरीर को सूली से उतारा गया, तब भी तीन स्त्रियों ने उनके शरीर को नीचे उतारा। वे सब महान पटशिष्य वहां नहीं थे।
जीसस बहुत सौभाग्यशाली नहीं थे। और कारण साफ हैः वे कुछ नए का प्रारंभ कर रहे थे। पूरब में, लाखों-करोड़ों वर्षों से बुद्ध होते रहे हैं। समय के बारे में पाश्चात्य धारणा सही नहीं है, समय की पाश्चात्य धारणा बहुत छोटी है, और यह ईसाइयत के कारण ही बहुत छोटी है। ईसाई सिद्धांतवादियों ने यहां तक कि गणना कर ली है कि कब दुनिया निर्मित हुईः 19 मार्च को। मैं विस्मित हो रहा था, इक्कीस क्यों नहीं? परमात्मा केवल दो दिन ही चूक गया! क्राइस्ट के चार हज़ार चार सौ वर्ष पहले, दुनिया बनाई गयी। समय की बहुत छोटी सी धारणा है यह।
यह दुनिया लाखों-करोड़ों वर्षों से अस्तित्त्व में है। अब विज्ञान भी समय की पूर्वीय धारणा के अधिकाधिक निकट आता जा रहा है। पूरब में, हज़ारों- हज़ारों वर्षों से बुद्ध होते रहे हैं, इसलिए हम जानते हैं कि एक बुद्ध के साथ कैसे होना- कैसे उनके साथ जीना, कैसे उन में श्रद्धा करना, और जब वे मर रहे हों तब उनके साथ कैसे होना, और कैसे उनके साथ मरना।
ईसाइयत और पाश्चात्य शिक्षा की कृपा से, इसमें से बहुत कुछ भुला दिया गया है। आधुनिक भारतीय तो बिल्कुल भारतीय नहीं हैं। भारत में भारतीयों को ढूंढना बहुत मुश्किल है, लगभग असंभव है। केवल कभी-कभार मुझे कोई भारतीय मिलता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जो लोग बहुत दूर-दूर देशों से आते हैं वे तथाकथित भारतीयों से कहीं अधिक भारतीय होते हैं। तीन सौ वर्षों के पाश्चात्य आधिपत्य और पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय मानस को पूर्णतः उखाड़ फेंका है।
अब पूर्वीय मन से अधिक पश्चिमी मन बुद्धों को समझने के निकट से निकट आता जा रहा है। और कारण यह है कि पश्चिम टैक्नालॉजी और विज्ञान से ऊबता जा रहा है, और अधिकाधिक निराश होता जा रहा है, और उसने देख लिया है कि विज्ञान ने जो आशा बंधायी थी, उसे वह पूरा नहीं कर पाया है। वास्तव में उसने यह देख लिया है कि सभी क्रांतियां असफल हो गई हैं। और अब केवल एक ही क्रांति बची हैः आंतरिक क्रांति, जो आंतरिक रूपांतरण से घटित होती है।
भारतीय अभी भी आशा कर रहे हैं कि थोड़ी सी बेहतर तकनीक से, थोड़ी सी बेहतर सरकार से, थोड़े से और धन से, थोड़े अधिक उत्पादन से सब कुछ ठीक हो जाएगा। भारतीय मन आशा कर रहा है, यह बहुत भौतिकवादी है। आधुनिक भारतीय किसी और देश के लोगों से कहीं अधिक भौतिकवादी है। भौतिकवादी देश भौतिकता से ऊब गए हैं। यह असफल हो गया है; वे निराश हैं और उनका भ्रम टूट गया है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः मेरे संन्यासी अधिक भारतीय हैं। चाहे वे जर्मन हों, चाहे वे नार्वे के हों, चाहे वे डच हों, चाहे वे इतालवी,

फ्रांसीसी, अंग्रेज, अमरीकी, रूसी, चेकोलावाकियन, जापानी, चीनी हों, लेकिन वे कहीं अधिक भारतीय हैं।
पत्रकार यहां बार-बार आते हैं और पूछते हैंः "यहां हमें अधिक भारतीय क्यों नहीं दिखाई देते हैं?" और मैं कहता हूंः "वे सब भारतीय हैं! कुछ थोड़े से विदेशी हैं- कुछ थोड़े से जिन्हें तुम भारतीय समझते हो, बस केवल वही विदेशी हैं। अन्यथा वे सभी भारतीय हैं।"
भारतीय होना कोई भौगोलिक बात नहीं है, यह तो सत्य के प्रति आंतरिक दृष्टिकोण की कुछ बात है। आधुनिक भारत बुद्ध का मार्ग भूल गया है और यह भी भूल गया है कि बुद्धों के साथ कैसे जीया जाता है?
मैं उस संपदा को तुम्हारे सामने पुनः प्रकट करने का प्रयास कर रहा हूं। यह तुम्हारे हृदय की गहराई में उतर जाने दोः पहला सूत्र है जीने की कला। विधायक-भाव से जीवन जीयो। जीवन परमात्मा का पर्यायवाची है; तुम परमात्मा शब्द को छोड़ सकते हो। जीवन परमात्मा है। जीवन का आदर करते हुए बहुत अहोभावपूर्वक जीवन को जीयो। तुम इस जीवन के पात्र नहीं हो, सहज एक उपहार की भांति तुम्हें यह जीवन प्राप्त हुआ है। अनुगृहीत हो और प्रार्थना से भरो और जितना इसका स्वाद ले सकते हो लो, इसका रसास्वादन करो। अपने जीवन को सौंदर्यबोध की एक अनुभूति बनाओ। और इसे सौंदर्यबोध की
एक अनुभूति बनाने के लिए बहुत कुछ की आवश्यकता नहीं होती है; बस एक सौंदर्यबोध की चेतना चाहिए, एक संवेदनशील आत्मा चाहिए। और अधिक संवेदनशील बनो, और अधिक सेंसुअल बनो, और इससे तुम अधिक आध्यात्मिक बन जाओगे।
पुरोहितों ने तुम्हारे शरीर को लगभग मृत्यु की अवस्था में ला दिया है। तुम पक्षाघातग्रस्त शरीरों, पक्षाघातग्रस्त मनों और पक्षाघातग्रस्त आत्माओं को ढो रहे होः तुम बैसाखियों के सहारे चल रहे हो। वे सब बैसाखियां फेंक दो। अगर तुम गिर भी जाओ और जमीन पर रेंगना पड़े, तो वह भी बैसाखियों से चिपके रहने से बेहतर होगा।
और जीवन को उसके अच्छा-बुरा, कड़वा-मीठा, अंधकार-प्रकाश, गर्मी-सर्दी-
हर संभव रूप में अनुभव करो। सभी द्वंद्वों का अनुभव करो। अनुभव से मत घबराओ, क्योंकि जितना अधिक तुम्हारा अनुभव होगा उतने अधिक तुम परिपक्व बनोगे। सभी संभावित विकल्पों को खोजो, सभी दिशाओं में जाओ, एक घुमक्कड बनो, जीवन और अस्तित्त्व की दुनिया में एक वैगाबांड बन जाओ। और जीने का कोई भी अवसर मत चूको।
पीछे मुड़कर मत देखो। केवल मूर्ख ही अतीत के संबंध में सोचते हैं- मूर्ख, जिनके पास वर्तमान में जीने की प्रतिभा नहीं है। और केवल मूर्ख ही भविष्य की कल्पना करते हैं, क्योंकि वर्तमान में जीने का उनके पास साहस नहीं होता। अतीत को भूल जाओ और भूल जाओ भविष्य को- यही क्षण सब कुछ है। यही क्षण तुम्हारी प्रार्थना, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा जीवन, तुम्हारा मरण, तुम्हारा सब कुछ बनना चाहिए।
बस यही है। और साहसपूर्वक जीयो, कायर मत बनो। परिणामों की मत सोचो; केवल कायर ही परिणामों के बारे में सोचते हैं। बहुत परिणाम-ग्रस्त मत रहो; वे लोग जो परिणाम-ग्रस्त होते हैं, जीवन को चूक जाते हैं। लक्ष्यों की मत सोचो, क्योंकि लक्ष्य सदा भविष्य में और दूर होते हैं, और जीवन अभी यहीं है, करीब है।
और बहुत उद्देश्यपूर्ण भी मत बनो। इसे मुझे दोहराने दोः बहुत उद्देश्यपूर्ण मत बनो, सदा ऐसे ख्याल मत ले आओ, इसका क्या उद्देश्य है? क्योंकि यह चाल है जिसे तुम्हारे दुश्मनों ने, मानवता के दुश्मनों ने, तुम्हारे जीवन के मूल स्रोत को विषाक्त करने के लिए रची है। इसका क्या उद्देश्य है? तुमने यह प्रश्न पूछा और सब सारहीन हो जाता है।
सुबह हुई है, सूरज उग रहा है और सूरज से प्राची लाल है, और पक्षी गीत गा रहे हैं और वृक्ष जाग रहे हैं, और सब ओर मस्ती है। यह एक आनंद है, फिर एक नया दिन आया है। और तुम वहां खड़े होकर प्रश्न पूछ रहे हो, इसका क्या उद्देश्य है? तुम चूक गए, तुम पूरी तरह चूक गए। तुम अलग-थलग हो गए।
गुलाब का एक फूल हवा में नाच रहा है, इतना कोमल और फिर भी इतना मजबूत, इतना कोमल और फिर भी तेज हवा में संघर्ष कर रहा है, इतना क्षणजीवी और फिर

भी कितना आत्मविश्वास! देखो गुलाब के फूल कोः तुमने कभी किसी गुलाब के फूल को चिंतित देखा है? कितना आत्मविश्वास, कितना संपूर्ण आत्मविश्वास है, मानो कि यह यहां सदा रहेगा। एक क्षणभर का अस्तित्त्व है, और कितना भरोसा है सनातनता में! हवा में नाच रहा है, हवा से गुफ्तगू कर रहा है, अपनी सुगंध बिखेर रहा है- और वहां तुम खड़े प्रश्न पूछ रहे हो, इसका क्या उद्देश्य है? तुम एक स्त्री के प्रेम में पड़ते हो और प्रश्न पूछो, इसका क्या उद्देश्य है? तुम अपनी प्रेमिका अथवा अपने मित्र का हाथ हाथ में लेकर बैठे हो और प्रश्न पूछ रहे हो इसका क्या उद्देश्य है? और तुम भले ही हाथ में हाथ लिए बैठे हो, लेकिन अब वहां से जीवन गायब हो गया है, तुम्हारा हाथ मृत हो गया है।
उद्देश्य क्या है? यह प्रश्न उठाते ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे कहता हूंः जीवन में कोई उद्देश्य नहीं है। जीवन अपना उद्देश्य स्वयं है; यह किसी साध्य का साधन नहीं है, यह अपना साध्य स्वयं है। उड़ता हुआ पक्षी, हवा में झूलता गुलाब, सुबह सूरज का उगना, रात्रि में सितारे, एक पुरुष का एक स्त्री के प्रेम में पड़ना, गली में एक बच्चे का खेलना... कोई उद्देश्य नहीं है, जीवन मात्र अपना आनंद ले रहा है, अपने होने का आनंद ले रहा है। ऊर्जा उमड़ रही है, नृत्य कर रही है, और कोई भी उद्देश्य नहीं है इसका। यह कोई प्रस्तुति नहीं है, यह कोई व्यवसाय नहीं है।
जीवन एक प्रेम की घटना है, काव्य है, संगीत है। ऐसे कचरा प्रश्न मत पूछो कि जीवन का क्या उद्देश्य है? क्योंकि जैसे ही तुमने यह पूछा कि तुमने अपने को जीवन से काट लिया। दार्शनिक प्रश्न जीवन का सेतु नहीं बन सकते, दार्शनिकता को अलग कर देना है।
जीवन के कवि बनो, गायक, संगीतकार, नर्तक, प्रेमी बनो और तुम जीवन का वास्तविक दर्शन जान लोगेः चिरंतन दर्शन।
और अगर तुम जीना चाहते हो... और यह एक सरल कला है। वृक्ष जी रहे हैं और उन्हें कोई सिखा नहीं रहा है। दरअसल वे हंस रहे होंगे यह देखकर कि तुमने ऐसा प्रश्न पूछा है, वे खिलखिला रहे होंगे- हो सकता है तुम उनकी खिलखिलाहट न सुन सको।
पूरा अस्तित्त्व गैर-दार्शनिक है। अगर तुम दार्शनिक हो तो तुम्हारे
और अस्तित्त्व के बीच एक खाई है। अस्तित्त्व बस है, कोई उद्देश्य-पूर्ति के लिए नहीं। और जो व्यक्ति सच में जीना चाहता है, उसे उद्देश्य की धारणा तो छोड़ देनी होगी। अगर तुम बिना उद्देश्य के जीना शुरू कर दो, सघनता और समग्रता के साथ, प्रेम और श्रद्धापूर्वक, जब मृत्यु आएगी तो तुम जानोगे कैसे मरना- क्योंकि मृत्यु जीवन की समाप्ति नहीं है, बल्कि जीवन का ही एक हिस्सा है।
अगर तुमने अन्य चीजों को जाना है, अगर तुमने अन्य चीजों को जी लिया है,
तब तुम मृत्यु को भी जी सकोगे। वास्तविक समझ वाला व्यक्ति अपनी मृत्यु को वैसे ही जी लेता है जैसे वह अपने जीवन को जी लेता है- उसी सघनता के साथ, उसी पुलक के साथ।
जब सुकरात को जहर दिया जाने वाला था, तब वह खूब पुलकित था। उसके कमरे
के बाहर जहर तैयार किया जा रहा था; उसके शिष्य एकत्रित हो गए थे। वह अपने बिस्तर पर तैयार लेटा था, क्योंकि समय निकट आ रहा थाः छह बजे, जैसे ही सूरज डूबेगा, उसको जहर दिया जाएगा। लोग तो सांस तक भी नहीं ले रहे थे और घड़ी छह बजे के करीब आती जा रही थी, और यह महिमावान व्यक्ति सदा के लिए विदा हो जाएगा। और उसने कोई पाप नहीं किया था। उसका केवल एक ही पाप था कि वह लोगों को सत्य बताया करता था, कि वह एक सत्य का शिक्षक था, कि वह समझौता नहीं करता था, कि वह किन्हीं मूर्ख राजनेताओं के समक्ष झुकता नहीं था। वही उसका एकमात्र अपराध था; उसने किसी का कोई नुकसान नहीं किया था। और एथेन्स सदा- सदा के लिए गरीब हो जाने वाला था।
वास्तव में, सुकरात की मृत्यु के साथ, एथेन्स मर गया। तब उसके बाद एथेन्स ने कभी उस गरिमा को नहीं पाया, कभी नहीं। यह एक ऐसा अपराध था, सुकरात का कत्ल, कि एथेन्स ने आत्महत्या कर ली। यूनान की सभ्यता ने फिर कभी ऐसी ऊंचाई नहीं छुई।

कुछ दिनों तक यह जारी रहा, सुकरात की मात्र अनुगूंजें- क्योंकि प्लेटो उसका शिष्य था, मात्र एक अनुगूंज। और अरस्तु प्लेटो का शिष्य था, अनुगूंज की एक अनुगूंज। धीरे-धीरे, जैसे-जैसे सुकरात की अनुगूंजें विदा हो गयीं, युनानी संस्कृति भी दुनिया से गायब हो गयी। उसने गरिमा के दिन देखे थे, लेकिन सुकरात का कत्ल करके इसने आत्महत्या कर ली।
उसके शिष्य बहुत बेचैन थे, परंतु सुकरात उमंग में था, ऐसे ही जैसे तुम
एक छोटे बच्चे को किसी प्रदर्शनी में ले जाओ और वह हर चीज को देखकर पुलकित हो जाता है, प्रत्येक चीज कितनी अनूठी है। वह बार-बार उठ बैठता और खिड़की की ओर जाता और जो आदमी जहर तैयार कर रहा था, उससे पूछता, तुम क्यों देर कर रहे हो? अब छह बज गए हैं।
और वह आदमी कहता, "सुकरात, तुम पागल हो या क्या हो? मैं केवल इसलिए देरी कर रहा हूं ताकि आपके जैसा सुंदर व्यक्ति थोड़ी देर और रुक सके। मैं सदा के लिए देर तो नहीं कर सकता हूं, लेकिन मैं इतना कर सकता हूं। थोड़ी देर और, थोड़ी देर और रुक जाओ। आप मरने के लिए इतनी जल्दी में क्यों हो?" सुकरात ने कहा, "मैंने जीवन को जान लिया है, मैंने जीवन को जी लिया है, मैं जीवन का स्वाद जानता हूं। अब मैं मृत्यु के बारे में जिज्ञासु हूं। इसलिए मैं इतनी जल्दी में हूं। मैं आनंद से खूब तरंगित हूंः यह ख्याल ही कि अब मैं मरने जा रहा हूं और अब मैं देख सकूंगा कि मृत्यु क्या है! मैं मृत्यु का स्वाद लेना चाहता हूं। मैंने और सब चीज का स्वाद ले लिया है, केवल एक चीज अज्ञात बची है। मैंने जीवन को जी लिया है और उस सबको जान लिया है जो जीवन दे सकता है। यह जीवन का अंतिम उपहार है, और मैं वास्तव में विस्मय-विमुग्ध हूं।"
जो आदमी जीया है, सच में जीया है, वह जानेगा कि कैसे मरना।
वंदना, मृत्यु की कोई कला नहीं है। जीवन की कला ही मृत्यु की कला है, क्योंकि मृत्यु कोई जीवन से अलग नहीं है। मृत्यु जीवन का सर्वोच्च शिखर है, एवरेस्ट, सूर्योज्ज्वल एवरेस्ट। अस्तित्त्व में यह सर्वाधिक सुंदर चीज है।
लेकिन तुम मृत्यु का सौंदर्य केवल तभी जान सकते हो अगर तुम जीवन का सौंदर्य जानते हो। जीवन तुम्हें मृत्यु के लिए तैयार करता है। परंतु लोग तो बिल्कुल जी ही नहीं रहे हैं; हर संभव ढंग की बाधा उनके जीने में आती है। इसलिए वे नहीं जानते कि जीवन क्या है, और परिणामतः वे नहीं जान पाएंगे कि मृत्यु क्या है?
मृत्यु एक झूठ है। तुम इसके साथ समाप्त नहीं हो जाते, तुम केवल एक मोड़ लेते हो। तुम एक दूसरे रास्ते पर चल पड़ते होः तुम इस रास्ते से गायब हो जाते हो और किसी दूसरे रास्ते पर प्रकट हो जाते हो। अगर तुम अभी तक जाग्रत नहीं हो, अभी तक संबुद्ध नहीं हुए, तब तुम यहां मरते हो, वहां पैदा हो जाते हो। तुम एक शरीर से गायब होते हो और तुरंत तुम किसी और गर्भ में प्रवेश कर जाते हो, क्योंकि लाखों-करोड़ों मूर्ख लोग पूरी दुनिया में सदा संभोग में संलग्न हैं- वे केवल तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। और वे सच में इतने अधिक हैं कि यह अच्छा है कि तुम अचेतन मरते हो और अचेतन रूप से तुम नए गर्भ को चुन लेते हो। अगर यह एक सजग चुनाव होता, तो तुम पगला जाते। कैसे चुनना? किसको चुनना?
अचेतन तुम मरते हो, अचेतन ही तुम निकटस्थ गर्भ जो तुम्हारे अनुकूल होता है उसके द्वारा पैदा हो जाते हो। केवल शरीर चला जाता है, तुरंत ही दूसरा आकार बन जाता है। लेकिन अगर तुम संबुद्ध हो... और संबुद्ध से मेरा क्या अभिप्राय है? मेरा अभिप्राय है कि अगर तुमने अपना जीवन बोधपूर्वक जीया है और तुम जागरण के ऐसे बिंदु पर पहुंच गए हो जहां तुम में अचेतन का कोई अंधकार-क्षेत्र नहीं बचा, तो अब तुम्हारे लिए और कोई गर्भ नहीं है। तब तुम परमात्मा के गर्भ में प्रवेश करते हो- स्वयं अस्तित्त्व में। वही मुक्ति है, मोक्ष है, निर्वाण है।

प्रवचन-22

सूफी दरवेश गोल-गोल घूमने की विधि
(Translated from- The Transmission of the Lamp, chapter #27, Chapter title: Unless your feet are holy..., 8 June 1986 am in Punta Del Este, Uruguay. Question 6)

प्यारे ओशो,
अपने बचपन के जिन अनुभवों के विषय में हमने आपको बताया, आपने कहा कि
वे अनुभव वास्तव में ध्यान की विधियां हैं जो शरीर से बाहर निकलने के लिए सदियों से उपयोग की जाती रही हैं। क्या यह विधियां बचपन में हुए अनुभवों को देखते हुए ही विकसित की गई थीं, या बचपन में ऐसे अनुभव पिछले जन्मों की स्मृतियों के कारण होते हैं?

ये विधियां- और केवल ये ही नहीं, बल्कि अब तक विकसित की गईं सभी विधियां- मनुष्य के अनुभवों पर ही आधारित हैं।
बहुत सी विधियां बच्चों के सरल अनुभवों पर आधारित हैं। तुम्हें उन अनुभवों को संभव बनाने के लिए फिर से उस सरलता को प्राप्त करना होगा। सदियों से मनुष्य के अंतर जगत में उत्सुकता रखने वाले लोग स्वयं को
और दूसरों को देखते हुए विधियां विकसित करते रहे हैं। लेकिन सभी की सभी विधियां कुछ ऐसे अनुभवों पर आधारित होती हैं जो स्वभावतः अपने आप घटते हैं।
ऐसे कितने ही अनुभव हमें रोज होते हैं, लेकिन कोई उनकी परवाह नहीं करता। बल्कि समाज उन अनुभवों को दबाने की कोशिश करता है, क्योंकि वे अनुभव व्यक्ति के विद्रोह का कारण भी बन सकते हैं।
उदाहरण के लिए, जलालुद्दीन रूमी को एक बड़ी ही विचित्र विधि से बुद्धत्व प्राप्त हुआ, जो उसने बचपन में सहज ही सीख ली थी- गोल घूमना।
सभी बच्चों को गोल घूमने में मजा आता है, क्योंकि सामान्यतः तुम्हारा शरीर और तुम्हारे प्राण एक जगह केंद्रित हैं। लेकिन जब तुम गोल घूमना शुरू करते हो और तेज से तेज घूमते चले जाते हो, तो शरीर तो घूमता चला जाता है और एक खास गति पर तुम्हारी चेतना उसके साथ कदम से कदम मिलाकर नहीं चल सकती। तो तुम्हारी चेतना उस पूरे चक्रवात का केंद्र बन जाती है; शरीर घूमता चला जाता है और चेतना बिना हिले एक जगह केंद्रित रहती है।
संसार भर में सभी बच्चे ऐसा करते हैं, लेकिन माता-पिता को डर लगता है
कि वे गिर जाएंगे, उनकी हड्डी टूट जाएगी, उन्हें फ्रैक्चर हो जाएगा, शायद बीमार पड़ जाएंगे। तो मां-बाप उन्हें घूमने से रोकते हैं, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं है कि बच्चे क्या कर रहे हैं, न उन्होंने कभी बच्चों से पूछा है, "तुम घूम क्यों रहे हो और तुम्हें घूमने से क्या मिल रहा है?" जलालुद्दीन ने बचपन से ही इस विधि का प्रयोग किया और उसका आनंद लिया,
और क्योंकि लोग उसे रोकते थे, वह रेगिस्तान में चला जाता और अकेला इस विधि को करता। और इस विधि के लिए रेगिस्तान सबसे अच्छी जगह है, क्योंकि तुम यदि गिर भी जाओ, तो तुम्हें चोट नहीं लगेगी; तुम जितनी गति से घूमना चाहो घूम सकते हो।
उसे नहीं पता था कि उसके साथ कुछ आध्यात्मिक घटना घट रही है, लेकिन वह देख रहा था कि उसमें परिवर्तन आ रहे हैं। वह अलग किस्म का व्यक्ति होता जा रहा था। आसानी से उसे परेशान नहीं किया जा सकता था, निंदित नहीं किया जा सकता था, उसका अपमान नहीं किया जा सकता था। उसकी प्रतिभा की धार तेज से तेज होती जा रही थी।
और वह बाकी के बच्चों जैसा भी नहीं रह गया था, वह अलग ही व्यक्तित्व पैदा कर पाने में सक्षम हो रहा था। उसे खेल-कूद में कोई रस न था। जब बाकी बच्चे खेलते, वह दूर कहीं रेगिस्तान में जाकर गोल-गोल घूमता रहता। यह अनुभव उसके लिए इतना आनंददायी था कि उसे किसी और चीज की सुध ही न थी। लेकिन

उसे यह नहीं पता था कि यह कोई आध्यात्मिक विधि है या इसका बुद्धत्व से कोई लेना देना है।
जब वह जवान हुआ, तो कई गुरु उसमें उत्सुक हो गए- उसके गुणों को देखते हुए। वह कुछ अनूठा ही व्यक्ति था। वह बुद्धत्व के ठीक कगार पर खड़ा था, और उसे पता भी नहीं था- वह तो सत्य को खोज भी नहीं रहा था। वह तो बस इस विधि को कर रहा था। और इसे उसने जारी रखा।
और एक दिन उसने निर्णय लिया कि वह अपनी पूरी ताकत लगाकर जितनी देर तक घूम सकता है घूम कर देखेगा। जब थोड़ा-थोड़ा घूमने से ही इतने सुंदर अनुभव हो रहे हैं तो उसने सोचा, यदि मैं घूमता ही चला जाऊं, घूमता ही चला जाऊं तो न जाने क्या होगा! वह छत्तीस घंटे तक, दिन-रात, बिना रुके घूमता रहा। और जब छत्तीस घंटे बाद वह जमीन पर गिरा तो वह अलग ही व्यक्ति था, उसमें से एक अलग ही प्रकाश झर रहा था।
उसने एक परंपरा शुरू की, जो पिछले बारह सौ वर्षों से क्रियाशील है। उसकी परंपरा में सूफी दरवेश गोल-गोल घूमकर नृत्य करते हैं। उनके पास केवल एक ही विधि है- और कोई विधि वे नहीं जानते। उनके पास कोई शास्त्र नहीं है, केवल रूमी की कुछ कविताएं हैं- वह बहुत सुंदर कविता करता था। तो इन दरवेशों के पास रूमी की कविताएं और एक विधि है, गोल-गोल घूमने की। और केवल इस एक विधि के द्वारा इन बारह सौ वर्षों में न जाने कितने लोग परम घटना को उपलब्ध हुए हैं। पर यह परंपरा रूमी के द्वारा शुरू की गई थी, जो सत्य को खोज भी नहीं रहा था।
मैंने संसार में आज तक जितनी विधियां संभव हुई हैं उन सभी को गौर से देखा है, यह जानने के लिए कि वे कैसे शुरू हुई होंगी। मैंने पाया कि ये कोई आविष्कार नहीं हैं, वे तो मनुष्य के उन अनुभवों पर आधारित हैं जो अपने आप हो ही रहे हैं। केवल इन अनुभवों को थोड़ा तराशने की जरूरत है, थोड़ा उन्हें विधि के रूप में ढालने की जरूरत है, थोड़ा परिष्कृत करने की जरूरत है, ताकि जिस व्यक्ति को यह अनुभव संभवतः नहीं हो पा रहे हैं वह उनमें सरलता से प्रवेश कर सके।
ये सभी विधियां इसी तरह से खोजी गई हैं।
मुझे आज तक ऐसी एक भी विधि नजर नहीं आई जो मनुष्य के अनुभव पर आधारित न हो। ऐसा लगता है कि प्रकृति तुम्हें खुद ही वह सामर्थ्य देती है जिसके साथ तुम साधारण मन को पार करके समाधि तक पहुंच सको। लेकिन दुर्भाग्य से अपनी इस सामर्थ्य का हम उपयोग ही नहीं करते, हम उसे समझने की कोशिश भी नहीं करते।
लेकिन संसार में ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने इन सब संभावनाओं को इकट्ठा किया है, उन्हें परिष्कृत किया है, उन्हें सहज बनाया है और सरल बनाया है, ताकि हर कोई उनका उपयोग कर सके।
लेकिन एक बात निश्चित है, कि आध्यात्मिक विकास के लिए ऐसी कोई विधि नहीं हो सकती जिसे बनावटी तौर पर मनुष्य के ऊपर थोपा जा सके। प्रकृति ने पहले सब कुछ दे दिया है- तुम उसे परिष्कृत कर सकते हो, उसे बेहतर बना सकते हो, उसे साफ कर सकते हो। लेकिन कोई बनावटी विधि आविष्कृत नहीं की जा सकती। प्रकृति के साथ किसी तरह की बनावट काम नहीं देगी। और जब प्रकृति खुद
ही तुम्हारी मदद करने को तैयार है, तो बनावटी विधियां बनाने का काम बेवकूफी ही होगा।

प्रवचन-23

तंत्र की विधि- दर्पण में देखना
(Traslated from The Transmission of the Lamp, Chapter #3, Chapter title: True balance, 27 May 1986 pm in Punta Del Este, Uruguay. Question 4)

प्यारे ओशो,
जब मैं ग्यारह या बारह वर्ष की रही होंगी, मेरे साथ एक विचित्र घटना घटी। स्कूल में एक बार खेल-कूद का पीरियड चल रहा था, मैं यह देखने के लिए कि मैं ठीक-ठाक लग रही हूं या नहीं, बाथरूम में गई। शीशे के सामने मैं खुद को देखने लगी तो अचानक, मैंने पाया कि मैं अपने शरीर और शीशे में अपने प्रतिबिंब दोनों से अलग बीच में खड़ी हूं और देख रही हूं कि मेरा शरीर अपने प्रतिबिंब को शीशे में देख रहा है।
अपने को तीन-तीन रूपों में देखकर मैं हैरान रह गई, और मुझे लगा कि शायद
यह कोई तरकीब होगी जिसे मैं सीख सकती हूं। तो उस घटना के बाद, मैंने इस तरकीब को अपनी सहेलियों को दिखाना चाहा, और खुद भी करके देखना चाहा, लेकिन मुझे इसमें सफलता नहीं मिली। उस समय मुझे ऐसा तो नहीं लगा कि मैं साक्षित्व का कोई प्रयोग कर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरे प्राण मेरे शरीर से निकलकर बाहर खड़े हो गए हैं। क्या उस समय जो मुझे हुआ, उसे समझने में अब कोई अर्थ है?

ऐसा कई बच्चों के साथ होता है, लेकिन क्योंकि आसपास का वातावरण होश के प्रति, जागरण के प्रति सहयोगपूर्ण नहीं है, इसलिए वे अनुभव माता-पिता के द्वारा, स्कूल के द्वारा, मित्रों के द्वारा, शिक्षकों के द्वारा समर्थन नहीं पाते। और यदि तुम कहो कि तुम्हें ऐसा हुआ है, तो लोग तुम पर हंसते हैं- और तुम्हें फिर खुद भी लगता है कि शायद तुम्हारे साथ कुछ गलत हुआ, शायद यह कुछ ठीक नहीं था।
उदाहरण के लिए, हर सभ्यता में लगभग सभी बच्चे गोल-गोल घूमना पसंद करते हैं। और हर मां-बाप अपने बच्चों को गोल घूमने से मना करते हैं और कहते हैं, मत घूमो, गिर जाओगे। ये सही है, इस बात की संभावना है कि शायद बच्चा गिर जाए। लेकिन नीचे गिरने से भी कोई बहुत ज्यादा नुकसान हो जाने वाला नहीं है।
लेकिन बच्चे गोल घूमना क्यों पसंद करते हैं? जब शरीर घूम रहा होता है,
तो छोटे बच्चे उसे घूमता हुआ देख सकते हैं। वे शरीर के साथ तादात्म्य में नहीं रह जाते, क्योंकि ये उनके लिए बिल्कुल ही अलग अनुभव होता है।
हर चीज के साथ उनका तादात्म्य होता है- चलें तो उसके साथ तादात्म्य बन जाता है, खाएं तो उसके साथ तादात्म्य बन जाता है, वे कुछ भी करें, आमतौर से उसके साथ उनका तादात्म्य बन जाता है। यह तेजी से गोल-गोल घूमना इस प्रकार का अनुभव है कि जितनी तेज शरीर घूमेगा उतने ही उसके साथ तादात्म्य में रह जाने की संभावना कम हो जाती है।
घूमते-घूमते अचानक ऐसा बिंदु आता है कि शरीर तो घूमता चला जाता है, लेकिन उनके प्राण उसके साथ नहीं घूम रहे होते। एक बिंदु पर आकर के उनके प्राण रुक जाते हैं और शरीर को घूमता हुआ देखना शुरू कर देते हैं। कई बार तो वे शरीर से बाहर भी निकल सकते हैं। यदि घूमता हुआ बच्चा एक जगह पर न रुके और घूमता ही चला जाए- बस गोल-गोल घूमता ही चला जाए- तब अचानक वह शरीर से बाहर निकल सकता है और शरीर को घूमता हुआ देख सकता है।
इस तरह की चीजें रोकी नहीं जानी चाहिए उनमें बच्चों की मदद की जानी चाहिए, उनको पोषित किया जाना चाहिए, और बच्चे से पूछना चाहिए, तुम्हें क्या अनुभव हो रहा है? और उसे बताया भी जाना चाहिए, जो अनुभव तुम्हें हो रहा है वह जीवन का बड़ा मूल्यवान अनुभव है, तो इसे भूलना मत। यदि तुम गिर भी जाओ, तो उसमें कोई नुकसान नहीं है; कोई बहुत ज्यादा तुम्हारी हानि होने वाली नहीं है। लेकिन जो तुम्हें मिलेगा वह अमूल्य होगा। लेकिन बच्चों को रोका जाता है कि यह मत करो, वह मत करो।

बचपन में अपने अनुभवों की बात मैं तुमसे कहूं... । मेरे गांव में एक नदी बहती थी- जब उसमें बाढ़ आई रहती, तो उसे तैरकर कोई भी पार नहीं करता था। वह पहाड़ी नदी थी। साधारणतः वह बहुत छोटी होती थी। लेकिन बरसात के समय में जब उसमें बाढ़ आ जाती, तो उसका पाट कम से कम एक मील चौड़ा हो जाता। पानी का बहाव भी बहुत तेज हो जाता था; तुम उसमें खड़े नहीं रह सकते थे। और पानी गहरा भी था, तो उसमें खड़े होने का कोई उपाय भी न था।
मुझे उस नदी से प्रेम था। मैं बरसात के मौसम का इंतजार किया करता। उस समय उस नदी में उतरना एक अलग ही अनुभव था, क्योंकि उसमें तैरते-तैरते एक ऐसा क्षण आता जब मैं अनुभव कर सकता था कि मैं मर रहा हूं, क्योंकि मैं इतना थक जाता और दूसरा किनारा कहीं नजर न आता, और ऊंची उठती लहरों के साथ-साथ बहाव इतना तेज होता... और वापस जाने का भी कोई उपाय न था, क्योंकि दूसरा किनारा भी इतनी ही दूर पीछे छूट गया होता। मैं ठीक मझधार में होता; और दोनों किनारे एक ही जितनी दूरी पर होते।
मैं इतना थक जाता और पानी मुझे इतने तेज प्रवाह के साथ खींचता कि एक समय ऐसा आता जब मैं देख सकता था, अब मेरे और जीने की संभावना नहीं है। और वह क्षण होता जब अचानक मैं अपने आप को पानी से ऊपर देख पाता और मेरा शरीर पानी में ही होता। जब ऐसा पहली बार हुआ, तो मेरे लिए बड़ा भयावह अनुभव था। मुझे लगा कि शायद मैं मर गया हूं। मैंने सुन रखा था कि जब व्यक्ति मरता है, तो उसकी आत्मा शरीर से बाहर निकल जाती हैः तो मैं शरीर से बाहर निकल गया हूं और मैं मर चुका हूं। लेकिन मैं देख सकता था कि शरीर अभी भी दूसरे किनारे की ओर जाने का प्रयास कर रहा है, तो मैं शरीर के पीछे-पीछे चलता।
वह पहला अवसर था जब मुझे अपने प्राणों और शरीर के बीच के संबंध का पता चला। प्राण तुम्हारे शरीर से नाभि से ठीक दो इंच नीचे जुड़े हुए हैं- एक रजत रज्जु के द्वारा। वह डोरी पदार्थ की नहीं है, लेकिन वह चांदी की तरह चमकती है। और जब भी मैं दूसरे किनारे पर पहुंच जाता, जिस क्षण मैं दूसरे किनारे पर पहुंचता, मेरे प्राण मेरे शरीर में वापस प्रवेश कर जाते। पहली बार तो यह अनुभव भयावह था; लेकिन बाद में तो बड़े आनंद का कारण बन गया।
जब मैंने अपने माता-पिता को कहा, तो वे बोले, "किसी दिन तुम उस नदी में डूबकर मर जाओगे। ये इसी बात की ओर संकेत लगता है। उस नदी में जब बाढ़ आई हो, तो वहां कभी मत जाना।"
लेकिन मैंने कहा, "मुझे इतना मजा आ रहा है- इतनी स्वतंत्रता वहां है, गुरुत्वाकर्षण वहां नहीं बचता, और अपने ही शरीर को अपने से अलग देखना कितना सुखदायी अनुभव है।"
फिर मैं युनिवर्सिटी चला गया और वहां भी इसी तरह का अनुभव एक बार हुआ। उसके विषय में मैंने बात भी की है। युनिवर्सिटी के केम्पस के ठीक पीछे एक पहाड़ी थी, जहां तीन पेड़ थे। मुझे उन पेड़ों से प्रेम था, क्योंकि होस्टल में तो शांत बैठ पाना लगभग असंभव ही था। तो मैं उस पहाड़ी पर जाकर उन तीनों पेड़ों में से एक पेड़ पर बैठ जाता था। बीच का पेड़ बैठने के लिए बहुत आरामदेह था- उसकी शाखाएं इस तरह फैली हुई थीं कि उन पर आराम से बैठा जा सकता था। और मैं उस पेड़ पर चढ़कर घंटों मौन बैठा रहता।
एक दिन, मुझे पता नहीं कि क्या हुआ- जब मैंने अपनी आंखें खोलीं तो मैंने पाया कि मेरा शरीर जमीन पर पड़ा हुआ है। ये वही अनुभव था जो पहले नदी में कई बार हो चुका था, इसलिए मुझे कोई भय नहीं लगा। लेकिन नदी में ऐसा होता था कि जब मैं दूसरे किनारे पहुंचता तो प्राण अपने आप शरीर में वापस प्रवेश कर जाते थे। मुझे पता नहीं था कि शरीर में वापस कैसे प्रवेश करना है; ये घटना स्वयं अपने आप ही घटी थी, तो यहां मुझे पता ही नहीं लगा कि मैं शरीर में वापस कैसे प्रवेश करूं। मुझे इस बारे में कोई ख्याल ही नहीं था। मैं देख पा रहा था उस डोरी को, जिसने मुझे शरीर से जोड़ रखा था, लेकिन शरीर में कैसे प्रवेश करना है? कहां से प्रवेश करना? इसकी कोई तरकीब तो मैंने किसी से सीखी नहीं थी। मैं चुपचाप इंतजार करता रहा, और कुछ मैं कर भी नहीं सकता था।
एक स्त्री जो होटल में दूध बेचने आया करती थी वह वहां से गुजरी, और उसने देखा कि मेरा शरीर जमीन पर पड़ा हुआ है। वह हैरान हुई। यह देखने के लिए कि मैं जिंदा हूं या मरा चुका हूं, उसने मेरे सिर पर हाथ लगाया। और जिस

क्षण उसने मेरे सिर पर हाथ लगाया, मैं अपने शरीर में एक प्रबल शक्ति के साथ प्रवेश कर गया।
मुझे पता नहीं लगा कि उस समय शरीर कैसे प्रवेश कर गया। लेकिन एक बात निश्चित हो गई; यदि कोई पुरुष अपने शरीर से बाहर निकला हो, तो किसी स्त्री का स्पर्श उसे शरीर में वापस लाने के लिए पर्याप्त होता है। और ठीक इससे उलटा भी सत्य है; यदि किसी स्त्री के प्राण उसके शरीर से बाहर निकले हों, तो किसी पुरुष के स्पर्श द्वारा वह अपने शरीर में वापस लौट आएगी। और यह स्पर्श माथे पर तीसरे नेत्र के ऊपर होना चाहिए।
उस स्त्री ने संयोग से ही मेरे सिर को छूकर देखा कि मैं जिंदा हूं या
मर चुका हूं। उसे तो कोई ख्याल ही नहीं था कि मैं स्वयं पेड़ पर बैठा देख रहा हूं कि वह क्या कर रही है। जब मैंने अपनी आंखें खोलीं तो वह चौंक गई। वह बोली, "तुम यहां क्या कर रहे हो?"
मैंने कहा, "मैं भी तुमसे यही पूछने वाला था कि तुम यहां मेरे माथे पर हाथ क्यों लगा रही हो?"
वह बोली, "मैं सोच रही थी शायद कि तुम्हारे साथ कोई दुर्घटना हो गई है। तुम बिल्कुल मरे हुए ही दिख रहे थे।"
मैंने कहा, "मैं करीब-करीब मर ही चुका था, और मैं तुम्हारा अनुगृहीत हूं कि तुमने मेरी मदद की। तुम्हारे स्पर्श के कारण ही मैं शरीर में वापस आ पाया हूं।"
वह बोली, "तुम्हारा मतलब तुम पेड़ पर बैठे हुए थे?"
वह मुझसे बुरी तरह डर गई। वह मेरे लिए भी दूध लाया करती थी। उसने मेरे रुम में आना ही छोड़ दिया। वह कहने लगी, "मुझे उस व्यक्ति के सामने ही नहीं पड़ना। वह तो खतरनाक है। वह क्या कर रहा था? मुझे नहीं पता, लेकिन वह कुछ खतरनाक कर रहा था।"
मुझे किसी तरह उसे खोजकर उसे बताना पड़ा, तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। मैं कुछ भी नहीं कर रहा था। मैं तो बस ध्यान कर रहा था कि मेरा शरीर नीचे गिर पड़ा। तुमने मेरी मदद की, और मैं अनुगृहीत हूं। और फिर तुम्हारे जैसा अच्छा दूध भी यहां लाने वाला कोई नहीं, तो तुम दूध लाना बंद मत करना। और यदि तुमने दूध लाना बंद कर दिया, तो जब भी तुम उस पेड़ के पास से गुजरोगी मैं वहां बैठना शुरू कर दूंगा- याद रखना! और जब भी तुम गुजरोगी मेरा शरीर जमीन पर पड़ा होगा, और मैं पेड़ पर बैठकर नजारा देखूंगा।
वह बोली, "दुबारा ऐसा मत करना। मैं तुम्हें दूध दूंगी- बिल्कुल शुद्ध दूध, बिना पानी मिलाए- लेकिन तुम ऐसा दुबारा मत करना, कम से कम जब मैं वहां से गुजर रही हूं, तब तो बिल्कुल ही ऐसा मत करना।"
तो मैंने कहा, "याद रख, यदि तुमने दूध देना बंद कर दिया, तो जब भी तुम वहां से गुजरोगी मैं वहीं बैठा तुम्हें मिलूंगा। मैं तुम्हारे गांव में भी आ सकता हूं; तुम्हारे घर के सामने ही बैठकर भी मैं ऐसा कर सकता हूं।" वह बोली, "मैं गरीब स्त्री हूं। मेरे लिए कोई तकलीफ पैदा मत करो।" तुम्हारे साथ स्कूल में जो हुआ वह संयोग मात्र था। यदि तुम उस अनुभव
को पकड़ने के लिए उसके पीछे लगी होती, तुमने कुछ किया होता तो वह अनुभव दोबारा भी आ सकता था।
वास्तव में, दर्पण में देखना तो तंत्र द्वारा सुझाया गया एक उपाय है- लेकिन उस विधि में बहुत देर तक दर्पण में देखना होता है, ताकि तुम अपने प्रतिबिंब के साथ एक तादात्म्य बना लो, तुम उसके साथ इतने तादात्म्य हो जाओ कि जैसे ही तुम एक कदम पीछे हटो, तो तुम्हारा शरीर उस पुरानी अवस्था में ही खड़ा रह जाए। और स्त्रियों के लिए यह विधि और भी सरल है, क्योंकि उनसे अधिक और कोई भी दर्पण के सामने इतना समय नहीं बिताता।
तंत्र के पुराने शास्त्रों में इस विधि का सुझाव दिया गया है। तुम दर्पण के सामने बैठकर या खड़े होकर लगातार उसमें देखते रहो, देखते रहो। इतनी देर तक उसमें देखो कि तुम अपने प्रतिबिंब के साथ पूरी तरह एक हो जाओ। फिर तुम एक कदम पीछे हटाओ। तुम्हारा शरीर नहीं हटेगा, लेकिन तुम्हारे प्राण पीछे हट जाएंगे। फिर तुम तीन शरीरों को देख पाओगे।
वैसे अगर, तुम हर रोज एक घंटा दर्पण के सामने बैठ जाओ और अपनी आंखों में झांकते रहो, तो कुछ दिनों में, कुछ हफ्तों में- यह व्यक्ति-व्यक्ति पर

निर्भर करता है- एक दिन अचानक तुम देखोगे कि दर्पण खाली हो गया; तुम उसके सामने खड़े होओगे, लेकिन दर्पण खाली हो गया। वह भी एक बड़ा अनुभव है। जब यह अनुभव तुम्हें होगा, तुम पाओगे कि एक अपार मौन और एक शांति जो तुमने पहले कभी नहीं जानी वह अचानक तुम पर उतर आई। तुम्हें लगेगा कि जैसे तुम हर प्रतिबिंब के पार चले गए। और प्रतिबिंबों के पार जाकर वास्तविकता पर लौट आए।
तुम्हारे साथ जो हुआ, अच्छा ही हुआ। ऐसे अनुभव कई बच्चों को होते हैं। मुझे कई लोगों ने बताया है कि उन्हें इस प्रकार के अनुभव हुए, लेकिन कोई इन अनुभवों के पीछे जाने की कोशिश नहीं करता। तो कभी कभार ऐसे अनुभव होते हैं, और फिर व्यक्ति उनके बारे में भूल जाता है, या वह सोचने लगता है कि उसने केवल उनकी कल्पना ही की थी, शायद यह कोई सपना था या कोई कल्पना थी। लेकिन वास्तव में यह अनुभव यथार्थ होते हैं। तुम सच में ही अपने शरीर से बाहर चली गई थीं, और जो तुमने देखा वह शरीर के बाहर आकर जागरण का एक अनुभव था।
उसी प्रकार का जागरण तुम्हें अपने शरीर के भीतर भी साधना होगा। इन दोनों में गुण का कोई भेद नहीं है। और शरीर के बाहर जाने के इस अनुभव को समझ पाने का सरलतम उपाय है कि तुम बिस्तर पर पीठ के बल लेट जाओ। शरीर को बिल्कुल शिथिल छोड़ दो, और जब तुम्हें लगे कि तुम पूरी तरह से विश्राम में आ गए, तो अनुभव करना शुरू करो कि तुम्हारे शरीर से तुम बाहर निकल गए हो, छत की ओर तैरते हुए बढ़ रहे हो। कुछ दिनों में तुम अपने शरीर के ऊपर उठ आने में सक्षम हो जाओगे। लेकिन यह बात पूरी तरह से निश्चित कर लो कि इस अवस्था में कोई तुम्हें परेशान न करे। क्योंकि यदि बीच में आकर कोई तुम्हें हिलाए-डुलाए, या तुमसे बात करने लगे, तो हो सकता है कि वह जो महीन धागा तुम्हें तुम्हारे शरीर से जोड़े हुए है वह टूट जाए, और तुम्हारी मृत्यु हो जाए।
इस प्रयोग को करते समय मोमबत्ती की हलकी-हलकी रोशनी हो, और किसी अगरबत्ती का प्रयोग भी करो। लेकिन जो भी कुछ तुम करते हो- जो अगरबत्ती जलाते हो, जिस तरह की मोमबत्ती जलाते हो- फिर हमेशा उसी तरह की चीजों का उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि वे तुम्हारे प्रयोग के साथ जुड़ जाएं।
दो या तीन अनुभवों के बाद तुम जैसे ही वह अगरबत्ती जलाओगे और उस तरह
की मोमबत्तियां जलाकर शांत लेटोगे, एकदम से तुम शरीर से बाहर निकल पाओगे। लेकिन इस बात का पूरी तरह से ख्याल रखना पड़ेगा कि इस बीच तुम्हें कोई भी किसी भी तरह की बाधा न दे, कोई भी उस समय उस कमरे में अचानक प्रवेश न कर सके, कोई भी उस कमरे के दरवाजे को खटखटाए नहीं। वह घातक हो सकता है। यदि वह धागा टूट जाए तो उसे वापस जोड़ने का कोई उपाय नहीं है।
जब तुम अपने को यह सुझाव दो कि अब मैं अपने शरीर से बाहर निकलूंगा, अब मैं अपने शरीर से बाहर निकलूंगा, तो उस समय तुम यह सुझाव भी अपने आप को दो कि ठीक तीस मिनट बाद खुद ही मैं अपने शरीर में वापस लौट आऊंगा।
इस बात को कभी भी मत भूलना- क्योंकि शरीर में वापस प्रवेश करना कठिन है। और यदि कभी ऐसा होता है... तो यदि पुरुष ऐसा ध्यान कर रहा है, तो स्त्री को उसके आज्ञा चक्र पर हलके से छूना चाहिए और यदि कोई स्त्री ध्यान कर रही है तो किसी पुरुष को उसके आज्ञा चक्र को हलके से छूना चाहिए। इसलिए यह भी अच्छा होगा कि तुम पहले से अपने दरवाजे पर किसी को बिठा दो, एक तो वह किसी को भीतर आने नहीं देगा, और यदि आधे घंटे के बाद तुम कमरे से बाहर नहीं निकले हो, तो वह आकर तुम्हारे आज्ञा चक्र को छू भी सकेगा। और इस प्रकार आज्ञा चक्र पर छूने भर से ही एकदम तुम अपने शरीर में वापस लौट आते हो।

प्रवचन-24

तंत्र की कल्पना की विधि
(Translated from The Transmission of the Lamp, Chapter #6, Chapter title: Pure consciousness has never gone mad, 29 May 1986 am in Punta Del Este, Uruguay. Question 1)

प्यारे ओशो,
बारह से पंद्रह वर्ष की उम्र के बीच, रात के समय बिस्तर पर लेटे हुए मुझे कुछ विचित्र अनुभव हुआ करते थे, जो मुझे बहुत अच्छे लगते थे। मैं बिस्तर पर लेटकर ऐसी कल्पना किया करता था कि जैसे मेरा बिस्तर गायब हो गया, फिर मेरा कमरा, फिर घर, फिर शहर, सभी लोग, पूरा देश, पूरा संसार... जगत में जो कुछ है सब गायब हो गया। बिल्कुल अंधेरा और सन्नाटा बचता; मैं अपने को आकाश में तैरता हुआ पाता।
जब अंतिम चीज तक मिट गई होती तो मेरे चारों और जैसे एक चक्रवात सा बन जाता। मैं उसके अंदर प्रवेश कर जाता; यह अनुभव ऐसा था जैसे काम का अनुभव हो। इससे मेरे पेट में एक मीठी गुदगुदी सी होती, जो कुछ सेकेंड या कभी-कभी एक या दो मिनट के लिए भी चलती।
इस बारे में मैंने अपने माता-पिता से या कभी किसी और से बात नहीं की, क्योंकि मुझे डर था कि वे मुझे कहीं पागल न समझें।
ओशो, यह अनुभव क्या था?

तंत्र में ऐसी एक विधि है जिसमें व्यक्ति को ठीक वही करना होता है जैसा तुमने अभी अपने बचपन के अनुभव के बारे में बताया। बच्चों के लिए आसान है, लेकिन प्रौढ़ लोगों के लिए भी यह असंभव नहीं है। यह कल्पना के अभ्यास पर आधारित एक विधि है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उससे जो अनुभव तुम्हें होगा वह वास्तविक नहीं होगा।
पहले, मैं तुम्हें तंत्र की विधि के बारे में बताऊं। यह हर उम्र के लोगों के लिए है। इसे अंधेरे में करना होता है, क्योंकि अंधेरे में तुम चीजों को देख नहीं सकते, तो यह कल्पना करना कि चीजें गायब हो रही हैं। आसान हो जाता है।
लेटना सबसे अच्छा और आसन है इस विधि के लिए। क्योंकि मनुष्य मनुष्य
बन पाया, थोड़ी बहुत चेतना को उपलब्ध कर सका- अपने दो पैरों पर खड़ा होकर। अब रक्त का प्रवाह उसके सिर में कम से कम होता है। लेटे समय, रक्त बहुत अधिक मात्रा में और बहुत अधिक गति के साथ सिर की ओर प्रवाहित होता है। ऐसा गुरुत्वाकर्षण के कारण होता है। जब तुम खड़े होते हो तो रक्त को गुरुत्वाकर्षण के विपरीत जाना पड़ता है; उसका प्रवाह धीमा पड़ जाता है, मात्रा कम हो जाती है।
यही कारण है कि किसी और पशु के पास चेतन मन नहीं है। चलते समय, गाय या घोड़ा या भैंस वे सब सीधे खड़े नहीं होते। उनके सिर को रक्त की उतनी ही मात्रा मिलती है जितनी शरीर के किसी और अंग को। तो उनके मस्तिष्क में वे सूक्ष्म और छोटे-छोटे कोष नहीं बन पाते जिनके कारण मनुष्य सोच पाने में समर्थ होता है।
लेकिन यह संभावना है- और जहां तक मेरा संबंध है मैं इसे एक निश्चित तथ्य मानता हूं- कि पशु कल्पना करते हैं। उनके पास चेतन मन नहीं है, लेकिन उनके पास अचेतन मन तो है।
किसी कुत्ते की ओर देखो तो तुम समझ सकते हो। एक कुत्ता पास ही बैठा सो रहा है; तुम गौर से उसकी ओर देखोः कभी-कभी बीच में वह काल्पनिक मक्खी पर झपट्टा मारेगा, मक्खी जो वहां है ही नहीं। वह क्या कर रहा है? उसने मक्खी की कल्पना की। मक्खी वहां नहीं थी, लेकिन उसने मक्खी की कल्पना की। और स्वभावतः जैसे पुरुष स्त्रियों के बारे में सोचते रहते हैं, ऐसे कुत्ते मक्खियों के बारे में सोचते रहते हैं।

किसी ने कभी पशुओं के अचेतन में खोजबीन करने की कोशिश नहीं की। अभी तो
हम मनुष्य को भी पूरा समझ नहीं सके हैं, तो पशुओं के अचेतन में उतरने का सवाल ही पैदा नहीं होता। अभी तो पंक्ति में उनका नंबर बहुत पीछे है, वे खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं।
लेकिन मेरा मानना है कि पशु भले ही सोच न सकते हों, लेकिन वे सपने लेते हैं- क्योंकि सपने लेने के लिए किसी को सीधे खड़े होने की जरूरत नहीं होती। सपना लेने के लिए तुम्हें लेटना पड़ता है, ताकि तुम्हारा चेतन मन क्रियाशील न रह सके। उसके लिए तो बहुत थोड़े से रक्त प्रवाह की जरूरत होती है; जब रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है तो चेतन मन सो जाता है। और यदि बहुत ही अधिक मात्रा में रक्त का प्रवाह होने लगे तो उसकी मृत्यु हो जाती है। लेकिन अचेतन मन काम किए चला जाता है। और उसकी भाषा शाब्दिक नहीं है; उसकी भाषा चित्रमयी है।
तो एक छोटा बच्चा अपने बिस्तर पर लेटकर बहुत आसानी से यह कल्पना कर सकता है कि दीवारें मिट रही हैं, कमरा गायब हो रहा है, बिस्तर गायब हो रहा है, बाहर के सब पेड़ गायब हो रहे हैं। सब कुछ गायब हो रहा है, और पूरा संसार मिट रहा है... केवल वह अकेला रह गया है और उसके चारों ओर सुंदर सन्नाटा और घना अंधेरा है।
लेकिन यह विधि तंत्र के शास्त्रों में सुझाई गई है। और कोई भी इसे कर सकता है- और यह तुम्हारे ध्यान में सहयोगी भी होगा।
यह बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि माता-पिता को मनुष्य की पूरी संपदा का पता ही नहीं। अलग-अलग दिशाओं से मनुष्य चेतना को विकसित करने के लिए कार्य करता रहा है। यदि वह सब माता-पिता को उपलब्ध हो जाए, तो शायद वह इस तरह के अनुभवों के होने पर ऐसा नहीं समझेंगे कि बच्चा पागल हो गया है; वे आनंदित होंगे, वे तुम्हारी मदद करेंगे, वे तुम्हें पुरस्कृत करेंगे। वे तुम्हारी मदद करेंगे कि तुम ऐसे अनुभवों में और गहरे जा सको।
संयोग से तुम्हारे हाथ एक सही द्वार लग गया है। और बच्चा तो बड़ी सुगमता से शुरू से ही ध्यान का स्वाद ले सकता है, और वह रोज-रोज उसे विकसित किए चला जा सकता है। जब तक वह युवा होगा तब तक उसका ध्यान में प्रौढ़ हो चुका होगा। फिर बिस्तर पर लेटने की जरूरत नहीं है। फिर वह चाहे बैठे या खड़ा हो, और वह उसी शांति में प्रवेश कर सकता है- खुली आंखों से भी। सवाल बस इतना है कि तुम इस अनुभव में इतने गहरे उतरते चले जाओ, इतने गहरे उतरते चले जाओ कि वह तुम्हारे लिए सहज हो जाए।
लेकिन सभी समाज उन सभी अनुभवों को निंदित करते रहे हैं जो कि तुम्हारे प्राणों को विकसित होने में सहयोगी हो सकें। वे चाहते ही नहीं कि तुम्हारे प्राण विकसित हों। यदि तुमने किसी को बताया होता, तो वह कहते कि तुम पागल हो गए होः बंद करो यह सब; नहीं तो तुम पागल हो जाओगे। और वास्तव में तो उस अनुभव को रोकना तुम्हें पागल बनाने का उपाय है।
इसीलिए मैं कहता हूं कि हर पिता को, हर मां को एक खास प्रशिक्षण से गुजरना चाहिए जिसमें उसे सिखाया जाए कि पिता कैसे होना है? मां कैसे होना है? जहां उन्हें यह सिखाया जाए कि बच्चे में बड़ी संभावनाएं छिपी हैं, और वह ऐसी कई चीजें कर सकता है जो तुम भी नहीं कर सकते, और यही समय है। यदि तुम बच्चे को रोकोगे तो बाद में ये सब चीजें उसके लिए भी उतनी ही मुश्किल हो जाने वाली हैं।
तुम्हारा अनुभव अच्छा था, बहुत अच्छा था। और यदि अब तुम उसे फिर से करने कोशिश करते हो तो शायद तुम बिना किसी कठिनाई के दोबारा से उस अवस्था में प्रवेश कर सको। मेरे पास जो लोग इकट्ठे हुए हैं वे इसी तरह के अनुभवों में उतरने के लिए इकट्ठे हुए हैं; ये सब अनुभव, ये सब विधियां तुम्हारे प्राणों को स्पर्श कर लेने के अलग-अलग उपाय हैं।
यह विधि कल्पना की विधि है। दीवारें गायब नहीं होतीं, और न ही पेड़ या कुछ और गायब होते हैं। यह केवल एक विधि है। लेकिन यदि तुम उनके गायब होने की कल्पना कर सको, तो स्वभावतः तुम ही बच रहते हो, जो कुछ भी करने पर नहीं मिट सकता। तुम्हारे मिटने की कल्पना की कोई विधि संभव नहीं है; साक्षी हर कल्पना के पार है, मन के पार है। जो बच रहता है, वह केवल एक साक्षी है, एक देखने वाला- और वह तुम्हारी शुद्ध चेतना है।

तो इसकी परवाह मत करना कि जो विधि तुमने अपनाई वह मात्र कल्पना भर थी। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि तुम इसमें उत्सुक ही नहीं थे कि दीवारें मिट जाएं; वह एक उपाय था कि किसी तरह ऐसी परिस्थिति पैदा हो जिसमें तुम हर चीज से मुक्त हो जाओ- चाहे वह चीज वहां है या नहीं- और तुम अपने प्राणों की सुंदर नीरवता को प्राप्त कर लो। ऐसा एक क्षण भी शाश्वत के समान है।
और यह विधि तंत्र की विधि है, जो सदियों से प्रयोग की जाती रही है। निश्चिंत रहो, इससे तुम पागल नहीं हो सकते। वास्तव में इस विधि के द्वारा तुम पागल होने के सब उपाय ही समाप्त कर देते हो; अब केवल शुद्ध चेतना ही बची है। और शुद्ध चेतना कभी पागल नहीं होती।
तो तुम्हारे बचपन में जो हुआ वह बहुत शुभ था। यह अच्छा होता कि यदि तुमने सतत इस विधि को जारी रखा होता, लेकिन इसे तुम फिर से शुरू कर सकते हो- क्योंकि कुछ भी जो एक बार हुआ हो, तुममें एक निशान तो छोड़ ही जाता है; वहां से तुम फिर शुरू कर सकते हो। थोड़ी तकलीफ हो सकती है, शायद उतना सरल अब न हो, लेकिन वह अनुभव लौट आएगा- एक दिन में, दो दिन में, वह अनुभव लौट आएगा।

प्रवचन-25

झेन शुद्ध धर्म है।
(Translated from Zen: The Path of Paradox, Vol 1, Chapter #1, Chapter title: Join the Farthest Star, 11 June 1977 am, Poona. Sutra)

झेन कोई दर्शनशास्त्र नहीं है, बल्कि एक धर्म है। और धर्म जब बिना दर्शनशास्त्र के होता है, बिना किसी शाब्दिक जाल के तो वह घटना बहुत अनोखी हो जाती है। बाकी के सभी धर्म परमात्मा की धारणा के आसपास घूमते हैं। उनके अपने दर्शन हैं। वे धर्म परमात्मा की ओर केंद्रित हैं, मनुष्य केंद्रित नहीं हैं; उनके लिए मनुष्य लक्ष्य नहीं है, परमात्मा उनका लक्ष्य है। लेकिन झेन के लिए ऐसा नहीं है। झेन के लिए, मनुष्य ही अंतिम लक्ष्य है, मनुष्य स्वयं अपने आप में लक्ष्य है। झेन के लिए परमात्मा मनुष्य से ऊपर नहीं है, परमात्मा मनुष्य में छिपी हुई सत्ता का ही नाम है। झेन कहता है कि मनुष्य अपने स्वयं के भीतर परमात्मा को एक संभावना की तरह लिए हुए है।
तो झेन में परमात्मा भी कोई धारणा नहीं है। यदि तुम चाहो तो तुम ऐसा
भी कह सकते हो कि झेन कोई धर्म ही नहीं है- क्योंकि परमात्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो कैसे सकता है? निश्चित ही जो लोग एक ईसाई की तरह, एक मुसलमान की तरह, एक हिंदू की तरह, एक यहूदी की तरह बड़े किए गए हैं, जिनका पालन-पोषण इन धर्मों में हुआ है, वे तो विश्वास भी नहीं कर सकते कि किस प्रकार का धर्म है झेन। यदि परमात्मा न हो तो पूरी बात नास्तिकता वाली हो जाती है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। झेन शुद्धतम धर्म है- बस परमात्मा भर की जगह उसमें नहीं है।
यह बात सबसे पहले समझ लेने की है। इसे अपने भीतर गहरे उतर जाने दो, तभी तुम्हें झेन का अर्थ स्पष्ट हो सकेगा। झेन के लिए प्रार्थना भी व्यर्थ है- प्रार्थना करोगे तो किसकी करोगे? कहीं किसी स्वर्ग में परमात्मा नहीं बैठा है जो कि जीवन को नियंत्रित कर रहा है। इस समूचे अस्तित्त्व का नियंत्रण करने वाला कोई भी नहीं है। पूरा जीवन अपने आप लयबद्धता में, स्वरबद्धता में चल रहा है।
इस जीवन से बाहर बैठा न तो कोई आदेश दे रहा है, न कोई आज्ञा दे रहा है।
जब कोई अथारिटी बाहर से बैठकर आज्ञा दे या तुम्हें नियंत्रित करे तो उसके साथ जो संबंध है वह अधिक से अधिक गुलामी भर का हो सकता है... जैसे एक ईसाई गुलाम बन जाता है परमात्मा का, ऐसा ही मुसलमान के साथ होता है, ऐसा ही हिंदू के साथ होता है। जब परमात्मा आदेश देने वाला, नियंत्रण करने वाला हो, तो तुम अधिक से अधिक उसके नौकर हो सकते हो या गुलाम हो सकते हो। तब तुम सारी गरिमा खो देते हो।
लेकिन झेन के साथ ऐसा नहीं है। झेन तुम्हें अथाह गरिमा देता है। तुम्हारे अतिरिक्त कहीं कोई और नियंता नहीं है। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है, अंतिम है।
परमात्मा के बिना भी धार्मिक हुआ जा सकता है। वास्तव में, परमात्मा
के होते तो तुम धार्मिक हो भी कैसे सकते हो? यही प्रश्न है जो झेन पूछता है। परमात्मा के होते व्यक्ति कैसे धार्मिक हो सकता है?- क्योंकि परमात्मा तो तुम्हारी स्वतंत्रता को नष्ट कर देगा, परमात्मा तुम्हारे ऊपर आधिपत्य जमा लेगा।
तुम ओल्ड टेस्टामेंट देखो। परमात्मा कहता है, "मैं बहुत ईर्ष्यालु हूं और किसी दूसरे परमात्मा को सहन नहीं कर सकता। जो लोग मेरे साथ नहीं हैं, उन्हें मेरे विरुद्ध ही समझो। मैं बहुत ही क्रोधी किस्म का हूं। यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन नहीं करते तो मैं तुम्हें नर्क में डाल दूंगा, तुम्हें सजा दूंगा।"
अब ऐसे परमात्मा के साथ तुम किस तरह धार्मिक हो सकते हो? कैसे तुम स्वतंत्र हो सकते हो और कैसे तुम खिल सकते हो? स्वतंत्रता के बिना तो कोई खिलावट हो ही नहीं सकती। तुम अपनी चरम संभावना को कैसे उपलब्ध हो सकते हो,

जब सदा ही तुम्हारे सामने कोई परमात्मा खड़ा है, और तुम्हें आदेश दे रहा है, तुम्हें कह रहा है तुम यह करो, तुम वह करो- तुम्हारा नियंत्रण कर रहा है? झेन कहता है कि परमात्मा के रहते तो मनुष्य गुलाम ही रहेगा; परमात्मा
के रहते, मनुष्य पूजा-पाठ से ऊपर नहीं उठ सकता; परमात्मा के रहते मनुष्य भय में ही रहेगा। भय में तुम भला कैसे खिल सकोगे? तुम सिकुड़ जाओगे, सूख जाओगे, धीरे-धीरे मरते रहोगे। झेन कहता है कि यदि परमात्मा न हो तो अथाह स्वतंत्रता मनुष्य को उपलब्ध हो जाती है, कहीं कोई नियंत्रण नहीं बचता। और इसके साथ ही एक बड़ा उत्तरदायित्व मनुष्य के ऊपर आ जाता है।
इसे ऐसा समझो जब तक कोई तुम्हारे बारे में निर्णय ले रहा है, तुम्हारा नियंत्रण कर रहा है तब तक तुम्हें महसूस ही नहीं होता कि तुम्हें भी कुछ अपने लिए करना है। यदि तुम्हारे ऊपर कोई हो तो तुम उत्तरदायित्व भी भूल जाते हो; जब तुम्हारे ऊपर कोई होता है, तो अधिक से अधिक तुम्हारे भीतर उसके खिलाफ प्रतिक्रिया हो सकती है, या विद्रोह हो सकता है। लेकिन उत्तरदायित्व का कोई सवाल पैदा नहीं होता।
परमात्मा को तो समाप्त करना होगा। उसके बिना स्वतंत्रता की कोई संभावना नहीं है, उसके विदा होने पर ही तुम स्वतंत्र हो सकते हो। लेकिन फिर एक बात और- परमात्मा के बिना जीने के लिए बड़ा साहस चाहिए, परमात्मा के बिना जीने के लिए गहरे ध्यान की आवश्यकता है, परमात्मा के बिना जीने के लिए एक सजगता, एक जागरूकता चाहिए।
झेन के लिए यह एक सत्य है कि परमात्मा नहीं है। मनुष्य अपने लिए जिम्मेदार है और उस सारे जगत के लिए भी जिसमें वह जी रहा है। यदि दुख है तो मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है; किसी और की ओर तुम नहीं देख सकते। तुम अपना उत्तरदायित्व किसी और के कंधों पर नहीं डाल सकते। यदि यह संसार कुरूप है और पीड़ा में है, तो हम खुद उत्तरदायी हैं- कोई और नहीं है जो इस उत्तरदायित्व को सम्हाल सके। यदि हम विकसित नहीं हो पा रहे हैं तो यह भी हमारा ही उत्तरदायित्व है, इसे किसी और के कंधों पर नहीं डाला जा सकता। हमें अपना उत्तरदायित्व स्वयं लेना होगा।
जब परमात्मा नहीं बचता तो तुम स्वयं पर फेंक दिए जाते हो। और तब विकास होता है। तुम्हें विकसित होना ही पड़ेगा। तुम्हें अपना जीवन अपने हाथों में लेना पड़ेगा; तुम्हें अपनी लगाम अपने हाथों में लेनी पड़ेगी। अब तुम अपने स्वयं के मालिक हो। अब तुम्हें अधिक जागरूक होना पड़ेगा और सजग होना पड़ेगा, क्योंकि जो कुछ भी होने वाला है उसके लिए तुम स्वयं उत्तरदायी होगे। इससे बड़ी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर आ जाती है। तुम एक-एक कदम फिर फूंककर रखते हो। बिल्कुल अलग ही ढंग से तुम जीने लगते हो। तुम जागने लगते हो। तुम हर चीज के साक्षी हो जाते हो।
और जब परमात्मा नहीं रहा, तो कहीं पार भी नहीं जाना है। पार तुम्हारे भीतर ही है। तुम्हारे पार कोई और पार का जगत नहीं है। क्रिश्चियनिटी में पार का जगत तुम्हारे पार है; झेन में वह जगत तुम्हारे भीतर ही है। तो किसी आकाश की ओर आंखें उठाकर प्रार्थना करने का सवाल नहीं है- वे प्रार्थना व्यर्थ है, तुम खाली आकाश से प्रार्थना कर रहे हो। आकाश तो तुम्हारी चेतना से कहीं नीचे है।
अब कोई बैठा किसी पेड़ की ही पूजा कर रहा है... । कई हिंदू पेड़ों की पूजा करते हैं, तो कई हिंदू जाकर गंगा की या दूसरी नदियों की पूजा करते हैं, कोई किसी पत्थर की मूर्ति की पूजा कर रहा है, कोई आकाश की ओर हाथ उठाकर प्रार्थना कर रहा है। ऊंची चेतना निम्न चेतना की पूजा कर रही है। प्रार्थना बिल्कुल व्यर्थ है।
झेन कहता हैः "केवल ध्यान।" ऐसा नहीं कि तुम्हें किसी और के सामने घुटने टेकने हैं। गुलामी की यह पुरानी आदत छोड़ दो। बस इतना भर चाहिए कि तुम घड़ी-दो घड़ी के लिए शांत हो जाओ और बैठ जाओ और भीतर की ओर आंखें कर लो और अपने केंद्र पर पहुंच जाओ। वही केंद्र अस्तित्त्व का केंद्र भी है। जब तुम अपने अंतर्तम केंद्र पर पहुंच जाते हो तो तुम अस्तित्त्व के अंतर्तम केंद्र पर भी पहुंच जाते हो। झेन में परमात्मा यह केंद्र ही है। लेकिन वे इसे परमात्मा कहते नहीं। और अच्छा ही है कि वे इसे परमात्मा नहीं कहते।

तो पहली बात जो स्मरण रखने जैसी है कि झेन कोई थियोलॉजी, कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। झेन एक धर्म है और वह भी बहुत अलग किस्म का। झेन ऐसा धर्म नहीं है जैसे इस्लाम। इस्लाम में तीन बुनियादी बातें हैंः एक परमात्मा, एक किताब, और एक पैगंबर। झेन में कोई परमात्मा नहीं है, कोई किताब नहीं है, कोई पैगंबर नहीं है। पूरा का पूरा अस्तित्त्व स्वयं अपने आप में एक संदेश है; पूरा अस्तित्त्व एक संदेश है।
और स्मरण रखो, परमात्मा अपने संदेश से अलग नहीं है। यह संदेश स्वयं ही दिव्य है। कोई संदेशवाहक नहीं है, झेन इस पूरी की पूरी बेवकूफी को छोड़ देता है। दर्शनशास्त्र खड़ा होता है किताबों के साथ। दर्शनशास्त्र के लिए बाइबिल चाहिए, कुरान चाहिए। दर्शनशास्त्र के लिए ऐसी किताब चाहिए जो पवित्र होने का दावा करे, जो यह दावा करे कि वह विशेष है- कि उसके जैसी कोई और किताब नहीं, कि यह सीधी परमात्मा के मुख से उतरकर आ रही है।
झेन कहता है कि सभी कुछ दिव्य है। तो कुछ भी अलग से विशेष कैसे हो सकता है? सभी कुछ विशेष है। जब ऐसी कोई चीज ही नहीं है जो कि विशेष न हो तो कुछ चीज विशेष कैसे हो सकती है। हर वृक्ष की हर पत्ती और हर समुद्र तट पर पड़ा हर छोटे से छोटा पत्थर भी विशेष है, अनूठा है, पवित्र है। ऐसा नहीं कि कुरान ही पवित्र है, ऐसा नहीं कि बाइबिल ही पवित्र है। जब कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को पत्र लिखता है तो वह पत्र भी पवित्र होता है।
झेन साधारण जीवन में पवित्रता ले आता है।
एक झेन गुरु, बोकूजू, कहा करता था, मैं लकड़ी काटकर लाता हूं, मैं कुएं
से पानी लाता हूं। यह सब कितना रहस्यपूर्ण है।
यह कितना रहस्यपूर्ण है! लकड़ी काटकर लाना, कुएं से पानी भर लाना और वह कहता है, कितना रहस्यपूर्ण! यह झेन का दृष्टिकोण है, इससे साधारण चीजें असाधारण में बदल जाती हैं। सांसारिक को पवित्र में बदलने की कीमिया है झेन। जगत और जगत के पार दोनों के भेद आकर झेन में मिट जाते हैं।
इसीलिए मैं कहता हूं कि झेन कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। यह शुद्ध धर्म है। दर्शनशास्त्र से तो धर्म प्रदूषित हो जाता है। जहां तक धर्म का संबंध है, वहां तक इस्लाम में और ईसाइयत में और हिंदू धर्म में कोई फर्क नहीं है, लेकिन जहां तक थियोलॉजी का, दर्शनशास्त्र का सवाल है वहां आकर फर्क पड़ने शुरू हो जाते हैं। उनकी अपनी-अपनी थियोलॉजीस हैं। इन अलग-अलग धारणाओं के कारण ही लोग आपस में लड़ते रहे हैं।
धर्म तो एक है; दर्शनशास्त्र कई हैं। दर्शनशास्त्र का अर्थ हैः परमात्मा के संबंध में जानकारी, परमात्मा के संबंध में दिए गए तर्क। ये सब व्यर्थ की लफ्फाजियां हैं, क्योंकि परमात्मा को सिद्ध करने का कोई उपाय ही नहीं है- और न ही उसके न होने को सिद्ध करने का कोई उपाय है। उस बारे में दिया गया कोई भी तर्क, कोई भी विवाद व्यर्थ है। हां, अनुभव किया जा सकता है लेकिन सिद्ध नहीं किया जा सकता- और यही बात करने का प्रयास थियोलॉजी करती है।
अब थियोलॉजी, दर्शनशास्त्र ऐसी बेवकूफियां करता चला जाता है, ऐसी बेवकूफियां करता चला जाता है कि व्यक्ति में यदि जरा भी प्रतिभा हो तो वह उन पर हंसेगा। तुम थोड़े दूर हटकर देखो तो तुम्हें हंसी आएगी। इतनी बेवकूफी भरी बातें की जाती हैं। मध्ययुग में क्रिश्चियन थियोलॉजियन एक बात को लेकर बहुत चिंतित थे, एक पहेली थी जिसे वे सब सुलझाने में लगे थे। और तुम उस समस्या को देखोगे तो तुम हंसोगे। वे यह सिद्ध करने कि कोशिश में लगे थे कि एक सुई की नोक पर कितने फरिश्ते खड़े हो सकते हैं। इस बारे में किताबें लिखी गईं, बड़े विवाद चले।
थियोलॉजी सब कूड़ा-कर्कट है। और थियोलॉजी के कारण, धर्म विषाक्त हो जाता है। व्यक्ति वास्तव में धार्मिक होगा तो उसके पास कोई दर्शनशास्त्र नहीं होगा। हां, उसके पास अनुभव होगा, उसके पास सत्य होगा, उसके पास वह चमक होगी, लेकिन कोई थियोलॉजी नहीं, कोई दर्शनशास्त्र नहीं। लेकिन विद्वानों के लिए, पंडितों के लिए, तथाकथित जानकारों के लिए थियोलॉजी बड़ी सहायक रही है। पंडितों का बड़ा रस रहा है दर्शनशास्त्र में- पोप्स का, शंकराचार्यों का इसी में ही रस रहा है। उनको इससे लाभ भी बहुत हुआ है। उनका पूरा व्यवसाय इस पर आधारित है।

झेन इस सब की जड़ को काट डालता है। पुरोहित का पूरा व्यवसाय ही नष्ट कर देता है झेन। और पुरोहित का व्यवसाय संसार में कुरूपतम व्यवसाय है, क्योंकि उसका व्यवसाय लोगों को धोखा देने पर टिका है। पुरोहित ने खुद तो जाना नहीं और वह दूसरों को शिक्षा दिए चला जाता है; दार्शनिक ने स्वयं तो जाना नहीं और वह लोगों को दर्शन दे रहा है। वह उतना ही अज्ञानी है जितना कि कोई और- और हो सकता है कि वह सामान्य लोगों से अधिक अज्ञानी हो।
लेकिन उसका अज्ञान बहुत कुशलता से भरा हुआ है। उसका अज्ञान आभूषणों
से ढंका है- शास्त्रों से, धारणाओं से; और इतनी चालाकी से वह अपनी अज्ञान को ढंक लेता है, इतनी धूर्तता से कि उसमें कोई भी गलती ढूंढ पाना बहुत कठिन हो जाता है। थियोलॉजी आज तक मनुष्यता के लिए किसी भी प्रकार से सहायक सिद्ध नहीं हुई, लेकिन उससे कुछ लोगों को तो निश्चित ही लाभ हुआ हैः पुरोहित को। थियोलॉजी के कारण वे लोग मनुष्यता को ठगने में कामयाब रहे हैं।
थियोलॉजी तो राजनीति है। वे लोगों को बांटती है। और यदि तुम लोगों को बांटो तभी तुम उनके ऊपर शासन कर सकते हो।
झेन मनुष्यता की ओर अखंडित आंखों से देखता है- लोगों को बांटता नहीं।
झेन की दृष्टि व्यापक है। इसीलिए मैं कहता हूं कि झेन भविष्य का धर्म है।
मनुष्यता धीरे-धीरे उस चेतना की ओर बढ़ रही है जहां थियोलॉजी तो विदा हो जाएगी, केवल अपने शुद्धतम अनुभव में धर्म स्वीकृत होगा।
जापानी भाषा में इसके लिए एक विशेष शब्द है। इसे वे कहते हैंः कोनोमामा या सोनोमामा- अस्तित्त्व का होना। जीवन का यह होना ही परमात्मा है। ऐसा नहीं कि परमात्मा है, लेकिन यह सब होना- जीवन का और अस्तित्त्व का- यही अपने आप में दिव्य है।
वृक्ष का होना, पत्थर का होना, मनुष्य का होना, बच्चे का होना। और होने की यह जो घटना है यह अपरिभाष्य है। इसमें तुम खो तो सकते हो, इसमें तुम मिट तो सकते हो, इसका तुम स्वाद तो ले सकते हो- कितना रहस्यपूर्ण! लेकिन इसकी तुम परिभाषा नहीं कर सकते, तुम तर्क से उसे सिद्ध नहीं कर सकते, तुम उसके लिए कोई धारणाएं निर्मित नहीं कर सकते।
सभी धारणाएं इस घटना को मार डालती हैं। फिर यह होना शुद्ध होना ही नहीं रहता, फिर तो सारी बात मन की निमर्ति हो जाती है। परमात्मा शब्द परमात्मा नहीं है। परमात्मा की धारणा परमात्मा नहीं है। और न ही प्रेम की धारणा प्रेम है। और न ही प्रेम शब्द प्रेम है। झेन कहता है कि यह बड़ी साधारण सी बात है। झेन कहता है, "यह याद रखो कि मेन्यू कार्ड भोजन नहीं है। और मेन्यू कार्ड को खाने मत लग जाओ।" और सदियों-सदियों से लोग यही कर रहे हैंः मेन्यू कार्ड को खा रहे हैं।
और फिर स्वभावतः यदि वे कुपोषित हैं, वे बढ़ नहीं पा रहे हैं, उनमें कोई शक्ति नहीं है, वे पूरी तरह से जी नहीं पा रहे, तो यह स्वाभाविक है, ऐसा होना ही था। उन्होंने असली भोजन तो लिया ही नहीं। वे भोजन के बारे में बात करते रहे हैं और यह भूल ही गए हैं कि भोजन क्या है? परमात्मा को तो खाना है, परमात्मा का स्वाद लेना है, परमात्मा को जीना है- उसके बारे में कोई विवाद नहीं करना है।
किसी चीज के संबंध में बात करने की प्रक्रिया थियोलॉजी है। और यह संबंध में की जाने वाली बात गोल घेरे में घूमती रहती है, कभी भी वास्तविक चीज तक नहीं पहुंच पाती। यह एक दुश्चक्र की तरह है। तर्क एक दुश्चक्र है। और झेन हर प्रयास करता है कि तुम्हें उस दुश्चक्र से बाहर निकाल लिया जाए। किस प्रकार तर्क एक दुश्चक्र है?- तुम्हारी धारणा में ही निष्पत्ति छिपी हुई है। निष्पत्ति कोई नई बात नहीं होने वाली है, वह तुम्हारी धारणा में ही छिपी हुई है। और एक बार निष्पत्ति निकालने के बाद फिर तुम उसमें से धारणा बना लेते हो। यह ऐसे ही है जैसे एक बीजः बीज में वृक्ष छिपा हुआ है और फिर वृक्ष और कई बीजों को पैदा करेगा और उन बीजों में कई और वृक्ष छिपे हुए हैं। यह एक दुश्चक्र है; बीज, वृक्ष, बीज। यह चलता चला जाता है। या जैसे, अंडा, मुर्गी; अंडा, मुर्गी; अंडा... यह अनंत श्रृंखला चलती चली जाती है। यह एक चक्र की तरह है।

इस चक्र को तोड़कर बाहर निकल आने का उपाय ही झेन है- शब्दों और धारणाओं
के चक्र को तोड़कर स्वयं अस्तित्त्व में उतर जाने का नाम झेन है।
एक झेन गुरु, नानइन, एक बार जंगल में लकड़ी काट रहा था। युनिवर्सिटी का
एक प्रोफेसर उससे मिलने आया। स्वभावतः प्रोफेसर को लगा कि यह लकड़हारा जानता होगा कि नानइन पहाड़ों पर कहां रहता है? सो उसने नानइन से पूछा। लकड़हारे ने अपनी कुल्हाड़ी की ओर इशारा करते हुए कहा, इस कुल्हाड़ी के लिए मैंने काफी धन दिया है।
प्रोफेसर ने तो कुल्हाड़ी के बारे में पूछा भी न था। वह पूछ रहा था कि नानइन कहां रहता है? वह पूछ रहा था कि नानइन इस समय अपने आश्रम में होगा भी या कहीं और गया होगा। और नानइन ने अपनी कुल्हाड़ी उठाई और कहा, "देखो, इस कुल्हाड़ी के लिए मैंने बहुत धन दिया है।" प्रोफेसर को थोड़ी परेशानी हुई और इससे पहले कि वह आगे कुछ पूछता, नानइन उसके पास आया और अपनी कुल्हाड़ी प्रोफेसर के सिर पर रख दी। प्रोफेसर तो भय के मारे कांपने लगा और नानइन बोला, यह कुल्हाड़ी बहुत तेज भी है। और प्रोफेसर तो बेचारा भाग गया।
बाद में, जब वह प्रोफेसर आश्रम पहुंचा तो उसने देखा कि वह लकड़हारा और कोई नहीं स्वयं नानइन ही था। फिर उसने दूसरों से पूछा, "क्या यह पागल है?" नहीं, उसके शिष्यों ने कहा। तुमने पूछा कि क्या नानइन आश्रम में है और उन्होंने कहा कि हां। वे कुल्हाड़ी की ओर इशारा करके यह बता रहे थे कि जैसे यह कुल्हाड़ी अभी यहां मौजूद है, वैसे ही वे भी यहां मौजूद हैं। उस क्षण वे लकड़हारे थे; उस क्षण उनके हाथ में जो कुल्हाड़ी थी, उस कुल्हाड़ी के साथ वे पूरी तरह तल्लीन थे। उस समय उस कुल्हाड़ी की जो तेजी है, वही वे थे। तुमसे उन्होंने कहा, "मैं यहीं हूं।" लेकिन तुम पूरी बात ही चूक गए। वे तुम्हें झेन की गुणवत्ता सिखा रहे थे।
झेन के पास कोई धारणा नहीं है। झेन गैर-बुद्धिवादी है। यह संसार में अकेला धर्म है जो तुम्हें अभी और यहीं होना सिखाता है; क्षण-क्षण जीना; इस क्षण में उपस्थित होना, न अतीत, न भविष्य।
लेकिन लोग तो धारणाओं में जीते रहे हैं। और वे धारणाएं उन्हें बचकाना बनाए रखती हैं, वे उन्हें विकसित नहीं होने देतीं। जब तक तुम किसी धारणा में सीमित हो, तब तक तुम विकसित नहीं हो सकते। एक ईसाई होते हुए, या हिंदू होते हुए, या मुसलमान होते हुए, या बौद्ध होते हुए तुम्हारा विकास नहीं हो सकता। तुम बढ़ नहीं सकते; तुम्हारे पास विकसित होने के लिए पर्याप्त स्थान ही नहीं होता; तुम कैद में होते हो।
एक युवा पादरी चर्च के एक लाख डालर स्टॉक मार्केट में हार गया। फिर अगले दिन उसकी सुंदर पत्नी उसे छोड़कर चली गई। वह बेचारा इतना निराश हो गया कि एक दिन नदी के किनारे जाकर उसने आत्महत्या करने की ठान ली। वह नदी में कूदने को ही था कि एक बूढ़ी जर्जर देह वाली स्त्री उसके सामने आई और उसे बोली, "बेटे, कूदो मत। मैं जादूगरनी हूं, और यदि तुम तुम मेरे लिए कुछ करोगे तो मैं तुम्हारी तीन इच्छाएं पूरी करूंगी!"
"मेरी कोई मदद नहीं कर सकता" युवा पादरी ने जवाब दिया।
"पागल मत बनो" वह बोली। छू मंतर! तुम्हारे चर्च की तिजोरी में सारा पैसा वापस पहुंच गया है। छू मंतर! तुम्हारी पत्नी घर वापस पहुंचकर तुम्हारा इंतजार कर रही है। छू मंतर! अब तुम्हारे अपने बैंक में दो लाख डालर भी पहुंच चुके हैं!
वाह! वाह! मजा आ गया, पादरी खुशी से चिल्लाया। अब मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?
एक रात मेरे साथ प्रेम करते हुए बिताओ।
बिना दांत की इस जर्जर देह वाली बूढ़ी स्त्री के साथ एक रात प्रेम करते हुए बिताने का ख्याल ही अपने आप में घृणापद था। तब भी वचन तो वह दे ही चुका था और बूढ़ी स्त्री उसकी इच्छाएं भी पूरी कर चुकी थी, तो उन्होंने पास ही एक होटल में अपना कमरा बुक किया। सुबह जब यातना भरी रात बिताकर वह घर वापस पहुंचने की तैयारी कर रहा था और कपड़े पहन रहा था तो वह स्त्री उठकर बैठी और बोली, "बेटे, तुम्हारी उम्र कितनी है?"
मैं बयालीस साल का हूं! पादरी ने जवाब दिया। लेकिन क्यों?

तुम इतने बड़े हो, तब भी क्या तुम्हें इतना नहीं पता कि जादूगर होते ही नहीं?
यही होता है। यदि तुम परमात्मा में विश्वास करते हो तो तुम किसी भी चीज में विश्वास कर सकते हो- चाहे वह जादूगर हो, जादूगरनी हो, भूत-प्रेत हों। यदि तुम एक तरह की बेवकूफी में विश्वास कर सकते हो, तो तुम किसी भी तरह की बेवकूफी में विश्वास कर सकते हो। लेकिन तुम कभी विकसित नहीं हो पाते हो। तुम बचकाने बने रहते हो।
झेन का अर्थ हैः प्रौढ़ता। झेन का अर्थ हैः सारी इच्छाएं गिर जाने दो
और देखो कि वास्तव में क्या है? अपने सपनों को वास्तविकता में लाने की कोशिश मत करो। अपनी आंखों को सपनों से पूरी तरह साफ हो जाने दो, ताकि तुम देख सको कि वास्तविकता क्या है? यह वास्तविकता ही जापानी भाषा में कोनोमामा या सोनोमामा कहलाती है।
सारी धारणाएं और सारे दर्शनशास्त्र तुम्हें वास्तविकता को देखने से रोकते हैं। धारणाएं सारी की सारी आंख पर बांधी जाने वाली पट्टी की तरह है, वे तुम्हारी दृष्टि को रोक देती हैं। न तो कोई ईसाई देख पाता है, न कोई हिंदू देख पाता है, न कोई मुसलमान देख पाता है। क्योंकि तुम धारणाओं से इतने भरे हुए होते हो कि तुम वही देखते हो, जो तुम देखना चाहते हो। तुम वही देखते हो, जो वहां पर नहीं है। तुम चीजें प्रक्षेपित किए चले जाते हो। तुम अपनी स्वयं की एक वास्तविकता निर्मित कर लेते हो जो कि है ही नहीं। और इसी से सारी विक्षिप्तता पैदा होती है। तुम्हारे तथाकथित संतों में सौ में से निन्यानबे तो विक्षिप्त लोग हैं।
झेन एक तरह की प्रौढ़ता लेकर आता है। झेन सभी धारणाओं को गिरा देता है। झेन कहता है, "खाली हो जाओ। सब धारणाएं गिरा दो। चीजों की स्वभाव की ओर देखो लेकिन बिना किसी धारणा के, बिना किसी पूर्वाग्रह के, बिना किसी पूर्व धारणा के। चीजों को पहले से मान मत लो- यह आधारभूत नियम है झेन का। तो दर्शनशास्त्र को पूरी तरह से गिरा देना होगा, वरना तुम पूर्वाग्रहों से ग्रस्त रहोगे।"
समझ रहे हो तुम? यदि तुम्हारी पहले से ही कोई धारणा हो, तो इस बात की
हर संभावना है कि तुम उसको वास्तविकता में खोज लोगे- क्योंकि मन बहुत ही सृजनात्मक है। स्वभावतः वह सृजन केवल कल्पना में ही होगा। यदि तुम क्राइस्ट को खोज रहे हो तो तुम्हारे सपनों में क्राइस्ट आने लगेंगे, और वह सारी बात कल्पना में ही होगी। अगर तुम कृष्ण को खोज रहे हो तो तुम कृष्ण को पा लोगे, लेकिन वह तुम्हारी कल्पना ही होगी।
झेन बहुत यथार्थवादी है। उसका कहना है कि कल्पना को पूरी तरह गिराना होगा। कल्पना आती है तुम्हारे अतीत से। बचपन से ही तुम किन्हीं खास धारणाओं में संस्कारित किए गए हो। बचपन से ही तुम्हें चर्च ले जाया गया है, मंदिर ले जाया गया है, मस्जिद ले जाया गया है; तुम्हें किसी पंडित के पास, किसी पुरोहित के पास ले जाया गया है; तुम्हें बाध्य किया गया है कि तुम उपदेशों को सुनो- हर तरह की चीजें तुम्हारे मन में ठूंस दी गई हैं। उस सब के बोझ से भरे और दबे हुए, तुम वास्तविकता को नहीं देख पाते।
बोझ से मुक्त हो जाओ। बोझ से मुक्त हो जाना ही झेन है।
झेन बहुत सरल है और फिर भी बहुत कठिन है। जहां तक झेन का अपना संबंध है, वह तो बहुत सरल है- सरलतम, क्योंकि झेन से सहज और कुछ भी नहीं। लेकिन तुम्हारे संस्कारित मनों के कारण वह बहुत कठिन हो जाता है। जिस विक्षिप्त संसार में हम रह रहे हैं उसके कारण झेन बहुत कठिन हो जाता है। जिन धारणाओं और जिन दर्शनशास्त्रों को लेकर हमारा पालन-पोषण हुआ है, उन सब के कारण झेन बहुत कठिन हो जाता है।
दूसरी बातः झेन कोई दर्शन नहीं, एक कविता है। झेन न तो कोई उपदेश देता है, न कोई विवाद करता है, न कोई तर्क उठाता है। झेन केवल अपना गीत गाता है, यदि तुम्हारा हृदय खुला हो तो तुम उसे सुन लो।
झेन सौंदर्य बोध से भरा हुआ धर्म है। झेन की पूरी की पूरी चिंता सौंदर्य को लेकर है- सत्य को लेकर नहीं। क्यों? क्योंकि सत्य का मार्ग तो रूखा-सूखा है। ऐसा नहीं कि सत्य स्वयं में सूखा है, लेकिन जो लोग सत्य को पाने में उत्सुक होते हैं वे रूखे-सूखे होते हैं। क्योंकि उनकी खोज

मस्तिष्क की, बुद्धि की होती है, तो उनके हृदय सिकुड़ जाते हैं, उनमें कोई रसधार नहीं बहती। उनके प्रेम के स्रोत सूखने लगते हैं, वे हिंसक हो जाते हैं, क्योंकि किसी भी तरह उन्हें सत्य को पा लेना है।
झेन के जगत में तुम्हारी बुद्धि की नहीं, तुम्हारे पूरे प्राणों की जरूरत है। ऐसा नहीं कि वहां बुद्धि अस्वीकृत है, लेकिन उसे उसकी सही जगह पर रखा गया है। बुद्धि के हाथों में तुम्हारी पूरी बागडोर झेन में नहीं रहती। तुम्हारी पूरी समग्रता में उसका अपना कार्य है। जैसे, झेन में पांव भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितना कि तुम्हारा सिर, हाथ भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी कि तुम्हारी बुद्धि, हृदय भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि तुम्हारी बुद्धि। तुम्हें वहां एक ऑरगेनिज्म की तरह हो जाना पड़ता है। न तुम्हारा कोई हिस्सा ऊपर है, न नीचे है। दर्शनशास्त्र बुद्धि केंद्रित होता है; काव्य समग्र होता है। कविता में एक बहाव होता है। कविता का संबंध सौंदर्य के साथ होता है। और सौंदर्य अहिंसक होता है, और सौंदर्य प्रेम से भरा होता है, और सौंदर्य में एक करुणा होती है।
झेन का खोजी सत्य को सौंदर्य में पाने का प्रयास करता है। पक्षियों
के गीतों में, वृक्षों में, मोर के नृत्य में, बादलों में, बिजली में, सागरों में, रेगिस्तानों में- हर जगह वह सत्य को खोजता है। झेन का साधक सौंदर्य की खोज में उतर जाता है और सत्य को पा लेता है।
स्वभावतः सौंदर्य की खोज का एक अलग ही प्रभाव है। जब तुम सत्य को खोज रहे होते हो तो तुम अधिक पुरुष चित्त होते हो; जब तुम सौंदर्य को खोज रहे होते हो तो तुम स्त्री चित्त होते हो। जब तुम सत्य को खोज रहे होते हो तो तुम बुद्धि से, तर्क से चलते हो; जब तुम सौंदर्य को खोज रहे होते हो तो तुम भाव के जगत में उतरने लगते हो। झेन स्त्रैण चित्त धर्म है। काव्य स्त्रैण चित्त है। दर्शनशास्त्र पुरुष चित्त है, अधार्मिक है।
झेन अधार्मिक है- इसीलिए झेन में मात्र बैठे भर रहना एक महत्त्वपूर्ण ध्यान की विधि बन गई है। बस बैठना भर- झाझेन। झेन गुरु कहते हैं कि तुम बिना कुछ किए खाली बैठे रहो, और चीजें अपने आप घटती है। तुम्हें कुछ भी करना नहीं पड़ेगा; तुम्हें किसी चीज के पीछे भागना नहीं पड़ेगा, तुम्हें कुछ खोजना नहीं पड़ेगा। चीजें स्वयं आएंगी। तुम बैठ भर रहो।
यदि तुम मौन बैठ सको, यदि तुम पूरी तरह विश्रांत हो सको, यदि तुम स्वयं को शिथिल छोड़ सको, यदि तुम अपने सारे तनाव घड़ी भर को छोड़ दो और ऐसी दशा में आ जाओ जहां तुम्हें कहीं जाना नहीं है, कुछ खोजना नहीं है, तो भगवत्ता तुममें उतरने लगती है। हर ओर से दिव्यता तुम्हारी ओर दौड़ी चली आती है। बस, बैठे हुए, बिना कुछ किए, बसंत आता है और फूल अपने आप खिल उठते हैं।
और याद रखो, जब झेन कहता है बैठना भर तो उसका अर्थ बैठना भर ही है- कुछ
और नहीं, मंत्र का उच्चार तक नहीं। यदि तुम किसी मंत्र का उच्चार कर रहे हो तो तुम बैठे नहीं हुए हो, तुम एक चक्र में घूम रहे हो, बार-बार, बार-बार किसी चीज को दोहरा रहे हो।
यदि तुम कुछ भी नहीं कर रहे... विचार आ रहे हैं; जा रहे हैं; आ रहे हैं,
जा रहे हैं- वे आएं, तो अच्छा; वे न आएं, तो अच्छा। तुम्हें इसकी परवाह ही नहीं है कि क्या हो रहा है? तुम बस बैठे भर हो। और बैठे-बैठे यदि थक जाओ, तो लेट जाओ; यदि तुम्हें लगे कि तुम्हारे पांव दुखने लगे, तो उन्हें थोड़ा ढीला कर के बैठ जाओ। तुम स्वाभाविक दशा में रहो। चीजों को साक्षी होकर देखो भी मत। किसी तरह का कोई प्रयास ही मत करो। बैठने भर का यही अर्थ है। बस बैठे-बैठे ही घटना घट जाती है।
झेन की पहुंच स्त्रैण है, और धर्म मूलतः स्त्रैण होता है। विज्ञान पुरुष चित्त होता है, दर्शनशास्त्र पुरुष चित्त होता है- धर्म स्त्रैण होता है। इस जगत में जो भी कुछ सुंदर है- कविता, चित्रकारिता, नृत्य- सब कुछ स्त्रैण चित्त से आया है।
यह जरूरी नहीं कि यह सब स्त्रियों से आया हो, क्योंकि स्त्रियों तो आज
तक सृजन करने के लिए स्वतंत्र रही ही नहीं। उनके दिन अब आ रहे हैं। जैसे-

जैसे झेन इस संसार में महत्त्वपूर्ण होता जाएगा, स्त्रैण चित्त उभरकर ऊपर आएगा, उसमें एक विस्फोट होगा।
चीजें एक समग्रता में गति करती हैं। आज तक का अतीत पुरुष नियंत्रित रहा है- इसीलिए इस्लाम और क्रिश्चियनिटी और हिंदू धर्म का प्रभाव रहा। भविष्य स्त्रैण होने वाला है; कोमल, अधार्मिक, शांत, सौंदर्य बोध से भरा हुआ, काव्यात्मक होने वाला है। काव्यात्मक वातावरण में झेन संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया बन जाएगी।
दर्शनशास्त्र है तर्क; काव्य है प्रेम। दर्शनशास्त्र चीजों को तोड़ता है, उनका विश्लेषण करता है; कविता चीजों को जोड़ती है। दर्शनशास्त्र मूलतः विध्वंसात्मक है; काव्य जीवनदायी है। दर्शनशास्त्र की विधि है विश्लेषण-और यह विधि विज्ञान की भी है, मनोविज्ञान की भी है। देर या अबेर मनोविश्लेषण को हटा देना होगा और मनोसंश्लेषण को जगह देनी होगी। रवींद्रनाथ टेगोर सिग्मंड फ्रॉयड से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि संश्लेषण सत्य के अधिक करीब है, विश्लेषण सत्य से बहुत दूर ले जाता है। यह जगत एक है। यहां कुछ भी अलग-थलग नहीं है। हर चीज एक साथ धड़क रही है।
हम एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, अंर्तसंबंधित हैं। यह पूरा जगत जीवन का एक ताना-बाना है। घास की एक छोटी सी छोटी पत्ती भी सुदूर तारे से जुड़ी हुई है।
यदि इस पत्ती को कुछ होता है तो उस सुदूर के तारे में भी कुछ परिवर्तन जरूर होंगे। सब कुछ एक साथ है, जुड़ा हुआ है। यह अस्तित्त्व एक परिवार है।
झेन कहता है, "चीजों को तोड़ो मत, उनका विश्लेषण मत करो।"
झेन कहता है कि मनुष्य एक समग्रता है, एक ऑरगनिज्म है।
आधुनिक विज्ञान में एक नई धारणा बहुत प्रचलित हो गई है- इसे वे कहते हैं एन्ड्रोजिनी। प्रसिद्ध वैज्ञानिक, बक मिन्टर फुलर ने एन्ड्रोजिनी की परिभाषा देते हुए कहा है, "हर इकाई, हर ओरगनिज्म में ऐसा कुछ होता है जो कि केवल उसके टुकड़ों और खंडों का जोड़ भर ही नहीं होता। जब किसी ऑरगनिज्म के सब टुकड़े आपस में जोड़ दिए जाते हैं तो वह काम करने लगता है। जैसे, घड़ी के पुर्जें आपस में जोड़ दिए जाएं तो घड़ी टिक-टिक-टिक करने लगती है। तुम घड़ी को खोल दो और उसके सब पुर्जें अलग-अलग कर दो, तो टिक-टिक गायब हो जाती है। तुम फिर पुर्जों को आपस में जोड़ दो और ठीक पहले जैसी अवस्था में ले आओ, तो टिक-टिक वापस आ जाती है। ये टिक-टिक पुर्जों से अलग है। कोई भी एक पुर्जा इसके लिए जिम्मेदार नहीं हो सकता और न ही अलग-अलग पड़े हुए सब पुर्जें इसके लिए जिम्मेदार हो सकते हैं; इस टिक-टिक के लिए तुम्हें सब पुर्जों को आपस में जोड़ना पड़ेगा।"
यह टिक-टिक आत्मा है, सब पुर्जों को एक साथ जोड़ दिए जाने पर जो प्रकट होती है। तुम मेरा हाथ अलग कर दो, तुम मेरे पांव अलग कर दो, तुम मेरा सिर अलग कर दो, और जो मेरी धड़कन है वह समाप्त हो जाती है। यह धड़कन मेरी आत्मा है। लेकिन यह धड़कन तब तक ही रहती है जब तक मेरे सब हिस्से एक इकाई में बंधे रहें।
परमात्मा इस पूरे अस्तित्त्व की धड़कन है। तुम परमात्मा को इसके सब हिस्सों को अलग-अलग करके नहीं पा सकते। परमात्मा को पाना हो तो तुम्हें अपनी दृष्टि को अखंड रखना होगा। परमात्मा अखंडता का एक अनुभव है। विज्ञान कभी भी उसे खोज नहीं सकता, दर्शनशास्त्र कभी भी उस तक पहुंच नहीं सकता- केवल एक काव्यात्मक दृष्टि, एक अधार्मिकता, एक प्रेमपूर्ण पहुंच के साथ ही तुम उसे छू सकते हो। जब तुम अस्तित्त्व के साथ एक लयबद्धता में आ जाते हो, जब तुम एक साधक की तरह अलग नहीं रह जाते, जब तुम एक खोजी की तरह अलग नहीं रह जाते, जब तुम मात्र देखने वाले द्रष्टा नहीं रह जाते, तुम पूरी तरह अपने आप को इसमें खो देते हो- तब वह धड़कन प्रकट होती है।
तीसरी बातः झेन विज्ञान नहीं है, लेकिन जादू है। लेकिन यह कोई बाजीगरों वाला, जादूगरों वाला जादू नहीं है, यह ऐसा जादू है जो तुम्हें जीवन के करीब ले आता है। विज्ञान तो बौद्धिक है। वह जीवन के रहस्य को नष्ट करने का एक प्रयास है। विज्ञान सारे रहस्य को मार डालता है। यह जो तिलिस्म चारों और बिखरा है, विज्ञान उसके खिलाफ है। झेन इस तिलिस्म को जीने की कला है।

जीवन के रहस्य को सुलझाना नहीं है, क्योंकि उसे सुलझाया जा ही नहीं सकता। उसे जीना है, उसमें उतरना है, उसका स्वाद लेना है। यह जीवन एक रहस्य है, यही इसका आनंद भी है। इसका उत्सव मनाना है।
झेन जादू है। वह तुम्हें रहस्य को खोलने की कुंजी देता है। और मजे की बात यह है कि वह रहस्य भी तुममें है और कुंजी भी तुममें ही है।
जब तुम किसी झेन गुरु के पास पहुंचते हो, तो वह तुम्हारी मदद करता है
कि तुम बस शांत हो जाओ, और जो कुंजी तुम सदा से अपने भीतर लिए चल रहे हो, वह तुम अपने भीतर ही पा लो। और उस कुंजी से जो द्वार खुलना है, वह भी तुम्हारे भीतर ही है। जब तुम शांत होते हो, तो उस द्वार के पास सहज ही तुम पहुंच जाते हो।
और अंतिम बुनियादी बातः झेन कोई आदर्श नहीं देता। झेन यह नहीं कहता
कि तुम्हें ऐसा करना है और ऐसा नहीं करना। झेन बस तुम्हें सौंदर्य के प्रति संवेदनशील बना देता है, और वह संवेदनशीलता ही तुम्हारा आदर्श बन जाती है। लेकिन यह मॉरेलिटी, यह आदर्श कहीं तुम्हारे बाहर से नहीं आता, तुम्हारी चेतना से आता है। झेन तुम्हें चेतना देता है, तुम्हें कर्तव्य का कोई भाव नहीं देता। ऐसा नहीं कि तुम्हें किसी बाइबिल, किसी कुरान या किसी वेद को मानना है। जो कुछ है, तुम्हारे भीतर ही है।
और जब कुछ तुम्हारे भीतर से आता है, तो वह गुलामी नहीं होती, वह स्वतंत्रता होती है। और जब कुछ तुम्हारे भीतर से उठता है तो तुम उसे हिचकिचाते हुए नहीं करते। उसे करने में तुम्हें आनंद आता है। वह करना तुम्हारा प्रेम बन जाता है।